MAX MULLER

INDIA
WHAT CAN IT TEACH US ?

With Hindi Translation

भारत से हम क्या सीखें ?

Edited & Trans. by

DR. BHAWANI SHANKER TRIVEDI

भारत से हम क्या सीखें ?

INDIA WHAT CAN IT TEACH US ?

भवानी शंकर त्रिवेदी

संस्कृतं संस्कृतिश्चैव रक्षणीये प्रयत्नतः

मैक्समूलर को पहचानिये-4

Max Muller

India what can it teach us ?

With Hindi Translation

भारत से हम क्या सीखें ?

सम्पादक-अनुवादक—

डा० भवानी शंकर त्रिवेदी

एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रकाशक—

आर्य भारती

जी-18, दिलशाद कालोनी, शाहदरा, दिल्ली-110032

प्रकाशक :

आर्य भारती
जी-18, दिलशाद कालोनी
शाहदरा, दिल्ली-110032

प्रथम संस्करण : 1986

मूल्य : 100.00 (एक सौ रु० केवल)

मुद्रक :
मित्तल प्रिण्टर्स, के-13,
दिल्ली-110032

अनुक्रम

Contents

TOPICS FOR ESSAYS

1. What can India teach us ?
2. Characters of the Hindus
3. The human Interest of Sanskrit Literature
4. Ideals of Research
5. The place of lectures and examination in modern education
6. The Aryan race and culture
7. Religion as a social force
8. The role of the village in India
9. The value of Sanskrit learning
10. Climate and culture
11. Hindu view of Life
12. The historical value of the Rig-veda
13. Foreign influence in Vedic culture
14. Poetry in primitive religion
15. Physical Religion
16. 'No name is a mere name'.
17. The influence of writing on the growth of literature
18. Origin and significance of ancestor-worship

अनुवादक का आत्मनिवेदन

मैक्समूलर के नाम एवं वैदुष्य के सम्बन्ध में पढ़ता-सुनता तो रहता ही था। इसी बीच अपने 'संस्कृतम् यूरोपीयाभाषाश्च' नामक तुलनात्मक भाषावैज्ञानिक ग्रन्थ के प्रणयन के प्रसंग में मुझे उनके 'लेक्चर्स ऑन कम्पैरेटिव फिलोलोजी' तथा इस विषय के एक अन्य ग्रन्थ के अध्ययन का अवसर मिला। उन्हीं दिनों उनकी India what can it teach us नामक पुस्तक भी पढ़ने को मिल गई। इस पुस्तक में मैक्समूलर ने भारत, संस्कृत और वेद के महत्त्व एवं उपयोगिता का जिस श्रद्धा भक्ति एवं विवेक के साथ प्रतिपादन किया है, उसे देखकर मैं उनके प्रति नतमस्तक हो गया। सौभाग्य से मुझे मैक्समूलर द्वारा सम्पादित सायण भाष्य-सहित ऋग्वेद के लगभग एक-एक हजार के चार बृहदाकार भागों के दर्शन एवं किंचित् अध्ययन की सुविधा भी मिल गई।

अब तो मेरे मन में मैक्समूलर के प्रति ऐसी महनीय भावना जागृत हो गई कि इस महामानव के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से अधिकाधिक स्वदेशवासियों को परिचित कराने का यथाशक्य प्रयत्न किया जाना चाहिए। इस प्रकार मैं मैक्समूलर के प्रामाणिक जीवन-वृत्त की खोज में लग गया।

मैक्समूलर की अपनी लिखी हुई ऑटोवायोग्राफी भी पढ़ डाली। किन्तु मैक्समूलर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को समझने के लिए उन्हीं की पत्नी जार्जिना की लिखी हुई 'लाइफ एण्ड लेटर्स ऑफ मैक्समूलर' नामक पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई।

उक्त पुस्तक को पढ़कर तो मैं इतना उत्साहित हुआ कि उसी को उपजीव्य बनाकर मैंने आज से पाँच वर्ष पूर्व संस्कृत में 'मोक्षमूलरवैदुष्यम्' नाटक लिख डाला और उसे स्वयं ही हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित भी करवा दिया। (आकाशवाणी से भी उसका प्रसारण हुआ)।

मैक्समूलर के भारत-प्रेम एवं प्रकाण्ड पाण्डित्य के लिए भारत एवं यूरोप के अनेक गण्यमान्य एवं उच्चकोटि के महानुभावों ने समय-समय पर बहुत-कुछ लिखा है। मैक्स-मूलर की सार्द्धजन्मशती के अवसर पर श्री हेमू राव (Heimo Rau) ने कुछ-एक सुविख्यात व्यक्तियों के लेखों का एक अत्युपयोगी सचित्र संकलन 'F. Max Mueller—What He Can Teach Us?' शीर्षक से प्रकाशित करवाया है। इसमें स्वामी विवेकानन्द जी की मैक्समूलर के साथ भेंट का भाव-प्रवण संस्मरण एवं उनके देहान्त पर लोकमान्य तिलक की भावभीनी श्रद्धांजलि के रूप में पुरातन मनीषियों के उनके बारे में व्यक्त विचारों के साथ-ही-साथ श्री डॉ० आर० एन० दाण्डेकर, माननीय श्री पी० बी० गजेन्द्र गडकर, डॉ० वी० राघवन, श्री शिशिरकान्त दास और श्री एस० ए० उपाध्याय आदि अनेक आधुनिक मनीषियों के अत्यन्त शोधपूर्ण निबन्ध संकलित हुए हैं। इन निबन्धों

के शीर्षकों से ही इनकी महत्ता का आभास हो जाता है, जैसे—श्री Hermann Berger ने अपने निबन्ध का शीर्षक दिया है—'What Can He Teach Us?' इस प्रकार शिशिरकुमार दास के निबन्ध का सर्वथा सार्थक शीर्षक है—'Vedavyas of the Kaliyug'। इस संकलनात्मक लघुकाय स्मृतिग्रन्थ के मात्र कुछ निबन्धों को पढ़कर ही उनके व्यक्तित्व के साथ-ही-साथ वैदिक धर्म एवं भारत के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा-विषयक धारणाएँ भी हस्तामलकवत् हो जाती हैं। जैसे स्वयं मैक्समूलर ने अपनी इस पुस्तक के पाठकों के Colonel Sleeman की पुस्तक Rambles and Recollections of an Indian official को पढ़ने का आग्रह किया है, वैसे ही मैं भी पाठकों से चाहूँगा कि वे यदि हो सके तो उक्त ग्रन्थ 'F. Max Mueller—What He Can Teach Us?' का एक बार अवश्य अवलोकन कर जाएँ।

इस ग्रन्थ का मेरा किया हुआ एक स्वतन्त्र अनुवाद पहले प्रकाशित हुआ है। अब मूल अंग्रेजी के साथ यह हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत कर रहा हूँ। आशा करता हूँ कि प्रत्येक विज्ञ पाठक इस ग्रन्थ को पढ़कर भारत, भारतीयता, हिन्दू-धर्म, संस्कृत और वेदों के महत्त्व को पहचान कर गौरवान्वित होगा। सम्पूर्ण पुस्तक न भी सही तथापि कम-से-कम उनके सातवें व्याख्यान को तो प्रत्येक भारतीय पढ़कर अवश्य लाभ उठायेगा ही।

राजस्थान सरकार की राजस्वमंत्री श्रीमती कमला जी (अध्यक्षा राजस्थान संस्कृत-साहित्य सम्मेलन) एवं शिक्षामन्त्री श्री हीरालाल देवपुरा व डॉ० श्रीनिवास रथ (विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन) जैसे गुणज्ञजनों से इस जन की साहित्य-साधना में सदा सर्वविध प्रोत्साहन प्राप्त होता रहता है।

अनुवाद जैसा भी बन पड़ा है, पाठकों के हाथों में है। आशा है इससे मैक्समूलर के हृदय में निहित प्रगाढ़ भारत-भक्ति एवं संस्कृत भाषा तथा वेद और वैदिक धर्म के प्रति उनकी आन्तरिक अनुरक्ति को समझने में अवश्य कुछ सहायता मिलेगी। मैक्समूलर ने इस पुस्तक के समर्पण में लिखा है कि यदि इन व्याख्यानों को सुनकर मेरे श्रोता I.C.S. के कुछ-एक छात्रों के हृदय में भी संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रति अनुराग जागृत हो सका तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूंगा।

मेरी अन्यान्य रचनाओं के समान इस अनुवाद के इतने सुन्दर रूप में प्रस्तुत कर पाने का सम्पूर्ण श्रेय चि० आनन्द शर्मा को जाता है। इन्होंने ग्रन्थ का डिक्टेशन तो लिया ही, साथ ही बार-बार कटे-छटे व संशोधित पृष्ठों की बड़े धैर्य के साथ टंकित पाण्डुलिपि तैयार की तथा चि० भारतेन्दु ने प्रेस से मैटर आदि पहुँचाने का कार्य बड़े धैर्य एवं अध्यवसाय के साथ किया है। मेरे ज्येष्ठ सुपुत्र रवि शर्मा एम० ए० (अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी) नानाविध आवश्यक एवं उपयोगी सन्दर्भ-ग्रन्थ ला-लाकर जुटाते रहे। तदर्थ इन तीनों चिरंजीवों के लिए मेरी साशीर्वाद प्रभु से प्रार्थना है कि वे इन्हें सर्वविध सुख-सौविध्य एवं चिरायुष्य प्रदान करें, ताकि मेरी सरस्वती-साधना में ये सदा इसी प्रकार हाथ बँटाते रहें।

कालिदास-जयन्ती-उत्सव
हरिप्रबोधनी, संवत्-2043

विद्वज्जन कृपाकांक्षी
भवानी शंकर त्रिवेदी

डा० बलराम जाखड़
अध्यक्ष, लोक सभा

नई दिल्ली
तिथि 21-11-86

आमुख

जर्मनी में जन्मे, भारतीय संस्कृति से अति प्रभावित, श्री मैक्समूलर को अपने अध्ययन काल में ही संस्कृत भाषा से प्रगाढ़ अनुराग हो गया था। उन्होंने सायण भाष्य सहित ऋग्वेद छह खण्डों में प्रकाशित कराया तथा विश्व को वेदों की ज्ञान-ज्योति का दिग्दर्शन कराया। उससे पहले केवल भारत में ही वेदों का ज्ञान छिपा पड़ा था तथा विश्व में उनका इतना प्रचार-प्रसार न था जितना कि आज है। हम श्री मैक्समूलर के ऋणी हैं कि उन्होंने अपने संस्कृतानुराग एवं भारत-भक्ति से तथा भारतीय संस्कृति के अनुपम सौरभ से समस्त विश्व को सुगन्धित किया और भारतीय जनता को भी वेदज्ञान के अनुसंधान के लिए प्रेरित किया।

पूज्य स्वामी विवेकानन्द जी ने उनके संबंध में कहा है, 'मैंने उन्हें एक भाषातत्त्वविद् अथवा पण्डित के रूप में नहीं देखा, वरन् मैंने उन्हें ब्रह्म के साथ नित्य एकरूपता अनुभव करने वाली एक आत्मा और विश्वात्मा के साथ एकात्म होने के निमित्त प्रतिक्षण विस्तीर्ण होते हुए हृदय के रूप में ही देखा। जहां अन्य लोग शुष्क ब्यौरों की मरुभूमि में स्वयं को खो देते हैं, वहां उन्होंने जीवन का स्रोत ढूंढ निकाला है। निस्संदेह उनके हृदय के स्पंदनों ने उपनिषदों की लय पकड़ ली है—'तमेवैकं जानथ आत्मानम् अन्या वाचो विमुञ्चथ'—एकमात्र आत्मा को ही जान लो और सब बातें त्याग दो।

स्वामी विवेकानंद ने आगे कहा है, 'मैक्समूलर वेदांतियों के भी वेदांती हैं। उन्होंने सचमुच वेदान्त की रागिनी की यथार्थ आत्मा को समस्वरता और विस्तरता की पूर्ण भूमिका में पहचाना है—उस वेदान्त की, जो पृथ्वी

के समस्त सम्प्रदायों एवं विचारों को प्रकाशित करने वाला एकमात्र आलोक है और समस्त धर्म जिनके भिन्न-भिन्न रूप मात्र हैं। यह आश्चर्य की बात है कि इस पाश्चात्य ऋषि ने भारतीय विचारगगन में उदित हर एक नए नक्षत्र को परख तथा पहचानकर उसी समय उसको खूबियां भी बता दीं, जबकि भारतीय जन उसके महत्त्व को अभी समझ ही नहीं पाये थे।'

'भारत से हम क्या सीखें?' पुस्तक में श्री मैक्समूलर के उन व्याख्यानों का संकलन है, जो उन्होंने समय-समय पर आई.सी.एस. के तरुण प्रत्याशियों को उनके प्रशिक्षण के समय दिए। इन व्याख्यानों में श्री मैक्स-मूलर की भारत-भक्ति, संस्कृतानुराग और वेदों के प्रति अगाध आस्था का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है। उन्होंने अपने सात व्याख्यानों (1) 'भारत से हम क्या सीखें'? (2) 'हिन्दुओं का चरित्र' (3) 'संस्कृत साहित्य का मानव पक्ष' (4) 'क्या वैदिक संस्कृति वैराग्यमूलक थी'? (5) 'वैदिक धर्म' (6) 'वैदिक देवता' तथा (7) 'भारतीय संस्कृति में वेद वेदान्त' इन सब विषयों का इतना विशद तथा परिपूर्ण दिग्दर्शन कराया है कि कोई भी विद्यार्थी आज भी इनका अध्ययन करके भारत के संबंध में इतना कुछ जान सकता है, जिससे उसके ज्ञानचक्षु खुल सकें और वह भारत-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त कर सके।

श्री मैक्समूलर ने आई.सी.एस. के युवा प्रत्याशियों को बताया कि 'भारत में आप अपने आपको सर्वत्र अत्यन्त प्राचीन और सुदूर भविष्य के बीच खड़ा पायेंगे। वहां आपको ऐसे सुअवसर भी मिलेंगे, जो किसी पुरातन विश्व में ही सुलभ हो सकते हैं और पुराने देशों में भी भारत को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ हैं। आप आज की किसी ज्वलन्त समस्या को ले लें, वह चाहे लोकप्रिय शिक्षा से सम्बद्ध हो, या उच्च शिक्षा से, चाहे संसद् में प्रतिनिधित्व की या कानून बनाने की बात हो, चाहे प्रवासी कानून का मसला, सीखने या सिखाने योग्य कोई भी बात क्यों न हो, भारत के रूप में आपको ऐसी प्रयोगशाला मिलेगी जैसी विश्व में अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकती।' यह श्री मैक्समूलर की भारत के प्रति श्रद्धा-द्योतक है।

मुझे जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि डॉ. भवानी शंकर त्रिवेदी ने श्री मैक्समूलर के इन व्याख्यानों का हिन्दी में अनुवाद किया तथा इसे

अंग्रेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में एक-साथ पुस्तकाकार में प्रकाशित किया।

उन्होंने अत्यंत सरल, काव्यमय, सुपठनीय, प्रांजल शैली में अनुवाद प्रस्तुत किया है। ऐसा प्रतीत ही नहीं होता कि यह अनुवाद है, अपितु लगता है कि वक्ता स्वयं हिन्दी में अपने विचार व्यक्त कर रहा है, जो मौलिकता के रूप में अनुवाद की एक प्रमुख विशेषता है। उनका यह प्रयास स्तुत्य है।

मैं आशा करता हूं कि श्री मैक्समूलर जैसे मनीषियों के विचारों को इसी प्रकार अन्य विद्वद्जन भी प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे, जिससे भारत के जन-जन में उनका प्रचार हो सके और भारत की अनुपम सांस्कृतिक एवं ज्ञानमूलक धरोहर की ज्योति से विश्व में प्रकाश फैले और संसार युद्ध का मार्ग त्यागकर शांति एवं प्रेम के मार्ग पर अग्रसर हो सके। वेदों और भारतीय शास्त्रों में इसी आशय का उपदेश है, जिसे श्री मैक्समूलर ने प्रचारित करके विश्व की सौख्य समृद्धि एवं प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया है।

(बलराम जाखड़)

THUS SPAKE MAXMULLER

To-day I shall have to grapple with a third prejudice, namely, that the literature of India, and more especially the classical Sanskrit literature, whatever may be its interest to the scholar and the antiquarian, has little to teach us which we cannot learn better from other sources, and that at all events it is of little practical use to young civilians. If only they, learn to express themselves in Hindustani or Tamil that is considered quite enough.

I take the very opposite opinion, and I should advise every young man who wishes to enjoy his life in India, to spend his years there with profit to himself and to others, learn Sanskrit, and to learn it well.

I know it will be said, What can be the use of Sanskrit at the present day ? Is not Sanskrit a dead language ? And are not the Hindus themselves ashamed of their ancient literature ? Do they not learn English, and do they not prefer Locke, and Hume, and Mill to their ancient poets and philosophers ?

But even if Sanskrit were more of a dead language than it really is, all the living languages of India, both Aryen and Dravidian draw their very life and soul from Sanskrit. On this point, and on the great help that even a limited knowledge of Sanskrit would render in the acquisition of the vernaculars ? I have spoken so often.

I mean, whether his special vernacular may be Bengali, Hindustani, or even Tamil. To a classical scholar I can only say that between a Civil Servant who knows Sanskrit and Hindustani, and another who knows Hindustani only, there is about the same difference in their power of forming an intelligent appreciation of India and its inhabitants, as there is between a traveller who visits Italy with a knowledge of Latin, and a party personally conducted to Rome by Messrs. Cook and Co. (Lecture 3.)

He concludes 7nth (last) lecture—I do not mean to say that everybody who wishes to know how the human race came to be what it is, how language came to be what it is, how religion came to be what it is, how manners, customs, laws, and forms of government came to be what they are, how we ourselves came to be what we are, must learn Sanskrit, and must study Vedic Sanskrit. But I *do* believe that not to know what a study of Sanskr[illegible] and particularly a study of the Veda, has already done for illum[illegible]ing the darkest passages in the history of the human mind, of th[illegible]nd on which we ourselves are feeding and living, is a misfortune, or, at all events, a loss.

—India what can it teach us.

6-12-1823 F. MAX MULLER 28-10-1900

मैक्समूलर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

मैक्समूलर का जन्म आधुनिक पूर्वी जर्मनी के अन्तर्गत डेसाउ नामक नगर में सन् 1823 में हुआ था। अभी आप चार वर्ष के शिशु ही थे कि आपके पिता Wilhelm Mueller सन् 1827 में स्वर्ग सिधार गए। बचपन में ही आप संगीत के अतिरिक्त ग्रीक और लेटिन भाषा में भी निपुण हो गए तथा लेटिन में कविताएँ भी लिखने लगे थे। अट्ठारह वर्ष की किशोरावस्था में ही लिपज़िग विश्वविद्यालय में आपने संस्कृत का अध्ययन आरम्भ कर दिया और सन् 1843 में उक्त विश्वविद्यालय की स्नातक परीक्षा Ph. D. में उत्तीर्ण होते ही सन् 1844 में 'हितोपदेश' का जर्मन भाषा में अनुवाद भी प्रकाशित करवा दिया। इसी समय आपने 'कठ' और 'केन' आदि उपनिषदों के जर्मन भाषा में अनुवाद कर डाले और 'मेघदूत' का जर्मन पद्यानुवाद भी किया। तभी अपने संस्कृत-ज्ञान को बढ़ाने के लिए आप The Comparative Grammer of Indo-Germanic Languages के लेखक तथा तुलनात्मक भाषाशास्त्र के पितामह श्री बॉप (Bopp) के पास भी गए, किन्तु मैक्समूलर ने लिखा है कि उन्होंने अपने व्याकरण में जो कुछ लिखा है, उससे अधिक ज्ञान उनसे प्राप्त न हो सका। यद्यपि अभी उनकी आयु 56-57 की ही थी, फिर भी लगता था कि श्री बॉप की स्मरणशक्ति जवाब दे गई थी।

इधर डेसाउ में उनकी माता और बहन को तथा स्वयं उन्हें भी भयंकर आर्थिक संकट का सामना करना पड़ रहा था, क्योंकि उनके पिता डेसाउ रियासत के शासक के उद्यानपाल तथा वैयक्तिक सलाहकार आदि उच्च पदों पर नियुक्त थे, तथापि उनकी मृत्यु के पश्चात् इस परिवार के लिए जो पेंशन नियत की गई, वह नाममात्र की ही थी। अतः माता ने उन्हें कहा कि अब तुम स्नातक हो गए हो, कहीं स्कूलमास्टर लग जाओ, जिससे अपने को इस आर्थिक संकट से छुटकारा मिल जाए।

'माँ, फिर मेरी संस्कृत का क्या होगा? मैं तो अपने संस्कृताध्ययन को आगे बढ़ाने के लिए पैरिस जाकर श्री बर्नूफ की सेवा में उपस्थित होना चाहता हूँ।'

और माँ ने सहर्ष इसकी अनुमति दे दी।

इस प्रकार वे सन् 1845 में श्री बर्नूफ की सेवा में आ पहुँचे। वे उन दिनों ऋग्वेद के सायणभाष्य के सम्पादन एवं उसकी प्रामाणिक पाण्डुलिपि को तैयार करने के काम में जुटे हुए थे। उन्होंने अपने इस नए मेधावी नवयुवक शिष्य की प्रतिभा और लगन को तत्काल परख लिया और बोले, 'वत्स'! अब तक यूरोपियन भाषाओं में ऋग्वेद के कुछ अंशों के जो अनुवाद प्रकाशित हुए हैं, उनमें से कोई भी मन्त्रों के वास्तविक आशय को पकड़ नहीं पाया। मन्त्रों के अर्थ को भली-भाँति हृदयंगम करने के लिए यह आवश्यक है कि हम भारतीय विद्वानों के द्वारा किए गए संस्कृत वेदभाष्यों का सहारा लें। भारतीय

धर्म, एवं तत्त्वचिन्तन को समझने के लिए ऋग्वेद से बढ़कर और कोई ग्रन्थ नहीं हो सकता। तुम मेरे शिष्यों में सर्वाधिक प्रतिभावान् अध्यवसायी नवयुवक हो, अत: मैं चाहता हूँ कि तुम हिन्दू-धर्म या वेद दोनों में से किसी एक लिए अपना जीवन समर्पित कर दो।' शिष्य ने तत्काल अपने गुरु के आदेशानुसार अपना संपूर्ण जीवन वेद के लिए समर्पित करना स्वीकार कर लिया।

श्री बर्नूफ ने कहा, 'इसके लिए पहले कुछ समय तक तो तुम ऋग्वेद के जितने अंश की अब तक मैंने सुसम्पादित प्रामाणिक पाण्डुलिपि तैयार की है, उसकी एक शुद्ध-सुन्दर प्रतिलिपि बनाने का कार्य आरम्भ कर दो। इसी बीच तुम इस योग्य हो जाओगे कि सायणभाष्य का स्वयं सम्पादन कर सको। इसके लिए मैं अपने पैरिस कॉलेज से तुम्हें कुछ पारिश्रमिक भी दिलवा दिया करूँगा, जिससे तुम्हारा स्वल्पाहार का काम तो चल ही जाया करेगा।'

मैक्समूलर ने अपनी डायरी में लिखा है कि मैं बर्नूफ के द्वारा सम्पादित ऋग्वेद के मन्त्रों के संहितापाठ, पदपाठ एवं उनके सायणभाष्य की प्रतिलिपि करने के काम में दिन-रात एक कर देने लगा। यहाँ तक कि लिखते-लिखते ही पूरी रात बिता देता और तीसरे दिन ही सोया करता था, क्योंकि मैं एक नहीं अपितु दो पाण्डुलिपियाँ तैयार किया करता था—एक श्री बर्नूफ के लिए तथा दूसरी अपने लिए।

सुसम्पादित सायणभाष्य के पहले प्रतिलिपिकरण एवं आगे चलकर स्वयं सम्पादन का कार्य सौंपने से पहले श्री बर्नूफ ने मैक्समूलर से ये दो प्रतिज्ञाएँ करवाईं—प्रथम तो वेदभाष्य की प्रतिलिपि करते समय तुम धूम्रपान नहीं किया करोगे और दूसरी यह कि जब तुम स्वयं सायणभाष्य के सम्पादन में समर्थ हो जाओ तो अपनी सम्पादित पाण्डुलिपि में भाष्य का एक शब्दों तो क्या एक अक्षर भी छोड़ोगे नहीं, साथ ही स्वयं भली-भाँति हृदयंगम किए बिना कुछ भी नहीं लिखोगे। भाष्य का जो गूढ़ स्थल समझ में न आए उसके लिए तुम्हें सायण के यजुर्वेद भाष्य-कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता-का भी पारायण करते रहना होगा। साथ ही सायण की यह प्रतिज्ञा भी सर्वथा सत्य है कि इस भाष्य की भूमिका ही अध्येताओं का स्वयं मार्ग-प्रदर्शन कर देगी। भाष्य की जटिलतम ग्रंथियाँ भी भूमिका के निरन्तर स्वाध्याय से स्वत: सुलझती जाएँगी।

सायणभाष्य का सम्पादन तथा प्रकाशन

इस प्रकार ऋग्वेद के कुछ मण्डलों का सम्पादन का क्लिष्ट व वैदुष्यपूर्ण कार्य तो धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था, किन्तु उसके प्रकाशन के भारी व्यय को वहन करने के लिए फ्रान्स, जर्मनी, प्रशिया, रूस और इंग्लैंड आदि की कोई भी सरकार तैयार नहीं थी। इसी समय मैक्समूलर को लन्दन के 'इण्डिया हाउस' में सुरक्षित कुछ पाण्डुलिपियों के साथ स्वसम्पादित पाण्डुलिपियों का मिलान करने के लिए पैरिस से लन्दन आना पड़ा। सौभाग्य से यहाँ उनकी भेंट प्रशिया के राजदूत तथा उनके पिता के मित्र श्री बुन्शेन से हो गई।

उन दिनों इंग्लैंड में श्री बुन्शेन को एक अति महत्त्वशाली व्यक्ति माना जाता था। उन्होंने, तथा ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर श्री विलसन ने 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' को यह कहकर सायणभाष्यसहित ऋग्वेद के प्रकाशन का व्यय-भार वहन करने के लिए राजी कर लिया कि भारत का शासन और शोषण तो तुम लोग कर रहे हो, किन्तु भारत ही क्यों विश्व के इस प्राचीनतम ग्रन्थ का प्रकाशन किसी अन्य देश ने कर दिया तो विश्व को तुम क्या मुँह दिखाओगे ?

तदनुसार 23 वर्षीय नवयुवक वेद-वेदांगों के पारंगत पंडित मैक्समूलर ने ईस्ट इंडिया कम्पनी के व्यय के द्वारा सन् 1846 में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से स्वसम्पादित सायणभाष्यसहित ऋग्वेद के प्रकाशन का कार्य आरम्भ कर दिया। मैक्समूलर ने लिखा है कि ऋग्वेद का सम्पादन, मुद्रण एवं प्रूफ-संशोधन आदि के कार्य में पहले जितनी अधिक लगन और विद्वत्ता की आवश्यकता प्रतीत होती थी, उससे कहीं अधिक जटिल था वह कार्य। उन्हें वहाँ वेदमन्त्रोपयोगी देवनागरी टाइप भी अपने हाथों से अक्षर लिख लिखकर ढलवाने पड़े।

आज हमें मैक्समूलर-सम्पादित ऋग्वेद के चारों भाग उनकी अपनी हस्तलिपि में ही उपबन्ध हैं। इस प्रकार सन् 1846 से सन् 1873 तक मैक्समूलर के योवन के 27 वर्ष ऋग्वेद के प्रकाशन में लग गये। यह बात दूसरी है कि इस अवधि में History of Ancient Sanskrit Literature तथा Lectures on Comparativ Philology and Comparative Religion एवं Sanskrit Grammer आदि अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का प्रणयन वे साथ-ही-साथ करते रहे।

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय का संस्कृत प्रोफैसर पद

सन् 1960 के मई मास में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के संस्कृत प्रोफैसर श्री विल्सन का देहान्त हो गया। मैक्समूलर इस पद के सर्वश्रेष्ठ एवं योग्यतम अधिकारी थे। किन्तु, उन दिनों उक्त विश्वविद्यालय के प्रोफैसरों का निर्वाचन वहाँ के एम० ए० पास व्यक्तियों के बहुमत से हुआ करता था। मैक्समूलर के प्रतिपक्षियों ने उनके विरुद्ध यह प्रचार कर दिया कि उनके हृदय में तो हिन्दू धर्म के प्रति प्रगाढ़ आस्था है और वे विदेशी भी हैं। इसलिए उनके प्रतिद्वन्द्वी मोनियर विलियम को (जो कट्टर ईसाई थे) प्रोफैसर बना दिया गया। इससे वे बहुत निराश हुए। इसके एवज में उन्हें पहले अन्यान्य पद तथा सन् 1868 में उन्हें तुलनात्मक भाषाविज्ञान के प्रोफैसर का पद भी प्रदान कर दिया गया। उन्होंने लिखा है कि "यह सोचकर कि एक सेवक दो स्वामियों की एक साथ ठीक तरह से सेवा नहीं कर सकता, मैंने 1875 में भाषा-विज्ञान के प्रोफैसर का वह पद छोड़ दिया। क्योंकि उस पद पर कार्य करते हुए संस्कृत के लिए मैं अपना पूरा समय नहीं दे पा रहा था।"

सन् 1873 में छह खण्डों में प्रकाशित उनके ऋग्वेद की सब प्रतियां हाथों-हाथ बिक गई थीं। भारत में उसकी माँग दिनों-दिन बढ़ती जा रही थी और उधर स्वयं मैक्स-

मूलर को अपने ही पूर्वसम्पादित सायणभाष्य में अनेकत्र रह गई भूलों को ठीक करके उसे पुनः संशोधित रूप में प्रकाशित करने की ललक लगी हुई थी। किन्तु विक्टोरिया-सरकार इसके लिए इतना अधिक व्यय वहन करने के लिए प्रस्तुत नहीं हो पायी। ऐसे में विजय-नगरम् के महाराजा ने इसका प्रकाशन-व्यय करना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार सन् 1892 में सायण-भाष्य सहित ऋग्वेद का लगभग एक-एक हजार पृष्ठों के चार खण्डों में संशोधित दूसरा संस्करण प्रकाशित करवा दिया। मैक्समूलर ने वैदिक विद्वानों के उपयोग के लिए पदपाठ और संहितापाठ सहित मूल ऋग्वेद भी एक ही जिल्द में सुन्दर मोटे अक्षरों में प्रथम संस्करण के समय ही प्रकाशित करवा दिया था।

इस प्रकार उन्होंने अपने गुरुदेव श्री बर्नूफ को दिए गए इस वचन का कि 'आज से मेरा समग्र जीवन वेद के लिए समर्पित है' अक्षरशः पालन कर दिखाया।

दैवदुर्विपाक से मैक्समूलर के ऋग्वेद के प्रथम खण्ड के सन् 1849 में प्रकाशन से पूर्व श्री बर्नूफ का छोटी-सी आयु में ही देहान्त हो गया था। इस सम्बन्ध में मैक्समूलर ने द्वितीय संस्करण में लिखा है कि ऋग्वेद के प्रथम खण्ड के प्रथम संस्करण के प्रकाशन के समय मैं यही सोचा करता था कि इसे देखकर मेरे गुरु श्री बर्नूफ कितने प्रसन्न होंगे।

प्रतिष्ठा एवं सम्मान

अब तक मैक्समूलर समग्र यूरोप तथा भारत में वेद-वेदान्त-पारंगत विद्वान् के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे और इसी बीच उनका श्रीमती जार्जिना के साथ विवाह भी हो गया था। सन् 1864 की 6 जनवरी को सम्राज्ञी विक्टोरिया ने उन्हें अपने ऑस्बोर्न प्रासाद में ऋग्वेद तथा संस्कृत के साथ यूरोपियन भाषाओं की तुलना आदि विषयों पर व्याख्यान देने के लिए आमन्त्रित किया था। सम्राज्ञी उनका व्याख्यान सुनकर इतनी प्रभावित हुई कि उन्होंने एक दिन के स्थान पर तीन दिन तक उनके भाषण सुने। शनैः-शनैः फ्रान्स और जर्मनी तथा अन्य यूरोपीय देशों के शासकों ने उन्हें आमन्त्रित कर अपने यहाँ के सर्वोच्च अलंकरणों से विभूषित किया। सन् 1888 में सम्राज्ञी विक्टोरिया ने अपने प्रचार मन्त्री ग्लैडस्टन से कहा कि इन्हें Knight की पदवी से अलंकृत कर दिया जाए। किन्तु, जार्जिना तथा स्वयं मैक्समूलर को यह पदवी अत्यन्त तुच्छ प्रतीत हुई और उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया। तब विक्टोरिया ने उन्हें 'प्रीवी-कौंसिल' की सदस्यता प्रदान कर दी।

लोकमान्य तिलक को जेल से छुड़वाना

जब सन् 1898 में ब्रिटिश सरकार ने लोकमान्य तिलक को राजद्रोह के अपराध में सजा देकर यरवदा जेल में डाल दिया तो यह सुनकर भारतभक्त मैक्समूलर को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने यहाँ के शीर्षस्थ कुछ नेताओं से एक आवेदन-पत्र तैयार करवाया और उसे स्वयं विक्टोरिया को दिया। इस पर सम्राज्ञी ने भारत सरकार को तत्काल तिलक को जेल से रिहा करने का आदेश भिजवा दिया। मैक्समूलर ने तिलकजी को अपने

नासदासीन्नोसदासीत्तदानींनासीद्रजोनोव्योमापरोयत् ।किमावरीवः कुहकस्यशर्मन्नंभः
किमासीद्गहनंगभीरं ॥१॥ नमृत्युरासीदमृतंनतर्हिनरात्र्याअह्नआसीत्प्रकेतः ।आनीदवातं
स्वधयातदेकंतस्माद्धान्यन्नपरः किंचनास ॥२॥ तमआसीत्तमसागूह्ळमग्रेऽप्रकेतंसलिलं
सर्वमाइदं तुच्छ्येनाभ्वपिहितंयदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकं ॥३॥ कामस्तदग्रेसमवर्त-
ताधिमनसोरेतःप्रथमंयदासीत् ।सतोबंधुमसतिनिरविंदन्हृदिप्रतीष्याकवयोमनीषा ॥४॥
तिरश्चीनोविततोरश्मिरेषामधःस्विदासीदुपरिस्विदासीत् ।रेतोधाआसन्महिमानआसन्त्स्व
धाअवस्तात्प्रयतिःपरस्तात् ॥५॥ कोअद्धावेदकइहप्रवोचत्कुतआजाताकुतइयंविसृष्टिः ।
अर्वाग्देवाअस्यविसर्जनेनाथाकोवेदयतआबभूव ॥६॥ इयंविसृष्टिर्यतआबभूवयदिवादधेयदि
वान ।योअस्याध्यक्षःपरमेव्योमन्त्सोअंगवेदयदिवानवेद ॥७॥ योयज्ञोविश्वतस्तंतुभिस्ततए
कशतंदेवकर्मेभिरायतः ।इमेवयंतिपितरोयआययुःप्रवयापवयेत्यासतेतते ॥१॥ पुमाँएनंत
नुतउत्कृणत्तिपुमान्वितत्नेअधिनाकेअस्मिन् । इमेमयूखाउपसेदुरुसदःसामानिचक्रुस्तसरा

ऋग्वेद का द्वितीय संस्करण भिजवाया था, जिसे जेल के अधिकारियों ने उन तक नहीं पहुँचने दिया। इस पर उन्होंने लिखा कि भारत सरकार की इससे अधिक क्रूरता और क्या हो सकती है कि तिलक को उनकी अपनी होली बाइबल (बाइबल के समान पूज्य धर्मग्रन्थ वेद) भी पढ़ने को नहीं दी गई।

प्रस्तुत पुस्तक 'India : What can it teach us ?' के पद-पद से मैक्समूलर की भारतभक्ति, संस्कृतानुराग और वेदों के प्रति अगाध आस्था का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है। यह बात दूसरी है कि वे बार-बार कहा करते थे कि आधुनिक हिन्दू धर्म प्राचीन वैदिक धर्म से बहुत दूर जा पड़ा है। उस वैदिक धर्म का जो स्वरूप आधुनिक हिन्दू धर्म के रूप में उपलब्ध है, इस रूप में उसके मूल रूप पर धूल-धक्कड़ की इतनी परतें जम गई हैं, जिन्हें हटाना नितान्त आवश्यक है। उनकी भारतभक्ति का यह एक और बड़ा प्रमाण है कि जब उन्हें स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा कि मेरे गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस की आज सर्वत्र पूजा हो रही है तो उनके मुख से सहसा निकल पड़ा कि श्री रामकृष्ण के सिवा ऐसा और कौन है, जिसकी पूजा की जाए? उन्होंने श्रीरामकृष्ण देव की जीवनी तो प्रकाशित की ही थी, साथ ही ब्रह्म-समाजी जब उन पर नाना प्रकार के आक्षेप करने लगे थे तो वे इंग्लैण्ड में बैठे ही उन आक्षेपों का मुँहतोड़ उत्तर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करवाते रहते थे। जैसे कि—परमहंस तो कभी अपनी पत्नी को ही माता कहता है, तो कभी वेश्याओं के साथ नाचता-गाता फिरता है, आदि। मैक्समूलर ने लिखा कि परमहंस जी के जो भी कार्य तुम्हारी दृष्टि में अशास्त्रीय हैं, वस्तुतः वे सब शास्त्रीय और प्राचीन परंपरानुमोदित ही हैं, आदि।

मैक्समूलर का विरोध

इतना सब-कुछ होते हुए भी भारत के अनेक विज्ञजन भी तब से लेकर आज तक उनके विरुद्ध बहुत-कुछ कहते-सुनते रहे हैं। सायणभाष्य सहित उनके ऋग्वेद के प्रथम खण्ड को देखकर जहाँ काशी के पण्डितों ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा उसके मुख-पृष्ठ पर

सम्पादकः
जर्मनदेशोत्पन्न—इंग्लैण्ड देश वास्तव्यः
श्रीमन्मोक्षमूलर भट्टः

पढ़कर कहा कि मैक्समूलर ने "मोक्षमूलं-वेदं राति-ददाति इति मोक्षमूलरः—अपने नाम का यह सर्वथा समुचित संस्कृतीकरण किया है।" वहीं दूसरी ओर पूना के पण्डितों ने

← सामने पृष्ठ पर ऋग्वेद (के नासदीय सूक्त) का एक पृष्ठ मैक्समूलर की हस्तलिपि का चित्र

जब इस सायणभाष्य की शुद्धता और श्रेष्ठता स्वीकार कर अपनी-अपनी हस्तलिखित प्रतियों को तदनुसार संशोधित करने का निर्णय किया तो मैक्समूलर के विरोधियों ने वहाँ यह प्रवाद फैला दिया कि 'अरे, ईसाई मैक्समूलर ने हिन्दुओं और विशेषत: ब्राह्मणों को धर्मभ्रष्ट करने के लिए यह वेद छपवाकर यहाँ भेजा है, क्योंकि यह जिस स्याही से छपा है, उसमें गोरक्त मिला हुआ है।' अब तो पूना के पण्डित असमंजस में पड़ गए और उन्होंने निश्चय किया कि एक पण्डित खड़ा होकर मैक्समूलर-सम्पादित सायणभाष्य पढ़ता जाए और दूसरे सब लोग तदनुसार अपनी प्रतियाँ शुद्ध करते जाएँ। तत्पश्चात् सायंकाल वह पण्डित सचैल स्नान कर शुद्ध हो जाया करे।

मैक्समूलर के विरोध का यह तो एक नमूना है! ऐसी ही न जाने कितनी नितान्त असत्य और भ्रामक बातें आज भी मैक्समूलर के विरुद्ध कही और लिखी जाती हैं। तथापि बिज्ञ विवेचक सहृदय विद्वद्‌गण मैक्समूलर के संस्कृतानुराग एवं भारतभक्ति को हृदय से सराहते हैं तथा बहुत-से लोग उन्हें यूरोप में उत्पन्न दूसरा सायण ही कहते हैं, जिसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं।

श्री कावेल को समर्पण के रूप में प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने अपने उत्कट संस्कृतानुराग एवं लोगों में संस्कृताध्ययन के प्रति दिनोंदिन बढ़ते हुए उपेक्षाभाव के प्रति अन्तर की व्यथा को ही व्यक्त किया है।

28 अक्तूबर, सन् 1900 को इस महामनीषी का ऑक्सफोर्ड में देहान्त हो गया।

विवेकानन्द उवाच

प्रो० मैक्समूलर कितने असाधारण व्यक्ति हैं ! मैं कुछ दिन पहले उनसे मिलने गया था।

प्रोफेसर महोदय ने पहले तो यह जानने में रुचि दिखलायी कि किस शक्ति के द्वारा ब्रह्म-समाज के बड़े नेता केशवचन्द्र सेन के जीवन में सहसा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन घटित हुए और तभी से वे श्री रामकृष्ण देव के जीवन एवं उपदेशों के प्रशंसक और उत्साही विद्यार्थी हो गए हैं। मैंने कहा, "प्रोफेसर, आजकल सहस्रों लोग श्री रामकृष्ण की पूजा कर रहे हैं।।' "प्रोफेसर ने प्रत्युत्तर में कहा, "यदि लोग ऐसे व्यक्ति की पूजा नहीं करेंगे तो और किसकी करेंगे ?"

यह भेंट मेरे लिए एक अद्‌भुत अनुभव थी। एक सुन्दर उद्यान के बीच उनका वह मनोरम छोटा-सा गृह, तिहत्तर (73) वर्ष की आयु होते हुए भी वह स्थिर प्रसन्न मुख, बालकों का-सा कोमल ललाट, रजतशुभ्र केश, ऋषि-हृदय के अन्तस्तल में कहीं स्थित गम्भीर आध्यात्मिक निधि की अस्तित्वसूचक उनके मुख की प्रत्येक रेखा, उनकी शीलवती पत्नी—विरोध एवं निन्दा पर विजय प्राप्त करके अन्ततः भारत के प्राचीन ऋषियों के विचारों के प्रति आदर-भाव उत्पन्न करा सकनेवाले उनके दीर्घकालीन श्रमसाध्य उत्तेजक जीवन-कार्य में हाथ बँटानेवाली उनकी सहधर्मिणी—विटप, पुष्प, नीरवता और स्वच्छ आकाश—ये समस्त सम्मिलित हो मुझे कल्पना में भारत के उस प्राचीन गौरवशाली युग में, ब्रह्मर्षियों और राजर्षियों के, उच्चाशय वानप्रस्थियों तथा अरुन्धती और वसिष्ठादिकों के युग में खींच ले गये।

मैंने उन्हें एक भाषातत्त्वविद् अथवा पण्डित के रूप में नहीं देखा, वरन् मैंने उन्हें ब्रह्म के साथ नित्य एकरूपता अनुभव करनेवाली एक आत्मा और विश्वात्मा के साथ एकात्म होने के निमित्त प्रतिक्षण विस्तीर्ण होते हुए हृदय के रूप में ही देखा। जहाँ अन्य लोग शुष्क ब्यौरों की मरुभूमि में स्वयं को खो देते हैं, वहाँ उन्होंने जीवन का स्रोत ढूँढ निकाला है। निस्सन्देह उनके हृदय के स्पंदनों ने उपनिषदों की लय पकड़ ली है—**तमेवैकं जानथ आत्मानम् अन्या वाचो विमुञ्चथ**—'एक मात्र आत्मा को ही जान लो और सब बातें त्याग दो।'

समग्र जगत् को हिला देनेवाले पण्डित एवं दार्शनिक होने पर भी उनके पाण्डित्य और दर्शन ने उन्हें उच्च से उच्चतर स्तर की ओर ले-जाकर आत्म-

दर्शन में समर्थ किया है। उनकी अपरा-विद्या वास्तव में उनके परा-विद्या-लाभ में सहायक हुई है। यही है सच्ची विद्या। **विद्या ददाति विनयम्**—'ज्ञान से ही विनय की प्राप्ति होती है।' यदि ज्ञान हमें उस परात्पर के निटक न ले-जाय, तो फिर ज्ञान की उपयोगिता ही क्या?

और फिर उनका भारत के प्रति अनुराग भी कितना है! मेरा अनुराग यदि उसका शतांश भी होता, तो मैं अपने को धन्य समझता! असाधारण और प्रखर क्रियाशील प्रतिभा से युक्त यह मनस्वी पचास या उससे भी अधिक वर्ष से भारतीय विचार-राज्य में निवास तथा विचरण कर रहे हैं; और उन्होंने इतनी श्रद्धा एवं हार्दिक प्रेम के साथ संस्कृत साहित्य के अनन्त अरण्य में प्रकाश और छाया के तीक्ष्ण विनिमय का ऐसा अवलोकन किया है कि अन्त में वह हृदय में ही बैठ गया है एवं उनका सर्वाङ्ग ही उसमें रंग गया है।

मैक्समूलर वेदान्तियों के भी वेदांती हैं। उन्होंने सचमुच वेदान्त की रागिनी की यथार्थ आत्मा को समस्वरता और विस्तरता की पूर्ण भूमिका में पहचाना है—उस वेदांत की, जो पृथिवी के समस्त सम्प्रदायों एवँ विचारों को प्रकाशित करनेवाला एकमात्र आलोक है और समस्त धर्म जिसके भिन्न-भिन्न रूप मात्र हैं। यह आश्चर्य की बात है कि इस पाश्चात्य ऋषि ने भारतीय विचारगगन में उदित हर एक नए नक्षत्र को परख तथा पहचानकर उसी समय उसकी खूबियाँ भी बता दीं जबकि भारतीय जन उसके महत्त्व को अभी समझ ही नहीं पाए थे।

मैंने उनसे कहा, "आप भारत में कब आ रहे हैं? भारतवासियों के पूर्वजों की चिन्तनराशि को आपने यथार्थ रूप में लोगों के सामने प्रकट किया है, अत: वहाँ का प्रत्येक हृदय आपका स्वागत करेगा।" वृद्ध ऋषि का मुख चमक उठा, उनके नेत्रों में आँसू जैसे भर आए और नम्रता से सिर हिलाकर उन्होंने धीरे-धीरे कहा, "तब तो मैं वापस नहीं आऊँगा; तुम लोगों को मेरा दाह-संस्कार वहीं कर देना होगा।" आगे और अधिक प्रश्न करना मुझे मानव-हृदय के पवित्र रहस्यपूर्ण राज्य मैं अनधिकार प्रवेश करने की चेष्टा की भाँति प्रतीत हुआ। कौन जानें, कवि ने जो कहा था वह यही हो—

तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वम्
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि॥

—'वे निश्चय ही, अज्ञात रूप से हृदय में दृढ़-निबद्ध, पूर्व-जन्म की मित्रता की बातें सोच रहे हैं।'

उनका जीवन संसार के लिए एक वरदान रहा है और मेरी प्रार्थना है कि उनके द्वारा अपनी सत्ता की प्रस्तुत भूमिका को परिवर्तित करने के पूर्व यह वरदान अनेक-अनेक वर्षों तक चलता रहे।

DEDICATED

TO

E. B. COWELL, M.A., L.L.D.

Professor of Sanskrit and fellow of

Corpus Cristi College,

in the University of Cambridge.

कोपर्स क्रिस्टी कॉलिज के संस्कृत-प्राध्यापक एवं

केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के फेलो

श्री ई० बी० कोवेल M.A., L.L.D.

को

समर्पण

My dear Cowell,

1. As these Lectures would never have been written or delivered but for your hearty encouragement, I hope you will now allow me to dedicate them to you, not only as a token of my sincere admiration of your great achievements as an Oriental scholar, but also as a memorial of our friendship, now more than thirty years old, a friendship which has grown from year to year, has weathered many a storm, and will last, I trust, for what to both of us may remain of our short passage from shore to shore.

2. I must add, however, that in dedicating these Lectures to you, I do not wish to throw upon you any responsibility for the views which I have put forward in them. I know that you do not agree with some of my views on the ancient religion and literature of India, and I am well aware that with regard to the recent date which I have assigned to the whole of what is commonly called the Classical Sanskrit Literature, I stand almost alone. No. if friendship can claim any voice in the courts of science and literature, let me assure you that I shall consider your outspoken criticism of my Lectures as the very best proof of your true and honest friendship. I have through life considered it the greatest honour if real scholars, I mean men not only of learning, but of judgment and character, have considered my writings worthy of a severe and searching criticism, and I have cared far more for the production of one single new fact, though it spoke against me than for any amount of empty praise or empty abuse. Sincere devotion to his studies and an unswerving love of truth ought to furnish the true scholar with an armour impermeable to flattery or abuse, but with a vizor that shuts out no ray of light, from whatever quarter it may come. More light, more truth, more facts, more combination of facts, these are his quest. And if in that quest he fails as many have failed before him, he knows that in the search for truth failures are sometimes the condition of success, and the true conquerors often those whom the world calls the vanquished.

3. You know better than anybody else the present state of Sanskrit scholarship. You know that at present and for some time to come Sanskrit scholarship means discovery and conquest. Every one of your own works marks a real advance, and a permanent occupation of new ground. But you know also how small a strip has yet been explored of the vast continent of Sanskrit literature,

प्रिय श्री कॉवेल,

१. आपके हार्दिक प्रोत्साहन के विना ये व्याख्यान लिखे और दिए नहीं जा सकते थे, अतः मैं आशा करता हूं कि आप मुझे प्राच्य विद्या-विशारद के रूप में आपकी महती उपलब्धियों के प्रति मेरे हृदय मे जो आदरभाव विद्यमान है, उसके प्रतीक के रूप में ही नहीं अपि तु अपनी ३० वर्ष पुरानी मित्रता के स्मारक के रूप में भी इन व्याख्यानों को आपको ही समर्पित करने की अनुमति प्रदान करेंगे। हमारी यह मैत्री नानाविध झंझावातों को सहते हुए भी प्रतिवर्ष उत्तरोत्तर दृढ़तर होती जा रही है। मुझे विश्वास है कि हम दोनों के शेष जीवन में भी यह मैत्री आद्यन्त वैसी ही बनी रहेगी।

२. यहां मैं यह और कह देना चाहता हूं कि इस समर्पण के द्वारा मैं इन व्याख्यानों में व्यक्त अपने विचारों का कोई दायित्व आप पर कदापि नहीं थोपना चाहता। मैं जानता हूं कि भारत के प्राचीन धर्म एवं साहित्य के विषय में मेरे कुछ विचारों से आप सहमत नहीं हैं और मैं यह भी भलीभांति समझता हूं कि साधारणतया Classical Sanskrit Literature के नाम से समझे जाने वाले काव्य, पुराणेतिहासात्मक लौकिक संस्कृत साहित्य के हाल ही में अपने द्वारा निर्धारित काल के बारे में मैं अपने आपको अकेला ही पाता हूं। इतना ही क्यों यदि विज्ञान और साहित्य के क्षेत्र में मित्रता की भावना का कोई महत्त्व हो सकता है, तो मैं आपको आश्वस्त करना चाहूंगा कि आपके द्वारा की गई इन व्याख्यानों की आलोचना को मैं आपकी सच्ची और खरी मैत्री भावना का सर्वोत्तम प्रमाण समझूंगा। सच्चे विद्वान्—मेरा प्रयोजन केवल पढ़े-लिखे लोगों से नहीं, अपितु सदसद्-निर्णय-सक्षम-विद्वानों से है—यदि मेरी रचनाओं को कटुतम आलोचना के योग्य भी समझते रहे हों तो मैं आजीवन ऐसी आलोचनाओं का आदर करता रहा हूं।

यदि किसी ने साहित्य के क्षेत्र में एक-आध भी नया तथ्य उद्घाटित किया है तो भले ही वह मेरे विरोध में हो, मैंने उसे अपने ध्यान का अधिकारी माना है, मेरे प्रति निरर्थक स्तुतियों या निन्दाओं को नहीं।

स्वाध्याय के प्रति अटूट आस्था और सत्य के प्रति अविचल अनुरक्ति के फलस्वरूप कोई भी विद्वान् ऐसा अभेद्य कवच पहन सकता है, जिसके कारण निन्दा-स्तुति का उस पर रञ्चक भी प्रभाव नहीं पड़ पाता साथ ही उस पारदर्शक मुखकवच के कारण किसी भी दिशा से आनेवाली प्रकाश की हल्की सी किरण के भी उस तक पहुंचने में कोई रुकावट नहीं होती। अधिक प्रकाश, अधिक सत्य, अधिक तथ्य तथा तथ्यों का अधिकाधिक समीकरण, एक सच्चा विद्वान् इन्हीं की शोध करता है। यदि वह शोध मे सफल नहीं भी होता, जैसा कि पहले अनेकों के साथ हुआ है, वह मानता है कि सत्य की खोज में कई बार असफलता ही सफलता की पहली सीढ़ी होती है, और प्रायः सच्चे विजेता वही होते हैं जिन्हें संसार पराजित समझ बैठता है।

and how much still remains *terra incognita*. No doubt this exploring work is troublesome, and often disappointing, but young students must learn the truth of a remark lately made by a distinguished member of the Indian Civil Service, whose death we all deplore, Dr. Burnell, 'that no trouble is thrown away which saves trouble to others.' We want men who will work hard even at the risk of seeing their labours unrequited we want strong and bold men who are not afraid of storms and shipwrecks. The worst sailors are not those who suffer shipwreck, but those who only dabble in puddles and are afraid of wetting their feet.

4. It is easy now to criticise the labours of Sir William Jones, Thomas Colebrooke, and Horace Hayman Wilson, but what would have become of Sanskrit scholarship, if they had not rushed in where even now so many fear to tread ? and what will become of Sanskrit scholarship, if their conquests are for ever to mark the limits of our knowledge ? You know best that there is more to be discovered in Sanskrit literature than Nalas and Sakuntalas, and surely the young men who every year go out to India are not deficient in the spirit of enterprise, or even of adventure ? Why then should it be said that the race of bold explorers, who once rendered the name of the Indian Civil Service illustrious over the whole world, has well-nigh become extinct, and that England, which offers the strongest incentives and the most brilliant opportunities for the study of the ancient language, literature, and history of India, is no longer in the van of Sanskrit scholarship ?

5. If some of the young candidates for the Indian Civil Service who listened to my Lectures, made up their minds that such a reproach shall be wiped out, if a few of them at least determined to follow in the footsteps of Sir William Jones, and to show to the world that Englishmen who have been able to achieve by pluck, by perseverance, and by real political genius the material conquest of India, do not mean to leave the laurels of its intellectual conquest entirely to other countries, then I shall indeed rejoice, and feel that I have paid back, in however small a degree the large debt of gratitude which I owe to my adopted country and to some of its greatest statesmen, who have given me the opportunity which I could find nowhere else of realising the dreams of my life,—the publication of the text and commentary of the Rig-veda, the most ancient book of Sanskrit, aye of Aryan literature and now the edition of the translations of the *Sacred Books of the East*.

6. I have left my Lectures very much as I delivered them at Cambridge. I am fond of the form of Lectures, because it seems

३. संस्कृत के अध्ययन-कर्म की आज की दशा को आपसे बढ़ कर भला कौन जानता होगा ! आप जानते हैं कि इस समय और अगले कुछ समय तक संस्कृताध्ययन का अर्थ अनुसंधान और विजय है। आपकी एक-एक कृति आपके आगे बढ़ते हुए कदमों का और ज्ञान के क्षेत्र में आपकी नयी-से-नयी स्थायी उपलब्धि का प्रत्यक्ष प्रमाण है। परन्तु आप यह भी जानते हैं कि अभी तक संस्कृत-साहित्य के इस अत्यन्त विशाल क्षेत्र के एक छोटे से भूखंड का ही पता लग पाया है, शेष तो अज्ञात पड़ा है। निःसंदेह, यह अनुसंधान-कार्य कठिन, और प्रायः हताशकारी है, परन्तु नए विद्यार्थियों को उस उक्ति का सत्य याद रखना है जो आई: सी: एस: के एक जाने-माने अधिकारी, डाक्टर बर्नेल ने, जिनके निधन का हम सबको दुःख है, इधर हाल में कही है कि 'जिस कष्ट से दूसरे कष्ट से बचें, वह व्यर्थ नहीं है।' हमें ऐसे लोग चाहिएँ जो अध्यवसायी हों, जो परिश्रम के अनुरूप सफलता न मिलने पर न घबराएं; हमें ऐसे सुदृढ़ और साहसी व्यक्ति चाहिएँ जो तूफानों और पोत-ध्वंसों की परवाह न करें। हतभाग्य नाविक वे नहीं हैं, जिनका पोत टूट जाता है, बल्कि वे हैं जिनकी सोच खड्डों खोचरों तक है और जो अपने पैर भिगोने से डरते हैं।

४. आज तो सर विलियम जोन्स, टॉमस कोलब्रुक् तथा होरेस हेमेन विलसन जैसे विद्वज्जनों के प्रयत्नों की आलोचना करना सरल है, किन्तु यदि संस्कृत के अध्ययना-ध्यापन के जिस क्षेत्र में उतरने से आज भी बहुत से लोग घबराते हैं, वे लोग अग्रसर न हुए होते तो, इसकी क्या दशा होती? साथ ही, यदि उनकी विजय से हमारा ज्ञान सदा के लिये सीमाबद्ध होकर रह जाए, तो संस्कृताध्ययन का क्या होगा? आप भली-भांति जानते हैं कि संस्कृत-अनुसंधान, मात्र नलों और शकुंतलाओं की खोज तक ही सीमित नहीं है, और निश्चय ही उन नवयुवकों में, जो प्रति वर्ष सुदूर भारत जाते हैं, अध्यवसाय की, या साहस तक की, कमी नहीं है। फिर यह क्यों कहा जाए कि उन साहसी अनु-सन्धित्सुओं की जाति, जिन्होंने इंडियन सिविल सर्विस का नाम संसार भर में कभी ऊंचा किया था, अब लगभग समाप्त हो चुकी है और कि इंग्लैण्ड, जो भारत की प्राचीन भाषा, साहित्य और इतिहास के अध्ययन के लिए प्रबल प्रोत्साहन और शान-दार अवसर प्रदान करता रहा है, संस्कृत-अध्ययनाध्यापन से अब पीछे हट गया है।

५. यदि I.C.S. के तरुण प्रत्याशी, जिन्होंने मेरे व्याख्यान सुने, यह प्रण कर लेते हैं कि उनमें से कुछ-न-कुछ सर विलियम जोन्स के पदचिह्नों पर चल कर इस बदनामी का परिमार्जन कर दिखाएंगे, और संसार को दिखा देंगे कि जो अंग्रेज लोग भाग्य, धैर्य और वास्तविक राजनैतिक सूझबूझ के बल पर भारत पर भौतिक विजय प्राप्त कर सकते हैं, वे उसकी पूरी ज्ञान-सम्पदा अर्जित करने का श्रेय भी दूसरे देशों के लिए छोड़ने का कोई इरादा नहीं रखते, तब मुझे आत्मिक प्रसन्नता होगी और मैं यह मानूंगा कि जिस देश को मैंने अपनाया है, अपने ऊपर उसके और उसके महान्-तम राजनेताओं के ऋण का कुछ भाग, तुच्छ मात्रा में ही सही, मैंने चुका दिया है, क्योंकि इन्हीं महानुभावों ने मुझे मेरे जीवन के सपने साकार करने का वह अवसर

to me the most natural form which in our age didactic composition ought to take. As in ancient Greece the dialogue reflected most truly the intellectual life of the people, and as in the Middle Ages learned literature naturally assumed with the recluse in his monastic cell the form of a long monologue, so with us the lecture places the writer most readily in that position in which he is accustomed to deal with his felllow-men, and to communicate his knowledge to others. It has no doubt certain disadvantages. In a lecture which is meant to be didactic we have, for the sake of completeness, to say and to repeat certain things which must be familiar to some of our readers, while we are also forced to leave out information which, even in its imperfect form, we should probably not hesitate to submit to our fellowstudents, but which we feel we have not yet sufficiently mastered and matured to enable us to place it clearly and simply before a larger public.

7. But the advantages outweigh the disadvantages. A lecture, by keeping a critical audience constantly before our eyes, forces us to condense our subject, to discriminate between what is important and what is not, and often to deny ourselves the pleasure of displaying what may have cost us the greatest labour but is of little consequence to other scholars. In lecturing we are constantly reminded of what students are so apt to forget, that their knowledge is meant not for themselves only, but for others, and that to know well means to be able to teach well. I confess I can never write unless I think of somebody for whom I write, and I should never wish for a better audience to have before my mind than the learned, brilliant, and kind-hearted assembly by which I was greeted in your University.

8. Still I must confess that I did not succeed in bringing all I wished to say and more particularly the evidence on which some of my statements rested, up to the higher level of a lecture, and I have therefore added a number of notes[1] containing the less organised matter which resisted as yet that treatment which is necessary before our studies can realise their highest purpose, that of feeding, invigorating, and inspiriting the minds of others.

Yours affectionately,
F. MAX MULLER.

OXFORD,
December 16, 1882.

1. These notes have been omitted in this edition.

दिया जो मुझे अन्यत्र नहीं मिला और पहले मैं संस्कृत के, बल्कि कहना चाहिए कि आर्य-वाङ्मय के प्राचीनतम ग्रन्थ (ऋग्वेद) के मूल पाठ और (सायण) भाष्य को और अब "पूर्व के पवित्र ग्रन्थों" के अनुवाद को प्रकाशित कर पाया।

६. मैंने अपने व्याख्यानों को उसी रूप में रहने दिया है जिसमें मैंने उन्हें केम्ब्रिज में सुनाया था। मैं व्याख्यानों की इस विधा पर मुग्ध हूं, क्योंकि मुझे ऐसा लगता है कि हमारे युग में किसी ज्ञानप्रद रचना का यही सर्वाधिक प्राकृतिक स्वरूप हो सकता है। प्राचीन यूनान में संवाद-शैली तत्कालीन प्रबुद्ध-वर्ग का सबसे सच्चा प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करती थी। मध्य-युग में, विद्वत्साहित्य ने निसर्गतः लम्बे स्व-कथन का रूप धारण किया, क्योंकि तब संन्यासी अपने आश्रम में बंध कर रह गया। इसी प्रकार, आज का लेखक व्याख्यान की विधा के द्वारा सहज ही उस स्थिति में पहुँच जाता है जिसमें उसे दूसरों से बात करने और दूसरों तक ज्ञान पहुंचाने की आदत है। निःसन्देह, इसमें कुछ अवगुण भी हैं। ज्ञानप्रद व्याख्यान में, परिपूर्णता की खातिर, हम ऐसी बातें कहते और दुहराते हैं जिनका हमारे पाठकों को पहले से ही ज्ञान होता है, दूसरी ओर हम उन्हें कुछ ऐसी जानकारी से वंचित रखने को बाध्य होते हैं, जिन्हें अपने बन्धु-अध्येताओं को देने में, अपूर्ण रूप में ही सही, हमें सम्भवतः कोई झिझक नहीं होनी चाहिए, परन्तु हम ऐसा इसलिए नहीं कर पाते कि हमें महसूस होता है कि उस विषय पर अभी हमारा इतना अधिकार और आधिपत्य नहीं है कि उसे बृहत् जन-समुदाय के समक्ष स्पष्ट और सरल भाषा में प्रस्तुत कर सकें।

७. परन्तु गुण, अवगुणों से कहीं बढ़कर हैं। व्याख्यान के दौरान, नुक्ताचीन श्रोता निरन्तर हमारे सम्मुख रहता है, जिससे हमें अपनी विषय-वस्तु को नाप-तोल कर रखना पड़ता है, उपयोगी और अनुपयोगी का ध्यान रखना पड़ता है, और दूसरे विद्वानों के सामने ऐसा निष्कर्ष रखने के सुख से प्रायः वञ्चित रहना पड़ता है, जिसकी प्राप्ति में हमें बहुत परिश्रम करना पडा, परन्तु जो उनके लिए नगण्य-सा है। व्याख्यान देते समय, यह बात रह-रह कर सामने आती है, जो विद्या-व्यसनिप्राय: भूल जाते हैं, कि ज्ञान हमारे अपने लिए नहीं है, बल्कि दूसरों को देने के लिए है, कि अच्छा अध्येता ही बात को अच्छी तरह से समझा सकता है। मैं अपनी यह दुर्बलता स्वीकार करता हूं कि मैं तभी कुछ लिख सकता हूं जब कोई श्रोता-विशेष मेरे मस्तिष्क में हो, और जिस मंडली ने आपके विश्वविद्यालय में मेरा अभिनन्दन किया, मेरे विचार में उससे विद्वान् मेधावी और सहृदय श्रोतृमण्डली मुझे मिल नहीं सकती।

८. फिर भी मुझे यह मानना होगा कि मैं वह सब नहीं कह पाया, जो मैं कहना चाहता था, विशेषतः वह साक्ष्य जिस पर व्याख्यान की उदात्त भावभूमि के मेरे कुछ कथ्य आधारित हैं और इसी कारण कम क्रमबद्ध सामग्री को मैंने कई टिप्पणियों के रूप में दिया है।[1] इनमें वह अब तक अमिमांसित सामग्री की विवेचना करना आवश्यक है, तभी हम दूसरों के मस्तिष्क को पोषित, सशक्त और अनुप्राणित करने का सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं।

आक्सफोर्ड
१६ दिसम्बर, १८८२

सप्रेम आपका
एफ़ मैक्स मूलर

---

१. ये टिप्पणियां इस संस्करण में नहीं दी गईं।

WHAT CAN INDIA TEACH US?

LECTURE I.

1. When I received from the Board of Historical Studies at Cambridge the invitation to deliver a course of lectures, specially intended for the candidates for the Indian Civil Service, I hesitated for some time, feeling extremely doubtful whether in a few public discourses I could say anything that would be of real use to them in passing their examinations. To enable young men to pass their examinations seems now to have become the chief, if not the only object of the Universities; and to no class of students is it of greater importance to pass their examinations, and to pass them well, than to the candidates for the Indian Civil Service.

2. But although I was afraid that attendance on a few public lectures, such as I could give, would hardly benefit a candidate who was not already fully prepared to pass through the fiery ordeal of the three London examinations, I could not on the other hand shut my eyes completely to the fact that, after all, Universities were not meant entirely, or even chiefly, as stepping-stones to an examination, but that there is something else which Universities can teach and ought to teach—nay, which I feel quite sure they were originally meant to teach—something that may not have a marketable value before a Board of Examiners, but which has a permanent value for the whole of our life,—and that is a real interest in our work, and, more than that, a love of our work, and, more than that, a true joy and happiness in our work. If a University can teach that, if it can engraft that one small living germ in the minds of the young men who come here to study and to prepare themselves for the battle of life, and, for what is still more difficult to encounter, the daily dull drudgery of life, then, I feel convinced, a University has done more, and conferred a more lasting benefit on its pupils than by helping them to pass the most difficult examinations, and to take the highest place among Senior Wranglers or First-Class men.

3. Unfortunately that kind of work which is now required for passing one examination after another, that process of cramming and crowding which has of late been brought to the highest pitch of perfection, has often the very opposite effect, and instead

प्रथम व्याख्यान

भारत से हम क्या सीखें ?

१. कैंब्रिज विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग से भारतीय नागरिक प्रशासनिक सेवा के प्रत्याशियों के लिए कुछ व्याख्यान देने का निमन्त्रण पाकर मैं दुविधा में पड़ गया और सोचने लगा कि क्या मैं अपने कुछ भाषणों में कोई ऐसी बात बता पाऊंगा, जिससे उन्हें अपनी परीक्षाएं पास करने में वास्तविक लाभ हो। आजकल विश्वविद्यालयों का एकमात्र नहीं तो प्रमुख लक्ष्य यही बन गया लगता है कि विद्यार्थियों को केवल परीक्षा में पास होने योग्य बना दिया जाए। और भारतीय प्रशासनिक सेवा के प्रत्याशियों के लिए परीक्षा में पास होने तथा बहुत अच्छे अंक लेकर पास होने का जितना महत्त्व है, उतना दूसरों के लिए नहीं।

२. इस आशंका के रहते हुए भी कि ऐसा छात्र जिसने लन्दन की तीन तीन प्रचण्ड अग्नि-परीक्षाओं में पास हो जाने की पूरी-पूरी तैयारी नहीं कर ली, मेरे इन चंद व्याख्यानों से शायद ही लाभान्वित हो सकेगा, मैं इस तथ्य को भी सर्वथा अनदेखा नहीं कर सकता कि आखिर इन विश्वविद्यालयों की स्थापना मात्र परीक्षाओं की सीढ़ी के रूप में ही तो नहीं हुई थी, किन्तु विश्वविद्यालय जो सिखा पढ़ा सकते हैं, और जो उन्हें सिखाना चाहिये वह कुछ और ही है। और मैं समझता हूं कि ऐसी शिक्षा ही उनका वास्तविक उद्देश्य रहा होगा। परीक्षक मण्डल की दृष्टि में ऐसी शिक्षा का भले ही बाजार-भाव कुछ न हो, किन्तु इसका हमारे सम्पूर्ण जीवन के लिए स्थायी मूल्य है—और यह है अपने काम के लिए सच्ची लगन, इससे भी बढ़कर अपने काम से अनुराग और सबसे बढ़कर अपने काम में सच्चे सुख और आनन्द की अनुभूति। शिक्षा-ग्रहण करने तथा भावी जीवनसंघर्ष के लिए तैयार होने और उससे भी कहीं कठिन जीवन में प्रतिदिन की कठिनाइयों का सामना कर सकने की क्षमता पाने के लिए अपने यहाँ आने वाले युवकों को यदि कोई विश्वविद्यालय ऐसी शिक्षा दे सके और उनके मन-मस्तिष्क में उस जानदार बीजांकुर की छोटी-सी भी कलम लगा सके तो मैं समझूंगा कि उस विश्वविद्यालय ने बहुत बड़ा काम कर दिखाया तथा कठिनतम परीक्षाओं में उत्तीर्ण कराके सरकारमें उच्चतम पदों पर प्रतिष्ठित होने के योग्य बना देने की अपेक्षा अपने छात्रों को कहीं अधिक चिरस्थायी लाभ से लाभान्वित कर दिया।

३. एक के बाद दूसरी परीक्षा पास करते जाने के लिए आवश्यक श्रम, रटन्त और ज्ञान को ठूंस-ठूंस कर भर देने की भावना आज इतनी बढ़ गई है कि कई बार उसके विपरीत परिणाम भी दिखाई देने लगते हैं। इससे कर्म के प्रति लगाव के स्थान पर उससे उदासीनता-सी होने लगती है और कभी-कभी तो ऐसा बौद्धिक विराग उत्पन्न हो जाता है, जो जीवन भर बना रहता है।

of exciting an appetite for work, it is apt to produce an indifference, if not a kind of intellectual nausea, that may last for life.

4. And nowhere is this so much to be feared as in the case of candidates for the Indian Civil Service. After they have passed their first examination for admission to the Indian Civil Service, and given proof that they have received the benefits of a liberal education, and acquired that general information in classics, history, and mathematics, which is provided at our Public Schools, and forms no doubt the best and surest foundation for all more special and professional studies in later life, they suddenly find themselves torn away from their old studies and their old friends, and compelled to take up new subjects which to many of them seem strange, outlandish, if not repulsive. Strange alphabets, strange languages, strange names, strange literatures and laws have to be faced, 'to be got up' as it is called, not from choice, but from dire necessity. The whole course of study during two years is determined for them, the subjects fixed, the books prescribed, the examinations regulated, and there is no time to look either right or left, if a candidate wishes to make sure of taking each successive fence in good style, and without an accident.

5. I know quite well that this cannot be helped. I am not speaking against the system of examinations in general, if only they are intelligently conducted; nay, as an old examiner myself, I feel bound to say that the amount of knowledge produced ready-made at these examinations is to my mind perfectly astounding. But while the answers are there on paper, strings of dates, lists of royal names and battles, irregular verbs, statistical figures and whatever else you like, how seldom do we find that the heart of the candidates is in the work which they have to do. The results produced are certainly most ample and voluminous, but they rarely contain a spark of original thought, or even a clever mistake. It is work done from necessity, or, let us be just, from a sense of duty, but it is seldom, or hardly ever, a labour of love.

6. Now why should that be ? Why should a study of Greek and Latin,—of the poetry, the philosophy, the laws and the art of Greece and Italy,—seem congenial to us, why should it excite even a certain enthusiasm, and command general respect, while a study of Sanskrit, and of the ancient poetry, the philosophy, the laws, and the art of India is looked upon, in the best case, as curious, but is considered by most people as useless, tedious, if not absurd.

7. And, strange to say, this feeling exists in England more than in any other country. In France, Germany, and Italy, even

४. और कर्म के प्रति उदासीनता की यह आशंका जितनी अधिक I.C.S. के प्रत्याशियों के बारे में हो सकती है, उतनी अन्यत्र कहीं नहीं। आई० सी० एस० में प्रवेश के लिए आवश्यक पहली परीक्षा पास करके यह सिद्ध कर देने के बाद कि उसने बुद्धि की परख-सम्बन्धी कामकाजी शिक्षा का फायदा उठा लिया है और अपने पब्लिक स्कूलों में दी जाने वाली इतिहास, गणित और काव्य-साहित्य आदि की सामान्य जानकारी उसे मिल गई है, तथा भविष्य में काम आने वाली विशिष्ट व व्यावसायिक शिक्षा की उनकी सुनिश्चित नींव भी पड़ गई है, अब छात्र अपने आपको अपनी पिछली पढ़ाई और मित्रों से एकदम कटा हुआ पाता है। अब उसे ऐसे नए विषय पढ़ने होते हैं, जो उनमें से कई को बड़े विलक्षण और पीछे धकेलने वाले न भी सही, किसी बाहरी दुनिया के तो अवश्य लगते हैं। उन्हें अपनी मर्जी से नहीं बल्कि आवश्यकतावश सर्वथा नई और विचित्र वर्णमाला, भाषा, नामावली, साहित्यिक कृतियां व विधि-संहिताएं आदि पढ़नी पड़ती हैं। आगामी दो वर्षों के लिए उनका सारा कार्यक्रम, पाठ्य-पुस्तकें और परीक्षाएं आदि निर्धारित कर दी जाती हैं। यदि कोई प्रत्याशी निर्विघ्न रूप से इस परीक्षा में पास होना चाहे तो उसे एक क्षण के लिए भी इधर-उधर झांकने की फुर्सत नहीं मिल पाती।

५. मैं भली भांति जानता हूं कि इसके सिवा दूसरा कोई चारा भी तो नहीं है। यदि ये परीक्षाएं बौद्धिक स्तर पर ली जाएं तो साधारण रूप से मुझे इस परीक्षा-प्रणाली के विरुद्ध कुछ नहीं कहना। विशेषत: स्वयं एक पुराना परीक्षक होने के नाते मैं यह मानता हूं कि इन परीक्षाओं के द्वारा जितना अधिक पका-पकाया ज्ञान छात्रों के मस्तिष्क में ठूंस दिया जाता है, वह वास्तव में विस्मयकारी है। इतिहास की सैकड़ों तिथियां सम्राटों की नामावली तथा युद्धों आदि की सूचि के साथ ही व्याकरण की धातुओं के अनियमित रूप और सांख्यिकी से सम्बद्ध अनेक प्रकार के प्रश्नों के उत्तर अपनी कापियों में उँडेल देने वाले छात्रों ने अपने मन से यह सब पढ़ा लिखा है, यह कैसे बताया जा सकता है। इनके (उत्तर) बड़े बड़े पोथे भरे और योग्यता के परिचायक भी हो सकते हैं, किन्तु उनमें मौलिक सूझ बूझ की चमक शायद ही कहीं दिखाई दे और ऐसी कोई गलती भी तो पकड़ में नहीं आती, जिसमें उनकी कुछ चतुराई झलके। इसे आवश्यकता-वश अथवा अधिक से अधिक कर्त्तव्य-पूर्ति के लिये किया गया कार्य ही कह सकते हैं। किन्तु अपने प्रेम से उन्होंने वह सब कुछ किया है, यह कह पाना कठिन है।

६. यह क्या बात है कि ग्रीक और लेटिन, यूनान और इटली के काव्यसाहित्य, कानून और कला आदि का अध्ययन हमें अपना समानधर्मा लगता है, यह हममें कुछ उत्साह भी भर सकता है तथा इसका हम आदर भी करते हैं। इसके विपरीत संस्कृत भाषा, भारत के प्राचीन साहित्य, दर्शन, विधि-संहिता व कला आदि सामान्यतया हमें अनोखे लगते हैं, कई लोग तो इन्हें अनर्गल-असंगत न भी मानें तो भी निरर्थक और क्लिष्ट अवश्य समझते हैं।

७. आश्चर्य की बात तो यह है कि किसी अन्य देश की अपेक्षा इंगलैण्ड में

in Denmark, Sweden, and Russia, there is a vague charm connected with the name of India. One of the most beautiful poems in the German language is the *Weisheit des Brahmanen*, the 'Wisdom of the Brahman,' by Rückert, to my mind more rich in thought and more perfect in form than even Goethe's *West-ostlicher Divan*. A scholar who studies Sanskrit in Germany is supposed to be initiated in the deep and dark mysteries of ancient wisdom, and a man who has travelled in India, even if he has only discovered Calcutta, or Bombay, or Madras, is listened to like another Marco Polo. In England a student of Sanskrit is generally considered a bore, and an old Indian Civil servant, if he begins to describe the marvels of Elephanta or the Towers of Silence, runs the risk of producing a count-out.

8. There are indeed a few Oriental scholars whose works are read, and who have acquired a certain celebrity in England, because they were really men of uncommon genius, and would have ranked among the great glories of the country, but for the misfortune that their energies were devoted to Indian literature—I mean Sir William Jones, 'one of the most enlightened of the sons of men,' as Dr. Johnson called him, and Thomas Colebrooke. But the names of others who have done good work in their day also, men such as Ballantyne, Buchanan, Carey, Crawfurd, Davis, Elliot, Ellis, Houghton, Leyden, Mackenzie, Marsden, Muir, Prinsep, Rennell, Turnour, Upham, Wallich, Warren, Wilkins, Wilson, and many others, are hardly known beyond the small circle of Oriental scholars, and their works are looked for in vain in libraries which profess to represent with a certain completeness the principal branches of scholarship and science in England.

9. How many times when I advised young men, candidates for the Indian Civil Service, to devote themselves before all things to a study of Sanskrit, have I been told, 'What is the use of our studying Sanskrit ? There are translations of the Sakuntala, Manu, and the Hitopadesa, and what else is there in that literature that is worth reading ? Kalidasa may be very pretty; and the Laws of Manu are very curious, and the fables of the Hitopadesa are very quaint; but you would not compare Sanskrit literature with Greek, or recommend us to waste our time in copying and editing Sanskrit texts which either teach us nothing that we do not know already, or teach us something which we do not care to know ?'

10. This seems to me a most unhappy misconception, and it will be the chief object of my lectures to try to remove it, or at all events to modify it, as much as possible. I shall not attempt to

यह भावना कुछ ज्यादा ही है। फ्रान्स, जर्मनी और इटली ही क्यों डेनमार्क स्वीडन और रूस में भी भारत के प्रति एक अस्पष्ट-सा मुग्धभाव या आकर्षण दिखाई देता है। RUCKERT रुकर्ट की 'ब्राह्मण की प्रज्ञा' शीर्षक कविता जर्मन भाषा की अत्युत्तम कविताओं में से एक है। मेरी समझ में गेटे की प्रसिद्ध कविता WESTORTLICHER DIVAN की अपेक्षा इसकी भावभूमि अधिक समृद्ध और रचनासौष्ठव अधिक परिपूर्ण है। जर्मनी में यदि किसी विद्वान् ने संस्कृत पढ़ ली तो यह समझा जाता है कि वह प्राचीन ज्ञान विज्ञान के गहन एवं अंधकारावृत रहस्यों को खोज निकालने के काम में जुट गया है। और भारत-बम्बई, कलकत्ता या मद्रास तक भी पहुंच पाने वाले व्यक्ति को तो ऐसे चाव से सुना जाता है, मानो वह दूसरा मार्कोपोलो ही हो। इसके विपरीत यहाँ इंग्लैण्ड में संस्कृतज्ञ को सामान्यतया उबाने वाला समझा जाता है। और यदि कोई पुराना आइ. सी. एस. अधिकारी भारत की एलीफेण्टा जैसी गुफाओं या पारसिओं के 'शव-कूपों' की चर्चा करने लगे तो उसे यह भय रहता है कि कहीं उसे व उसकी बातों को नगण्य न समझ लिया जाये।

८. यूँ इंग्लैण्ड में भी कुछ ऐसे प्राच्यविद्याविशारद अवश्य हैं, जिनकी रचनाएं यहाँ पढ़ी सुनी जाती हैं और जिन्हें यहां कुछ ख्याति भी मिली है। किन्तु वे तो असाधारण प्रतिभा के धनी हैं, यदि वे किसी अन्य क्षेत्र में गए होते तो निश्चित ही उनकी गणना इंग्लैण्ड के महापुरुषों में की जाती, परन्तु दुर्भाग्य से वे भारतीय-साहित्य के लिए समर्पित हो गए। मेरा संकेत सर विलियम जोन्स की तरफ है। डा० जॉन्सन ने उन्हें 'श्रेष्ठतम प्रतिभाशाली मानवपुत्रों में से 'अन्यतम' कहा है। टॉमस कॉलब्रुक भी ऐसे ही थे। बेलेण्टाइन, केरी, क्रॉफर्ड, डेविस, इलियट, एलिस, हॉटन, लीडन, मेकैंजी, मार्स्डेन, म्यूर, प्रिंसेप, रेनेल, टर्नर, ह्यूफेम, वालिख, वारेन, विल्किन्स, विलसन आदि और ऐसे ही अन्य अनेक प्राच्य विद्या-विशारद अपने छोटे से क्षेत्र से बाहर अपरिचित ही हैं। इंग्लैण्ड के जो पुस्तकालय ज्ञान विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र की दृष्टि से सर्वांग समृद्ध माने जाते हैं, वहां भी उनकी रचनाओं को निरर्थक सा समझा जाता है।

९. I.C.S. परीक्षा के युवक प्रत्याशियों को जब मैंने यह समझाया कि उन्हें और सब कुछ छोड़कर संस्कृत के अध्ययन के लिए समर्पित हो जाना चाहिए तो कई बार मुझसे यह कहा गया कि हमारे संस्कृत पढ़ने से क्या लाभ होगा? शकुन्तला, मनु और हितोपदेश के अनुवाद तो अंग्रेजी में हैं ही, इनके सिवा संस्कृत-साहित्य में पढ़ने योग्य और है ही क्या? कालिदास अच्छा कवि हुआ करे, मानव-धर्मशास्त्र भी बड़ा विचित्र है, हितोपदेश की कहानियाँ भी पुरानी व रोचक हैं, तथापि आप संस्कृत-साहित्य की तुलना ग्रीक से नहीं कर सकते। और न आप हमें संस्कृत रचनाओं के सम्पादन तथा प्रतिलिपि करने के काम में अपना समय बरबाद करने को ही कहें, क्योंकि संस्कृत में जानने या सीखने योग्य कुछ भी नया नहीं है। और यदि कुछ होगा भी तो हमें उसे जानने की परवाह बिलकुल नहीं है!

१०. ऐसी भ्रान्त धारणा से मुझे बहुत कष्ट पहुंचता है। (संस्कृत के लिए)

prove that Sanskrit literature is as good as Greek literature. Why should we always compare ? A study of Greek literature has its own purpose, and a study of Sanskrit literature has its own purpose; but what I feel convinced of, and hope to covince you of, is that Sanskrit literature, if studied only in a right spirit, is full of human interests, full of lessons which even Greek could never teach us, a subject worthy to occupy the leisure, and more than the leisure, of every Indian Civil servant; and certainly the best means of making any young man who has to spend five-and-twenty years of his life in India, feel at home among the Indians, as a fellow-worker among fellow-workers, and not as an alien among aliens. There will be abundance of useful and most interesting work for him to do, if only he cares to do it, work such as he would look for in vain, whether in Italy or in Greece, or even among the pyramids of Egypt or the palaces of Babylon.

11. You will now understand why I have chosen as the title of my lectures, *What can India teach us* ? True, there are many things, which India has to learn from us ; but there are other things, and, in one sense, very important things, which we too may learn from India.

12. If I were to look over the whole world to find out the country most richly endowed with all the wealth, power, and beauty that nature can bestow—in some parts a very paradise on earth—I should point to India. If I were asked under what sky the human mind has most fully developed some of its choicest gifts, has most deeply pondered on the greatest problems of life, and has found solutions of some of them which well deserve the attention even of those who have studied Plato and Kant—I should point to India. And if I were to ask myself from what literature we, here in Europe, we who have been nurtured almost exclusively on the thoughts of Greeks and Romans, and of one Semitic race, the Jewish, may draw that corrective which is most wanted in order to make our inner life more perfect, more comprehensive, more universal, in fact more truly human, a life, not for this life only, but a transfigured and eternal life—again I should point to India.

13. I know you will be surprised to hear me say this. I know that more particularly those who have spent many years of active life in Calcutta, or Bombay, or Madras, will be horror-struck at the idea that the humanity they meet with there, whether in the bazaars or in the courts of justice, or in so-called native society, should be able to teach *us* any lessons.

इस निर्मूल धारणा को दूर करना या जितना हो सके कम करना मेरे इन व्याख्यानों का प्रमुख उद्देश्य है। मैं यह प्रमाणित नहीं करना चाहता कि संस्कृत साहित्य भी ग्रीक साहित्य के समान ही श्रेष्ठ है, क्योंकि हमें तुलना के झमेले में नहीं पड़ना है। ग्रीक-साहित्य को पढ़ने का अपना उद्देश्य है। इसी प्रकार संस्कृत-साहित्य के पढ़ने का उद्देश्य भी अपना है। इन दोनों के साहित्य को पढ़ने के उद्देश्य अलग-अलग हो सकते हैं। मैं यह मानता हूं और आप लोगों को भी समझाना चाहता हूं कि यदि मनोयोग पूर्वक अध्ययन किया जाए तो **संस्कृत साहित्य मानवीय सद्गुणों और रोचकता से परिपूर्ण है, वह हमें इतना कुछ सिखा सकता है जो ग्रीक साहित्य कदापि नहीं सिखा पाता।** संस्कृत एक ऐसा विषय है जिससे हमारे अवकाश के क्षण आनन्ददायक बन जाते हैं। जिसे अपने २५ वर्ष भारत में बिताने हैं, ऐसे किसी आइ० सी० एस० अधिकारी के अवकाश के क्षण तो संस्कृत ज्ञान के द्वारा निश्चित ही अत्यधिक आनन्ददायक बन जाएंगे। फिर उसे भारत न तो प्रवास ही प्रतीत होगा, न घर की याद ही सताएगी। उसे लगेगा कि वह विदेशी नहीं अपितु अपने ही स्वजातियों और साथियों के साथ रह रहा है। तब वह चाहे तो इतना उपयोगी और आनन्ददायक कार्य कर सकेगा जिसकी तलाश इटली, यूनान या मिस्र के पिरामिड़ो और बेबीलोन के महलों में निरर्थक साबित होती है।

११. अब आप समझ गए होंगे कि मैंने अपनी व्याख्यान माला का शीर्षक—भारत से हम क्या सीखें—क्यों रखा है। माना कि भारत को भी हमसे बहुत कुछ सीखना है, किन्तु कुछ ऐसे विषय हैं और एक दृष्टि से तो वे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, जिनमें हम भी भारत से बहुत कुछ सीख सकते है।

१२. प्रकृति से मिलने वाली अपार सम्पदा, सामर्थ्य और सौन्दर्य की समस्त निधियों से सम्पन्नतम रूप में प्राप्तवर देश—कहीं कहीं तो सचमुच धरा के स्वर्ग[1]—की खोज में सारा संसार छान डालने पर मैं यही बताता कि वह देश है भारत। यदि मुझसे पूछा जाए कि कहां के गगनमण्डल के नीचे मानव-मस्तिष्क ने अपने सर्वोत्कृष्ट उपहार प्रदान किए हैं, जीवन की बड़ी से बड़ी समस्याओं पर बड़ी गहराई के साथ विचार किया और उनके ऐसे समाधान ढूंढ निकाले जिनमें से कुछ प्लेटो और काण्ट का अध्ययन कर चुकने वालों का भी ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने में सक्षम हैं—यहाँ भी मैं भारत का ही नाम लूंगा। और यदि मैं अपने आप से यह पूछूं कि यूरोप के निवासी हम लोग, जो युनानी, रोमन और एक सेमैटिक जाति—यहूदियों—की विचार धारा और चिन्तन में ही आद्यन्त पलते-पनपते रहे हैं, कहां से ऐसे शोधक तत्त्व ग्रहण कर सकते हैं, जिनकी अपने आन्तरिक जीवन को अधिक पूर्ण, बोधगम्य, अधिक विश्वव्यापी, वास्तविक रूप में अधिक मानवीय केवल इसी जीवन के लिए ही नहीं, अपितु

---

१. जैसा कि कालिदास ने कहा है—'दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम्', मेघदूत पूर्वमेघ ३२

14. Let me therefore explain at once to my friends who may have lived in India for years, as civil servants, or officers, or missionaries, or merchants, and who ought to know a great deal more of that country than one who has never set foot on the soil of Aryavarta, that we are speaking of two very different Indias. I am thinking chiefly of India, such as it was a thousand, two thousand, it may be three thousand years ago ; they think of the India of to-day. And again, when thinking of the India of to-day, they remember chiefly the India of Calcutta, Bombay, or Madras, the India of the towns. I look to the India of the village communities, the true India of the Indians.

15. What I wish to show to you, I mean more especially the candidates for the Indian Civil Service, is that this India of a thousand, or two thousand, or three thousand years ago, aye the India of today also, if only you know where to look for it, is full of problems the solution of which concerns all of us, even us in this Europe of the nineteenth century.

16. If you have acquired any special tastes here in England, you will find plenty to satisfy them in India; and whoever has learnt to take an interest in any of the great problems that occupy the best thinkers and workers at home, need certainly not be afraid of India proving to him an intellectual exile.

17. If you care for geology, there is work for you from the Himalayas to Ceylon.

18. If you are fond of botany, there is a flora rich enough for many Hookers.

19. If you are a zoologist, think of Haeckel, who is just now rushing through Indian forests and dredging in Indian seas, and to whom his stay in India is like the realisation of the brightest dream of his life.

20. If you are interested in ethnology, why India is like a living ethnological museum.

21. If you are fond of archaeology, if you have ever assisted at the opening of a barrow in England, and know the delight of finding a fibula, or a knife, or a flint in a heap of rubbish, read only 'General Cunningham's Annual Reports of the Archaeological Survey of India,' and you will be impatient for the time when you can take your spade and bring to light the ancient Viharas or Colleges built by the Buddhist monarchs of India.

22. If ever you amused yourselves with collecting coins, why the soil of India teems with coins, Persian, Carian, Thracian, Parthian, Greek, Macedonian, Scythian, Roman, and Mohammedan.

देहान्तर एवं शाश्वत जीवन के लिए भी बहुत आवश्यकता है, यहां एक बार फिर मैं भारत का ही नाम लेना चाहूंगा।

१३. मैं जानता हूं कि मेरा यह मन्तव्य जानकर आपलोग भौंचक्के रह जाएंगे। मैं समझता हूं कि विशेष रूप से वे लोग जिन्होंने कलकत्ता, बम्बई, या मद्रास में अपने ~ स्त जीवन के अनेक वर्ष बिताए हैं, इस विचार से बौखला उठेंगे कि भारत के हाट-बाजारों, न्यायालयों या तथाकथित नेटिव (देशी) लोगों के समाज में हमने जिन भारतीयों को देखा है, वे भी इस योग्य हैं कि हमें कुछ सिखा सकें।

१४. जिन्होंने नागरिक प्रशासनिक सेवा के अधिकारी या व्यापारी अथवा मिशनरियों के रूप में भारत में कई वर्ष बिताए हैं, और इसीलिए जिन्हें भारत का उस व्यक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक ज्ञान होना चहिए, जिसने आर्यावर्त की भूमि पर पांव भी नहीं रखा, मैं अपने उन मित्रों को बता देना चाहता हूं कि हम दो तरह के भारत की चर्चा करते हैं। मैं हजार दो हजार या तीन हजार वर्ष पहले तक के भारत की बात कहता हूं। जबकि वे केवल आजकल के भारत के बारे में ही सोचते हैं। और आधुनिक भारत के बारे में सोचते हुए भी उन्हें कलकत्ता, बम्बई या मद्रास जैसे शहरों में बसा हुआ भारत ही याद है, जबकि मैं गांवों में बसे हुए भारत को—भारतीयों के सच्चे भारत को देखता रहता हूं।

१५. मैं आप लोगों से विशेष रूप से I. C. S. के प्रत्याशियों से कहना चाहता हूं कि भारत चाहे वह हजार, दो हजार या तीन हजार वर्ष पुराना हो, अथवा आजकल का, यदि आप केवल यह जान लें कि उसे कहाँ ढूंढा जाय—ऐसी समस्याओं का आगार है, जिनके समाधान से उन्नीसवीं सदी के हम यूरोपियन लोगों का भी सीधा वासता है।

१६. और यदि अपकी रुचि किसी विशेष क्षेत्र में है,तो उसक विकास और पोषण के लिए भी आपको भारत में पर्याप्त अवसर मिलेगा। यदि आप में से किसी ने उन बड़ी-बड़ी समस्याओं में रुचि ली हो, जिनके बारे में अपने यहां के श्रेष्ठतम विचारक सोच-विचार किया करते हैं, तो आपको अपने भारत-प्रवास को ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र से निर्वासन समझ लेने की कोई आवश्यकता नहीं।

१७. यदि आप भू-विज्ञान में रुचि रखते हैं तो हिमालय से श्रीलंका तक का विशाल भू-भाग आपकी प्रतीक्षा कर रहा है।

१८. और यदि आप की रुचि वनस्पति-जगत् में है तो पूरा भारत हूकर जैसे अनेक वनस्पति-वैज्ञानिकों के लिए नाना जाति-भांति के पेड़-पौधों से सुसम्पन्न नन्दन है।

१९. यदि आप जीव-विज्ञानी हैं तो आपका ध्यान श्री हेकल की ओर अवश्य गया होगा, जो इन दिनों भारत के कान्तारों की छानबीन के साथ ही भारतीय समुद्र-तट से मोती भी बीन रहे हैं। भारत का यह निवास-काल उनके जीवन के सबसे सुनहले सपने की साकारता जैसा है।

२०. यदि आप नृवंश-विद्या में अभिरुचि रखते हैं तो भारत आपको एक जीता-जागता नृजाति-संग्रहालय ही लगेगा।

When Warren Hastings was Governor-General, an earthen pot was found on the bank of a river in the province of Benares, containing 172 gold Darics. Warren Hastings considered himself as making the most munificent present to his masters that he might ever have it in his power to send them, by presenting those ancient coins to the Court of Directors. The story is that they were sent to the melting-pot. At all events they had disappeared when Warren Hastings returned to England. It rests with you to prevent the revival of such Vandalism.

23. The study of Mythology has assumed an entirely new character, chiefly owing to the light that has been thrown on it by the ancient Vedic Mythology of India. But though the foundation of a true Science of Mythology has been laid, all the detail, has still to be worked out, and could be worked out nowhere better than in India.

24. Even the study of fables owes its new life to India, from whence the various migrations of fables have been traced at various times and through various channels from East to West. Buddhism is now known to have been the principal source of our legends and parables. But here too, many problems still wait for their solution. Think, for instance, of the allusion to the fable of the donkey in the lion's skin, which occurs in Plato's Cratylus. Was that borrowed from the East? Or take the fable of the weasel changed by Aphrodite into a woman, who, when she saw a mouse, could not refrain from making a spring at it. This, too, is very like a Sanskrit fable, but how then could it have been brought into Greece early enough to appear in one of the comedies of Strattis, about 400 B.C.? Here, too, there is still plenty of work to do.

25. We may go back even further into antiquity, and still find strange coincidences between the legends of India and the legends of the West, without as yet being able to say how they travelled, whether from East to West, or from West to East. That at the time of Solomon, there was a channel of communication open between India and Syria and Palestine is established beyond doubt, I believe, by certain Sanskrit words which occur in the Bible as names of articles of export from Ophir, articles such as ivory, apes, peacocks, and sandalwood, which taken together, could not have been exported from any country but India. Nor is there any reason to suppose that the commercial intercourse between India, the Persian Gulf, the Red Sea and the Mediterranean was ever completely interrupted, even at the time when the Book of Kings is supposed to have been written.

२१. यदि आप पुरातत्त्व-प्रेमी हैं, और यदि आपने यहाँ रहते हुए पुरातत्त्व के उत्खनन के द्वारा एक प्राचीन चाकू या चकमक या किसी प्राणी का कोई अंग ढूंढ निकालने के आनन्द का अनुभव किया हो तो आपको जनरल कनिंघम की 'भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण की वार्षिक रिपोर्ट, पढ़ लेनी चाहिये और तब भारत के बौद्ध सम्राटों के द्वारा निर्मित (नालन्दा जैसे) विश्वविद्यालयों अथवा विहारों के ध्वंसावशेषों के उत्खनन के लिए आपका फावड़ा मचल उठेगा।

२२. और यदि आपके मन में पुराने सिक्कों के लिए लगाव है, तो भारत-भूमि ईरानी, केरियन, थ्रेशियन, पार्थियन, यूनानी, मेसीडोनियाई, शक, रोमन और मुस्लिम शासकों के सिक्कों से भरपूर है। जब वारेन हेस्टिंग्ज भारत का गवर्नर जनरल था तो वाराणसी क्षेत्र की एक नदी के तट पर उसे १७२ दारिक नामक सोने के सिक्कों से भरा एक घड़ा मिला था। वारेन हेस्टिंग्ज ने अपने मालिक ईस्ट इण्डिया कम्पनी के निदेशक-मण्डल की सेवा में वे सोने के सिक्के यह समझकर भिजवा दिये कि यह एक ऐसा उपहार होगा जिसकी गणना उसके द्वारा प्रेषित सर्वोत्तम दुर्लभ वस्तुओं में की जायेगी और इस प्रकार वह स्वयं को अपने मालिकों की दृष्टि में एक महान उदार व्यक्ति प्रमाणित कर देगा। किन्तु उन दुर्लभ प्राचीन स्वर्ण मुद्राओं की यही नियति थी कि कम्पनी के निदेशक उनका ऐतिहासिक महत्त्व समझ ही न पाए और उन्होंने उन मुद्राओं को गला डाला। जब वारेन हेस्टिंग्ज इंग्लैण्ड लौटा तो वे स्वर्ण मुद्राएँ नष्ट हो चुकी थीं। अब यह आप लोगों पर निर्भर करता है कि आप ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं की पुनरावृत्ति न होने दें।

२३. दैवत-विज्ञान पर भारत के प्रचीन वैदिक दैवत-विज्ञान के कारण जो नया प्रकाश पड़ा है, उसके फलस्वरूप सम्पूर्ण दैवत-विज्ञान को नया स्वरूप प्राप्त हो गया है, किन्तु बावजूद इसके कि सच्चे दैवत-विज्ञान की एक आधारशिला रखी जा चुकी है, इस विज्ञान की व्यापक रूपरेखाएँ अभी निर्मित होनी हैं और यह कार्य जितने सही ढंग से भारत में हो सकता है, अन्यत्र कहीं नहीं।

२४. नीति-कथाओं के अध्ययन के क्षेत्र में भी भारत के कारण नव-जीवन का संचार हो चुका है, क्योंकि भारत के कारण ही समय-समय पर भांति-भांति के स्रोतों और साधनों के द्वारा अनेक नीति-कथाएँ पूर्व से पश्चिम की ओर आती रही हैं। हमारे यहां प्रचलित कहावतों और दन्तकथाओं का प्रमुख स्रोत अब बौद्ध धर्म को माना जाने लगा है। किन्तु यहाँ भी अभी अनेक समस्याएँ ऐसी हैं, जो अपने समाधान की प्रतीक्षा कर रही हैं। उदाहरण के लिए 'शेर की खाल में गधा' की कहावत को ही ले लीजिये। यह कहावत सबसे पहले यूनान के प्रसिद्ध एवं प्राचीनतम दार्शनिक प्लेटो के क्रटिलस में मिलती है। तो क्या यह कहावत पूर्व से उधार ली गयी थी ? और इसी प्रकार हम न्योले या चूहे से सम्बद्ध उस नीति- कथा को भी ले सकते हैं जिसे एफ्रोडाइट ने एक सुन्दरी के रूप में परिवर्तित कर दिया था, किन्तु जो एक चूहे को देखते ही तत्काल उसकी ओर आकृष्ट हो गयी थी। यह भी संस्कृत की एक प्रसिद्ध

26. Now you remember the judgment of Solomon, which has always been admired as a proof of great legal wisdom among the Jews. I must confess that, not having a legal mind, I never could suppress a certain shudder when reading the decision of Solomon : 'Divide the living child in two, and give half to the one, and half to the other.'

27. Let me now tell you the same story as it is told by the Buddhists, whose sacred Canon is full of such legends and parables. In the Kanjur, which is the Tibetan translation of the Buddhist Tripitaka, we read of two women who claimed each to be the mother of the same child. The king, after listening to their quarrels for a long time, gave it up as hopeless to settle who was the real mother. Upon this Visakha stepped forward and said : 'What is the use of examining and cross-examining these women. Let them take the boy and settle it among themselves'. Thereupon both women fell on the child, and when the fight became violent, the child was hurt and began to cry. Then one of them let him go, because she could not bear to hear the child cry.

28. That settled the question. The king gave the child to the true mother, and had the other beaten with a rod.

29. This seems to me, if not the more primitive, yet the more natural form of the story—showing a deeper knowledge of human nature, and more wisdom than even the wisdom of Solomon.

30. Many of you may have studied not only languages, but also the Science of Language, and is there any country in which some of the most important problems of that science, say only the growth and decay of dialects, or the possible mixture of languages, with regard not only to words, but to grammatical elements also, can be studied to greater advantage than among the Aryan, the Dravidian and the Munda inhabitants of India, when brought in contact with their various invaders and conquerors, the Greeks, the Yue-tchi, the Arabs, the Persians, the Moguls, and lastly the English.

31. Again, if you are a student of Jurisprudence, there is a history of law to be explored in India, very different from what is known of the history of law in Greece, in Rome, and in Germany, yet both by its contrasts and by its similarities full of suggestions to the student of Comparative Jurisprudence. New materials are being discovered every year, as, for instance, the so-called Dharma or Samayacharika Sutras, which have supplied the materials for the later metrical law-books, such as the famous Laws of Manu.

नीति-कथा से सर्वांश में मिलती-जुलती एक कहानी है। किन्तु यह कहानी यूनान में कैसे पहुंची और वहां ईसा-पूर्व चौथी सदी में ही स्ट्राटिस की कहानियों में स्थान कैसे पा गयी ? इस क्षेत्र में भी अभी करने के लिए बहुत कुछ है।

२५. हम इससे भी प्राचीन युग में प्रवेश करें तो, वहां भी भारत तथा पश्चिम की अनेक दन्तकथाओं में समानताएँ मिलेगी। अभी तक यह नहीं बताया जा सका कि ये दन्तकथाएँ पूर्व से पश्चिम को या पश्चिम से पूर्व को गयीं, तथापि यह निर्भ्रान्त रूप से सिद्ध हो चुका है कि सोलोमन के समय में ही भारत से सीरिया और और फिलिस्तीन के मध्य संचार-साधन खुल चुके थे। कुछ संस्कृत शब्दों के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि हाथीदांत, बन्दर, मोर और चन्दन आदि जिन वस्तुओं के 'ओफिर' से निर्यात की बात बाइबल में कही गयी है, वे वस्तुएँ भारत के सिवा दूसरे किसी देश से नहीं लाई जा सकतीं। और यह मान लेने का भी कोई कारण नहीं कि भारत तथा फारस की खाड़ी और रक्त सागर व भूमध्य सागर के बीच व्यापारिक मार्ग कभी (यहां तक कि शाहनामा के सम्भावित रचनाकाल में भी) सर्वथा अवरुद्ध हो गया हो।

२६. शाह सुलेमान की उस कथा का आपको ध्यान होगा जो यहूदी समाज में उसकी न्यायप्रियता के एक बहुत बड़े प्रमाण के रूप में सदा सुनाई जाती रही है। मानता हूं कि मैं कोई न्यायाधीश नहीं हूं, तथापि बच्चे के दो टुकड़े कर के आधा-आधा दोनों को दे देने के सुलेमान के इस निर्णय को पढ़ते समय मैं थर-थर कांप उठा।

२७. और अब यही कहानी ऐसी ही दन्तकथाओं और नीति के उपदेशों से भरपूर बौद्ध ग्रन्थों में से आप लोगों को सुनाना चाहूंगा। त्रिपिटिक ग्रन्थ के तिब्बती अनुवाद 'कंजूर' में हमें दो ऐसी महिलाओं की कहानी पढ़ने को मिलती है जो एक ही बच्चे की माँ होने का दावा करती हैं। राजा बहुत सोच-विचार करने के बाद भी उनके दावे का निर्णय नहीं कर पाया, तब विशाख सामने आया और बोला कि इस मामले में और अधिक छान-बीन करने की क्या जरूरत ? बच्चे को ये ले लें और खुद ही फैसला कर लें। तब दोनों औरतें बच्चे पर टूट पड़ीं और छीना-झपटी में उनकी लड़ाई जब हिंस्र हो उठी तो बच्चे को पीड़ा पहुंची व बच्चा रोने-चिल्लाने लगा तब उनमें से एक ने उसे छोड़ दिया, क्योंकि वह उसे रोता नहीं देख सकी।

२८. इस प्रकार मामला निपट गया। राजा ने वास्तविक मां को बच्चा सौंप दिया तथा दूसरी को उपयुक्त दण्ड दिया गया।

२९. मुझे ऐसा लगता है कि कहानी पुरानी न भी हो तो भी यह कथा अधिक स्वाभाविक है, क्योंकि इसमें मानव-स्वभाव का गहन अध्ययन झलकता है, साथ ही इसमें सुलेमान से भी बढ़कर विवेक है।

३०. आप में से कइयों ने भाषाओं का ही नहीं भाषा-विज्ञान का भी अध्ययन किया होगा। क्या आपको भारत से बढ़कर दूसरा कोई देश दिखाई देता है, जहां केवल शब्दों का ही नहीं बल्कि व्याकरणात्मक तत्त्वों के विकास और क्षय से सम्बद्ध भाषा-

What was once called 'The Code of Laws of Manu,' and confidently referred to 1,200, or at least 500 B.C., is now hesitatingly referred to perhaps the fourth century A.D., and called neither a Code, nor a Code of Laws, least of all, the Code of Laws of Manu.

32. If you have learnt to appreciate the value of recent researches into the antecedents of all law, namely the foundation and growth of the simplest political communities—and nowhere could you have had better opportunities for it than here at Cambridge—you will find a field of observation opened before you in the still existing village estates in India that will amply repay careful research.

33. And take that which, after all, whether we confess or deny it, we care for more in this life than for any-thing else—nay which is often far more cared for by those who deny than by those confess—take that which supports, pervades, and directs all our acts and thoughts and hopes—without which there can be neither village community nor empire, neither custom nor law, neither right nor wrong—take that which, next to language, has most firmly fixed the specific and permanent barrier between man and beast—which alone has made life possible and bearable, and which, as it is the deepest, thought often hidden spring of individual life, is also the foundation of all national life,—the history of all histories, and yet the mystery of all mysteries—take religion, and where can you study its true origin, its natural growth, and its inevitable decay better than in India, the home of Brahmanism, the birthplace of Buddhism, and the refuge of Zoroastrianism, even now the mother of new superstitions—and why not, in the future, the regenerate child of the purest faith, if only purified from the dust of nineteen centuries ?

34. You will find yourselves everywhere in India between an immense past and an immense future, with opportunities such as the old world could but seldom, if ever, offer you. Take any of the burning questions of the day—popular education, higher education, parliamentary representation, codification of laws, finance, emigration, poor-law, and whether you have anything to teach and to try, or anything to observe and to learn, India will supply you with a laboratory such as exists nowhere else. That very Sanskrit, the study of which may at first seem so tedious to you and so useless, if only you will carry it on, as you may carry it on here at Cambridge better than anywhere else, will open before you large layers of literature, as yet almost unknown and unexplored, and allow you an insight into strata of thought deeper than any

वैज्ञानिक समस्याओं के अध्ययन का ऐसा महत्त्वपूर्ण अवसर प्राप्त हो सके। आपको भारत के निवासी आर्य, द्रविड़ और मुण्डा जातियों की भाषाओं के पारस्परिक मिश्रण की ही नहीं, अपितु यूनानी, यूची, हूण, अरब, ईरानी, मुगल व अंग्रेज आदि अनेक आक्रमणकारियों व विजेताओं की शब्द-सम्पत्ति के भी उनमें घुल मिल जाने की ऐसी रोचक जानकारी भारत के सिवा अन्यत्र कहां मिल पाएगी।

३१. एक और बात—यदि आप धर्म-शास्त्र के विद्यार्थी हैं, तो वहाँ आपको विधि-संहिताओं के एक ऐसे इतिहास की जांच-पड़ताल का अवसर मिलेगा, जो यूनान, रोम या जर्मनी के ज्ञात धर्म-शास्त्रों के इतिहास से सर्वथा भिन्न होते हुए भी इनके साथ साम्य वैषम्य के कारण धर्म-शास्त्र के किसी भी विद्यार्थी के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है। उदाहरण के लिए हम धर्मसूत्रों या समयाचारिक सूत्रों को ही ले लें। ये धर्म-सूत्र मानवधर्म-शास्त्र जैसे परवर्ती विधि-ग्रन्थों की आधारभूत सामग्री उपलब्ध कराते हैं। इन सूत्रों के बारे में आज नित्य नये तथ्य और नई-नई प्रभूत सामग्री उपलब्ध हो रही है। वर्तमान मनुस्मृति को मनु द्वारा रचित विधि-नियमों की संहिता समझा जाता रहा है और यह माना जाता था कि इसका निर्माण ईसा-पूर्व बारहवीं शती नही तो कम-से-कम ई० पू० पाँचवीं सदी में तो हुआ ही होगा। किन्तु आज इसे चौथी सदी की रचना मानने में भी हिचक-सी होती है। इसे विधि-संहिता भी स्वीकार नहीं किया जाता। और न इसे मनु-रचित ही माना जाता है।

३२. यदि आप लोगों ने अत्यन्त सरल राजनैतिक इकाइयों के निर्माण और विकास से सम्बद्ध प्राचीन युग के कानून के पुरातन रूपों के बारे में किए गए अनुसन्धानों के महत्त्व और वैशिष्ट्य को परख सकने की क्षमता प्राप्त करनी है, (और मैं समझता हूं कि इसके लिए इस कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से बढ़कर अन्यत्र ऐसा अवसर दुर्लभ है) तो आपको इसके लिए भारत की वर्तमान ग्राम-पंचायतों के रूप में इसके प्रत्यक्ष दर्शन का सुयोग मिल जायेगा। भारत में प्राचीन शासन-प्रणाली या पंचायत प्रथा को समझने-समझाने का बहुत बड़ा क्षेत्र विद्यमान है।

३३. और अब उस तत्त्व को ले लें, जो एक ऐसा तत्त्व है, जिसे हम चाहे मानें या न मानें, अपने जीवन में सबसे अधिक ध्यान हमें इसी का रहता है; इतना ही क्यों, माननेवालों की अपेक्षा न माननेवाले उसे और भी अधिक महत्त्व देते हैं और जो हमारे सर्वविध कार्यों, विचारों तथा आशाओं व अभिलाषाओं को बल प्रदान करता है, सही दिशा दिखाता है तथा जो इसमें आद्यन्त रमा हुआ है; जिसके बिना न तो हमारे ग्रामों की व्यवस्था चल सकती है और न साम्राज्यों की ही, न परम्परा ही सुरक्षित रह सकती और न विधि-विधान; जिसके बिना भले-बुरे या सच-झूठ की पहचान भी नहीं हो सकती और मानव व पशु के बीच अन्तर को व्यक्त करनेवाला भाषा के बाद जो एक सर्वातिशायी, एक अत्यन्त दृढ़ तथा स्थायी तत्त्व है, और इसी एक तत्त्व के कारण हमारा जीवन जीने योग्य और वहनीय-सहनीय बना हुआ है; साथ ही हमारे वैयक्तिक जीवन का एक प्रायः अन्तर्हित होते हुए भी जो गम्भीरतम स्रोत है, एवं

you have known before, and rich in lessons that appeal to the deepest sympathies of the human heart.

35. Depend upon it, if only you can make leisure, you will find plenty of work in India for your leisure hours.

36. India is not, as you may imagine, a distant, strange, or, at the very utmost, a curious country. India for the future belongs to Europe, it has its place in the Indo-European world, it has its place in our own history, and in what is the very life of history, the history of the human mind.

37. You know how some of the best talent and the noblest genius of our age has been devoted to the study of the development of the outward or material world, the growth of the earth, the first appearance of living cells, their combination and differentiation, leading up to the beginning of organic life, and its steady progress from the lowest to the highest stages. Is there not an inward and intellectual world also which has to be studied in its historical development, from the first appearance of predicative and demonstrative roots, their combination and differentiation, leading up to the beginning of rational thought in its steady progress from the lowest to the highest stages ? And in that study of the history of the human mind, in that study of ourselves, of our true selves, India occupies a place second to no other country. Whatever sphere of the human mind you may select for your special study, whether it be language, or religion, or mythology, or philosophy, whether it be laws or customs, primitive art or primitive science, everywhere, you have to go to India, whether you like it or not, because some of the most valuable and most instructive materials in the history of man are treasured up in India, and in India only.

38. And while thus trying to explain to those whose lot will soon be cast in India the true position which that wonderful country holds or ought to hold in universal history, I may perhaps be able at the same time to appeal to the sympathies of other members of this University, by showing them how imperfect our knowledge of universal history, our insight into the development of the human intellect, must always remain, if we narrow our horizon to the history of Greeks and Romans, Saxons and Celts, with dim background of Palestine, Egypt, and Babylon, and leave out of sight our nearest intellectual relatives, the Aryas of India, the framers of the most wonderful language, the Sanskrit, the fellow-workers in the construction of our fundamental concepts, the fathers of the most natural of natural religions, the makers of the most

जो समस्त राष्ट्रीय चरित्र की भी आधार-शिला है; जो इतिहासों का इतिहास होते हुए भी सभी रहस्यों का रहस्य है— उस धर्म के बारे में भी आपको भारत के सिवा अन्यत्र कहां अधिक सही जानकारी मिल सकती है ! भारत में धर्म के वास्तविक उद्भव, उसके प्राकृतिक विकास तथा उसके अपरिहार्य क्षयोन्मुख रूप का प्रत्यक्ष परिचय मिल सकता है। जो ब्राह्मण (वैदिक) धर्म का घर, बौद्ध धर्म की जन्मभूमि जरथुस्त्र धर्म की पनाहगाह है, आज भी नित्य नए अंधविश्वासों व मत-मतान्तरों की क्रीड़ा भूमि बने हुए इस भारत पर से उन्नीस सौ वर्षों में जमी हुई धूल को झाड़ दिया जाय तो अब भी यह देश एक पवित्रतम धर्म (शिशु) का जनक बन सकता है।

३४. भारत में आप अपने-आपको सर्वत्र अत्यन्त प्राचीन और सुदूर भविष्य के बीच खड़ा पायेंगे। वहां आपको ऐसे सुअवसर भी मिलेंगे जो किसी पुरातन विश्व में ही सुलभ हो सकते हैं और पुराने देशों में भी भारत को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ है। आप आज की किसी भी ज्वलन्त समस्या को ले लें वह चाहे लोकप्रिय शिक्षा से सम्बद्ध हो, या उच्च शिक्षा से, चाहे संसद में प्रतिनिधित्व की या कानून बनाने की बात हो, चाहे प्रवासी कानून हो अथवा अन्य कोई कानूनी मसला, सीखने या सिखाने योग्य कोई भी बात क्यों न हो, भारत के रूप में आपको ऐसी प्रयोगशाला मिलेगी जैसी विश्व में अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकती। आप संस्कृत को ही ले लीजिये। और यह संस्कृत, हो सकता है—इसका अध्ययन—आरम्भ में आपको कुछ कठिन और निरर्थक सा लगे, पर यदि आप इसे चालू रख सकें, और दूसरे किसी स्थान की अपेक्षा यहां केम्ब्रिज विश्व विद्यालय में इसे अधिक सुचारु रूप में चालू रखा जा सकता है— आपके समक्ष साहित्य की ऐसी बड़ी-बड़ी तहें खोल देगा, जो अभी तक अज्ञात और अनदेखी पड़ी है। संस्कृत साहित्य के द्वारा आप चिन्तन की ऐसी गहन परतों के अन्दर तक झाँक सकेंगे जो पहले आपके लिये सर्वथा अज्ञात थीं। मानव-हृदय की गहनतम सहानुभूति को जगा देने वाली शिक्षाओं से भी यह साहित्य समृद्ध है।

३५. विश्वास रखिये यदि आप अवकाश के क्षणों का कुछ सदुपयोग करना चाहें तो भारत में इसके लिए भी करने को निरन्तर बहुत कुछ काम मिल जायेंगे।

३६. भारत कोई ऐसा देश नहीं है जिसके बारे में आप यह सोचें कि कोई बहुत दूर बसा हुआ एक विचित्र और आश्चर्यजनक देश होगा। भारत यूरोप से घनिष्टतया जुड़ने वाला है। भारोपीय विश्व में भारत का एक विशेष स्थान है। हमारे अपने इतिहास में भी भारत का एक सुनिश्चित स्थान है, इसे यूं भी कह सकते हैं कि इतिहास के अपने जीवन में, मानव-मस्तिष्क के विकास के इतिहास में भी भारत का विशिष्ट स्थान है।

३७. आप जानते हैं कि इस समय के सर्वोत्तम विवेकशील और श्रेष्ठतम प्रतिभाशाली लोग बाहरी या भौतिक जगत् के विकास के अध्ययन में जुटे हुए हैं। वे लोग इस भूमडण्ल की उत्पत्ति तथा इसके विकास से सम्बद्ध क्रमिक अवस्थाओं, सजीव कोष के प्रथम प्रादुर्भाव और जीव के विभिन्न अंगों के विकास की परम्परा दिखाने वाले उन जैविक कोषों के संयोग एवं विभेद तथा निम्नतम कोटि के जीव से

transparent of mythologies, the inventors of the most subtle philosophy, and the givers of the most elaborate laws.

39. There are many things which we think essential in a liberal education, whole chapters of history which we teach in our schools and universities, that cannot for one moment compare with the chapter relating to India, if only properly understood and freely interpreted.

40. In our time, when the study of history threatens to become almost an impossibility—such is the mass of details which historians collect in archives and pour out before us in monographs—it seems to me more than ever the duty of the true historian to find out the real proportion of things, to arrange his materials according to the strictest rules of artistic perspective, and to keep completely out of sight all that may be rightly ignored by us in our own passage across the historical stage of the world. It is this power of discovering what is really important that distinguishes the true historian from the mere chronicler, in whose eyes everything is important, particularly if he has discovered it himself. I think it was Frederick the Great who, when sighing for a true historian of his reign, complained-bitterly that those who wrote the history of Prussia never forgot to describe the buttons on his uniform. And it is probably of such historical works that Carlyle was thinking when he said that he had waded through them all, but that nothing should ever induce him to hand even their names and titles down to posterity. And yet how much is there even in Carlyle's histories that might safely be consigned to oblivion !

41. Why do we want to know history ? Why does history form a recognised part of our liberal education ? Simply because all of us, and every one of us, ought to know how we have come to be what we are, so that each generation need not start again from the same point, and toil over the same ground, but, profiting by the experience of those who came before, may advance towards higher points and nobler aims. As a child when growing up, might ask his father or grandfather, *who* had built the house they lived in, or who had cleared the field that yielded them their food, we ask the historian whence we came, and how we came into possession of what we call our own. History may tell us afterwards many useful and amusing things, gossip, such as a child might like to hear from his mother or grandmother; but what history has to teach us before all and everything, is our own antecedents, our own ancestors, our own descent.

लेकर उन्नततम प्राणियों की विभिन्न स्थितियों के अध्ययन में तल्लीन हैं। तो क्या ऐसा एक आन्तरिक एवं बौद्धिक विश्व भी नहीं है, जिसके ऐतिहासिक विकासक्रम का अध्ययन किया जाय ? इस अध्ययन का आरम्भिक मूल तथा निदेशक धातु अथवा प्रकृति उनके संयोग एवं विभेद के कारण तर्कसंगत चिन्तनधारा के विकास का भी अध्ययन क्या उसी प्रकार नहीं किया जा सकता ? और इसी के आधार पर निम्नतम स्थिति से आरम्भ कर बौद्धिक विकास के उन्नततम रूप की उपलब्धि के बारे में भी वैसी ही गम्भीरता और तत्परता के साथ अध्ययन नहीं किया जा सकता क्या ? और मानव-मस्तिष्क के इतिहास के उस अध्ययन में, या यूं कहें कि हमारे अपने स्वरूप के अध्ययन में, अपने सच्चे आतमरूप की पहचान एवं विवेकख्याति जैसे महत्त्व-पूर्ण क्षेत्र में भारत का स्थान दूसरे नम्बर पर नहीं रखा जा सकता। मानव-मस्तिष्क के चाहे किसी भी क्षेत्र को आप अपने विशिष्ट अध्ययन का विषय क्यों न बना लें, चाहे वह भाषा का क्षेत्र हो या धर्म का, दैवत-विज्ञान का हो या दर्शन का, चाहे विधि-शास्त्र या कानून का हो अथवा रीति-रिवाजों व परम्पराओं का, प्राचीन कला या शिल्प का हो अथवा पुरातन विज्ञान का, इनमें से प्रत्येक क्षेत्र में विचरण करने के लिए भले ही आप चाहें या न चाहें आपको भारत की शरण लेनी ही होगी, क्योंकि मानव-इतिहास से सम्बद्ध अत्यन्त बहुमूल्य और अत्यन्त उपादेय प्रामाणिक सामग्री का एक बहुत बड़ा भाग भारत और केवल भारत में ही संचित है।

३८. और जिनका भविष्य कुछ ही दिनो बाद भारत के साथ जुड़ जाने वाला है, उन भावी आई० सी० एस० अधिकारियों के समक्ष यह स्पष्ट करने के साथ ही कि विश्व के इतिहास में इस अद्भुत देश भारत का क्या स्थान है अथवा क्या स्थान हो सकता है, इस कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के अन्य अधिकारियों की सहानुभूति भी उन्हें यह बताकर जागृत कर सकूंगा कि यदि हम अपने बहुत नज्दीकी व प्रतिभा-शाली रिश्तेदार भारत के आर्यों को अपने अध्ययन क्षेत्र से बाहर अनदेखा करके केवल यूनान रोम, सैक्सन और केल्ट तथा फिलिस्तीन, मिस्र और बाबुल के इतिहास तक ही अपने अध्ययन के क्षेत्र को सीमित कर लेंगे तो मानव-जाति के बौद्धिक विकास का वह इतिहास और उसका सूक्ष्म अध्ययन अपूर्ण ही रह जायेगा, क्योंकि भारत के आर्य अपने में अद्भुत सामर्थ्य रखनेवाली भाषा संस्कृत के धनी हैं। हम लोगों के मौलिक चिन्तन के वे लोग सहभागी है। मानव के प्राकृतिक धर्म के वे सर्वोत्तम उद्भावक हैं, अत्यन्त पारदर्शी दैवत-विज्ञान के निर्माता हैं, सूक्ष्मतम दार्शनिक तत्त्वों के वे सच्चे पारखी और आविष्कारक हैं। इसके साथ ही उन्होंने बड़े परिश्रम और सोच-विचार के पश्चात् निर्मित विधि-संहिताएँ या कानून भी हमें प्रदान किए हैं।

३९. हमारे सामान्य ज्ञान में अनेक विषयों को परमावश्यक समझा जाता है। और यदि आप भारत के इतिहास के किसी एक अध्याय का भी सम्यक् अध्ययन, व्याख्या-विवेचन कर लें तो आप पाएँगे कि हमारे स्कूलों और कॉलिजों में पढ़ाए जाने वाले इतिहासों के सब अध्याय मिलकर भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते।

42. Now our principal intellectual ancestors are, no doubt, the *Jews*, the *Greeks*, the *Romans*, and the *Saxons*, and we, here in Europe, should not call a man educated or enlightened who was ignorant of the debt which he owes to his intellectual ancestors in Palestine, Greece, Rome, and Germany. The whole past history of the world would be darkness to him, and not knowing what those who came before him had done for him, he would probably care little to do anything for those who are to come after him. Life would be to him a chain of sand, while it ought to be a kind of electric chain that makes our hearts tremble and vibrate with the most ancient thoughts of the past, as well as with the most distant hopes of the future.

43. Let us begin with our religion. No one can understand even the historical possibility of the Christian religion without knowing something of the Jewish race, which must be studied chiefly in the pages of the Old Testament. And in order to appreciate the true relation of the Jews to the rest of the ancient world, and to understand what ideas were peculiarly their own, and what ideas they shared in common with the other members of the Semitic stock, or what moral and religious impulses they received from the historical contact with other nations of antiquity, it is absolutely necessary that we should pay some attention to the history of Babylon, Nineveh, Phoenicia, and Persia. These may seem distant countries and forgotten people, and many might feel inclined to say, 'Let the dead bury their dead ; what are those mummies to us ?' Still, such is the marvellous continuity of history, that I could easily show you many things which we, even we who are here assembled, owe to Babylon, to Nineveh, to Egypt, Phoenicia, and Persia.

44. Every one who carries a watch, owes to the Babylonians the division of the hour into sixty minutes. It may be a very bad division yet such as it is, it has come to us from the Greeks and Romans, and it came to them from Babylon. The sexagesimal division is peculiarly Babylonian. Hipparchos, 150 B.C., adopted it from Babylon, Ptolemy, 150 A.D., gave it wider currency, and the French, when they decimalized everything else, respected the dial plates of our watches, and left them with their sixty Babylonian minutes.

45. Every one who writes a letter, owes his alphabet to the Romans and Greeks ; the Greeks owed their alphabet to the Phoenicians, and the Phoenicians learnt it in Egypt. It may be a very imperfect alphabet—as all the students of phonetics will tell

४०. हमारे आज के युग में इतिहास के अध्ययन की परम्परा के लुप्त हो जाने का खतरा दिखाई देने लगा है। आज जबकि इतिहास लिखनेवाले विद्वान् लोग अभिलेखागारों से व्यापक विवरण संकलित कर उन्हें अपने लेखों के रूप में हमारे सामने उँडेलते जा रहे है, तो अतीत की अपेक्षा आज कहीं अधिक मैं यह अनुभव करने लगा हूं कि इतिहासकार को अपनी ऐतिहासिक सामग्री का चयन करते हुए कलात्मक परिप्रेक्ष्य के सुदृढ़ नियमों के अनुसार आनुपातिक रूप से अपनी सामग्री सजानी सँवारनी चाहिये। और विश्व के इतिहास-निर्माण के इस सुदीर्घ पथ में जिन बातों की वस्तुतः उपेक्षा की जानी चाहिये उन्हें सदा अपनी दृष्टि से ओझल ही ही बनाये रखें। आवश्यक और अनावश्यक अथवा उपयोगी और अनुपयोगी तत्त्व को पहचान सकने की यह क्षमता वास्तव में बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसी से एक इतिहासकार और वृत्त-लेखक में अन्तर ज्ञात हो सकता है, विशेषतया वह जिसका पता स्वयँ उसने लगाया हो। जहाँ तक मुझे स्मरण है, वह फ्रेड्रिक महान् ही था, जिसने यह शिकायत की थी कि प्रशिया (जर्मनी) का इतिहास लिखनेवाले विद्वान् उसकी वर्दी के बटनों तक का वर्णन करना नहीं भूलते। कारलाइल ने जब एक बार यह कहा था कि उसने सारे इतिहास-ग्रन्थ छान डाले किन्तु उसे एक भी पुस्तक या उसका लेखक ऐसा नहीं मिला, जिसकी चर्चा हम आनेवाली पीढ़ी के सामने कर सकें। लगता है उसने अपना यह मत इतिहास के ऐसे ग्रंथों के आधार पर ही बनाया हो। मजे की बात यह है कि ऐसा लिखनेवाले कारलाइल की इतिहास-पुस्तकों में भी ऐसी सामग्री भरी पड़ी है, जिसे याद रखने की कोई आवश्यकता नहीं।

४१. हम इतिहास क्यों पढ़ना चाहते हैं ? इतिहास को हमारे सामान्य ज्ञान का एक आवश्यक अंग क्यो माना जाता है ? यह इसीलिए कि हममें से प्रत्येक को यह ज्ञात होना चाहिए कि हम आज जो कुछ हैं, वह कैसे बन पाए। इससे यह लाभ होता है कि किसी भी पीढ़ी को जहां से वह चली थी फिर से शुरुआत नहीं करनी पड़ती और अपने पूर्वजों के अनुभवों से लाभ उठाकर उच्चतम गन्तव्य और श्रेष्ठतम लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर होने के लिए बार-बार उसी भूमि में मँडराना नहीं पड़ता। जैसे कोई बच्चा ज्यूं-ज्यूं बड़ा होता है तो वह जानना चाहता है कि जिस मकान में वे लोग रहते है, उसे किन लोगों ने बनवाया था और यहां के खेतों को किन लोगों ने जोता था, वैसे ही हम इतिहासकार से जानना चाहते हैं कि हम कहां से आए हैं। इतिहास को पहले हमें अपने प्राचीन स्वरूप और अपने पूर्वजों के बारे में सही-सही जानकारी देनी चाहिए। इसके बाद भले ही वह दूसरी बहुत-सी काम की या मन बहलानेवाली नई-नई किस्म की कहानियाँ या इधर-उधर कीं बातें बताता रहे, जैसे कि हमारी माँ या दादी सुनाया करती हैं।

४२. यहूदी, यूनानी, रोमन, और सैक्सन लोग निःसन्देह हमारे प्रमुख प्रतिभाशाली पूर्वज थे। और फिलिस्तीन, यूनान, रोम व जर्मनी के प्राचीन प्रतिभाशाली अपने पूर्वजों का हम पर ऋण है, यह जाने बिना कोई भी यूरोपवासी सुशिक्षित

you ; yet, such as it is, and has beeh, we owe it to the old Phoenicians and Egyptians, and in every letter we trace, there lies imbedded the mummy of an ancient Egyptian hieroglyphic.

46. What do we owe to the Persians ? It does not seem to be much, for they were not a very inventive race, and what they knew, they had chiefly learnt from their neighbours, the Babylonians and Assyrians. Still, we owe them something. First of all, we owe them a large debt of gratitude for having allowed themselves to be beaten by the Greeks ; for think what the world would have been, if the Persians had beaten the Greeks at Marathon, and had enslaved, that means, annihilated, the genius of ancient Greece. However, this may be called rather an involuntary contribution to the progress of humanity, and I mention it only in order to show, how narrowly, not only Greeks and Romans, but Saxons and Anglo-Saxons too, escaped becoming Parsis or Fire-worshippers.

47. But I can mention at least one voluntary gift which came to us from Persia, and that is the relation of silver to gold in our bi-metallic currency. That relation was, no doubt, first determined in Babylonia, but is assumed its practical and historical importance in the Persian empire, and spread from there to the Greek colonies in Asia, and thence to Europe, where it has maintained itself with slight variation to the present day.

48. A *talent* was divided into sixty *mince*, a mina into sixty *shekels*. Here we have again the Babylonian sexagesimal system, a system which owes its origin and popularity, I believe, to the fact that *sixty* has the greatest number of divisors. Shekel was translated into Greek by *Stater*, and an Athenian gold stater, like the Persian gold stater, down to the times of Croesus, Darius, and Alexander, was the sixtieth part of a mina of gold, not very far therefore from our sovereign. The proportion of silver to gold was fixed as 13 or 13⅓ to 1; and if the weight of a silver shekel was made as 13 to 10, such a coin would correspond very nearly to our florin. Half a silver shekel was a *drachma*, and this was therefore the true ancestor of our shilling.

49. Again you may say that any attempt at fixing the relative value of silver and gold is, and always has been, a great mistake. Still it shows how closely the world is held together, and how, for good or for evil, we are what we are: not so much by ourselves as by the toil and moil of those who came before us, our true intellectual ancestors. whatever the blood may have been.

प्रबुद्ध नहीं कहला सकता। ऐसे व्यक्ति के लिए तो विश्व का सम्पूर्ण इतिहास ही अन्धकारमय रहेगा। और जब तक उसे यह ज्ञात न हो पायेगा कि उसके पूर्वजों ने उसके लिए क्या-कुछ किया है, वह अपनी सन्तति के लिए भी सम्भवतः कुछ नहीं कर पायेगा। उस के लिए तो यह जीवन एक रेगिस्तान बन कर रह जायेगा, जबकि वस्तुतः हमारा जीवन एक एसी विद्युत्धारा-प्रवाहित करनेवाली कड़ी होना चाहिये जो हमारे हृदय की धड़कनों को चालू रख सके, और अतीत की प्राचीनतम विचारधारा को स्पन्दित किये रहे। साथ ही सुदूर भविष्य की आशा की किरणें भी उसमें जगमगातीरहें।

४३. अच्छा होगा कि हम अपनी बात की शुरूआत अपने धर्म से ही करें। यहूदियों के धर्मग्रन्थ ओल्ड टेस्टामेंट में प्रमुखतया वर्णित यहूदी जाति के बारे में कुछ ज्ञान प्राप्त किये बिना कोई भी व्यक्ति ईसाई धर्म की ऐतिहासिक विकास-प्रक्रिया का सही ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। हमें यह भी जानना होगा कि यहूदी जाति के साथ विश्व की अन्य प्राचीन जातियों का क्या सम्बन्ध था और (ओल्ड टेस्टामेंट में निर्दिष्ट) विचार कहां तक उनके अपने थे, सेमेटिक जातियों के दूसरे सदस्यों की विचारधाराओ को उन्होंने कहां तक अपना लिया था, अथवा दूसरी प्राचीन सभ्य जातियों के ऐतिहासिक सम्पर्क से अपनी चारित्रिक अथवा धार्मिक विचारधाराओं के विकास में क्या-कुछ ग्रहण किया---भले ही ये देश बहुत दूर के दिखाई दें, और वहाँ के भूले बिसरे लोगों की ओर भी हमारा ध्यान न गया हो। साथ ही कई लोग यह भी कह सकते हैं कि हमें गड़े मुर्दे उखाड़ने से क्या लाभ, और मिस्र की ममियों (सुरक्षित रखे गए स्त्रियों व पुरुषों के शवों) से हमारा क्या वास्ता! तथापि इतिहास एक ऐसी शानदार निरन्तरता है, जिसके फलस्वरूप ऐसे बहुत-से तथ्यों को उजागर किया जा सकता है कि बेबीलोन, निनवे, मिस्र, फिनीशिया और ईरान का हम पर कितना ऋण है।

४४. अपने पास घड़ी रखनेवाला प्रत्येक व्यक्ति घण्टे के साठ मिनटों में विभाजन के लिए बेबीलोन के निवासियों का कृतज्ञ है। यह ठीक है कि घण्टे को साठ मिनटों में विभाजित कर देने की यह पद्धति कोई अच्छी नहीं है, पर जैसी भी है, हमें यह यूनान और रोम के निवासियों से मिली है, और उन लोगों ने उसे बेबीलोन से लिया था। साठवें विभाजन की यह पद्धति बेबीलोनियों की है। एक सौ पचास ईसवी पूर्व में हिप्परकोस ने बेबीलोन से यह पद्धति अपनाई, और एक सौ पचास ईसवी में टोलेमी ने इसका व्यापक प्रचार किया। आगे चलकर जब फ्रांस के लोगों ने माप-तोल के लिए दशमलव-पद्धति अपना ली, तो भी उन्होंने अपनी घड़ियों में साठ मिनट के एक घण्टे की पद्धति को बना रहने दिया।

४५. आज यदि कोई व्यक्ति कुछ भी लिखता-पढ़ता है, उसे वर्णमाला की अपनी लिपि के लिए रोम और यूनान के निवासिवों का एहसानमन्द होना पड़ेगा। इन लोगों ने लिपि का ज्ञान फिनीशिया और मिस्र के लोगों से प्राप्त किया था। ध्वनि-विज्ञान के सभी विद्यार्थी आपको यह बतायेंगे कि हमारी २६ अक्षरों की यह वर्णमाला सर्वथा अपूर्ण है, किन्तु जैसी भी कुछ यह है या रही है, हम इसके लिए फिनीशिया

composed of that ran through their veins, or the bones which formed the rafters of their skulls.

50. And if it is true, with regard to religion, that no one could understand it and appreciate its full purport without knowing its origin and growth, that is, without knowing something of what the cuneiform inscriptions of Mesopotamia, the hieroglyphic and hieratic texts of Egypt, and the historical monuments of Phoenicia and Persia can alone reveal to us, it is equally true, with regard to all the other elements that constitute the whole of our intellectual life. If we are Jewish or Semitic in our religion, we are *Greek* in our philosophy, *Roman* in our politics, and *Saxon* in our morality, and it follows that a knowledge of the history of the Greeks, Romans, and Saxons, or of the flow of civilization from and through Germany to these isles, form an essential element in what is called a liberal, that is, an historical and rational education.

51. But then it might be said. Let this be enough. Let us know by all means all that deserves to be known about our real spiritual ancestors in the great historical kingdoms of the world; let us be grateful for all we have inherited from Egyptians, Babylonians, Phoenicians. Jews, Greeks, Romans, and Saxons. But why bring in India? Why add a new burden to what every man has to bear already, before he can call himself fairly educated? What have we inherited from the dark dwellers on the Indus and the Ganges, that we should have to add their royal names and dates and deeds to the archives of our already overburdened memory?

52. There is some jusstice in this complaint. The ancient inhabitants of India are not our intellectual ancestors in the same direct way as Jews, Greeks, Romans, and Saxons are; but they represent, nevertheless, a collateral branch of that family to which we belong by language, that is, by thought, and their historical records extend in some respects so far beyond all other records and have been preserved to us in such perfects and such legible documents, that we can learn from them lessons which we can learn no-where else, and supply missing links in our intellectual ancestry far more important than that missing link (which we can well afford to miss), the link between Ape and Man.

53. I am not speaking as yet of the literature of India as it is, but of something far more ancient, the language of India, or Sanskrit. No one supposes any longer that Sanskrit was the common source of Greek, Latin, and Anglo-Saxon. This used to

और मिस्र देशवासियों के आभारी हैं। प्रत्येक वर्ण में प्राचीन मिस्र के गूढ़ बीजाक्षर का भी पता हम लगा सकते हैं।

४६. अब आप जानना चाहेंगे कि ईरान का हम पर क्या ऋण है। ईरान का ऋण कुछ अधिक नहीं प्रतीत होता। क्योंकि ईरानी लोग कोई बहुत बड़े आविष्कारक नहीं थे, और वे जो कुछ जानते थे उसे भी उन्होंने अपने पडोसी बेबीलोन और असीरिया के लोगों से सीखा था। तथापि किसी न किसी रूप में हम उसके भी आभारी हैं। सर्व प्रथम हमें ईरानियों को धन्यवाद देना चाहिए कि वे यूनानियों के हाथों पिट गये। जरा सोचिये कि यदि तरथोन में यूनानी लोग ईरानियों से मार खा जाते और उनके गुलाम बन जाते तो इसका परिणाम यह होता कि प्राचीन यूनान की प्रतिभा का लोप हो जाता। यह ठीक है कि इसे मानव-जाति के अभ्युत्थान के लिए ईरानियों का एक अनिच्छापूर्ण कार्य या विवशता ही माना जा सकता है, किन्तु मैं यहां इस सम्बन्ध में यही कहना चाहूंगा कि सम्पूर्ण जाति ही क्यों, रोमन साम्राज्य के निवासी तथा सेक्सन और एंग्लो-सैक्सन लोग भी इसी प्रकार पारसी या अग्नि-पूजक बनते-बनते बच गये।

४७. किन्तु मैं यहाँ पारसियों के द्वारा स्वेच्छा से विश्व को दिये गये एक विशिष्ट उपहार की चर्चा अवश्य करना चाहूंगा और वह है हमारी मुद्रा-प्रणाली में चाँदी के साथ सोने का सम्बन्ध। निःसन्देह सोने और चाँदी का यह आनुपातिक मूल्य बेबीलोन में ही निर्धारित हुआ था, तथापि इरानी साम्राज्य में ही सर्वप्रथम यह प्रणाली प्रयुक्त हुई थी और यही से इसे ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त हुआ। सोने और चाँदी का यह आनुपातिक मूल्य-ज्ञान ईरान से पहले एशिया के यूनानी उपनिवेश में पहुंचा और वहाँ से यूरोप आया। यहाँ मामूली से हेर-फेर के साथ आज भी यह प्रणाली प्रचलित है।

४८. एक टेलेण्ट को Mina नामक साठ भागों में विभक्त किया गया था और साठ शेकल नामक सिक्कों से एक मिना बनता था। इस प्रकार साठ शेकल और साठ मिना के एक टेलेण्ट नामक इस मुद्रा-प्रणाली में बेबीलोनियों द्वारा निर्धारित 'षष्टि-पद्धति' स्पष्टतः विद्यमान है। सम्भवतः इसका कारण यह रहा हो कि साठ एक ऐसी संख्या है, जिसके सर्वाधिक गुणनखण्ड होते हैं, या यूं कहें कि यह सर्वाधिक विभाज्य संख्या है। ईरान का यह शेकल यूनानी भाषा में 'स्टेटर' के रूप में अनूदित हो गया। क्रोशस, दारा और सिकन्दर के समय तक पारसी शेकल नामक मुद्रा के समान ही यूनानी स्टेटर (स्वर्ण-मुद्रा भी) मिना नामक सोने के सिक्के का साठवाँ भाग ही होता था और इस प्रकार यह हमारी आज की सोवरन नामक स्वर्ण मुद्रा के लगभग बराबर ही है। चांदी और सोने का अनुपात एक और तेरह या साढ़े तेरह रखा गया था। चाँदी के एक शेकल का वजन तेरह व दस के अनुपात में स्थिर किया गया हो तो वह हमारे आज के फ्लोरिम नामक सिक्के के आनुपातिक मूल्य जैसा ही होगा। चाँदी के एक शेकल के आधे को द्रखमा कहते थे। इस प्रकार यह सच्चे अर्थों में हमारे आज के शिलिंग का पूर्वज है।

be said, but it has long been shown that Sanskrit is only a collateral branch of the same stem from which spring Greek, Latin, and Anglo-Saxon ; and not only these, but all the Teutonic, all the Celtic, all the Slavonic languages, nay, the languages of Persia and Armenia also.

54. What, then, is it that gives to Sanskrit its claim on our attention, and its supreme importance in the eyes of the historian ?

55. First of all, its antiquity—for we know Sanskrit at an earlier period than Greek. But what is far more important than its merely chronological antiquity is the antique state of preservation in which that Aryan language has been handed down to us. The world had known Latin and Greek for centuries, and it was felt, no doubt, that there was some kind of similarity between the two. But how was that similarity to be explained ? Sometimes Latin was supposed to give the key to the formation of a Greek word, sometimes Greek seemed to betray the secret of the origin of a Latin word. Afterwards, when the ancient Teutonic languages, such a Gothic and Anglo-Saxon, and the ancient Celtic and Slavonic languages too, came to be studied, no one could help seeing a certain family likeness among them all. But how such a likeness between those languages came to be, and how, what is far more difficult to explain, such striking differences too between these languages came to be remained a mystery, and gave rise to the most gratuitous theories, most of them, as you know, devoid of all scientific foundation. As soon, however, as Sanskrit stepped into the midst of these languages, there came light and warmth and mutual recognition. They all ceased to be stangers, and each fell of its own accord into its right place. Sanskrit was the eldest sister of them all, and could tell of many things which the other members of the family had quite forgotten. Still, the other languages too had each their own tale to tell; and it is out of all their tales together that a chapter in the human mind has been put together which in some respects, is more important to us than any of the other chapters, the Jewish, the Greek, the Latin or the Saxon.

56. The process by which that ancient chapter of history was recovered is very simple. Take the words which occur in the same form and with the same meaning in all the seven branches of the Aryan family, and you have in them the most genuine and trustworthy records in which to read the thoughts of our true ancestors, before they had become Hindus, or Persians, or Greeks, or Romans, or Celts, or Teutons, or Slavs. Of course, some of

४९. आप कहेंगे कि सोने और चाँदी के ऐसे आपेक्षित मूल्य निर्धारित करने का कोई भी प्रयत्न एक बहुत बड़ी गलती थी, और उन लोगों के द्वारा की गयी यह गलती आज तक भी ज्यों-की-त्यों चली आ रही है। भले ही हमारे पूर्वजों ने कुछ भूल की हो, तथापि इससे यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि सारा विश्व और विश्व के सब देश किस प्रकार एक-दूसरे के साथ घनिष्ठतया जुड़े हुए हैं। आज हम भले या बुरे जैसे भी हैं, हमारा यह स्वरूप केवल हमारे ही प्रयत्नों से नहीं बना है अपितु इसके निर्माण में हमारे पूर्वजों का भी बहुत बड़ा हाथ रहा है, भले ही हमारे प्रतिभाशाली उन पुरखों की धमनियों में कैसा ही रक्त क्यों न प्रवाहित होता रहा हो और उनकी कपालास्थियां भी कैसी ही क्यों न रही हों।

५०. और यदि यह सत्य है तो हम यह कह सकते हैं कि धर्म के उद्भव और विकास को जाने बिना, मैसेपोटोमिया के कीलाक्षर-अभिलेखों की जानकारी हासिल किये बिना, मिस्र के पुजारियों ओर पुरोहितों के द्वारा लिखित बीजाक्षर-मन्त्रों को समझे बिना तथा फिनीशिया व ईरान के प्राचीन ऐतिहासिक स्मारकों के द्वारा प्रकाश में लाई गई सामग्री के अध्ययन के बिना कोई भी व्यक्ति धर्म के तत्त्व की न तो व्याख्या ही कर सकता है और न उसके वास्तविक अभिप्राय को ही समझ सकता है। धर्म के बारे में कही गई यह बात हमारे बौद्धिक जीवन का निर्माण करनेवाले दूसरे सभी तत्त्वों पर भी ठीक उसी प्रकार लागू होती है, जैसे कि यदि धर्म की दृष्टि से हम यूरोपियन लोग यहूदी या सेमेटिक (धर्मानुयायी) हैं, तो दार्शनिक दृष्टि से यूनानी, राजनैतिक क्षेत्र में रोमन और अपने चारित्रिक वैशिष्ट्य में सैक्सन। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि रोम, यूनान तथा सैक्सन लोगों के इतिहास का तथा यूनान से लेकर इटली और जर्मनी से लेकर ब्रिटिशद्वीपसमूहों जैसे इन धुर पश्चिमोत्तरी द्वीपों तक प्रवाहित सभ्यता और संस्कृति की धारा का ज्ञान हमारी ऐतिहासिक एवं विवेकसम्मत शिक्षा का एक आवश्यक तत्त्व है।

५१. इस आधार पर कहा जा सकता है कि बस हमारे लिए इतना ही काफी है; विश्व-इतिहास के लम्बे-चौड़े साम्राज्य में जो लोग हमारे आध्यात्मिक पुरखे रहे हैं, हमें यह अधिकार है कि उनके बारे में जानें और इसी-लिए समग्र उपलब्ध साधनों के द्वारा हमें उनके बारे में जानकारी प्राप्त करनी ही चाहिए। इस प्रकार मिस्र, बेबीलोन, फिनीशिया, यूनान तथा रोम के निवासियों से और यहूदी तथा सैक्सन लोगों से जो कुछ विरासत में मिला है, इसके लिए हमें उनका कृतज्ञ रहना चाहिए। किन्तु भारत को यहाँ क्यों घसेड़ा जाय? अपने-आपको सुशिक्षित बनाने या बताने के लिए मनुष्य को पहले ही क्या कम बोझ उठाना पड़ रहा है कि उसे और बढ़ाया जाये? सिन्ध और गंगा के मैदानों में रहनेवाले उन काली चमड़ी के भारतीयों से हमें क्या विरासत में मिला है कि हम अपने पहले ही से ठसाठस भरे हुए याददाश्तों के अभिलेखागार में उन लोगों के गौरवशाली नामों, कर्मों और जीवनकालों के बारे में भी वृद्धि कर लें?

these ancient charters may have been lost in one or other of these seven branches of the Aryan family, but even then, if they are found in six, or five, or four, or three, or even two only of its original branches, the probability remains, unless we can prove a later historical contact between these languages, that these words existed before the great *Aryan Separation.*

57. If we find *agni*, meaning fire, in Sanskrit, and *agnis*, meaning fire, in Latin, we may safely conclude that *fire* was known to the undivided Aryans, even if no trace of the same name of fire occurred anywhere else. And why ? Because there is no indication that Latin remained longer united with Sanskrit than any of the other Aryan languages, or that Latin could have borrowed such a word from Sanskrit, after these two languages had once become distinct. We have, however, the Lithuanian *ugnis*, and the Scottish *ingle*, to show that the Slavonic and possibly the Teutonic languages also, knew the same word for fire, though they replaced it in time by other words. Words, like all others things, will die, and why they should live on in one soil and wither away and perish in another, is not always easy to say. What has become of *ignis*, for instance, in all the Romance languages ? It has withered away and perished, probably because, after losing its final unaccentuated syllable, it became awkward to pronounce ; and another word *focus*, which in Latin meant fire-place, hearth, altar, has taken its place.

58. Suppose we wanted to know whether the ancient Aryans before their separation knew the mouse : we should only have to consult the principal Aryan dictionaries, and we should find in Sanskrit *mush*, in Greek *mus* in Latin *mus*, in Old Slavonic *msse*, in Old High German *mus*, enabling us to say that, at a time so distant from us that we feel inclined to measure it by Indian rather than by our own chronology, the mouse was known, that is, was named, was conceived and recognised as a species of its own not to be confounded with any other vermin.

59. And if we were to ask whether the enemy of the mouse, the *cat*, was known at the same distant time, we should feel justified in saying decidedly, No. The cat is called in Sanskrit marjara and vidala. In Greek and Latin the words usually given as names of the cat, *galee* and *ailouros*, *musiella* and *felis*, did not originally signify the tame cat, but the weasel or marten. The name for the real cat in Greek was *katta*, in Latin *catus*, and these words have supplied the names for cat in all the Teutonic, Slavonic, and Celtic languages. The animal itself, so far as we know at present, came

५२. यह शिकायत कुछ तो ठीक है। यह सही है कि यहूदी, यूनानी, रोमन और सैक्सन लोगों की भाँति भारत के पुराने लोग हमारे वैसे ही बौद्धिक पूर्वज नहीं हैं, किन्तु वे हमारे समानोदक परिवार का प्रतिनिधित्व अवश्य करते हैं। भाषा, विचार और अनेक ऐतिहासिक ज्ञात प्रमाणों के द्वारा भी भारत के लोग हमारी ही जाति के सिद्ध होते हैं, और भारत की यह ऐतिहासिक परम्परा एक दृष्टि से तो इतने परिपूर्ण तथा सुवाच्य प्रमाणों में सुरक्षित की गयी है कि उससे हमें ऐसे पाठ पढ़ने को मिल सकते हैं जो और कहीं से नहीं मिल सकते। इनके द्वारा ऐसी टूटी हुई बौद्धिक कड़ियों को जोड़नेवाली सामग्री भी मिल जाती है जो मानव तथा बन्दर की टूटी हुई कड़ी को जोड़नेवाले साक्ष्यों से भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि हम इन्हें भूल भी जाएं तो भी कोई बुरा नहीं।

५३. मैं अभी भारतीय साहित्य की चर्चा करना नहीं चाहूंगा, किन्तु भारत की उस अत्यधिक प्राचीन भाषा या संस्कृत की चर्चा करूंगा। आज यह कोई नहीं मानता कि संस्कृत भाषा ग्रीक, लेटिन और एंग्लो सैक्सन ही क्यों, ट्यूटानिक वर्ग की गॉथिक, जर्मन और अंग्रेजी जैसी भाषाओं, आयरिश आदि केल्टिक भाषाओं तथा रूसी, लिथ्वानियन आदि स्लाव भाषाओं और ईरानी व आर्मेनियन भाषाओं का मूल स्रोत थी।

५४. तो फिर भला उसमें एसा क्या है जिसके कारण संस्कृत को हमारा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने का अधिकार है तथा किसी ऐतिहासिक विद्वान् की दृष्टि में इसका सर्वाधिक महत्त्व क्यों माना जाता है ?

५५. संस्कृत की सबसे पहली विशेषता है इसकी प्राचीनता, क्योंकि हम जानते हैं कि ग्रीक भाषा से भी संस्कृत का काल पुराना है। किन्तु संस्कृत के इस ऐतिहासिक दृष्टि से पुराने होने की बात से भी बढ़कर इसमें महत्त्वपूर्ण यह है कि जिस रूप में यह आर्य भाषा आज हम तक पहुंची है, इसमें भी वह अत्यन्त प्राचीन तत्त्व भली-भाँति सुरक्षित है। ग्रीक और लेटिन भाषाएँ लोगों को सदियों से ज्ञात हैं और निस्सन्देह यह भी अनुभव किया जाता रहा था कि इन दोनों भाषाओं में कुछ-न-कुछ साम्य अवश्य है। किन्तु समस्या यह थी कि इन दोनों भाषाओं में विद्यमान समानता को व्यक्त कैसे किया जाये ? कभी ऐसा होता था कि किसी ग्रीक शब्द की निर्माण-प्रक्रिया में लेटिन को कुंजी मान लिया जाता था और कभी किसी लेटिन शब्द के रहस्यों को खोलने के लिए ग्रीक का सहारा लेना पड़ता था। उसके बाद जब गॉथिक और एंग्लो-सैक्सन जैसी ट्यूटानिक भाषाओं, पुरानी केल्टिक तथा स्लाव भाषाओं का भी अध्ययन किया जाने लगा तो इन भाषाओं में किसी-न-किसी प्रकार का पारिवारिक सम्बन्ध स्वीकार करना ही पड़ा। इन भाषाओं में इतनी अधिक समानता कैसे आ गई, और समानताओं के साथ-ही-साथ इतना अधिक अन्तर भी इनमें कैसे पड़ गया, यह रहस्य बना ही रहा और इसी कारण ऐसे अनेक अहेतुकवाद उठ खड़े हुए—जैसा की आप जानते हैं जिनमें से अनेक, भाषा-विज्ञान के मूल सिद्धान्तों के सर्वथा विपरीत हैं। किन्तु ज्यूं ही इन भाषाओं के बीच में

to Europe from Egypt, where it had been worshipped for centuries and tamed; and as this arrival probably dates from the fourth century A.D., we can well understand that no common name for it could have existed when the Aryan nations separated.

60. In this way a more or less complete picture of the state of civilization, previous to the Aryan Separation, can be and has been reconstructed, like a mosaic put together with the fragments of ancient stones; and I doubt whether, in tracing the history of the human mind, we shall ever reach to a lower stratum than that which is revealed to us by the converging rays of the different Aryan languages.

61. Nor is that all; for even that Proto-Aryan language, as it has been reconstructed from the ruins scattered about in India, Greece, Italy, and Germany, is clearly the result of a long, long process of thought. One shrinks from chronological limitations when looking into such distant periods of life. But if we find Sanskrit as a perfect literary language, totally different from Greek and Latin, 1500 B.C., where can those streams of Sanskrit, Greek, and Latin meet, as we trace them back to their common source? And then, when we have followed these mighty national streams back to their common meeting-point, even then that common language looks like a rock washed down and smoothed for ages by the ebb and flow of thought. We find in that language such a compound, for instance, as *asmi*, I am, Greek *esmi*. What would other languages give for such a pure concept as *I am*? They may say, *I stand*, or *I live*, or *I grow*, or *I turn*, but it is given to few languages only to be able to say *I am*. To us nothing seems more natural than the auxiliary verb *I am*: but, in reality, no work of art has required greater efforts than this little word *I am*. And all those efforts lie beneath the level of the common Proto-Aryan speech. Many different ways were open, were tried, too, in order to arrive at such a compound as *asmi*, and such a concept as *I am*. But all were given up, and this one alone remained, and was preserved for ever in all the languages and all the dialects of the Aryan family. In *as-mi*, *as* is the root, and in the compound *as-mi*, the predicative root *as*, to be, is predicated of *mi*, I. But no language could ever produce at once so empty, or, if you like, so general a root as *as*, to be. *As* meant originally *to breathe*, and from it we have *asu*, breath, spirit, life, also *as* the mouth, Latin *os oris*. By constant wear and tear this root *as*, to breathe, had first to lose all signs of its original character, before it could convey that purely abstract meaning of

संस्कृत आ बैठी तत्काल लोगों को एक सही प्रकाश और (सजातीयता के रक्त की) ऊष्मा तथा भाषाओं के पारस्परिक सम्बन्धों का अहसास होने लगा। अब आपस में उनका अजनबीपन मिट गया और प्रत्येक भाषा अपने सही स्थान पर जा बैठी। निश्चित ही संस्कृत इन भाषाओं की अग्रजा है। उससे हमें ऐसी बहुत-सी बातें ज्ञात हो सकीं जो इस परिवार की किसी अन्य भाषा में सर्वथा भुला दी गयी थीं। तो भी प्रत्येक भाषा की अपनी-अपनी कहानियाँ हैं और उन कहानियों के फलस्वरूप ही मानव-मस्तिष्क के एक ऐसे अध्याय का संयोजन हो सका जो एक दृष्टि से यहूदी, यूनानी, लेटिन तथा सैक्सन अध्यायों से भी हमारे लिए कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

५६. इतिहास का पुरातन अध्याय जिसके आधार पर ज्ञात हो सका, वह बड़ी सरल प्रक्रिया है। आर्य परिवार की सातों शाखाओं में समान रूप से प्रयुक्त एकार्थक शब्द चुन लीजिए। उनके आधार पर ऐसे सही और विश्वसनीय प्रामाणिक रिकॉर्ड उपलब्ध हो जाते हैं, जिनके आधार पर अपने उन वास्तविक पूर्वजों की विचारधारा का अध्ययन किया जा सकता है, जो अभी तक हिन्दु, पारसी, ग्रीक रोमन, केल्ट, ट्यूटानिक और स्लाव नहीं बने थे। भले ही आर्यों की इन सात शाखाओं में से कुछ-एक में प्राचीन प्रमाण (शब्द) अप्रचलित हो गये हैं, फिर भी यदि उनमें से पांच-छः, या तीन-चार अथवा किन्हीं दो शाखाओं में भी वे शब्द प्रचलित हैं, और यह सिद्ध नहीं हो पाया है कि एक ने दूसरी भाषा से यह शब्द लिया है, तो यह प्रमाणित हो जाता है कि वे शब्द आर्यों के उस बड़े विभाजन से पूर्व भी विद्यमान थे।

५७. यदि आग के लिए संस्कृत का अग्नि और लेटिन का इग्निस एक ही शब्द मिल जाता है तो हम निर्भ्रान्त रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं कि एक-दूसरे से अविभक्त आर्यों को अग्नि का ज्ञान हो चुका था, भले ही यह शब्द अन्यत्र अप्रयुक्त ही क्यों न हो। ऐसा इसलिए कहा जा सकता है कि इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि अन्य किसी भाषा की अपेक्षा लेटिन संस्कृत के साथ अधिक समय तक सम्बद्ध रही थी या इन दोनों भाषाओं के पृथक-पृथक रूप ग्रहण कर लेने के बाद लेटिन ने यह शब्द संस्कृत से अपना लिया होगा। साथ ही लिथ्वानियन 'उग्निस' और स्कोट भाषा के 'इंग्ले' शब्द यह दर्शाते हैं कि स्लाव या ट्यूटानिक भाषाएँ भी इस शब्द से परिचित थीं, भले ही वहां कालान्तर में अग्नि के लिए दूसरे शब्द भी क्यों न घड़ लिये गए हों। नमूने के तौर पर रोमान्स भाषाओं में इस 'इग्निस' की ही जो गति हुई उसी को देख लीजिये। इन भाषाओं में धीरे-धीरे मुरझाता हुआ यह शब्द अन्ततोगत्वा बिलकुल मिट गया। ऐसा शायद इसलिए कि 'अग्नि' के अन्त्य अनुदात्त अक्षर के घिस जाने पर अवशिष्ट शब्द बोल सकने में कुछ कठिनाई होने लगी और अग्नि के स्थान पर एक दूसरा शब्द 'फोकस'[१] आ बैठा। लेटिन में इस फोकस शब्द का अर्थ है चूल्हा, भट्ठी या अग्निवेदी। दूसरी वस्तुओं के समान शब्द भी

१. यह 'फोकस' शब्द भी सं० 'भा' धातु से बना है।

existence, without any qualification, which has rendered to the higher operations of thought the same service which the nought, likewise the invention of Indian genius, has to render in arithmetic. Who will say how long the friction lasted which changed *as*, to breathe, into *as*, to be ? And even a root *as*, to breathe, was an Aryan root, not Semitic, not Turanian. It possessed an historical individuality—it was the work of our forefathers, and represents a thread which unites us in our thoughts and words with those who first thought for us, with those who first spoke for us, and whose thoughts and words men are still thinking and speaking, though divided from them by thousands, it may be by hundreds of thousands of years.

62. Th s is what I call *history* in the true sense of the word, something really worth knowing, far more so than the scandals of courts, or the butcheries of nations, which fill so many pages of our Manuals of History. And all this work is only beginning, and whoever likes to labour in these the most ancient of historical archives will find plenty of discoveries to make—*and yet people ask, what is the use of learning Sanskrit* ?

63. We get accustomed to everything, and cease to wonder at what would have startled our fathers and upset all their stratified notions, like a sudden earthquake. Every child now learns at school that English is an Aryan or Indo-Eurepean language, that it belongs to the Teutonic branch, and that this branch, together with the Italic, Greek, Celtic, Slavonic, Iranic, and Indic branches, all spring from the same stock, and form together the great Aryan or Indo-European family of speech.

64. But this, though it is taught now in our elementary schools, was really, but fifty years ago, like the opening of a new horizon of the world of the intellect, and the extension of a feeling of closest fraternity that made us feel at home where before we had been strangers, and changed millions of so-called barbarians into our own kith and kin. To speak the same language constitutes a closer union than to have drunk the same milk ; and Sanskrit, the ancient language of India, is substantially the same language as Greek, Latin, and Anglo-Saxon. This is a lesson which we should never have learnt but from a study of Indian language and literature, and if India had taught us nothing else, it would have taught us more than almost any other language ever did.

65. It is quite amusing, though instructive also, to read what was written by scholars and philosophers when this new light first

मर-मिट जाते हैं और यह बता पाना सरल नहीं है कि कोई शब्द किसी एक भू-भाग में क्यों और कैसे पनपता रहता है जबकि दूसरे क्षेत्र में वही शब्द मुरझाकर सर्वथा लुप्त हो जाता है।

५८. यदि हम यह जानना चाहें कि आर्य लोग अनेक शाखाओं में विभक्त होने से पूर्व चूहे के बारे में जानते थे या नहीं, तो हमें प्रमुख आर्य भाषाओं के शब्दकोष देखने होंगे। वहां हम पायेंगे कि संस्कृत में इसे मूषः, ग्रीक में मूस, पुरानी स्लावोनिक में माइस और पुरानी उच्च जर्मन में मुस कहते हैं। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि उस प्राचीन युग में, जिसकी काल-गणना हम अपने नहीं अपितु भारत के तिथि-क्रम के आधार पर ही कर सकते हैं, चूहा ज्ञात था और उसका मूष नाम भी रख दिया गया था, ताकि किसी अन्य जीव के साथ इसकी पहचान में कहीं कोई घपला न हो पाय।

५९. और यदि यह पूछा जाय कि क्या उस सुदूर अतीत में चूहे की शत्रु बिल्ली को भी वे लोग जानते थे? तो निश्चित रूप से इसका उत्तर होगा—नहीं, क्योंकि बिल्ली को संस्कृत में बिडाल या मार्जार कहते हैं। ग्रीक और लेटिन में इसे कैट, गेई, एलोरस और मुस्तेलाव फैलिस जैसे नामों से पुकारा जाता है और ये नाम भी पालतू बिल्ली के लिए नहीं, न्योले और बिज्जू जैसे प्राणियों के लिए ही प्रयुक्त होते थे। वास्तविक बिल्ली के लिए ग्रीक में कुत्त और लेटिन में कुतस शब्द थे और सभी ट्यूटानिक, स्लाव तथा केल्ट भाषाओं में इन्हीं से सम्बद्ध नाम प्रचलित हो गये। यूं इस जीव के बारे में अभी तक हमें यही ज्ञात हो सका है कि मिस्र में बिल्ली पाली व पूजी जाती रही थी। वहीं से यह यूरोप में पहुंची। यूरोप में बिल्ली के पहुंचने का काल चौथी सदी के लगभग माना जाता है, क्योंकि यह वह समय है जिससे हजारों वर्ष पहले ही आर्य लोग एक-दूसरे से अलग हो चुके थे, इसलिए आर्य भाषाओं में बिल्ली के लिए कोई एक ही नाम नहीं हो सकता था।

६०. इस प्रकार पुराने पत्थरों या कांच के टुकड़ों को जोड़-जोड़कर बनाये गये पच्चीकारी के चित्र की भांति आर्यों के विभाजन से पूर्व की सभ्यता व सांस्कृतिक अवस्था का कमोवेश एक चित्र का पुनर्निर्माण किया गया है। मैं नहीं समझता कि विभिन्न आर्यभाषाओं की प्रकाश-किरणों को किसी एक विन्दु पर समाहित करने से मानव मस्तिष्क का जैसा इतिहास प्रकाशित होता है, हम किसी अन्य साधन से उतनी निचली परतों तक पहुंच पायें।

६१. इतना ही क्यों, भारत व यूनान, इटली और जर्मनी में बिखरे पड़े अवशेषों के आधार पर आर्यों की जिस मूल भाषा का ढांचा खड़ा किया गया है, वह भी उन लोगों की अत्यन्त दीर्घकालीन चिन्तन-प्रक्रिया की ही उपलब्धि थी। जीवन के इतने पुराने अध्याय की परख करते हुए लोग प्रायः उसके अत्यन्त प्राचीन तिथिक्रम को मानने से पिछे हट जाते हैं। किन्तु हम देखते हैं कि १५०० ईसवी पूर्व में ही संस्कृत एक ऐसा परिपूर्ण साहित्यिक रूप ग्रहण कर चुकी थी, जो ग्रीक

dawned on the world. They would not have it, they would not believe that there could be any community of origin between the people of Athens and Rome, and the so-called Niggers of India. The classical scholars scouted the idea, and I myself still remember the time, when I was a student at Leipzing and began to study Sanskrit, with what contempt any remarks on Sanskrit or comparative gammar were treated by my teachers, men such as Gottfried Hermann, Haupt, Westermann, Stallbaum, and others. No one ever was for a time so completely laughed down as Professor Bopp, when he first published his Comparative Grammar of Sanskrit, Zend, Greek, Latin, and Gothic. All hands were against him ; and if in comparing Greek and Latin with Sanskrit, Gothic, Celtic, Slavonic, or Persian, he happened to have placed one single accent wrong, the shouts of those who knew nothing but Greek and Latin, and probably looked in their Greek Dictionaries to be quite sure of their accents, would never end. Dugald Stewart, rather than admit a relationship between Hindus and Scots, would rather believe that the whole Sanskrit language and the whole of Sanskrit literature—mind, a literature extending over three thousand years and larger than the ancient literature of either Greece or Rome,—was a forgery of those wily priests, the Brahmans. I remember too how, when I was at school at Leipzig, (and a very good school it was, with such masters as Nobbe, Forbiger, Funkhaenel, and Palm,—an old school too, which could boast of Leibniz among its former pupils) I remember, I say, one of our masters (Dr. Klee) telling us one afternoon, when it was too hot to do any serious work, that there was a language spoken in India, which was much the same as Greek and Latin, nay, as German and Russian. At first we thought it was a joke, but when one saw the parallel columns of Numerals, Pronouns, and Verbs in Sanskrit, Greek, and Latin written on the black board, one felt in the presence of facts, before which one had to bow. All one's ideas of Adam and Eve. and the Paradise, and the tower of Babel, and Shem, Ham, and Japhet, with Homer and Aeneas and Virgil too, seemed to be whirling round and round, till at last one picked up the fragments and tried to build up a new world, and to live with a new historical consciousness.

66. Here you will see why I consider a certain knowledge of India an essential portion of a liberal or an historical education. The concept of the European man has been changed and widely extended by our acquaintance with India, and we know now that

और लेटिन से सर्वथा भिन्न था। अब आप ही सोचिए कि संस्कृत, ग्रीक और लेटिन इन तीनों भाषाओं के एक सामान्य मूल उद्गम-स्रोत तक पहुंचने के लिए हमें और कितना पीछे हटना होगा। इस प्रकार हम उनके सम्मिलन-स्थल पर पहुंच जायेंगे। यह भी कि उस सुदूर अतीत में भी वह हमारी आदि-आर्य-भाषा एक ऐसी चट्टान के रूप में दिखाई देती है, जो चिन्तन-परम्परा के ज्वार-भाटे से घिस-मंजकर चिकनी और सपाट हो चुकी थी। हमें उस भाषा में प्रकृति और प्रत्यय के योग से बनी हुई अस्मि, ग्रीक एस्मि, जैसी यौगिक क्रियाएँ मिलती हैं। 'मैं हूं' जैसे भाव को व्यक्त करने के लिए आर्येतर किन्ही दूसरी भाषाओं में 'अस्मि' जैसा शुद्ध व उपयुक्त शब्द कहां मिल पाएगा ! उन भाषाओं में खड़ा होता हूं, या ठहरता हूं, मैं जीता हूं, मैं उगता या उत्पन्न होता हूं, या मैं बदलता हूं जैसी क्रियाएँ भले ही मिल जायें, किन्तु 'अस्मि' यह क्रिया तो केवल आर्य भाषाओं में ही उपलब्ध हो सकती है। उस आदि-आर्य-भाषा में ऐसी क्रियाओं के निर्माण के लिए हमारे पूर्वजों को कितना अधिक प्रयत्न करना पड़ा होगा ! उनका वह सम्पूर्ण प्रयत्न ऐसे क्रिया-रूपों में स्पष्ट झलक रहा है। अस्मि और उसके व्यंजक 'मैं हू' इस को व्यक्त करने के लिए उनके समक्ष अनेक विधियाँ विद्यमान थीं और निश्चित ही उन सबको भी प्रयोगात्मक रूप से भली-भाँति परख लिया गया था, किन्तु अन्ततोगत्वा दूसरे सब शब्द छोड़ दिये गये और सभी आर्य भाषाओं तथा उनकी सैंकड़ों बोलियों में भी यही क्रिया 'अस्मि' है। अस् प्रकृति, 'मि' प्रत्यय। उत्तमपुरुष के व्यंजक 'मि' प्रत्यय के पूर्व अस् के योग से या यूं कहें कि इस प्रकृति और प्रत्यय के मेल से यह अस्मि क्रिया बनी है, किन्तु कोई भी भाषा 'अस्' जैसी एक सामान्य या बिलकुल पोली धातु का निर्माण अकस्मात् ही नहीं कर पाई होगी (इसे खोज निकालने के लिए हमारे पुरखाओं को बहुत श्रम करना पड़ा होगा)। अस् (असु क्षेपणे प्राणने च) धातु का मूल अर्थ था श्वास लेना। इसलिए इससे निष्पन्न शब्द 'असु' का अर्थ हुआ श्वास, प्राण या जीवन। संस्कृत वैदिक आस् (लौकिक आस्य) और लेटिन ओस्, ओरिस ये मुखार्थक शब्द भी इसी अस् या असु धातु से बने हैं। एक सुदीर्घ चिन्तनधारा के फलस्वरूप ही श्वसनार्थक यह अस् धातु घिस मँजकर अपने साँस लेना रूपी पदार्थवाचक भौतिक या स्थूल अर्थ को छोड़कर सत्तार्थक विशुद्ध सूक्ष्म भाववाचक अर्थ ग्रहण कर पाई होगी। इसके फलस्वरूप हमें अपनी चिन्तनधारा के विकास में उसी प्रकार अनुपम सहायता मिली, जैसी भारतीय प्रतिभा के द्वारा शून्य का आविष्कार कर लिये जाने से हमें गणित के क्षेत्र में मिली है। कौन बता सकता है कि श्वसनार्थक अस् धातु का आविष्कार भी स्वयं आर्यों ने ही किया था ! उन्होंने इसे सेमेटिक जातियों या तूरानियों से उधार नहीं लिया था। इतिहास में इसका अपना एक अलग ही व्यक्तित्व है—यह हमारे पूर्वजों का कार्य था, जो हमारे विचारों और शब्दों को प्रकट करने के सूत्र को उन लोगों से जोड़ता है, जिन्होंने पहले पहल हमसे चिन्तन व संभाषण किया और मानव आज भी जिनके विचारों में सोचता है और जिनकी

we are something different from what we thought we were. Suppose the Americans, owing to some cataclysmal events, had forgotten their English origin, and after two or three thousand years found themselves in possession of a language and of ideas which they could trace back historically to a certain date, but which at that date, seemed, as it were, fallen from the sky, without any explanation of their origin and previous growth, what would they say if suddenly the existence of an English language and literature were reveaed to them, such as they existed in the seventeenth century—explaining all that seemed before almost miraculous, and solving almost every question that could be asked ! Well, this is much the same as what the discovery of Sanskrit has done for us. It has added a new period to our historical consciousness, and revived the recollections of our childhood, which seemed to have vanished for ever.

67. Whatever else we may have been, it is quite clear now that, many thousands of years ago, we were something that had not yet developed into an Englishman, or a Saxon, or a Greek, or a Hindu either, yet contained in itself the germs of all these characters. A strange being, you may say. Yes, but for all that a very real being, and an ancestor too of whom we must learn to be proud, far more than of any such modern ancestors, as Normans, Saxons, Celts, and all the rest.

68. And this is not all yet that a study of Sanskrit and the other Aryan languages has done for us. It has not only widened our views of man, and taught us to embrace millions of strangers and barbarians as members of one family, but it has imparted to the whole ancient history of man a reality which it never possessed before.

69. We speak and write a great deal about antiquities and if we can lay hold of a Greek statue or an Egyptain Sphinx or a Babylonian Bull, our heart rejoices, and we build museums grander than any Royal palaces to receive the treasures of the past. This is quite right. But are you aware that every one of us possesses what may be called the richest and most wonderful Museum of Antiquities, older than any statues, sphinxes, or bulls ? And where ? Why, in our own language. When I use such words as *father* or *mother*, *heart* or *tear*, *one*, *two*, *three*, *here* and *there*, I am handling coins or counters that were current before there was one single Greek statue, one single Babylonian Bull, one single Egyptian Sphinx. Yes, each of us carries about with him the richest and

भाषा का प्रयोग करता है, भले ही वे लोग हजारों लाखों वर्ष पूर्व ही एक दूसरे से बिछुड़ गए हों।

६२. मैं इसे ही सही मानों में इतिहास कहता हूं और यह एक ऐसा इतिहास है जो राजदरबारों के दुराचारों और अनेक जातियों की हिंसक क्रूरताओं की अपेक्षा कहीं अधिक ज्ञातव्य और पठनीय है, जिनसे हमारी इतिहास-पुस्तकों के सैकड़ों हजारों पृष्ठ रंगे पड़े हैं। यह तो अभी शुरुआत है। जो भी कोई इतिहास के अत्यन्त प्राचीन इस अभिलेखागार में कुछ काम करना चाहता है, उसे अपनी नई से नई अन्वेषणाओं के लिए यहां बहुत-कुछ मिलता रहेगा।

फिर भी लोग कहते हैं कि संस्कृत सीखने का क्या लाभ है!

६३. हम लोग अपने आसपास की बातों के ही आदी हो गये हैं। इसलिए जो बातें हमारे पूर्वजों को चकित कर देती रही होंगी, हम उनके बारे में कुछ कल्पना भी नहीं कर पाते, और उनकी युगों से संचित तथा एकत्रित चिन्तन-परम्परा की परतों को किसी भूकम्प के धक्के की भाँति उलट-पुलट देते हैं। [आज विद्यालय में प्रत्येक बच्चा यह सीखता है कि अंग्रेजी एक आर्य या भारोपीय भाषा है, और ट्यूटानिक भाषा की एक शाखा है, और यह ट्यूटानिक शाखा भी इटालियन, ग्रीक केल्ट, स्लाव, ईरानी और भारतीय शाखाओं के साथ एक ही तरह से उत्पन्न हुई है। ये सब भाषाएँ मिलकर आर्य अथवा भारोपीय भाषा का निर्माण करती हैं।

६४. भाषा-विज्ञान की यह सचाई आज हमें स्कूलों में शुरु-शुरु में ही समझा दी जाती है, पर आप लोग आज से पचास वर्ष पहले के उस युग की जरा कल्पना कीजिये जबकि हमारे बौद्धिक जगत् में एक नया क्षितिज उदित हुआ था और हमरी भातृत्व भावना को एक ऐसा विस्तार मिला था जिसके फलस्वरूप जिसे हम पहले सर्वथा पराया और अजनबी समझते थे उसे भी अपना समझने लगे और वे तथाकथित वर्बर लोग भी हमारे ही सगे-सम्बन्धियों के रूप में परिणत हो गये। एक भाषा बोलना एक (माँ के) दूध पीने से भी बढ़कर एकात्मकता का परिचायक है और भारत की पुरातन भाषा संस्कृत सारभूत रूप से यही है, जो ग्रीक, लेटिन या एंग्लो सेक्सन भाषाएँ हैं। यह एक ऐसा पाठ है, जिसे हम भारतीय भाषा और साहित्य के अध्ययन के बिना कभी न पढ़ पाते, और भारत यदि हमें इस एक ही पाठ के सिवा और कुछ भी न पढ़ा पाता तो भी हम इससे ही इतना-कुछ सीख जाते, जितना दूसरी कोई भी भाषा कभी न सिखा पाती।

६५. जब यूरोपियन जगत् में (संस्कृत के) प्रकाश की किरणें पहले-पहल जगमगाईं तो यहाँ के विद्वानों और दार्शनिकों ने उसके बारे में जो कुछ लिखा, आज जब हम उसे पढ़ते हैं तो एक अच्छा मनोविनोद होता है और साथ ही साथ कुछ शिक्षा भी मिलती है। उस समय यूरोपियन विद्वान् संस्कृत के नये प्रकाश को ग्रहण करने की स्थिति में नहीं थे। उन्हें इस तथ्य पर विश्वास ही नहीं होता था कि एथेन्स और रोम व भारत के तथाकथित नीग्रो या अश्वेत लोगों के बीच भी किसी प्रकार की

most wondrful Museum of Antiquities ; and if he only knows how to treat those treasures, how to rub and polish them till they become translucent again, how to arrange them and read them, they will tell him marvels more marvellous than all hieroglyphics and cuneiform inscriptions put together. The stories they have told us are beginning to be old stories now. Many of you have heard them before. But do not let them cease to be marvels, like so many things which cease to be marvels because they happen every day. And do not think that there is nothing left for you to do. There are more marvels still to be discovered in language than have ever been revealed to us ; nay, there is no word, however common, if only you know how to take it to pieces, like a cunningly contrived work of art, fitted together thousands of years ago by the most cunning of artists, the human mind, that will not make you listen and marvel more than any chapter of the Arabian Nights.

70. But I must not allow myself to be carried away from my proper subject. All I wish to impress on you by way of introduction is that the results of the Science of Language, which, without the aid of Sanskrit, would never have been obtained, form an essential element of what we call a liberal, that is an historical education,—an education which will enable a man to do what the French call *s'orienter*, that is 'to find his East,' 'his true East,' and thus to determine his real place in the world ; to know, in fact, the port whence man started, the course he has followed, and the port towards which he has to steer.

71. We all came from the East—all that we value most has come to us from the East, and in going to the East, not only those who have received a special Oriental training, but everybody who has enjoyed the advantages of a liberal, that is, of a truly historical education, ought to feel that he is going to his 'old home', full of memories, if only he can read them. Instead of feeling your hearts sink within you, when next year you approach the shores of India, I wish that every one of you could feel what Sir William Jones felt, when, just one hundred years ago, he came to the end of his long voyage from England, and saw the shores of India rising on the horizon. At that time young men going to the wonderland of India, were not ashamed of dreaming dreams, and seeing visions : and this was the dream dreamt and the vision seen by Sir William Jones :

72. When I was at sea last August (that is in August 1783), on my voage to this country (India) I had long and ardently desire to

एकजातीयता हो सकती है। उस समय के विद्वानों ने भारत और यूनानियों की एकरूपता की धारणा को एकदम ठुकरा दिया। जब मैंने लाइपज़िग विश्वविद्यालय में संस्कृत का अध्ययन आरम्भ किया, उस समय गोटफ्रीड हर्मन, होप्ट, वैस्टरमेन तथा स्टालबोम और ऐसे ही अन्य अनेक मेरे प्रोफेसर संस्कृत या तुलनात्मक व्याकरण के बारे में जो फब्तियां कसा करते थे, वे मुझे आज भी खूब याद हैं। संस्कृत, जेंद, ग्रीक, लेटिन और गॉथिक भाषाओं का स्वरचित तुलनात्मक व्याकरण प्रकाशित करने पर कुछ समय तक प्रोफेसर बाप्प का जैसा मज़ाक उड़ाया जाता रहा, वैसा मज़ाक आज तक शायद दूसरे किसी भी व्यक्ति का नहीं उड़ाया गया होगा। सारे यूरोप के हाथ उनके विरोध में उठे हुए थे और संस्कृत, गॉथिक, केल्टिक, स्लाव या फारसी भाषा की ग्रीक और लेटिन के साथ तुलना करते समय स्वर की भी अशुद्धि कहीं हो गयी तो ऐसे लोग जो ग्रीक और लेटिन के सिवाय कुछ नहीं जानते थे और उनके अपने ग्रीक कोषों में दिये गये स्वराघातों को ही जो अपनी समझ में सर्वथा शुद्ध मानते थे, उनके विरुद्ध इतना हल्ला-गुल्ला मचाने लगते थे कि उसका कहीं अन्त ही नहीं हो पाता। डुगाल्ट स्टूवार्ट तो हिन्दुओं और स्काटलैण्ड के निवासियों में किसी प्रकार का सम्बन्ध स्वीकार करने के विपरीत यह प्रतिपादित करने में लगे कि यह संस्कृत भाषा और उसका साहित्य—याद रहे कि यह साहित्य तीन हजार से भी अधिक लम्बे काल तक फैला हुआ है और यूनान व रोम के सम्पूर्ण साहित्य से भी कहीं अधिक विशाल है—धूर्त पुरोहितों अर्थात् ब्राह्मणों के द्वारा नवनिर्मित एक ऐसा वाग्जाल है, जिसका निर्माण उन्होंने हमें धोखा देने के लिए ही किया है। मुझे अपने लाइपजिग विद्यालय के दिनों की याद है। यहाँ नोब, फोरबिगर, फुंबेनल, और पाम जैसे अध्यापक पढ़ाते थे। यह एक ऐसा काफी पुराना स्कूल था, जिसे लाइब्निज़ जैसे अपने पुराने छात्रों पर बड़ा गर्व था। मुझे उस एक दिन की भी याद है, जब इतनी गर्मी थी कि किसी काम में मन ही नहीं लग रहा था। तभी एक सान्ध्यकालीन कक्षा में हमारे एक मास्टर (डा० क्ली) ने बताया कि भारत में एक ऐसी भाषा बोली जाती थी जो ग्रीक और लेटिन के ही क्यों जर्मन और रूसी के भी सर्वथा समान थी। यह सुनकर पहले तो हम लोगों ने सोचा कि मास्टर साहब शायद आज हल्के फुल्के मूड में हैं और कुछ मजाकिया बातें कर रहे हैं। किन्तु मास्टर साहब ने तो तत्काल संस्कृत, ग्रीक और लेटिन के संख्यावाचक शब्द, सर्वनाम और समान धातुरूप श्यामपट पर लिख दिखाये। अब तो हमारे सामने ऐसे तथ्य उपस्थित थे कि जिनके आगे नतमस्तक होना ही पड़ा। आदम और हव्वा तथा पेरेडाइज (स्वर्ग) और बाबुल की मीनार आदि के साथ ही होमर, ऐनिस और विरिजल के विचार भी मानो एक वात्याचक्र में एक-साथ घूम गये और अन्ततोगत्वा कुछ टुकड़ों को चुनकर उनके सहारे एक नये विश्व के निर्माण तथा इतिहास की एक नई चेतना जगाने के काम में हम लोग जुट गये।

६६. इससे आप लोग समझ जायेंगे कि मैं भारत-ज्ञान को सामान्य ज्ञान अथवा इतिहास के अध्ययन का आवश्यक अंग क्यों मानता हूं। भारत के साथ हमारे

to visit, found one evening, on inspecting the observations of the day, that *India* lay before us, *Persia* on our left, whilst a breez from *Arabia* blew nearly on our stern. A situation so pleasing in itself and to me so new, could not fail to awaken a train of reflections in a mind, which had early been accustomed to contemplate wtih delight the eventful histories and agreeable fictions of this Eastern world. It gave me inexpressible pleasure to find myself in the midst of so noble an amphitheatre, almost encircled by the vast regions of Asia, which has ever been esteemed the nurse of sciences, the inventress of delightful and useful arts, the scene cf glorious actions, fertile in the productions of human genius, and infinitely diversified in the forms of religion and government, in the laws, manners, customs, and languages, as well as in the features and complexions of men. I could not help remarking how important and extensive a field was yet unexplored, and how many solid advantages unimproved.

73. India wants more such dreamers as Sir William Jones, then 37 years of age, standing alone on the deck of his vessel and watching the sun diving into the sea—with the memories of England behind and the hopes of India before him, feeling the presence of Persia and its ancient monarchs, and breathing the breezes of Arabia and its glowing poetry. Such dreamers know how to make their dreams come true, and how to change their visions into realities.

74. And as it was a hundred years ago, so it is now : or at least, so it may be now. There are many bright dreams to be dreamt about India, and many bright deeds to be done in India, if only you will do them. Though many great and glorious conquests have been made in the history and literature of the East, since the days when Sir William Jones landed at Calcutta, depend upon it, no young Alexander here need despair because there are no kingdoms left for him to conquer on the ancient shores of the Indus and the Ganges.

□□

परिचय के फलस्वरूप आज यूरोपवासियों की धारणाएं बदल गयी हैं और बहुत व्यापक हो गयी हैं। अब हम यह जानने लगे हैं कि जैसा पहले समझा जाता था, वास्तव में हम उससे कुछ भिन्न हैं। कल्पना कीजिये कि किसी छोटी-मोटी प्रलय या भौगोलिक उथल-पुथल के कारण कभी अमेरिका के लोग अपने-आपके अंग्रेजी मूल को सर्वथा भूल जायें और तब दो-तीन हजार वर्ष बाद उन्हें अकस्मात् मालूम हो जाये कि सत्रहवीं सदी में ऐसी ही अंग्रेजी भाषा और उसका साहित्य विद्यमान था, तो वे आश्चर्याभिभूत हो उठेंगे। संस्कृत की खोज से हमारे लिए आज ठीक वैसी ही स्थिति उत्पन्न हो गई है। इसके कारण हमारी ऐतिहासिक चेतना में एक नया अध्याय जुड़ गया है और हमारे भूले-बिसरे बचपन की मधुर स्मृतियां फिर से साकार हो उठी हैं।

६७. अब यह भली-भाँति स्पष्ट हो चुका है कि आज से हजारों वर्ष पहले हम और चाहे जो भी कुछ रहे हों, किन्तु अंग्रेज, सैक्सन या ग्रीक या हिन्दू के रूप में हम अलग से विकसित नहीं हो पाये थे। तथापि इन सबके मूल तत्त्व हम में विद्यमान थे। आप कहेंगे कि वे लोग तो कोई विचित्र प्राणी रहे होंगे। आपका विचार ठीक है, किन्तु इतना होते हुए भी उनकी सत्ता वास्तविक है। साथ ही वे हमारे ऐसे पूर्वज थे, जिन पर हमें ऐसा अभिमान होना चाहिए जो रोमन, सैक्सन, केल्ट और ऐसे ही अपने दूसरे आज के पूर्वजों के लिए अपने अभिमान से भी कहीं अधिक बढ़कर तथा महत्त्वपूर्ण है।

६८. संस्कृत तथा दूसरी आर्य भाषाओं के अध्ययन ने हमारे लिए बस इतना ही किया हो, सो बात भी नहीं है। इससे मानव-जाति के बारे में हमारे विचार व्यापक और उदार ही नहीं बने हैं तथा लाखों-करोड़ों अजनबियों तथा बर्बर समझे जानेवाले लोगों को भी अपने ही परिवार के सदस्य की भाँति गले लगाना ही नहीं सीखे हैं, अपितु इसने मानवजाति के सम्पूर्ण इतिहास को अपने वास्तविक रूप में प्रकट कर दिखाया है।

६९. हम अपने पुरातनत्व के बारे में बहुत-कुछ कहते-सुनते और लिखते-पढ़ते हैं। यदि कहीं किसी यूनानी मूर्ति या मिस्र के स्फिक्स या बेबीलोन के साण्ड के बारे में पता चल जाये तो हमारा हृदय बल्लियों उछलने लगता है। हम अपने अतीत की इस खोज को स्थापित तथा सुरक्षित करने के लिए राजमहलों से भी शानदार भवनों या संग्रहालयों का निर्माण करते हैं, और यह होना भी चाहिये। किन्तु क्या आप लोग उन सर्वाधिक आश्चर्यकारी संग्रहालयों को भी कुछ जानते हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति के अपने ही पास विद्यमान है और जो किसी भी यूनानी मूर्ति, स्फिक्स या बेबीलोनी साण्ड की प्रतिकृति से भी कहीं अधिक पुराना है ? जानते हैं कहाँ है वह संग्रहालय ? अरे वह तो हमारी भाषा में ही निहित है। फादर, मदर, हार्ट, टीयर या वन-टू थ्री अथवा हियर और देयर जैसे शब्द बोलनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के पास ऐसे पुराने सिक्के हैं जिनका प्रचलन किसी यूनानी मूर्ति, बेबीलोनियन साण्ड या स्फिक्स से भी पहले से था।

७०. जीं हाँ, हममें से प्रत्येक के पास पुरातन निधियों का एक समृद्ध एवं

अनोखा खजाना है। हमें केवल यह जान लेने की आवश्यकता है कि उस खजाने का उपयोग कैसे किया जाये और उन्हें किस प्रकार प्रयोग में लाया जाये। उन्हें घिस-माँज कर कैसे चमकाया जाये कि वे सर्वथा पारदर्शी बन जायें, और यह भी कि हम उन्हें व्यवस्थित क्रम से कैसे सजायें और उनका अध्ययन करें। तब वे हमें ऐसी आश्चर्यजनक और अत्यन्त उपयोगी बातें बतायेंगे जो मिस्र के सभी बीजाक्षर और मैसेपोटोमिया तथा ईरान के कीलाक्षरों में लिखित अभिलेख मिलकर भी नहीं बता पाते। उन्होंने जो रहस्य हमारे सामने प्रकट किए हैं और जो कहानियां सुनाई हैं, वे अब हमारे लिए पुरानी पड़ने लगी हैं। आपमें से अनेकों ने वे बातें पहले भी सुनी होंगी। किन्तु कई दूसरी बातों के समान जो अतिपरिचय के कारण अपना मूल्य और महत्व खो देती हैं, आप इस पुरातन निधि को निर्मूल्य मत होने दीजिये और ऐसा भी मत सोचिये कि अब आपको करने के लिए कुछ नहीं बचा है। भाषा के क्षेत्र में अभी तक जितनी खोजबीन की जा चुकी है, उससे कहीं अधिक अनोखे रहस्यों को अभी प्रकाश में लाना बाकी है। इतना ही क्यों, आपको एक भी ऐसा शब्द नहीं मिलेगा, भले ही वह शब्द कितना ही साधारण क्यों न हो, जो हजारों वर्ष पहले अन्यत्र चतुर शिल्पी (मानव-मस्तिष्क) के द्वारा पच्चीकारी के टुकड़े जोड़-जोड़कर बनाई गई किसी कलाकृति के समान आपको कोई कहानी न सुनाये और यह कहानी 'सहस्र रजनी चरित्र' की कहानियों से भी कहीं अधिक अद्भुत और मनोरंजक होगी। आवश्यकता केवल इस बात की है कि आप उन शब्दों के प्रकृति, प्रत्यय आदि यौगिक खण्डों को पृथक्-पृथक् करके पहचानना सीख जायें।

७१. किन्तु मैं अपने मूल विषय से भटकना नहीं चाहता। मैं अपने इस पहले परिचयात्मक भाषण के द्वारा आप लोगों को मात्र यह बताना चाहता हूं कि भाषा-विज्ञान के द्वारा हमने अब तक जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे संस्कृत की सहायता के बिना कदापि नहीं प्राप्त किये जा सकते थे। वही आज के हमारे सामान्य ज्ञान अथवा ऐतिहासिक शिक्षण का एक अपरिहार्य अंग बन चुके हैं। आज हमारा इतिहास का अध्ययन प्रत्न मानव को—'अपने पूर्व को, अपने वास्तविक पूर्व को पहचानिये'— इस फ्रेंच उक्ति को क्रियान्वित कर सकने योग्य बनाता है। इस प्रकार मनुष्य इस विश्व में अपना वास्तविक स्थान निश्चित कर पाता है और यह जान लेता है कि उसने अपनी जीवन-यात्रा कहां से आरम्भ की थी, उसे कौन-सा मार्ग अपनाना और कहाँ पहुंचना है।

७२. हम सब पूर्व से आये हैं—हमारे जीवन में जो भी कुछ अत्यधिक मूल्य-वान् है, वह हमें पूर्व से मिला है और पूर्व को पहचान लेने से ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को जिसने इतिहास की वास्तविक शिक्षा का कुछ लाभ उठाया है, भले ही वह प्राच्य-विद्या-विशारद न भी हो तो भी यह अनुभव अवश्य होगा कि वह नानाविध स्मृतियों से भरे अपने पुराने घर की ओर जा रहा है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि मनुष्य में उन्हें पढ़ पाने की क्षमता हो। अगले वर्ष जब आप लोग भारत के तट पर पहुंचेंगे तो बजाय इसके कि आपका दिल बैठने लगे, मैं चाहता हूं कि आपमें से प्रत्येक को ठीक वैसा ही अनुभव हो सके जैसा कि आज से सौ वर्ष पहले सर विलियम जोन्स को उस समय

हुआ था जबकि उन्होंने इंग्लैण्ड से आरम्भ की हुई अपनी लम्बी समुद्र-यात्रा की समाप्ति पर क्षितिज में प्रकट होते हुए भारत के तट का दर्शन किया था। उन दिनों नानाविध आश्चर्यों से भरे भारत जाने में युवक गण कोई सुनहरा सपना देखने या सुन्दर कल्पना के लोक में विचरण करने में किसी प्रकार की लज्जा का अनुभव नहीं करते थे। सर विलियम जोन्स ने उस समय जो सपना देखा था और उनके मन में जैसी सुनहरी कल्पना जगी थी—जैसा सुन्दर दृश्य देखा था सुनिये, उन्हीं के शब्दों में—

७३. "जिस भारत-यात्रा की ललक मेरे मन में उठ रही थी, पिछले १७८३ के अगस्त में उस देश के लिए मैं समुद्र-यात्रा कर रहा था कि एक दिन सन्ध्या के समय दिन-भर में देखे गये दृश्यों की जाँच-पड़ताल करते हुए मैंने पाया कि भारत अब ठीक हमारे सामने था। फारस या ईरान हमारे बाईं ओर था, तथा अरब सागर से आती हुई ठण्डी हवाएँ हमारे जहाज के पिछले भाग से टकरा रहीं थीं। यह अपने-आपमें इतना प्यारा और मेरे लिए सर्वथा नया परिवेश था कि जिससे प्राच्य देशों के घटना-पूर्ण इतिहासों तथा कथा-कहानियों के बारे में आनन्ददायक चिन्तन के अभ्यस्त मेरे मस्तिष्क में भांति-भाँति के बिम्बों और प्रतिबिम्बों की परम्परा-सी जगमगा उठी। एशिया के सुविस्तीर्ण क्षेत्रों से चारों ओर से घिरी ऐसी श्रेष्ठ रंगभूमि के मध्य अपने-आपको पाकर मुझे जिस आनन्द का अनुभव हुआ, वह वस्तुत: अनिर्वचनीय है। एशिया की यह भूमि नानाविध ज्ञान-विज्ञान की धात्री, आनन्ददायक ललित तथा उपयोगी कलाओं की जननी, एक-से-एक बढ़कर शानदार कार्यकलापों की रंगभूमि, मानव-प्रतिभा के उत्पादन के लिए अत्यन्त उर्वर क्षेत्र तथा धर्म, राज्य, सरकारों, कानून या विधि-संहिता, रीति-रवाज, परम्पराओं, भाषा, मानव के रंग-रूप व आकार-प्रकार की अपनी अत्यधिक विविधता के कारण सदा सर्वत्र सम्मान की दृष्टि से देखी जाती रही है।

मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि कितना बड़ा महत्त्वपूर्ण क्षेत्र अभी तक अनदेखा ही है और कितने बड़े व ठोस लाभ अभी तक प्राप्त नहीं किए जा सके हैं!

७४. अभी भारत को सर विलियम जोन्स जैसे न जाने कितने स्वप्नदर्शियों की आवश्यकता है। जब अपने जहाज के डेक पर अकेले खड़े ३७ वर्ष के सर जोन्स ने देखा था कि सूर्य सागर में डूब रहा है, तो उनके पीछे इंग्लैण्ड की सुमधुर स्मृतियाँ तथा उनके सामने भारत की आशा जगमगा रही थी। ईरान तथा उसके प्राचीन सम्राट् मानो उनके सामने खड़े थे। अरब सागर की शीतल मन्द समीर के झोंके उन्हें झुला रहे थे। ऐसे स्वप्नदर्शी ही यह समझ सकते हैं कि अपने स्वप्नों को साकार और अपनी कल्पनाओं को वास्तविकता में परिणत कैसे किया जा सकता है।

७५. और जो बात या स्थिति आज से सौ वर्ष पहले थी, आज भी वैसी ही है। या यूँ कहें कि आज भी वैसी हो ही सकती है। यदि आप लोग चाहें तो भारत के बारे में वैसे ही सुनहरे सपने देख सकते हैं और भारत पहुंचने के बाद एक से बढ़कर एक शानदर काम भी कर सकते हैं। आप लोग विश्वास रखें कि यद्यपि सर विलियम जोन्स के कलकत्ता पहुंचने के बाद से अब तक प्राच्य देशों के इतिहास और साहित्य के क्षेत्र में एक से बढ़कर एक शानदार बड़ी-बड़ी अनेक विजयें प्राप्त हो चुकी हैं, तथापि किसी भी नये सिकन्दर को यह सोचकर निराश नहीं हो जाना चाहिये कि गंगा और सिन्ध के पुराने मैदानों में अब उसके लिए विजय करने को कुछ भी शेष नहीं रहा।

LECTURE II

CHARACTER OF THE HINDUS

1. In my first Lecture I endeavoured to remove the prejudice that everything in India is strange, and so different from the intellectual life which we are accustomed to in England that the twenty or twentyfive years which a Civil servant has to spend in the East seem often to him a kind of exile that he must bear as well as he can, but that severs him completely from all those higher pursuits by which life is made enjoyable at home. This need not be so and ought not to be so, if only it is clearly seen how almost every one of the higher interests that make life worth living here in England, may find as ample scope in India as in England.

2. To-day I shall have to grapple with another prejudice which is even more mischievous. Because it forms a kind of icy barrier between the Hindus and their rulers, and makes anything like a feeling of true fellowship between the two utterly impossible.

3. That prejudice consists in looking upon our stay in India as a kind of *moral* exile, and in regarding the Hindus as an inferior race, totally different from ourselves in their moral character, and, more particularly in what forms the very foundation of the English character, respect for truth.

4. I believe there is nothing more disheartening to any high-minded young man than the ideal that he will have to spend his life among human beings whom he can never respect or love—natives, as they are called, not to use even more offensive names—men whom he is taught to consider as not amenable to the recognised principles of self-respect, uprightness, and veracity, and with whom therefore any community of interests and action, much more any real friendship, is supposed to be out of the question.

5. So often has that charge of untruthfulness been repeated, and so generally is it now accepted, that is seems almost Quixotic to try to fight against it.

6. Nor should I venture to fight this almost hopeless battle if I were not convinced that such a charge, like all charges brought against a whole nation, rests on the most flimsy induction, and

द्वितीय व्याख्यान

हिन्दुओं का चरित्र

१. मैंने अपने पहले व्याख्यान में इस पूर्वाग्रह के निराकरण का प्रयत्न किया था कि 'भारत की प्रत्येक वस्तु विचित्र है। नागरिक सेवा के पद पर रहते हुए हमें वहाँ जो बीस-पच्चीस वर्ष बिताने पड़ेंगे वह एक प्रकार से निर्वासन-काल होगा। यह अवधि किसी प्रकार बीत तो जाएगी, किन्तु वहाँ अपनी किसी ऐसी उच्च अभिलाषा या अभिरुचि की पूर्ति लगभग असम्भव है, जिससे वहां रहते हुए जीवन आनन्दमय और सरस बन जाए, आप ऐसा कभी न सोचें क्योंकि जिन महान् लक्ष्यों की पूर्त्ति से यहाँ हमारा जीवन जीने के योग्य बन सकता है, उनके लिए भारत में भी वैसा ही क्षेत्र विद्यमान है।

२. आज मैं आप लोगों को एक दूसरे प्रकार के पूर्वाग्रह से छुटकारा दिलाने का प्रयत्न करूंगा जो और भी अधिक शरारत भरा है, क्योंकि ऐसी भ्रान्त धारणाओं के कारण हिन्दुओं और वहां शासन करने वालों के बीच एक दीवार खड़ी हो जाती है, जिससे दोनों में किसी प्रकार के सौहार्द की भावना असम्भव-सी हो जाती है।

३. इस पूर्वाग्रह के कारण हमें अपना भारत-प्रवास नैतिकता से निर्वासन-सा लगता है और हिन्दुओं को हम एक ऐसी घटिया दर्जे की जाति मान बैठते हैं, जो चारित्रिक मूल्यों में हमसे कहीं निकृष्ट है। विशेष रूप से सत्यनिष्ठा के जिस नैतिक गुण पर अंग्रेज जाति के चरित्र की नींव टिकी हुई है, उस सत्य की दृष्टि से।

४. मैं समझता हूं कि उच्च विचार वाले किसी भी युवक के लिए इससे बढ़कर और कोई हतोत्साह करने वाली बात नहीं हो सकती कि उसे अपना जीवन अब ऐसे लोगों के बीच बिताना पड़ेगा जिनके लिए उसके हृदय में आदर और प्रेम की कहीं कोई गुंजाइश नहीं है, क्योंकि जिन 'नेटिव'—देसी लोगों—और इससे भी बढ़ कर—के बारे में उसे पढ़ाया गया है कि वे आत्मसम्मान, सत्यनिष्ठा और न्यायप्रियता के स्वीकृत सिद्धान्तों को जानते ही नहीं, इसलिए उनकी और अपनी अभिरुचियों में किसी प्रकार का कोई मेल नहीं हो सकता। तब भला उनके साथ मैत्री या स्नेह-सम्बन्ध का तो प्रश्न ही कहां उठता है।

५. लबार या असत्यशील होने का यह लांछन भारतीयों पर इतनी अधिक बार और इतनी तरह से लगाया गया है तथा इसे इतनी दृढ़ता से मान लिया गया है कि इसके विरोध में खड़े होना एक मूर्खता पूर्ण दुस्साहस ही लगता है।

६. किन्तु मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि यदि मुझे इस बात का पूरा भरोसा न होता कि हेत्वाभास युक्त अप्रमाणिक एवं असत्य निष्कर्षों व अनुमानों के आधार पर किसी भी पूरी जाति पर लगाए जाने वाले अन्यान्य लांछनों की

that it has done, is doing, and will continue to do more mischief than anything that even the bitterest enemy of English dominion in India could have invented. If a young man who goes to India as a Civil servant or as a military officer, goes there fully convinced that the people whom he is to meet with are all liars, liars by nature or by national instinct, never restrained in their dealings by any regard for truth, never to be trusted on their word, need we wonder at the feelings of disgust with which he thinks of the Hindus, even before he has seen them ; the feelings of distrust with which he approaches them, and the contemptuous way in which he treats them when brought into contact with them for the transaction of public or private business ? When such tares have once been sown by the enemy, it will be difficult to gather them up. It has become almost an article of faith with every Indian Civil servant that all Indians are liars ; nay, I know I shall never be forgiven for my heresy in venturing to doubt it.

7. Now, quite apart from India, I feel most strongly that every one of these international condemnations is to be deprecated, not only for the sake of the self-conceited and uncharitable state of mind from which they spring, and which they serve to strengthen and confirm, but for purely logical reasons also, namely for the reckless and slovenly character of the induction on which such conclusions rest. Because a man has travelled in Greece and has been cheated by his dragoman, or been carried off by brigands, does it follow that all Greeks, ancient as well as modern, are cheats and robbers, or that they approve of cheating and robbery ? And because in Calcutta, or Bombay, or Madras, Indians who are brought before judges, or who hang about the law courts and the bazaars, are not distinguished by an unreasoning and uncompromising love of truth, is it not a very vicious induction to say, in these days of careful reasoning, that all Hindus are liars—particularly if you bear in mind that the number of inhabitants of that vast country amounts to hundreds of millions. Are all these many millions of human beings to be set down as liars, because some hundreds, say even some thousands of Indians, when they are brought before an English court of law, on suspicion of having committed a theft or a murder, do not speak the truth, the 'whole truth, and nothing but the truth ? Would an English sailor, if brought before a dark-skinned judge, who spoke English with a strange accent, bow down before him and confess at once any misdeed that he may have committed ; and would all his mates

भांति भारतीयों के चरित्र के बारे में बताए जाने वाले सभी दोष भी असत्य एवं मन गढ़न्त हैं—भारत और ब्रिटेन का बुरा चाहने वाला कोई भयंकर से भयंकर अनिष्ट-चिन्तक भी ऐसी झूठी कहानियां शायद न गढ़ पाता—और इनके कारण बहुत बड़ी हानि हुई है तथा भविष्य में भी होती रह सकती है, तो मैं इस बेकार के पचड़े में न पड़ता और न भारतीयों पर लगाए जाने वाले झूठे लांछनों का मुंह तोड़ उत्तर देने के लिए यह लडाई ठानने की हिम्मत ही करता। यदि यहां से भारत की प्रशासनिक या सैनिक सेवा में जाने वाले किसी आई० सी० एस० या मिलिट्री आफिसर के मन में पहले से यह बात बैठा दी जाए कि जिन लोगों के साथ उसका वास्ता पड़ने वाला है वे सब के सब लबार और झूठे हैं, वे आदतन भी झूठे हैं और उनका राष्ट्रीय चरित्र भी वैसा ही है, उनके चरित्र में झूठ-सच बराबर हैं, वे सत्य का महत्त्व नहीं समझते और इसी लिए उनकी किसी बात पर भरोसा नहीं किया जा सकता। जब उसके हृदय में पहले से ही दुष्ट लोगों ने इतना खर-पतवार उगा दिया हो, जरा सोचिए उसे उखाड़ फेकना कितना कठिन है। सभी भारतीय झूठे होते हैं, यह धारणा यहां से जाने वाले प्रत्येक आई० सी० एस० अधिकारी के मन में पहले से घर किए रहती है और मैं तो यहां तक कहने को तैयार हूं कि यदि मैं इस भ्रान्त धारणा को उखाड़ फेंकने का बीड़ा उठाता हूं, तो शायद आप लोग मुझे भी न बख्शने पाएं। क्या खयाल है आपका?

७. हम भारत को अलग भी रख दें, तो भी अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में किसी को दोषी ठहराने की प्रवृत्ति को केवल इसीलिए ही नहीं हतोत्साहित व तिरस्कृत किया जाना चाहिए कि किसी जाति पर लगाए गए दोष प्रायः अपने को श्रेष्ठ समझने वाले घमण्डी एवं गन्दे मस्तिष्क की ही उपज होते हैं और इनके फलस्वरूप ऐसी ही न जानें कितनी दूसरी दकियानूसी अनुदार भावनाएं पनपती रहती हैं, अपितु इसलिए भी कि उनके वे निष्कर्ष तर्कहीन व दिमागी गन्दगी के सहारे लगाए गए अनुमानों पर ही टिके होते हैं। कोई व्यक्ति यूनान की यात्रा पर जाता है और वहां किसी तर्जुमा करने वाले (दुभाषिया) से वह धोखा खा जाता है या लुटेरे उसे लूट लेते हैं, तो क्या इससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन व आधुनिक यूनानी सब लोग ठग और लुटेरे हैं या वहाँ के लोग ठगी व लूटमार को अच्छा समझते हैं। ठीक ऐसे ही कलकत्ता, बम्बई या मद्रास की कचहरियों में न्यायाधीशों के सामने हाजिर होने वाले या बाजारों में अथवा कचहरियों के आसपास झूठी-सच्ची गवाही देने के लिए मंडराते रहने वाले भारतीय आमतौर पर इतने पक्के सत्य भक्त नहीं होते कि जिन्हें कोई सच्ची झूठी बात कहने के लिए राजी ही न किया जा सके, तो सच्चाई की परख के इस युग में यह कहना कि सब हिन्दू झूठे और लबार होते हैं, क्या यह एक सर्वथा दुष्ट व भ्रामक अनुमान नहीं माना जाएगा? विशेषतः जबकि आप यह भी जानते हों कि उस विशाल देश में करोड़ों लोग रहते हैं। और क्योंकि कुछ मुट्ठी भर उन भारतीयों से भले ही उनकी संख्या सैकड़ों हजारों तक भी क्यों न पहुंच जाएं, जिन्हें चोरी डकैती या हत्या के इल्जाम में पेश किया जाता है, यह आशा नहीं की जाती कि वे वहाँ सच ही बोलेंगे और सच के सिवा कुछ नहीं बोलेंगे।

rush forward and eagerly bear witness against him, when he had got himself into trouble ?

8. The rules of induction are general, but they depend on the sujbects to which they are applied. We may, to follow an Indian proverb, judge of a whole field of rice by tasting one or two grains only, but if we apply this rule to human beings, we are sure to fall into the same mistake at the English chaplain who had once, on board an English vessel, christened a French child, and who remained fully convinced for the rest of his life that all French babies had very long noses.

9. I can heardly think of anything that you could safely predicate of *all* the inhabitants of India, and I confess to a little nervous tremon whenever I see a sentence beginning with 'The people of India,' or even with 'All the Brahmans,' or 'All the Buddhists. What follows is almost invariably wrong. There is a greater difference between an Afghan, a Sikh, a Rajput, a Bengali, and a Dravidian than between an Englishman, a Frenchman, a German, and a Russian—yet all are classed as Hindus, and all are supposed to fall under the same sweeping condemnation.

10. Let me read you what Sir John Malcolm says about the diversity of character to be observed by any one who has eyes to observe, among the different races whom we promiscuously call Hindus, and whom we promisuously condemn as Hindus. After describing the people of Bengal as weak in body and timid in mind, and those below Calcutta as the lowest of our Hindu subjects, both in character and appearance, he continues : 'But from the moment you enter the district of Behar, the Hindu inhabitants are a race of men, generally speaking, not more distinguished by their lofty stature and robust frame than they are for some of the finest qualities of the mind. They are brave, generous, humane, and their truth is as remarkable as their courage.'

11. But because I feel bound to protest against the indiscriminate abuse that has been heaped on the people of India from the Himalaya to Ceylon, do not suppose that it is my wish or intention to draw an ideal picture of India, leaving out all the dark shades, and giving you nothing but 'sweetness and light'. Having never been in India myself, I can only claim for myself the right and duty of every historian, namely, the right of collecting as much information as possible, and the duty to sift it according to the recognised rules of historical criticism. My chief sources of information with regard to the national character of the Indians in

तो क्या इसी आधार पर शेष सभी भारतीयों को भी झूठा और लबार कहा जा सकता है ? कल्पना कीजिए कि यदि किसी अंग्रेज नाविक को किसी काली चमड़ी वाले ऐसे न्यायाधीश के समक्ष उपस्थित होना पड़ जाए जो अंग्रेजी अजीबोगरीब तरीके से बोलता है, तो क्या वह अंग्रेज उसके सामने सच बोलकर और सच के सिवा और कुछ न बोल कर अपना अपराध स्वीकार कर लेगा और क्या उसके साथी भी सच बोलकर उसके विरुद्ध गवाही दे देंगे, जबकि वह मुसीबत में फंसा पड़ा होगा ?

८. अनुमान के साधारण नियम सर्वविदित होते हैं तथापि यह लागू किए जाने की परिस्थिति पर ही निर्भर करता है। 'एक दाने से सारी हंडिया की परख हो जाती है—हम यह भारतीय कहावत ले सकते हैं। किन्तु इसे मानव-जाति पर लागू नहीं किया जा सकता। यदि मानव-समुदाय पर भी इसे लागू करें तो हम वैसी ही भूल कर बैठेंगे, जैसे किसी अंग्रेजी जहाज पर लम्बी नाक वाले एक फ्रान्सीसी बालक को बप्तिस्मा देने वाला पादरी कहने लगा था कि फ्रान्स के लोगों की नाक बहुत लम्बी होती है।

९. मैं यह नहीं सोच सकता कि आप सारे भारत-वासियों के लिए कोई धारणाविशेष बना लेंगे। मैं स्वीकार करता हूं कि 'भारत के लोग' या 'सारे ब्राह्मण' अथवा 'सब बौद्ध' जैसे वाक्यों से आरम्भ होने वाले वाक्यों से ही मैं तो नर्वस होकर कांपने लगता हूं। जो कुछ इससे आगे कहा जाएगा, निश्चित रूप से गलत ही होगा। एक अंग्रेज, फ्रान्सीसी, जर्मन और रूसी में जितना अन्तर है, एक अफगान, सिक्ख, राजपूत, बंगाली, और द्राविड़ में वह उससे कहीं ज्यादा है। फिर भी वे सब हिन्दू (भारतीय) हैं और हमें वे घृणा की एक ही लाठी से हांके जाने योग्य लगते हैं।

१०. सर जॉन मैलकम भारतीयों की चारित्रिक विभिन्नता के बारे में जो कहते हैं, उसे मैं यहाँ आपके सामने दोहराना चाहूंगा, ये विशेषताएं-विभिन्नताएं ऐसी हैं जो हर किसी आंख वाले व्यक्ति को अनायास ही दिखाई दे जाती हैं। जिन्हें हम खटाक से 'हिन्दू' कह देते और नफरत की निगाह से देखते हैं, उन्हीं हिन्दुओं में से बंगाल के लोगों के ठिगने कद, तंगदिली तथा कलकत्ते के दक्षिण पूर्व की अपनी हिन्दू प्रजा को आकार-प्रकार व रंग-रूप दोनों में हीनतम बताने के बाद वे कहते हैं—'किन्तु बिहार में प्रविष्ट होते ही हम पाते हैं कि वहां के निवासी अपनी देहयष्टि के कारण जितने विशिष्ट हैं अपने श्रेष्ठतम बौद्धिक गुणों में भी वे उतने ही प्रशस्त हैं। वे बहादुर हैं, उदार व मानवीय गुणों से विभूषित हैं। उनकी सत्यवादिता भी उल्लेखनीय है।'

११. किन्तु क्योंकि हिमालय से लेकर श्रीलंका तक के भारतीयों के बारे में यहां जो दुराग्रहपूर्ण भेदभाव और घृणा के अम्बार लगा दिए गए हैं, मैं उनका विरोध करता हूं, इसलिए आप यह न मान बैठें कि मैं 'मीठा-मीठा गड़प और कड़वा-कड़वा थू' के अनुसार भारतीयों के दुर्बल और कृष्ण पक्ष को सर्वथा तिरोहित कर उनके आदर्श व उज्ज्वल पक्ष को ही आपके सामने प्रस्तुत करना चाहता हूं। चूंकि मैं स्वयं भारत

ancient times will be the works of Greek writers and the literature of the ancient Indians themselves. For later times we must depend on the statements of the various conquerors of India, who are not always the most lenient judges of those whom they may find it more difficult to rule than to conquer. For the last century to the present day, I shall have to appeal, partly to the authority of those who after spending an active life in India and among the Indians, have given us the benefit of their experience in published works, partly to the testimony of a number of distinguished Civil servants and of Indian gentlemen also whose personal acquaintance I have enjoyed in England, in France, and in Germany.

12. As I have chiefly to address myself to those who will themselves be the rulers and administrators of India in the future, allow me to begin with the opinions which some of the most eminent, and, I believe, the most judicious among the Indian Civil servants of the past have formed and deliberately expressed on the point which we are to-day discussing, namely, the veracity or want of veracity among the Hindus.

13. And here I must begin with a remark which has been made by others also, namely, that the Civil servants who went to India in the beginning of this century, and under the auspices of the old East-India Company, many of whom I had the honour and pleasure of knowing when I first came to England, seemed to have seen a great deal more of native life, native manners, and native character than those whom I had to examine five-and-twenty years ago, and who are now, after a distinguished career, coming back to England. India is no longer the distant island which it was, where each Crusoe had to make a home for himself as best he could. With the short and easy voyages from England to India and from India to England, with the frequent mails, and the telegrams. and the Anglo-Indian newspapers, official life in India has assumed the character of a temporary exile rather, which even English ladies are now more ready to share than fifty years ago This is a difficulty which cannot be removed, but must be met, and which I believe, can best be met by inspiring the new Civil servants with new and higher interests during their stay in India.

14. I knew the late Professor Wilson, our Boden Professor of Sanskrit at Oxford, for many years, and often listened with deep interest to his Indin reminiscences.

15. Let me read you what he, Professor Wilson, says of his native friends, associates, and servants :

कभी नहीं गया, इसलिए मैं अपने लिए मात्र एक इतिहासकार के कर्त्तव्य और अधिकार का ही दावा कर सकता हूं। वह यह कि यथा सम्भव अधिकाधिक सूचनाएं संकलित कर उन्हें ऐतिहासिक समीक्षा की कसौटी पर कस कर सर्वसम्मत नियमों के आधार पर उनका तदनुरूप रिकार्ड तैयार कर दिया जाए। प्रचीन भारतीयों के राष्ट्रीय-चरित्र-सम्बन्धी सूचनाओं के लिए मेरा मुख्य स्रोत पुराने यूनानी लेखकों की रचनाएं और स्वयं प्राचीन भारतीय साहित्य है। परवर्ती काल के लिए हमें भारत के ऐसे विजेताओं के वक्तव्यों पर निर्भर रहना पड़ेगा जो उन लोगों के कभी विनम्र जज नहीं बन सकते थे, जिन्हें उन पर विजय प्राप्त करने की अपेक्षा शासन करना कहीं कठिन लगता था। पिछली सदी से लेकर आज तक के लिए तो हमें ऐसे लोगों के प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध हैं, जिन्होंने भारत और भारतियों के बीच अपना सक्रिय जीवन बिताने के पश्चात् अपने अनुभवों को प्रकाशित कर हमें लाभान्वित किया है, भारतीय प्रशासनिक सेवा के कुछ विशिष्ट अधिकारियों तथा फ्रान्स, जर्मनी और यहां इंग्लैण्ड में भी जिन अनेक विशिष्ट भारतीयों से मिलने का अवसर मुझे मिला है, उनके द्वारा प्रदत्त एवं प्रस्तुत तथ्यों को भी ध्यान में रखा गया है।

१२. क्योंकि मुझे प्रमुखतया यहां उन्हें सम्बोधित करना है, जो निकट भविष्य में भारत के शासक या प्रशासक बनकर जाने वाले हैं अतः मैं चाहुंगा कि कुछ समय पूर्व तक भारत में महत्त्वपूर्ण पदों पर रह चुके अंग्रेज उच्चाधिकारियों में से सुविख्यात लोकप्रिय एवं मेरी समझ में सच्चे न्यायनिष्ठ कुछ महानुभावों ने भारतीय-चरित्र की सत्यासत्यशीलता के इस अति संवेदनशील पहलू पर अपनी जो सम्मति दी है, उसी से मुझे यह व्याख्यान आरम्भ करने की अनुमति प्रदान की जाये।

१३. साथ ही, कुछ दूसरे लोगों ने भारत के बारे में जो कुछ बताया है, मैं यहाँ उसकी भी चर्चा करना चाहूंगा। ये वे लोग हैं जो इस १९वीं शताब्दी के आरम्भ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ओर से भारतीय प्रशासनिक सेवा में रहकर आए थे और जिनमें से अनेकों से मिलने का सुअवसर और सौभाग्य मुझे उन्हीं दिनों मिल चुका था। मुझे तभी यह विदित हो गया था कि वे अंग्रेज अधिकारी भारत के जीवन और जीवन पद्धति तथा भारतीयों की नैतिकता एवं चारित्रिक विशेषताओं के बारे में उन लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक सही जानकारी रखते हैं, जो भारत में आई० सी० एस० के पदों पर रहकर अब अपने उज्ज्वल भविष्य के साथ वापस इंग्लैण्ड लौट रहे हैं और आई० सी० एस० पदों पर नियुक्ति के समय २५ वर्ष पहले मैंने भी जिनकी परीक्षा ली थी। आज भारत कोई ऐसा सुदूरवर्ती द्वीप नहीं रह गया है, जहाँ किसी राबिसन क्रूसो को आवश्यक सुविधायें जुटाकर रहना पड़े। इंग्लैण्ड से भारत और भारत से यहाँ बहुत शीघ्र और सरलता से पहुंचा जा सकता है। डाक और तार की भी बड़ी सुविधा हो गई है। एंग्लो-इण्डियन पत्रिकाओं की भी भरमार है। इन सब सुविधाओं के कारण भारत निवास को 'निर्वासन' समझना अब पुरानी कल्पना माना जाता है। यहाँ तक कि आज से ५० वर्ष पहले जो अंग्रेज महिलाएं भारत जाने में हिचकिचाती थीं, अब वे भी वहाँ जाने को

16. 'I lived, both from necessity and choice, very much amongst the Hindus, and had opportunities of becoming acquainted with them in a greater variety of situations than those in which they usually come under the observation of Europeans. In the Calcutta mint, for ins ance. I was in daily personal communication with a numerous body of artificers, mechanics, and labourers, and always found amongst them cheerful and unwearied industry, good-humoured complaince with the will of their superiors, and a readiness to make whatever exertions were demanded from them : there was among them no drunkenness, no disorderly conduct, no insubordination. It would not be true to say that there was *no* dishonesty, but it was comparatively rare, invariably petty, and much less formidable than, I believe, it is necessary to guard against in other mints in other countries. There was considerable skill and ready docility. So far from there being any servility, there was extreme frankness, and I should say that where there is confidence without fear, frankness is one of the most universal features in the Indian character. Let the people feel sure of the temper and good-will of their superiors, and there is an end of reserve and timidity, without the slightest departure from respect...'.

17. Then, speaking of the much-abused Indian Pandits, he says : 'The studies which engagad my leisure brought me into connection with the men of learning, and in them I found the similar merits of industry, intelligence, cheerfulness, frankness with others peculiar to their avocation. A very common characteristic of these men, and of the Hindus especially was a simplicity truly childish, and a total unacquaintance with the business and manners of life. Where that teature wa· lost, it was chiefly by those who had been long familiar with Europeans. Amongst the Pandits, or the learned Hindus, there prevailed great ignorance and great dread of the European character. There is, indeed, very little intercourse between any class of Europeans and Hindu scholars, and it is not wonderful, therefore, that mutual misapprehension should prevail.'

18. Speaking, lastly, of the higher classes in Calcutta and elsewhere, Professor Wilson says that he witnessed among them 'polished manners, clearness and comprehensivenss of understanding, liberality of feeling and independence of principle that would have stamped them gentlemen in any country in the world.' 'With some of this class, he adds, 'I formed friendships which I trust to enjoy through life.'

राजी हो जाती हैं। महिलाओं की इस मनोवैज्ञानिकता पर आसानी से विजय नहीं पाई जा सकती थी, किन्तु भारत में रहते हुए अंग्रेज प्रशासनिक अधिकारियों में अभिनव उत्कृष्ट रुचियों को जगा कर महिलाओं के मनोभावना को भी अनुकूल बनाया जा सकता है।

१४. ऑक्सफोर्ड में अपने संस्कृत के बोडेन प्रोफेसर स्व० प्रो० विलसन के सम्पर्क में मैं वर्षों तक रहा हूं। भाव-विभोर होकर भारत के जो संस्मरण वे सुनाया करते थे, उन्हें मैंने कई वर्ष तन्मय होकर सुना है।

१५. प्रो० विलसन अपने मित्रों, सहयोगियों व सेवकों के बारे में लिखते हैं—

१६. मैं कुछ तो आवश्यकतावश और कुछ अपनी इच्छा से हिन्दुओं के साथ बहुत रहा हूँ। सामान्यतया वे लोग जिन परिस्थितियों में यूरोपियनों के सम्पर्क में आते हैं उसकी अपेक्षा कहीं अधिक भिन्न और विविध परिस्थितियों में उनके मध्य रहने तथा उनसे परिचित होने के सुअवसर मुझे मिलते रहे हैं। उदाहरण के लिए कलकत्ता की टकसाल में काम करने वाले अनेक शिल्पिओं मकैनिकों और श्रमिकों से मेरा वास्ता पड़ता रहा है। मैंने पाया कि वे लोग सदा प्रसन्न रहने वाले और अथक परिश्रमी हैं। वे अपने से बड़े लोगों की इच्छाओं का सदा ध्यान रखते थे। उनसे जो भी काम करने को कहा जाता, वे उसे बड़ी तत्परता और निष्ठा से सम्पन्न करते हैं। उनमें शराब-खोरी अनैतिकता या अवज्ञाकारिता नहीं थी। यह कहना तो सत्य नहीं होगा कि वहाँ कोई भी बदनीयत या बेईमान नहीं था, किन्तु सापेक्षतया वहाँ यह यदाकदा और वह भी बहुत कम होती थी। दूसरे देशों की टकसालों में इस बेईमानी या चोरी-चकारी की रोकथाम के लिए जितने कड़े उपाय किए जाते हैं, मैं समझता हूँ वहाँ वे बहुत कम करने पड़ते थे। उन लोगों की कार्यदक्षता और किसी नई चीज को सीखने के लिए उत्सुकता भी देखने योग्य थी। जहाँ तक सेव्य-सेवक-भाव का सम्बन्ध है, वे लोग अति स्पष्टवादी थे और मैं कहना चाहूंगा कि वे लोग निर्भय और आत्मविश्वासी हैं, इसलिए भारतीय चरित्र की सबसे बड़ी, सार्वजनिक विशेषताओं में स्पष्टवादिता भी एक अन्यतम प्रमुख विशेषता है। एक बार उन लोगों को अपने अधिकारियों की सद्भावना और स्वभाव के बारे में विश्वास हो जाना चाहिए, फिर वे आपके साथ प्रत्येक विषय में खुलकर बात करने लगते हैं, फिर भी उनमें रंचक भी अवज्ञा का भाव नहीं होता।

१७. जिन भारतीय पण्डितों की बहुत बुराई की जाती है, उन्हीं के बारे में श्री विलसन लिखते हैं—"अपने खाली समय में (संस्कृत के) अध्ययन के सिलसिले में मुझे वहाँ के विद्वज्जनों के सम्पर्क में आने का सुअवसर मिला। उनके अपने व्यवसाय में भी कर्मनिष्ठा, प्रतिभा, प्रसन्नचित्तता और स्पष्टवादित-दक्षता आदि वे सब विशेषताएँ दिखाई दीं। अपने धन्धों में भी उतने ही दक्ष-शिशुओं-जैसा सारल्य और भोलापन, उन लोगों, विशेषतः हिन्दू पण्डितों में पाई जाने वाली एक सर्वविदित विशेषता है। वे जीवन-यापन अथवा कामकाज के लिए आवश्यक उपयोगी तौर-तरीकों से सर्वथा अपरिचित हैं। यदि किसी में उक्त विशेषताओं की कुछ कमी दिखाई दी तो उसका भी कारण उस

19. I have often heard Professor Wilson speak in the same, and in even stronger terms of his old friends in India, and his correspondence with Ram Comul Sen, the grandfather of Keshub Chunder Sen, a most orthodox, not to say bigoted, Hindu, which has lately been published, shows on what intimate terms Englishmen and Hindus may be, if only the advances are made on the English side.

20. There is another Professor of Sanskrit, of whom your University may well be proud, and who could speak on this subject with far greater authority than I can. He too will tell you, and I have no doubt has often told you, that if only you look out for friends among the Hindus, you will find them, and you may trust them.

21. There is one book which for many years I have been in the habit of recommending, and another against which I have always been warning those of the candidates for the Indian Civil Service whom I happened to see at Oxford ; and I believe both the advice and the warning have in several cases borne the very best fruit. The book which I consider most mischievous, nay, which I hold responsible for some of the greatest misfortunes that have happened to India, is Mill's History of British India, even with the antidote against its poison, which is supplied by Professor Wilson's notes. The book which I recommend, and which I wish might be published again in a cheaper form, so as to make it more generally accessible, is Colonel Sleeman's Rambles and Recollections of an Indian Official, published in 1844, but written originally in 1835-1836.

22. Mill's History, no doubt, you all know, particularly the candidates for the Indian Civil Service, who, I am sorry to say, are recommended to read it and are examined in it. Still, in order to substantiate my strong condemnation of the book, I shall have to give a few proofs :—

23. Mill in his estimate of the Hindu character is chiefly guided by Dubois, a French missionary, and by Orme and Buchanan, Tennant, and Ward, all of them neither very competent nor very unprejudiced judges. Mill, however, picks out all that is most unfavourable from their works, and omits the qualifications which even these writers felt bound to give to their wholesale condemnation of the Hindus. He quotes as serious, for instance, what was said in joke, namely, that 'a Brahman is an ant's nest of lies and impostures.' Next to the charge of untruthfulness, Mill upbraids

व्यक्ति का यूरोपियन लोगों के साथ सुदीर्घ सम्पर्क ही प्रतीत हुआ। पण्डितों या सुशिक्षित हिन्दुओं में यूरोपियन-चरित्र से सहज अपरिचित तथा उनके प्रति भय की भावना भी समान रूप से दिखाई देती थी। बात तो यह है कि किसी भी पद पर काम करने वाले किसी यूरोपियन और हिन्दू विद्वानों में पारस्परिक सम्पर्क हो ही नहीं पाता, इसीलिए इन दोनों में एक-दूसरे के प्रति भ्रान्त धारणाएं बनी रहती हैं।"

१८. अन्त में कलकत्ता तथा अन्य स्थानों के सम्भ्रान्त वर्ग की चर्चा करते हुए प्रोफेसर विलसन कहते हैं कि मुझे उन लोगों में अत्यन्त परिष्कृत शिष्टाचार-स्वच्छता, एक-दूसरे को समझने के लिए तत्परतापूर्ण कुशाग्र बुद्धि, विचार-स्वातन्त्र्य और सिद्धान्तों के बारे में उदारता एवं निष्पक्षता दिखाई दी, जिसके फलस्वरूप उन्हें विश्व के किसी भी देश के सभ्यतम सुसंस्कृत नागरिकों में अनायास ही बैठाया जा सकता है। आगे चलकर वे लिखते हैं, उनमें से कुछ विद्वानों के साथ मैंने अपने मैत्री-सम्बन्ध बना लिए हैं। मुझे विश्वास है कि जीवन-भर मुझे उसका आनन्द मिलता रहेगा।

१९. भारत के अपने पुराने मित्रों के बारे में ऐसे ही अथवा इससे भी कहीं अधिक उत्कृष्ट विचार प्रोफेसर विलसन के मुख से मैंने कई बार सुने हैं।

केशवचन्द्र सेन के पितामह बड़े कट्टर रूढ़िवादी हिन्दू रामकमल सेन के साथ अपने पत्र-व्यवहार को प्रोफेसर विलसन ने प्रकाशित करवा दिया है। इन पत्रों से यह सिद्ध हो जाता है कि यदि अंग्रेजों की ओर से पहल हो जाय तो हिन्दुओं और अंग्रेजों में घनिष्ठता हो सकती है।

२०. आपके इस विश्वविद्यालय में ही संस्कृत के एक दूसरे ऐसे प्रोफेसर भी हैं, जिन पर विश्वविद्यालय को समुचित गर्व है। इस विषय में वे मुझसे भी अधिक प्रामाणिक भाषण दे सकते है। वे भी आपको बताएंगे और मैं समझता हूं कि उन्होंने पहले भी कई बार इस विषय में आप लोगों से अवश्य चर्चा की होगी कि यदि हिन्दुओं को आप अपना मित्र बनाना चाहें तो अनायास ही वहाँ आपको ऐसे बहुत-से लोग मिल जायेंगे और आप उन पर पूरा भरोसा कर सकते हैं।

२१. इसी प्रसंग में मैं एक ऐसी पुस्तक की चर्चा करना चाहूंगा जिसको पढ़ने की सिफारिश मैं वर्षों से करता आ रहा हूं। एक ऐसी पुस्तक भी है, जिससे सदा सावधान रहने की चेतावनी भी मैं आई० सी० एस० के उन सब प्रत्याशियों को देता रहता हूँ, जिन्हें ऑक्सफोर्ड में साक्षात्कार के समय मैं मिलता रहता हूँ। मैं समझता हूं कि इस सिफारिश और चेतावनी दोनों ही के कई बार अच्छे परिणाम निकले हैं। जिस पुस्तक को मैं बड़ी शरारत भरी ही क्यों, भारत के लिए महान् दुर्भाग्यकारक और खतरनाक भी मानता हूँ, वह मिल की लिखी हुई हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया नये संस्करण पर विलसन की टिप्पणियों से उसके विषैले और खतरनाक प्रभाव के कुछ मंद होजाने पर भी इसका विषैला प्रभाव तो है ही। इसके विपरीत मैं जिस पुस्तक को पढ़ने की सिफारिश करता हूँ और चाहता हूँ कि उस पुस्तक का फिर से एक सस्ता संस्करण हो, ताकि वह अनायास सब लोगों के हाथों में पहुंच सके, वह है कर्नल स्लीमैन पुस्तक की

the Hindus for what he calls their litigiousness. He writes : 'As often as courage fails them in seeking more daring gratification to their hatred and revenge, their malignity finds a vent in the channel of litigation.' Without imputing dishonourable motives, as Mill does, the same fact might be stated in a different way, by saying, 'As often as their conscience and respect of law keep them from seeking more daring gratification to their hatred and revenge, say by murder or poisoning, their trust in English justice leads them to appeal to our Courts of Law.' Dr. Robertson, in his 'Historical Disquisitions concerning India,' seems to have considered the litigious subtlety of the Hindus as a sign of high civilisation rather than of barbarism, but he is sharply corrected by Mr. Mill, who tells him that 'nowhere is this subtlety carrried higher than among the wildest of the Irish.' That courts of justice in which a verdict was not to be obtained, as formerly, by bribes and corruption, should at first have proved very attractive to the Hindus, need not surprise us. But is it really true that the Hindus are more fond of litigation than other nations ? If we consult Sir Thomas Munro, the eminent Governor of Madras, and the powerful advocate of the Ryotwar settlements, he tells us in so many words : 'I have had ample opportunity of observing the Hindus in every situation, and I can affirm, that they are not litigious.'

24. But Mill goes further still, and in one place he actually assures his readers that a 'Brahman may put a man to death when he lists.' In fact, he represents the Hindus as such a monstrous mass of all vices that, as Colonel Vans Kennedy remarked, society could not have held together, if it had really consisted of such reprobates only. Nor does he seem to see the full bearing of his remarks. Surely, if a Brahman might, as he says, put a man to death whenever he lists, it would be the strongest testimony in their favour that you hardly ever hear of their availing themselves of such a privilege, to say nothing of the fact—and a fact it is—that, according to statistics, the number of capital sentences was one in every 10,000 in England, but only one in every million in Bengal.

25. Colonel Sleeman's Rambles are less known than they deserve to be. To give you an idea of the man, I must read you some extracts from the book.

26. His sketches being originally addressed to his sister, this is how he writes to her :—

27. My dear Sister.

भारत में नियुक्त एक अंग्रेज अधिकारी का भ्रमण वृत्तान्त जो सन् १८४४ में प्रकाशित हुई थी, किन्तु लिखी गई थी सन् १८३५-३६ में।

२२. इसमें कुछ सन्देह नहीं कि 'हिस्ट्री ऑफ इन्डिया' को तो आप लोग, विशेषतः आई० सी० एस० के सब प्रत्याशीगण जानते ही हैं, क्योंकि यह पुस्तक आप लोगों की पाठ्यपुस्तकों में से है और इसमें से प्रश्न भी पूछे जाते हैं, तथापि अपनी बात को मजबूती से कहने के लिए मैं यहां कुछ प्रमाण प्रस्तुत करना चाहूँगा।

२३. मिल ने हिन्दुओं के चरित्र के बारे में अपनी इस पुस्तक में जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे फ्राँसीसी मिशीनरी दुबाइस, के Orme, Buchanan Tennant और Ward के विवरणों पर आधृत हैं। इन दोनों में से कोई भी न तो अपने विषय को प्रतिपादित करने में सक्षम ही है और न पूर्वाग्रह से मुक्त ही। तथापि मिल ने अपनी पुस्तक के लिए इन लोगों के विवरणों में से चुन-चुन कर ऐसे स्थल लिए हैं, जो भारतीयो के एकदम विरुद्ध जाते हैं और उन विशेषताओं को सर्वथा छोड़ दिया है जिन्हें हिन्दुओं के प्रति घृणा के प्रचारक ये लेखक भी प्रकट किए बिना न रह सके। उदाहरण के लिए "ब्राह्मण झूठ और पाखण्ड की बामी होते हैं", जैसी मजाकिया बात को भी मिल ने अपनी पुस्तक में सत्य के रूप में उपस्थित कर दिया। हिन्दुओं पर सत्य-विमुख होने का आरोप लगाने के बाद मिल एक अन्य बुराई-मुकदमेबाजी के लिए उन्हें फटकारता है। वह लिखता है—बदले तथा द्वेष की भावना की सन्तुष्टि के लिए कोई बड़ा साहसिक काम कर डालने की क्षमता के चूक जाने पर उनकी लड़ाकू प्रवृत्ति मुकदमेबाजी की ओर मुड़ जाती है। किसी जाति को कलंकित करने की अपनी कलुषित भावना को व्यक्त किए बिना मिल की लिखी हुई इसी बात को एक दूसरे प्रकार से यूं भी कहा जा सकता था—

"प्रायः देखा गया है कि कानून और न्यायव्यवस्था के प्रति अपनी आदर-भावना तथा अन्तश्चेतना से प्रेरित होने के कारण अपने प्रतिपक्षी से बदला लेने के लिए हत्या या किसी अन्य हिंसक उपाय को न अपनाकर न्यायालयों के द्वारा वे अपनी विरोधी भावना को दबा लेते हैं। अंग्रेजों की न्यायप्रियता पर उनका भरोसा ही उन्हें हमारी कचहरियों में अपील के लिए प्रेरित करता है।" डॉक्टर रॉबर्टसन भारत के बारे में ऐतिहासिक जाँच पड़ताल नामक अपनी पुस्तक में हिन्दुओं की मुकदमे के प्रति इस अभिरुचि को उनकी बर्बरता का नहीं अपितु उच्चतम सुसभ्य नागरिकता का चिन्ह मानते हैं। किन्तु मिल तत्काल यह कहकर कि हिन्दुओं में मुकदमेबाजी की यह प्रवृत्ति आयरिश जंगली जातियों से भी कहीं बढ़-चढ़कर है, डॉक्टर राबर्टसन के इस कथन का संशोधन कर देता है कि जहाँ पहले की भाँति रिश्वत या भ्रष्टाचार के द्वारा न्याय प्राप्त नहीं किया जा सकता था अंग्रेजों की वे अदालतें, हिन्दुओं को बहुत आकर्षक प्रतीत हुईं तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है। किन्तु क्या यह वास्तविक सचाई है कि दूसरे लोगों की अपेक्षा हिन्दू कहीं अधिक मुकदमेबाजी के शौकीन हैं? यदि हम मद्रास के विख्यात गवर्नर और रैयतवारी बन्दोबस्त के सशक्त अधिवक्ता सर टॉमस मुनरो की इस विषय में साक्षी चाहें

28. 'Were anyone to ask your countrymen in India, what had been their greatest source of pleasure while there, perhaps, nine in ten would say, the letters which they receive from their sisters at home . . . . And while thus contributing so much to our happiness, they no doubt tend to make us better citizens of the world, and servants of government, than we should otherwise be ; for in our "struggles through life" in India, we have all, more or less, an eye to the approbation of those circles which our kind sisters represent,—who may therefore be considered in the exalted light of a valuable species of *unpaid magistracy* to the government of India.'

29. There is a touch of the old English chivalry even in these few words addressed to a sister whose approbation he values, and with whome he hoped to spend the winter of his life. Having been, as he confesses, idle in answering letters, or rather, too busy to find time for long letters, he made use of his enforced leisure, while on his way from the Narmada river to the Himalaya mountains, in search of health, to give to his sister a full account of his impressions and experiences in India. Though what he wrote was intended at first 'to interest and amuse his sister only and the other members of his family at home,' he adds in a more serious tone : 'Of one thing I must beg you to be assured, that I have nowhere indulged in fiction, either in the narrative, the recollections, or the conversations. What I relate on the testimony of others, I believe to be true ; and what I relate on my own, you may rely upon as being so.'

30. When placing his volumes before the public at large in 1844, he expresses a hope that they may 'tend to make the people of India better understood by those of our countrymen whose destinies are cast among them, and inspire more kindly feelings towards them.'

31. You may ask why I consider Colonel Sleeman so trustworthy an authority on the Indian character, more trustworthy, for instance, than even so accurate and unprejudiced an observer as Professor Wilson. My answer is—because Wilson lived chiefly in Calcutta, while Colonel Sleeman saw India, where alone the true India can be seen, namely, in the village-communities. For many years he was employed as Commissioner for the suppression of Thuggee. The Thuggs were professional assassins, who committed their murders under a kind of religious sanction. They were originally 'all Mohammedans, but for a long time past Mohammedans

तो वे बार-बार कहते हैं कि "मुझे नानाविध परिस्थितियों में हिन्दुओं के सम्पर्क में आने के अत्यधिक अवसर प्राप्त हुए हैं, और मैं यह दृढ़ता के साथ कह सकता हूं कि वे मुकदमेबाज कदापि नहीं हैं।"

२४. किन्तु मिल इससे भी आगे बढ़ता है और एक-स्थान पर तो वह वास्तव में अपने पाठकों को यह विश्वास दिलाना चाहता है कि ब्राह्मण सोच ले तो (मारण-मन्त्र से) किसी को भी मार सकता है। वास्तव में मिल हिन्दुओं को ऐसे दूषित वृत्ति के राक्षसी समुदाय के रूप में चित्रित करता है, जिसके लिए कर्नल वेन्स कनेडी ने अपना यह मत दिया है कि "यदि वास्तव में किसी समाज का गठन ऐसे दुराचारियों और निन्दित व्यक्तियों के द्वारा हुआ हो तो वह समाज एक-साथ सुगठितरूप से रह ही नहीं सकता।" मिल को अपनी कही बात की यथार्थता का भी विश्वास नहीं हैं। सचमुच यदि किसी ब्राह्मण में इतना बल है कि वह अपनी संकल्प-शक्ति से किसी को मार डाल सकता है, तो यह उसके लिए सर्वाधिक महत्त्व एवं गौरव की बात है कि आज तक ब्राह्मण को अपनी इस अद्भुत क्षमता का उपयोग करते कभी किसी ने देखा-सुना नहीं। यह सर्वथा असत्य आरोप है। इसके विपरीत सत्य तो यह है कि प्रमाणित आंकड़ों के अनुसार यहाँ इंग्लैण्ड में जबकि दस हजार व्यक्तियों के पीछे एक को मृत्युदण्ड दिया जाता है, बंगाल में वह दण्ड दस लाख में से एक को मिलता है।

२५-२७. कर्नल स्लीमैन के 'भ्रमण-वृत्तान्तों' का जितना प्रचार होना चाहिये था, उसकी अपेक्षा बहुत कम हो पाया है। उस व्यक्ति के बारे में कुछ जानकारी देने के लिए मैं आपके समक्ष इस पुस्तक के कुछ उद्धरण प्रस्तुत करना चाहूँगा। वास्तव में अपने ये स्केच मूल रूप से अपनी बहन को लिखे पत्रों में अंकित किये हैं। वह लिखता है—

प्यारी बहन,

भारत में रहनेवाले अंग्रेजों से पूछा जाये कि यहाँ रहते हुए तुम्हें सबसे अधिक प्रसन्नता किस वस्तु से मिला करती है, तो दस में से नौ व्यक्तियों का यही उत्तर होगा कि उन्हें अपने घर से मिलने वाले अपनी बहनों के पत्र···।

२८. हमारी खुशी में इतना बड़ा हाथ बटाने के साथ ही ये पत्र हमें विश्व का एक ज्यादा अच्छा नागरिक व भारत सरकार का अच्छा सेवक भी बनाते हैं, जो इन पत्रों के अभाव में शायद हम न बन पाते। क्योंकि आपके जीवन-व्यापी संघर्ष में हमारी आंख यहां सदा उस वर्ग की सहमति की ओर लगी रहती है, जिसकी प्रतिनिधि हमारी बहने हैं। इस प्रकार उन्हें भारत सरकार की उपयोगी 'आनरेरी मजिस्ट्रेड' समझा जा सकता है।

२९. अपनी उस बहन को जिसकी सहमति को वह मूल्यवान समझता है और अपने जीवन के अन्तिम वर्ष जिसके साथ वह बिताना चाहता है, लिखे, नपे-तुले ये शब्द कर्नल स्लीमेन के निर्भीक शौर्य के परिचायक हैं। जैसा कि वह स्वीकारता है, वह पत्र लिखने में आलसी है, या वह बहुत व्यस्त रहता है, फिर भी नर्मदा से हिमालय तक की अपनी यात्रा के दौरान स्वास्थ्य के विचार से उसने कुछ फुरसत निकाल ली ताकि वह भारत के बारे में अपने अनुभवों का तथा उनका उस पर पड़े प्रभाव का पूरा ब्योरा अपनी

and Hindus had been indiscriminately associated in the gangs, the former class, however, still predominating.'

32. In order to hunt up these gangs, Colonel Sleeman had constantly to live among the people in the country, to gain their confidence, and to watch the good as well as the bad features in their character.

33. Now what Colonel Sleeman continually insists on is that no one knows the Indians who does not know them in their village—communities—what we should now call their *communes*. It is that vallage-life which in India has given its peculiar impress to the Indian character, more so than in any other country we know. When in Indian history we hear so much of kings and emperors, of rajahs and maharajahs, we are apt to think of India as an Eastern monarchy, ruled by a central power, and without any trace of that self-government which forms the pride of England. But those who have most carefully studied the political life of India tell you the very opposite.

34. The political unit, or the social cell in India has always been, and, in spite of repeated foreign conquests, is still the village-community. Some of these political units will occasionally combine or be combined for common purposes (such a confederacy being called a gramajala), but each is perfect in itself. When we read in the laws of Manu of officers appointed to rule over ten, twenty, a hundred, or a thousand of these villages, that means no more than that they were responsible for the collection of taxes, and generally for the good behaviour of these villages. And when, in later times, we hear of circles of 84 villages, the so-called Chourasees, and of 360 villages, this too seems to refer to fiscal arrangements only. To the ordinary Hindu, I mean to ninety-nine in every hundred, the village was his world, and the sphere of public opinion, with its beneficial influences on individuals, seldom extended beyond the horizon of his village.

35. Colonel Sleeman was one of the first who called attention to the existence of these village-communities in India, and their importance in the social fabric of the whole country both in ancient and in modern times ; and though they have since become far better known and celebrated through the writings of Sir Henry Maine, it is still both interesting and instructive to read Colonel Sleeman's account. He writes as a mere observer, and uninfluenced as yet by any theories on the development of early social and political life among the Aryan nations in general.

बहन को लिख सके। यद्यपि उसने जो लिखा वह मात्र अपनी बहन तथा परिवार के दूसरे लोगों की प्रसन्नता व मनोरंजन के लिये ही था, तथापि वह बड़ी गम्भीरता के साथ यह स्पष्ट कर देता है कि 'मैं आप सब लोगों को यह पक्का भरोसा दिला देना चाहता हूं कि अपने इन वर्णनों, संस्मरणों या वार्तालापों में मैंने कहीं भी कल्पना से काम नहीं लिया है। जहां मैंने दूसरों की बताई बात लिखी हैं, मेरी समझ में वे सच हैं, और जो मैंने अपने स्वानुभव लिखे हैं, उन्हें तो आप सच ही मानेंगे।

३०. सन् १८४४ में अपने इन पत्रों को पुस्तक के रूप में प्रकाशित करवाकर जनता के समक्ष प्रस्तुत करते हुए वह आशा करता है कि ये पत्र इस उद्देश्य से प्रकाशित किए गए हैं कि मेरे जिन अंग्रेज भाइयों को विविध पदों पर नियुक्त होकर भारत में रहना है। उन्हें वहां के लोगों के बारे में कुछ सही-सही जानकारी मिल जाए तथा उनके मन में भारतवासियों के प्रति सद्भावना जागे।

३१. यहाँ आप पूछ सकते हैं कि मैं कर्नल स्लीमैन को प्रो० विलसन जैसों से भी बढ़कर अधिक विश्वसनीय तथा भारतीय चरित्र के विवेचन में अधिक प्रामाणिक सही-सही व पूर्वाग्रह-मुक्त क्यों मानता हूँ ? इस प्रश्न का उत्तर मेरे पास यह है कि प्रोफेसर विलसन प्रायः कलकत्ते में ही रहे, जबकि कर्नल स्लीमैन ने सच्चे भारत को देखा, वहाँ रहकर जहाँ पर वास्तविक भारत के दर्शन होते हैं, अर्थात् कर्नल स्लीमैन भारत के गाँवों में रहे थे। कई वर्षों तक वे ठगों के उन्मूलन के अभियान में कमिश्नर के पद पर कार्य करते रहे। छल-कपट से लोगों की हत्या कर देना ही इन ठगों का पेशा था। ये लोग एक प्रकार के धार्मिक कपट-वेश की ओट में लोगों को जान से मार डालते थे। ये मूलतः मुसलमान थे, किन्तु एक लम्बे समय तक ठगों के इन गिरोहों में काफी हिन्दू और मुसलमान दोनों रहे, तथापि मुसलमानों का ही बोलबाला बना रहा।

३२. ठगों के इन गिरोहों का सफाया करने के अभियान में कर्नल स्लीमैन को निरन्तर गाँवों और कस्बों के लोगों के बीच रहना पड़ा। इस प्रकार उसे उनका विश्वास अर्जित कर भारतीय जनजीवन समाज के गुणावगुणों को भी से परखने का अवसर मिल गया।

३३. कर्नल स्लीमैन इस तथ्य पर बार-बार जोर देता है कि भारतीय जन-समाज को जिसने उनके गांव में जाकर नहीं देखा, वह भारत के बारे में कुछ नहीं जानता। विश्व के अन्य किसी भी देश की अपेक्षा भारत के इन गाँवों ने वहाँ के चरित्र-निर्माण में कहीं अधिक हाथ बटाया है। भारत का इतिहास पढ़ते समय हम वहाँ के सम्राटों, चक्रवर्तियों और राजा-महाराजाओं के बारे में पढ़कर यह समझने लगते हैं कि भारत में केवल एक केन्द्रीय सत्ता के द्वारा शासित पूर्वीय राजतन्त्र सदा से प्रतिष्ठित रहा है इसके विपरीत इंग्लैंड अपने जिस स्वायत्त शासन पर इतना घमण्ड करता है, उसके तो भारत में कहीं चिन्ह भी नहीं दिखाई देते। किन्तु जिन्होंने भारत के राजनैतिक जीवन का सूक्ष्मता से अध्ययन, किया है, वे आपको इसके सर्वथा विपरीत तथ्य बताएँगे।

३४. बार-बार के विदेशी आक्रमणों और विजयों के बावजूद भारत में सदा

36. I do not mean to say that Colonel Sleeman was the first who pointed out the palpable fact that the whole of India is parcelled out into estates of villages. Even so early an observer as Megasthenes seems to have been struck by the same fact when he says that in India the husbandmen with their wives and children live in the country, and entirely avoid going into town.' Nearchus observed that families cultivated the soil in common. What Colonel Sleeman was the first to point out was that all the native virtues of the Hindus are intimately connected with their village-life.

37. That village-life, however, is naturally the least known to English official, nay the very presence of an English official is often said to be sufficient to drive away those native virtues which distinguish both the private life and the public administration of justice and equity in an Indian village. Take a man out of his village-community, and you remove him from all the restraints of society. He is out of his element, and, under temptations, is more likely to go wrong than to remain true to the traditions of his home-life. Even between village and village the usual restraints of public morality are not always recognised. What would be called theft or robbery at home, is called a successful raid or conquest if directed against distant villages ; and what would be falsehood or trickery in private life is honoured by the name of policy and diplomacy if successful against strangers. On the other hand, the rules of hospitality applied only to people of other villages, and a man of the same village could never claim the right of an *Atithi*. or guest.

38. Let us hear now what Colonel Sleeman tells us about the moral character of the members of these village-communities and let us not forget that the Commissioner for the suppression of Thuggee had ample opportunities of seeing the dark as well as the bright side of the Indian character.

39. He assures us that falsehood or lying between members of the same village is almost unknown. Speaking of some of the most savage tribes, the Gonds, for instance, he maintains that nothing would induce them to tell a lie, though they would think nothing of lifting a herd of cattle from a neighbouring plain.

40. Of these men it might perhaps be said that they have not yet learned the value of a lie ; yet even such blissful ignorance ought to count in a nation's favour. But I am not pleading here for Gonds, or Bhils, or Santhals, and other non-Aryan tribes.

से ग्राम-समुदाय ही वास्तविक राजनैतिक इकाई तथा सामाजिक संगठन का मूल ढाँचा रहा है। ये राजनैतिक इकाइयाँ यदा कदा एक सामान्य उद्देश्य से संयुक्त और संगठित भी हो जाती थी। (ऐसे संगठनों को प्रायः ग्राम-जाल के नाम से अभिहित किया जाता रहा है), तथापि प्रत्येक गाँव अपने-आप में स्वावलम्बी है। मनुस्मृति में जब हम दस, बीस, सौ या एक हजार ग्रामों पर किसी एक अधिकारी की नियुक्ति के बारे में पढ़ते हैं तो इसका आशय मात्र इतना ही है कि वे अधिकारी अपने-अपने क्षेत्र में लगान-वसूली तथा कल्याण-कार्यों के लिए उत्तरदायी होते थे। परवर्ती काल का ८४ और ३६० ग्रामसमुदाय भी आर्थिक इकाई ही प्रतीत होते हैं। सामान्य हिन्दू के लिए अथवा ९९% व्यक्तियों के लिए अपना गाँव ही उसका संसार होता था। जनमत का प्रभाव क्षेत्र भी अपने ग्राम के क्षितिज से शायद ही कभी आगे बढ़ पाया हो।

३५. भारत में ग्राम-समुदाय की विद्यमानता और सम्पूर्ण भारत के सामाजिक ताने-बाने में उनके महत्त्व को प्रतिपादित करनेवाले लोगों में कर्नल स्लीमैन प्रमुख हैं। आज यद्यपि हैनरी मैन की रचनाओं के द्वारा भारत के ग्राम-समुदाय को ज्यादा सही और विशद रूप में जाना जाने लगा है, तथापि कर्नल स्लीमैन के विवरण आज भी लोगों के लिए उतने ही रोचक तथा सही जानकारी देने वाले हैं। स्लीमैन आर्य-जातियों में किसी भी प्रकार के आज तक हुए सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तनों से प्रभावित हुए बिना एक तटस्थ प्रेक्षक के रूप में अपने विवरण प्रस्तुत कर रहा है।

३६. मेरे कहने का आशय यह नहीं है कि कर्नल स्लीमैन ने ही ग्रामों के वास्तविक महत्त्व को सर्वप्रथम प्रदर्शित किया है। बहुत वर्ष पहले मैगस्थनीज भी इस तथ्य से भली-भाँति परिचित था। वह कहता है, 'भारत के किसान लोग अपने बाल-बच्चों के साथ देहातों में रहते हैं। वे लोग आमतौर पर शहरों में जाना पसन्द नहीं करते।' नेरकस ने पाया था कि यहाँ लोग अपने पूरे परिवार के साथ मिल-जुलकर खेती करते हैं। हाँ, कर्नल, स्लीमैन ने यह तथ्य अवश्य सर्वप्रथम प्रतिपादित किया है कि हिन्दुओं के मूलभूत गुण और वैशिष्ट्य मुख्यतः उनके अपने ग्रामो से सम्बद्ध होते हैं।

३७. प्रायः किसी अंग्रेज अधिकारी को गाँवों के जीवन के बारे में बहुत कम जानकारी होती है या वह उसके बारे में कुछ भी नहीं जानता। तथ्य तो यह है कि किसी अंग्रेज अधिकारी की उपस्थिति मात्र से भारतीय ग्राम-समाज के वैयक्तिक तथा सामाजिक गुण एवं वहाँ के प्रशासन के निष्पक्षता और न्याय से सम्बद्ध सब वैशिष्ट्य हवा हो जाते हैं। आप किसी व्यक्ति को ज्यों ही उसके अपने गाँव या क्षेत्र से बाहर ले जायें तो तत्काल उसके सब प्रकार के सामाजिक प्रतिबन्ध छिन्न-भिन्न हो जाएँगे। वहाँ मानो उसकी मूल प्रकृति ही बदल जाती है। वह सब प्रकार के लोभ-लालच में फँस जाता है और अपने घरेलू जीवन की परम्पराओं का पालन करते रहने की बजाय वह मनमानी करने लगता है। अपने गाँव में जिसे चोरी या लूटमार कहा जाता है, दूसरे गाँव के लिए उसे एक सफल धावा माना जाता है। अपने गाँव मे जिसे झूठ और चाल-बाजी कहा जाता है, बाहर वही नीति और चतुराई समझी जाती है। इसके विपरीत

I am speaking of the Aryan and more or less civilized inhabitants of India. Now among them, where rights, duties, and interests begin to clash in one and the same village, public opinion, in its limited sphere, seems strong enough to deter even an evil-disposed persons from telling a falsehood. The fear of the gods also has not yet lost its power. In most villages there is a sacred tree, a pipal-tree (*Ficus Indica*), and the gods are supposed to delight to sit omong its leaves, and listen to the music of their rustling. The deponent takes one of these leaves in his hand, and invokes the god, who sits above him, to crush him, or those dear to him, as he crushes the leaf in his hand, if he speaks anything but the truth. He then plucks and crushes the leaf, and states what he has to say.

41. The pipal-tree is generally supposed to be occupied by one of the Hindu deities, while the large cotton-tree, particularly among the wilder tribes, is supposed to be the abode of local gods, all the more terrible, because entrusted with the police of a small settlement only. In their panchayats, Sleeman tells us, men adhere habitually and religiously to the truth, and 'I have had before me hundreds of cases,' he says, 'in which a man's property, liberty, and life has depended-upon his telling a lie, and he has refused to tell it.

42. Could an English judge say the same ?

43. In their own tribunals under the pipal-tree or cotton-tree, imagination commonly did what the deities, who were supposed to preside, had the credit of doing. If the deponent told a lie, he believed that the god who set on his sylvan throne above him, and searched the heart of man, must know it ; and from that moment he knew no rest, he was always in dread of his vengeance. If any accident happened to him, or to those dear to him, it was attributed to this offended deity ; and if no accident happened, some evil was brought about by his own disordered imagination. It was an excellent superstition, inculcated in the ancient law-books, that the ancestors watched the answer of a witness, because, according as it was true or false, they themselves would go to heaven or to hell.

44. Allow me to read you the abstract of a conversation between an English official and a native law-officer as reported by Colonel Sleeman. The native lawyer was asked what he thought would be the effect of an act to dispense with oaths on the Koran and Ganges-water, and to substitute a solemn declaration made in

अतिथि-सत्कार के नियम केवल दूसरे गाँवों के लोगों के लिए ही लागू होते हैं। अपने ही गाँव का कोई व्यक्ति अतिथि नहीं माना जा सकता।

३८. अच्छा तो आइये अब जरा यह भी सुनें कि कर्नल स्लीमैन इन ग्रामजनों के नैतिक चरित्र के बारे में हमें क्या बताते है। यहाँ हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ठगों के उन्मूलन-कार्य के कमिश्नर के रूप में स्लीमैन को भारतीय चरित्र के दोनों पहलुओं को निकट से परखने को पर्याप्त अवसर मिले थे।

३९.४०. वह हमें विश्वास दिलाता है कि भारतीय जन अपने गाँव में झूठ बोलना तो बिल्कुल जानते ही नहीं। भारत के एक आदिवासी समुदाय गोंड लोगों की चर्चा करते हुए उसने लिखा है कि वे किसी भी बात के लिये कदापि झूठ नहीं बोल सकते, यह दूसरी बात है कि वे अपने पड़ोसियों के पशु हाँक ले जाने को कोई बुराई नहीं समझते। इन लोगों के बारे में शायद यह कह दिया जाए कि अभी वे झूठ बोलने के लाभों को समझ ही नहीं पाए, तो भी ऐसा पवित्र अज्ञान किसी जाति कि महनीयता का ही सूचक माना जाएगा। मैं यहाँ गोंड, भील और सन्थाल अथवा ऐसी ही दूसरी आर्येतर जनजातियों की वकालत नहीं कर रहा हूं। मैं तो भारत के आर्यों और सुसभ्य नागरिकों के बारे में बताना चाहता हूँ। जब किसी एक ही गाँव में वहाँ के निवासियों में सत्य, न्याय, कर्तव्य तथा वैयक्तिक स्वार्थ के बीच टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो वहाँ का जनमत अपने सीमित क्षेत्र में एक बुरे-से-बुरे और दुर्बल चरित्र के व्यक्ति को भी कोई असत्य या झूठी बात कहने से रोकने में पर्याप्त प्रभावशाली सिद्ध होता है। वहाँ देवताओं का भय भी अभी कम नहीं हुआ। भारत के अधिकांश गाँवों में एक पवित्र वृक्ष अवश्य होता है और यह है पीपल का वृक्ष। ऐसा माना जाता है कि पीपल के वृक्ष में देवताओं का निवास है और वे इस वृक्ष की मर्मर ध्वनि के संगीत को सुनकर खुश होते हैं। साक्षी अपने हाथ में पीपल का एक पत्ता लिए हुए कहता है कि जैसे मैं तुम्हें मसल रहा हूँ, यदि मैं झूठ बोलूं तो तुम भी वैसे ही मुझे मसल डालना।

४१. सामान्यतया पीपल में हिन्दुओं के त्रिदेवों में से एक का निवास माना जाता है, जबकि वहाँ की जन-जातियाँ यह मानती हैं कि सेमल के विशाल वृक्ष में वहाँ के ग्रामदेवता रहते हैं। कार्यक्षेत्र अपनी पंचायतो के अपने गांव तक ही सीमित होने के कारण ग्राम देवता अधिक तत्परता के साथ दण्ड-विधान कर सकते हैं। कर्नल स्लीमैन बताते हैं कि यहाँ के जन-साधारण के धर्मभय से और आदतन भी सत्य के साथ चिपके रहते हैं। वे कहते हैं—'मुझे ऐसे सैकड़ों-हजारों मामले, घटनाएँ और विवरण ज्ञात हैं, जहाँ कोई व्यक्ति यदि झूठ बोल देता तो वह अपनी सम्पत्ति, स्वाधीनता और जीवन की अनायास ही रक्षा कर सकता था, किन्तु वह इसके लिए राजी नहीं हुआ।

४२. क्या कोई अंग्रेज जज अपने देशवासियों के लिए ऐसा प्रमाण पत्र देने का साहस कर सकता है ?

४३. पीपल या सेमल के पेड़ के नीचे लगने वाली इन कचहरियों में जब कोई मामला लाया जाता है तो यह भावना सदा कार्य करती है कि यहाँ के अधिपति देवता

the name of God, and under the same penal liabilities as if the Koran or Ganges-water had been in the deponent's hand.

'I have practised in the courts,' the native said, 'for thirty years, and during that time I have found only three kinds of witnesses—two of whom would, by such an act, be left precisely where they were while the third would be released by it from a very salutary check.'

'And, pray, what are the three classes into which you divide the witnesses in our courts ?'

45. 'First, Sir, are those who will always tell the truth, whether they are required to state what they know in the form of an oath or not.'

46. 'Do you think this a large class ?',

47. 'Yes, I think it is ; and I have found among them many whom nothing on earth could make to swerve from the truth. Do what you please: you could never frighten or bribe them into a deliberate falsehood.

48. 'The second are those who will not hesitate to tell a lie when they have a motive for it, and are not restrained by an oath. In taking an oath, they are afraid of two things, the anger of God, and the odium of men.

49. 'Only three days ago,' he continued, 'I required a power of attorney from a lady of rank, to enable me to act for her in a case pending before the court in this town. It was given to me by her brother, and two witnesses came to declare that she had given it. "Now," said I, "this lady is known to live under the curtain, and you will be asked by the judge whether you saw her give this paper : what will you say ?" They both replied—"If the judge asks us the question without an oath we will say '*Yes*'—it will save much trouble, and we know that she *did* give the paper though we did not really *see* her give it; but if he puts the Koran into our hands, we must say '*No*,' for we should otherwise be pointed at by all the town as perjured wretches—our enemies would soon tell everybody that we had taken a false oath."

50. 'Now,' the native lawyer went on, 'the form of an oath is a great check on this sort of persons.

51. 'The third class consists of men who will tell lies whenever they have a sufficient motive, whether they have the Koran or Ganges-water in their hand or not. Nothing will ever prevent their doing so; and the declaration which you propose whould be just as well as any other for them.'

सब-कुछ देख-सुन रहे हैं। उनकी अपनी इस भावना या कल्पना के कारण ही वहाँ सब लोग ठीक-ठीक न्याय-संगत व्यवहार करते हैं। यदि कोई साक्षी वहाँ झूठ बोलता है तो उसके अपने विश्वास के कारण कि न्यायासन में विद्यमान देवता सबके हृदय की बात जानते हैं, वह सदा भयभीत रहता है कि वह देवता अवश्य उसे झूठ बोलने का दण्ड देकर इसका बदला लेंगे। संयोग से यदि उन्ही दिनों स्वयं वह या उसका कोई जन दुर्घटना ग्रस्त हो जाय तो यह मान लिया जाता है कि उसके झूठ बोलने के कारण क्रुद्ध हुए देवता की नाराजी से ही ऐसा हुआ है। यदि किसी प्रकार की कोई दुर्घटना न भी घटे, तो भी वह स्वयं अपनी दुष्कल्पनाओं से सदा आक्रान्त रहता है। पुराने धर्मशास्त्रों में यह उपदेश दिया गया है कि प्रत्येक साक्षी देने वाले के न्यायालय में दिए गए उत्तर को उसके पूर्वज, पितृगण देखते-सुनते रहते रहते हैं, क्योंकि उसके सत्य या असत्य भाषण से उन्हें भी स्वर्ग या नरक में जाना पड़ेगा। वास्तव में यह एक श्लाघ्य और शिक्षाप्रद विश्वास है, ऐसा अन्धविश्वास भी श्रेष्ठ तथा लाभदायक है।

४४. कर्नल स्लीमैन ने एक भारतीय वकील तथा एक अंग्रेज न्यायाधीश की जिस बातचीत का विवरण अपने ग्रन्थ में दिया है, अब मैं उस का सार आपके सामने प्रस्तुत करना चाहूँगा। अंग्रेज न्यायाधीश ने अपने यहाँ के एक वकील से एक बार पूछा—'यदि कचहरियों में आजकल प्रत्येक गवाह से बयान देते समय जो गंगाजली या कुरान उठवाया जाता है, इस के स्थान पर यदि उससे भगवान् को साक्षी मानकर कहता हूं कहला लिया जाय, तो तुम्हारी समझ में साक्षी देने वाले पर इसका क्या प्रभाव पड़ सकता है?'

४५. भारतीय वकील ने उत्तर दिया, 'पिछले तीस वर्षों से मैं वकालत करता आ रहा हूँ। इस बीच मैंने पाया कि कचहरियों में तीन तरह के गवाह आते हैं। इनमें से दो श्रेणियों के गवाहों पर तो इस प्रथा के हट जाने पर भी कोई विशेष प्रभाव पड़ने वाला नहीं, किन्तु तीसरी श्रेणी के गवाह एक प्रकार के शुभ और हितावह बन्धन से मुक्त होकर बेलगाम हो जाएँगे।'

'मैं जानना चाहूँगा कि आपने साक्षियों को जिन तीन अलग-अलग श्रेणियों में रखा है, वे कौन-कौन-सी हैं?'

'श्रीमन्, पहली श्रेणी में ऐसे साक्षी आते हैं, जो गंगाजलि आदि उठाएँ या न उठाएँ अथवा किसी प्रकार की शपथ ग्रहण करें या न करें, सदा सत्य ही बोलेंगे।'

४६. 'क्या आप समझते हैं कि यह एक बड़ी श्रेणी है?'

४७. 'जी हाँ, मैं ऐसा ही समझता हूँ और मैंने उन लोगों में से बहुतों को ऐसा पाया है कि इस धरती पर कोई और कुछ भी उन्हें सत्य से नहीं डिगा सकता। आप जो चाहे कर लीजिए, बड़े-से बड़ा भय या लालच दिखाकर भी आप उन्हें जान-बूझकर झूठ बोलने को राजी नहीं कर सकते।

४८. दूसरी श्रेणी में वे लोग आते हैं, जिन्हें किसी प्रकार की मर्यादा में न बाँध दिया जाए, तो वे विशेष उद्देश्य से झूठ बोल देने से हिचकिचाएँगे नहीं। इन्हें

52. 'Which class do you consider the most numerous of the three ?

53. 'I consider the second the most numerous, and wish the oath to be retained for them.'

54. 'That is, of all the men you see examined in our courts, you think the most come under the class of those who will, under the influence of strong motives, tell lies, if they have not the Koran or Ganges-water in their hands ?'

55. 'Yes.'

56. 'But do not a great many of those whom you consider to be included among the second class come from the village-communities,—the peasantry of the country ?'

57. 'Yes.'

58. 'And do you not think that the greatest part of those men who will tell lies in the court, under the influence of strong motives, unless they have the Koran or Ganges-water in their hands, would refuse to tell lies, if questioned before the people of their villages, among the circle in which they live ?'

59. 'Of course I do : three-fourths of those who do not scruple to lie in the courts, would be ashamed to lie before their neighbours, or the elders of their village.'

60. 'You think that the people of the village-communities are more ashamed to tell lies before their neighbours than the people of towns ?'

61. 'Much more—there is no comparison.'

62. 'And the people of towns and cities bear in India but a small proportion to the people of the village communities ?'

63. 'I should think a very small proportion indeed.'

64. 'Then you think that in the mass of the population of India *out of our courts*, the first class, or those who speak truth, whether they have the Koran or Ganges-water in their hands or not, would be found more numerous than the other two ?'

65. 'Certainly I do; if they were always to be questioned before their neighbours or elders, so that they could feel that their neighbours and elders could know what they say.'

66. It was from a simple sense of justice that I felt bound to quote this testimony of Colonel Sleeman as to the truthful character of the natives of India, when *left to themselves*. My interest lies altogether with the people of India, *when left to themselves*, and historically I should like to draw a line after the year one thousand after Christ.

दो बातों का भय रहता है, भगवान् का और लोगों की नफरत का।

४९. अभी तीन दिन पहले की बात है, मुझे एक सम्भ्रान्त महिला से वकालतनामा लेना था, ताकि स्थानीय अदालत में चल रहे मुकद्दमे में उसकी पैरवी कर सकूं। उस महिला के भाई ने वह वकालतनामा लाकर दिया और इस बात के प्रमाण के लिए मेरे सामने दो गवाह पेश किए। मैंने उनसे पूछा कि—सब लोग जानते हैं कि वह महिला पर्दे में रहती है, इसलिए जब अदालत में तुमसे पूछा जाएगा कि क्या तुमने उस महिला को यह वकालतनामा इन्हें देते हुए देखा है, तब तुम क्या जवाब दोगे ? इस पर दोनों बोल पड़े कि यदि हमें बिना सौगन्ध खिलाए पूछा गया तो हम 'हाँ' कह देंगे, इस तरह झंझट टल जाएगा। क्योंकि, यद्यपि हमने उसे आपको यह वकालतनामा देते हुए नहीं देखा, फिर भी हम यह जानते हैं कि यह उसी ने दिया है। किन्तु यदि कुरान हमारे हाथों में देकर पूछा गया तो हम इन्कार कर देंगे। क्योंकि तब भी हम 'हाँ' कह दें तो सारे इलाके में झूठा गवाह होने के नाते हम पर अंगुली उठाई जाने लगेगी और हमारे दुश्मन सब को बता देंगे कि हमने झूठी कसम खाई है।

५०. अपनी बात को जारी रखते हुए वकील ने कहा, "इस प्रकार गंगाजली उठाने की यह प्रथा इस तरह के लोगों को झूठ बोलने से रोकने का एक सक्त साधन है।

५१. तीसरी श्रेणी में वे लोग हैं जो गंगाजली या कुरान अपने हाथों में उठाएँ या न उठाएँ, यदि कोई विशेष उद्देश्य उनके सामने हो तो वे झूठ बोलने से कतरायेंगे नहीं।

५२. "आपकी समझ में यहाँ के अधिकतर लोग इनमें से किस श्रेणी के हैं ?'

५३. "मेरी समझ में द्वितीय श्रेणी का यहाँ बाहुल्य है, इसीलिए चाहता हूँ कि उनके लिए यह प्रथा चालू रहनी चाहिए।"

५४-५५. "अच्छा तो आप यह कहना चाहेंगे कि यहाँ अदालत में जिन लोगों से पूछताछ की जाती है, उनमें से अधिकतर उस श्रेणी के लोग हैं, जो कुरान या गंगाजली हाथ में न लेने पर प्रभाव विशेष में उद्देश्य-विशेष से झूठ बोल सकते हैं ?"

५६. "जी हाँ।"

५७. क्या द्वितीय श्रेणी के लोगों में से अधिकतर देहाती नहीं हैं ?"

"जी हाँ, बात ऐसी ही है।"

५८. "और आप क्या ऐसा नहीं समझते कि कुरान या गंगाजली न उठवाई जाने पर विशेष उद्देश्य से इन अदालतों में झूठ बोल देने वालों से भी यदि गाँव की पंचायतों में कुछ पूछा जाए तो वे वहाँ झूठ बोलने से इन्कार कर देंगे ?"

५९. 'निस्सन्देह। इन अदालतों में झूठ बोल देनेवाले लोगों में से भी तीन-चौथाई ऐसे हैं, जो ग्राम-पंचायतों में झूठ बोलने से हिचकिचाते हैं।'

६०. 'आप समझते हैं कि गाँव के लोग शहरी लोगों की अपेक्षा अपने पड़ोसियों व परिचितों के सामने झूठ बोलने में ज्यादा शरमाते हैं ?'

६१. कहीं ज्यादा। यहाँ शहरियों और देहातियों की कोई बराबरी नहीं।

67. Now, it is quite true that during the two thousand years which precede the time of Mahmud of Gazni India has had but few foreign visitors, and few foreign critics; still is is surely extremely strange that whenever, either in Greek, or in Chinese, or in Persian, or in Arab writings, we meet with any attempts at describ ing the distinguishing features in the national character of the Indians, regard for truth and justice should always be mentioned first.

68. *Ktesias*, the famous Greek physician of Artaxerxes Mnemon (present at the battle of Cunaxa, 404 B.C.), the first Greek writer who tells us anything about the character of the Indians, such as he heard it described at the Persian court has a special chapter 'On the justice of the Indians.'

69. *Megasthenes*, the ambassador of Seleucus Nicator at the court of Sandrocottus in Palibothra (Pataliputra, the modern Patna), states that thefts were extremely rare, and that they honoured truth and virtue.

70. *Arrian* (in the second century, the pupil of Epictetus), when speaking of the public overseers or superintendents in India, says : "They oversee what goes on in the country or towns, and report everything to the king, where the people have a king, and to the magistrates, where the people are self-governed, and it is against use and wont for these to give in a false report ; *but indeed no Indian is accused of lying.*

71. The Chinese, who come next in order of time, bear the same, I believe, unanimous testimony in favour of the honesty and veracity of the Hindus. Let me quote Hiuen-tsang, the most famous of the Chinese Buddhist pilgrims, who visited India in the seventh century. Though the Indians,' he writes, 'are of a light temperament, they are distinguished by the straightforwardness and honesty of their character. With regard to riches, they never take anything unjustly; with regard to justice, they make even excessive concessions......Straightforwardness is the distinguishing feature of their administration.'

72. If we turn to the accounts given by the Mohammedan conquerors of India, we find Idrisi, in his Geography (written in the 11th century), summing up their opinion of the Indians in the following words :

73. "The Indians are 'naturally inclined to justice, and never depart from it in their actions. Their good faith, honesty, and fidelity to their engagements are well known, and they are so

६२. 'और यह भी कि ग्रामवासियों की अपेक्षा शहरों में रहने वाले बहुत कम हैं?'

६३. 'आप ठीक कह रहे हैं।

६४. 'इस प्रकार आप की समझ में इन अदालतों में आनेवाले लोगों का बड़ा भाग पहली श्रेणी में आता है, जो गंगाजली या कुरान उठाने या न उठाने पर भी सत्य ही बोलते हैं, शेष दोनों वर्गों से कहीं बड़ा है?'

६५. 'जी हाँ, यह बिल्कुल सही है। मैं समझता हूँ कि यदि उन्हें अपने बड़े-बूढ़ों या पड़ोसियों के सामने कोई बात पूछी जाए, या वे यह समझें कि उन्हें उनकी बात का पता चल जाएगा, तो वे सत्य ही बोलेंगे।'

६६. न्याय और निष्पक्षता की भावना से ही मैं कर्नल स्लीमैन के इस प्रमाण-पत्र को आपके सामने रखने को विवश हो गया। किन्तु मैं तो भारतीय जन-समाज को अपने परिचित और पड़ोसियों के बीच में नहीं अपितु एक सर्वथा स्वतंत्र, किसी प्रकार के सामाजिक बन्धन से सर्वथा मुक्त व्यक्ति के रूप में देखना चाहूँगा और इसके लिए हमें दसवीं सदी ई० से पहले और बाद के भारत को अलग-अलग करके देखना होगा।

६७. यह सत्य है कि दसवीं सदी में हुए महमूद गजनवी के आक्रमण से पहले भारत में थोड़े से ही विदेशी यात्री पहुँच पाए थे और जो गए भी थे, उनमें से भी निष्पक्ष समालोचक-लेखक की दृष्टि तो कुछ ही लोगों के पास थी। फिर भी सचमुच यह एक अत्यन्त आश्चर्यजनक बात है कि चाहे यूनानी हो या चीनी, ईरानी हो या अरबी किसी भी विदेशी यात्री ने भारत के बारे में कुछ भी लिखा हो, हमें उसमें भारत के राष्ट्रीय चरित्र के एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व के रूप में भारतवासियों की सत्यनिष्ठा एवं न्यायप्रियता की चर्चा सर्वप्रथम सर्वत्र समान रूप से मिलती है।

६८. यूनान का विख्यात चिकित्सक क्तेसियस ऐसे विदेशी लेखकों में से सर्व-प्रथम आता है। आर्टेसरखेस नेमोन का यह चिकित्सक क्यूनेरव की ४०४ ई० पू० में लड़ी गइ लड़ाई में उपस्थित था। भारत और भारतीयों के बारे में जानकारी देने वाले यूनानी लेखकों में से पहला वही है। क्तेसियस ने ईरान के राजदरबार में रहते हुए भारत के बारे में जो कुछ सुना था, उसका वर्णन 'भारतीय न्याय' शीर्षक एक विशेष अध्याय ही में दिया है।

६९. पालीब्रोथा (पाटलिपुत्र—आधुनिक पटना) के सैण्ड्रोकोट्स (चन्द्रगुप्त मौर्य) के दरवार में सैल्युकस निकेटर के राजदूत बनकर आए हुए मैगस्थनीज ने लिखा है कि भारत में चोरी की चर्चा तो शायद ही कभी सुनाई पड़े तथा भारत के लोग सदा सत्य और दूसरे गुणों का सम्मान करते हैं।

७०. दूसरी सदी के एपिक्टेक्टस के शिष्य एरियन ने भारत में निरीक्षकों की चर्चा करते हुए लिखा है कि वे लोग सारे देश या शहरों में जो कुछ होता है, उसकी सूचना वहाँ के महाराजा को देते रहते हैं। और यदि वहाँ कोई राजा न हो और जन-शासन हो तो वहाँ के दण्डनायक को ये सूचनाएँ दी जाती हैं। अपने शासकों तक किसी प्रकार की कोई असत्य सूचना पहुँचाना उनके स्वभाव में नहीं है। किन्तु वास्तव में किसी

famous for these qualities that people flock to their country from every side.'

74. Again in the thirteenth century, Shems-ed-din Abu Abdullah quotes the following judgment of Bedi ezr Zenan : 'The Indians are innumerable, like grains of sand, free from all deceit and violence. They fear neither death nor life.'

75. In the same century we have also the testimony of Marco Polo, who thus speaks of the *Abraiaman*, a name by which he seems to mean the Brahmans who, though not traders by profession, might well have been employed for great commercial transactions by the king. This was particularly the case during times which the Brahmans would call times of distress, when many things were allowed which at other times were forbidden by the laws. 'Yau must know.' Marco Polo says, 'that these Abraiaman are the best merchants in the world, and the most truthful, for they would not tell a lie for anything on earth.'

76. In the fourteenth century we have Friar Jordanus, who goes out of his way to tell us that the people of Lesser India (South and Western India) are true in speech and eminent in justice.

77. In the fifteenth century Kamal-eddin Abd-errazak Samarkandi (1413-1482), who went as ambassador of the Khakan to the prince of Kalikut and to the King of Vijayanagara (about 1440-1445), bears testimony to the perfect security which merchants enjoy in that country.

78. In the sixteenth century, Abu Fazl, the minister of the Emperor Akbar, says in his Ain-l-Akbari : 'The Hindus are religious, affable, cheerful, lovers of justice, given to retirement, able in businesss, admirers of truth, grateful and unboundded fidelity; and their soldiers know not what it is to fly from the field of battle.'

79. And even in quite modern times the Mohammedans seem willing to admit that the Hindus, at all events in their dealings with Hindus, are more straightforward than Mohammedans in their dealings with Mohammedans.

80. Thus Meer Sulamut Ali, a venerable old Mussulman, and, as Colonel Sleeman says, a most valuable public servant, was obliged to admit that 'a Hindu may feel himself authorised to take in a Mussulman, and might even think it meritorious to do so; but he would never think it meritorious to take in one of his own religion. There are no less than seventy two sects of Mohammedans; and every one of these sects whould not only take in the followers of every other religion on earth, but every member of every other

भी भारतीय पर असत्यवादिता का आरोप लगाया ही नहीं जा सकता।

७१. चीनी यात्रियों का स्थान कालक्रम से दूसरे नम्बर पर है। हिन्दुओं की ईमानदारी, तथा सत्यवादिता के लिए दिए गए इन सर्वसम्मत प्रमाणपत्रों पर मुझे पूरा यकीन है। इनमें से मैं यहां सातवीं सदी में भारत-भ्रमण करनेवाले विख्यात चीनी बौद्ध यात्री ह्यूनसांग के कुछ शब्द उद्धृत करना चाहूँगा। वह लिखता है—'यद्यपि भारत के लोग तुनुकमिजाज हैं, फिर भी स्पष्टवादिता और ईमानदारी जैसे अपने चारित्रिक गुणों के कारण वे सर्वत्र विख्यात हैं। जहां तक धन-सम्पत्ति का प्रश्न है, वे अन्यायपूर्ण तरीके से कभी कोई वस्तु नहीं लेते। न्याय के मामले में वे अत्यधिक उदार हैं। ···स्पष्टवादिता उनके प्रशासनिक गुणों की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है।'

७२. यदि हम भारत के मुस्लिम विजेताओं के द्वारा प्रस्तुत भारत से सम्बद्ध विवरणों को देखें तो हम ग्यारहवीं सदी में इदरीस नामक मुस्लिम लेखक को अपने 'भूगोल' में भारतीयों के बारे में यह सम्मति देते हुए पाते हैं—

७३. "भारत के लोग स्वभावतः न्यायशील हैं। वे अपने व्यवहार में कभी न्याय से डिगते नहीं हैं। अपने कार्य के प्रति उनकी दृढ़ निष्ठा, ईमानदारी और भक्ति सर्वविदित है। अपने इन चारित्रिक गुणों के कारण वे इतने विख्यात हैं कि नाना देशों के लोगों के दल प्रत्येक दिशा से सर्वदा भारत की ओर आकृष्ट होते रहे हैं।"

७४. तेरहवीं सदी के शम्सुद्दीन अबुअब्दुल्लाह ने वेदी अज़र जैना के विवरण से यह उद्धरण दिया है—'भारतीयों की जनसंख्या इतनी अधिक है, जैसे रेत के कण हों वे धोखाधड़ी व हिंसा जैसी बुराइयों से सर्वथा अछूते हैं। वे मौत से भी नहीं डरते।

७५. तेरहवीं सदी के ही मार्कोपोलो का प्रमाणपत्र भी हमे मिलता है। वह ब्राह्मण के बारे में हमें बताना चाहता है—'यद्यपि सामान्यतया ब्राह्मण व्यवसाय से तो व्यापारी नहीं होते, तथापि कभी-कभी उन्हें महाराजा की ओर से बड़े व्यापारिक कार्यों में नियुक्त कर दिया जाता था।' विशेषतया ब्राह्मणों को व्यावसायिक कार्य आपात-स्थिति में ही सौंपे जाते थे। सामान्य स्थिति में जो कार्य निषिद्ध होते हैं, आपातकाल में उनकी भी अनुमति दे दी जाती थी। मार्कोपोलो लिखता है 'आप लोगों को ज्ञात रहे कि ये अब्रेमन (ब्राह्मण) विश्व में सर्वश्रेष्ठ व्यवसायी हैं, और यह भी कि वे अत्यन्त सत्यप्रिय हैं, क्योंकि इस धरती पर किसी भी वस्तु के लिए वे कदापि झूठ नहीं बोल सकते।'

७६. चौदहवीं सदी में हम फ्रेयर जोर्डन्स को अपने विषय से पर हटकर अप्रासंगिक रूप से ही यह कहते हुए पाते हैं कि दक्षिण और पश्चिमी भारत के लोग अपनी बात के सच्चे और न्यायप्रिय होते हैं।

७७. पन्द्रहवीं सदी (१४१३-१४८२) में कालिकट के नरेश और विजयनगर के सम्राट् (१४४० से १४४५ के लगभग) के यहां खाकान के राजदूत बनकर आए हुए कमालउद्दीन-अब्द-इराज़क समरकन्दी यह प्रमाणित करता है कि यहां व्यापारीगण सब प्रकार की सुरक्षा अनुभव करते हैं।

७८. सोलहवीं सदी में सम्राट् अकबर का मन्त्री अबू फज़ल अपनी 'आईन-ए-

religion on earth, but every member of every one of the other seventy-one sects; and the nearer that sect is to his own, the greater the merit of taking in its members.'

81. So I could go on quoting from book after book, and again and again we should see how it was love of truth that struck all the people who came in contact with India, as the prominent feature in the national character of its inhabitants. No one ever accused them of falsehood. There must surely be some ground for this, for it is not a remark that is frequently made by travellers in foreign countries, even in our time, that their inhabitants invariably speak the truth. Read the accounts of English travellers in France, and you will find very little said about French honesty and varacity, while French accounts of England are seldom without a fiing at *Perfide Albion* !

82. But if all this is true, how is it, you may well ask that public opinion in England is so decidedly unfriendly to the people of India ; at the utmost tolerates and patronizes them, but will never trust them, never treat them on terms of equality ?

83. I have already hinted at some of the reasons. Public opinion with regard to India is made up in England chiefly by those who have spent their lives in Calcutta, Bombay, Madras, or some other of the principal towns in India. The native element in such towns contains mostly the most unfavourable specimens of the Indian population. An insight into the domestic life of the more respectable classes, even in towns, is difficult to obtain; and, when it is obtained, it is extremely difficult to judge of their manners according to our standard of what is proper, respectable, or gentlemanlike. The misunderstandings are frequent and often most grotesque ; and such, we must confess, is human nature, that when we hear the different and often very conflicting accounts of the character of the Hindus, many of us are rather sceptical with regards to unsuspected virtues among them, while we are quite disposed to accept unfavourable accounts of their character.

84. Lest I should seem to be pleading too much on the native side of the question, and to exaggerate the difficulty of forming a correct estimate of the character of the Hindus, let me appeal to one of the most distinguished, lerned, and judicious members of the Indian Civil Service, the author of the *History of India*. Mountstuart Elphinstone. 'Englishmen in India,' he says, 'have less opportunity than might be expected of forming opinions

अकबरी' में लिखता है कि हिन्दू धार्मिक प्रकृति के पुस्तक मिलनसार विनोदी और न्याय-प्रिय हैं। वे व्यापार-व्यवसाय में दक्ष, सत्य के प्रशंसक व कृतज्ञ है और उनकी स्वामि-भक्ति पराकाष्ठा की है। उनके सैनिक युद्ध में पीठ दिखाना तो जानते ही नहीं।

७९. आज भी मुसलमान इस तथ्य को स्वीकार करते दिखाई देते हैं कि हिन्दू कुल मिलाकर हिन्दुओं के प्रति व्यवहार में जितने सच्चे हैं, उतने मुसलमान अपने व्यवहार में मुसलमानों के प्रति नहीं।

८०. इस प्रकार एक प्रतिष्ठित मुसलमान मीर सलामत अली जो, कर्नल स्लीमैन के कथनानुसार एक बहुत अच्छा समाज-सेवी है, यह कहने को विवश है कि एक हिन्दू किसी मुसलमान को शरण दे सकता है और इसमें वह भलाई भी देखता है, किन्तु उसके अपने सधर्मियों में ऐसे गुणों की तो वह कल्पना भी नहीं कर सकता। मुसलमानों में बहत्तर से कम के फिरके नहीं हैं। उनमें से कोई भी इस विश्व के अपने ही फिरके के सिवा शेष इकहत्तर फिरकों में से किसी एक के अनुयायी को कभी शरण नहीं दे सकता।

८१. इस प्रकार मैं एक के बाद दूसरी पुस्तकों से उद्धरण देता चला जाऊँगा, जिनमें हम पाते हैं कि भारत के सम्पर्क में आने वाला विदेशी व्यक्ति भारतबासियों के राष्ट्रीय चरित्र में उनकी सत्यप्रियता के महत्त्वपूर्ण गुण से कैसे प्रभावित हुआ। किसी ने भी आज तक भारतीयों पर झूठ का आरोप कभी नहीं लगाया। अवश्य ही इसका ठोस आधार है, क्योंकि यह ऐसा मन्तव्य है, जिसे विदेशी यात्री किसी दूसरे देश के लिए यों ही नहीं दे सकते। आज भी भारत के लोग निरपवाद रूप से सच ही बोलते हैं। आप फ्रांस की यात्रा पर गए किसी अंग्रेज लेखक के यात्रा-त्रिवरण को पढ़ें तो उसमें फ्रांसीसियों की ईमानदारी और सत्यनिष्ठा आदि की चर्चा शायद ही कहीं मिलेगी। दूसरी ओर किसी फ्रांसीसी यात्री के ऐसे विवरण शायद ही मिलें, जिनमें वह उनकी बुराई के लिए अंग्रेजों पर टूट न पड़ा हो।

८२. अब आप पूछ सकते हैं कि यदि यह सब सच है तो इंग्लैण्ड के लोगों के विचार भारतवासियों के प्रति ऐसे दुर्भावनापूर्ण क्यों हैं? अधिक से अधिक वे उन्हें सह भले ही लें, या उन्हें संरक्षण भी दे दें, किन्तु अंग्रेज अधिकारी न तो उनका विश्वास ही करते हैं और न उनके साथ बराबरी का बर्ताव; आखिर ऐसा क्यों है?

८३. इसके कुछ कारण तो मैं पहले ही बता चुका हूं। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास या भारत के ऐसे ही दूसरे बड़े शहरों में रहकर आए अंग्रेज अधिकारी यहां आकर जो कुछ बताते हैं, उसी के अनुसार यहां के लोगों के विचार बनते हैं। दूसरी बात यह है कि किसी अंग्रेज के लिए यह बड़ा कठिन है कि वह भारत के कुलीन वर्ग के घरेलू जीवन की सही झांकी पा सके। यदि किसी प्रकार भारत के सभ्य नागरिकों के आन्तरिक जीवन, उनके रहन-सहन, आचार-विचार आदि का किसी अंग्रेज को सही-सही ज्ञान हो भी जाय, तो भी वह उनकी जीवन-पद्धति, कार्य-प्रणाली, खान-पान और रहन-सहन आदि को जब अपने मानदण्डों से मापने लगता है तो हिन्दुओं की और अपनी जीवनचर्या में रात-दिन

of the native character. Even in England, few know much of the people beyond their own class, and what they do know, they learn from newspapers and publications of a description which does not exist in India. In that country also religion and manners put bars to our intimacy with the natives, and limit the number of transactions as well as the free communication of opinions. We know nothing of the interior of families but by report and have no share in those numerous occurrences of life in which the amiable parts of character are most exhibited.' 'Missionaries of a different religion, judges, police-magistrates, officers of revenue or customs, and even diplomatists, do not see the most virtuous portion of a nation, nor any portion, unless when influenced by passion, or occupied by some personal interest. What we *do* see we judge by our own standard. We conclude that a man who cries like a child on slight occasions, must always be incapable of acting or suffering with dignity ; and that one who allows himself to be called a liar would not be ashamed of any baseness. Our writers also confound the distinctions of time and place ; they combine in one character the Mahratta and the Bengalee ; and tax the present generation with the crimes of the heroes of the Mahabharata. It might be argued, in opposition to many unfavourable testimonies, that those who have known the Indians longest have always the best opinion of them ; but this is rather a compliment to human nature than to them, since it is true of every other people. It is more in point, that all persons who have retired from India think better of the people they have left, after comparing them with others, even of the most justly admired nations.'

85. But what is still more extraordinary than the ready acceptance of judgments unfavourable to the character of the Hindus, is the determined way in which public opinion, swayed by the statements of certain unfavourable critics, has persistently ignored the evidence which members of the Civil Service, officers and statesmen—men of the highest authority—have given again, and again in direct opposition to these unfavourable opinions. Here, too, I must ask to be allowed to quote at least a few of these witnesses on the other side.

86. Warren Hastings thus speaks of the Hindus in general : 'They are gentle and benevolent, more susceptible of gratitude for kindness shown them, and less prompted to vengeance for

का अन्तर पाता है। अपने हिसाब से ठहराए गए सभ्यता के स्टैण्डर्ड से वे बहुत घटिया लगते हैं, इसीलिए वे हिन्दुओं को उस सम्मान की दृष्टि से नहीं देख पाते जिसके वे वास्तविक अधिकारी हैं। भ्रान्तियों का होना एक आम बात है और उनमें से कई भ्रान्त धारणाएं तो विघातक भी हैं। मानव-स्वभाव के बारे में यह तो एक जाना-माना तथ्य है कि जब हम किसी हिन्दू के अपने से सर्वथा भिन्न तथा कई अवस्थाओं में अत्यन्त विषम चरित्रों की कहानियां पढ़ते-सुनते हैं तो हममें से अनेक उनके उदात्त गुणों के बारे में शंकालु हो उठते हैं; किन्तु उनकी चारित्रिक दुर्बलताओं को सहज ही स्वीकार कर लेते हैं।

८४. आप लोग कहीं यह न समझ लें कि मैं भारतीय चरित्र की जरूरत से ज्यादा ऐसी वकालत कर रहा हूं जिससे उनके बारे में सही-सही अन्दाजा लगाने की दिशा में आप लोगों की कठिनाइयां बढ़ जाएंगी। इसके लिए आपसे इंडियन सिविल सर्विस के योग्यतम विशिष्ट विद्वान् और श्रेष्ठ न्यायकर्ता सदस्यों में से अन्यतम तथा हिस्ट्री आफ इण्डिया के लेखक माउण्ट स्टुअर्ट एलफिन्स्टन को उद्धृत करने की अनुमति चाहूँगा। वे लिखते हैं भारतीय चरित्र के बारे में अपना कोई मत बनाने के लिए भारत में रहनेवाले किसी अंग्रेज को जितने सुअवसर मिलने चाहिएं, उसे वे बहुत कम मिल पाते हैं। इतना ही क्यों, हमारे देश में भी कुछ ही लोग होंगे जो अपने वर्ग के बाहर की बातें जानते हैं। वह भी केवल समाचार-पत्रों, पत्र-पत्रिकाओं तथा प्रचार-प्रसार के अन्य साधनों के द्वारा ही जान पाते हैं। जिनका भारत में अभी तक अभाव ही है।

साथ ही भारत के रीति-रिवाज, परम्परागत मान्यताएं और धार्मिक विश्वास भी एक अंग्रेज और भारतीय में घनिष्ठता की स्थापना में बाधक बनते हैं। इसीलिए उनमें विचारों का स्वतन्त्र आदान-प्रदान बहुत-कुछ सीमित हो जाता है। अंग्रेजों के दिए गए कुछ झूठे-सच्चे विवरणों के सिवा हमारे पास अन्य ऐसा कोई साधन नहीं हैं जिससे हम भारतीय परिवारों के वास्तविक व अन्तरंग जीवन की झांकी पा सकें। हम उनके विवाहादि संस्कार या अन्य किसी धार्मिक समारोह आदि में जहां उनका विशिष्ट और श्रेष्ठ चरित्र अभिव्यक्त होता है' जा नहीं पाते। (ईसाई आदि) दूसरे धर्मों के प्रचारक मिशनरियां, न्यायाधीश, दण्डनायक, पुलिस, आबकारी विभाग के अधिकारी या राजनयिक आदि भी किसी राष्ट्र की गुण गणमण्डित प्रकृति का कोई भी अंश तब तक देख ही नहीं पाते जब तक कि उसके प्रति कुछ भावनात्मक लगाव और वैयक्तिक रुचि न हो। साथ ही हम जितना कुछ देखते भी हैं, उसे भी तो हम अपने ही मानदण्डों से मापते जोखते हैं। हम प्रायः यह समझ लेते हैं कि जो ज्यादा चीखता-चिल्लाता है या बच्चों की तरह जरा-जरा सी बात पर झुंझलाने लगता है वह बड़े और समझदार लोगों की तरह तकलीफ नहीं उठा सकता और जो अपने आप को झूठा कह लेने देता है, उसे किसी भी प्रकार की नीचता में भी कोई शर्म नहीं आएगी। इधर हमारे लेखक (भारत के) देश और काल में भी गड़बड़ा जाते हैं। वे बंगाली और मराठे को एक कर देते हैं तथा आज के लोगों में भी महाभारत के पात्रों की सी अपराध प्रवृत्तियां देखते हैं। भारत के विरोध में उपस्थित किए जाने वाले अनेक प्रमाणों के विरुद्ध कहा जा सकता है कि

wrongs inflicted than any people on the face of the earth : faithful, affectionate, submissive to legal authority.

87. Bishop Heber said : 'The Hindus are brave, courteous, inteligent, most eager for knowledge and imporovement : sober industrious, dutiful to parents, affectionate to their children uniformly gentle and patient, and more easily affected by kindness and attention to their wants and feelings than any people I ever met with'.

88. Elphinstone states : 'No set of people among the Hindus are so depraved as the dregs of our own great towns. The villagers are everywhere amiable, affectionate to their families, kind to their neighbours, and towards all but the government, honest and sincere. Including the Thugs and Dacoits, the mass of crime is less in India than in England. The Thugs are almost separate national, and the Dacoits are desperate ruffians in gangs. The Hindus are mild and gentle people, more merciful to prisoners than any other Asiatics. Their freedom from gross debauchery is the point in which they appear to most advantage; and their superiourity in purity of manners is not flattering to our self-esteem.

89. Yet Elphinstone can be most severe on the real faults of the people of India. He states that, of present, want of veracity is one of their prominent vices, but he adds 'that such deceit is most common in people connected with government, a class which spreads far in India, from the nature of the land revenue, the lowest villager is often obliged to resist force by fraud.

90. Sir John Malcolm writes : 'I have hardly ever known where a person did understand the language, or where a calm communication was made to a native of India, through a well-informed and trustworthy medium, that the result did not prove, that what had at first been stated as falsehood, had either proceeded from fear, or from misapprehension. I by no means wish to state that our Indian subjects are more free from this vice than other nations that occupy a nearly equal position in society, but I am positive that they are not more addicted to untruth.'

91. Sir Thomas Munro bears even stonger testimoney. He writes : 'If a good system of agriculture unrivalled manufacturing skill, a capacity to produce whatever can contribute to either convenience of luxury, schools established in every village for teaching reading, writing, and arithmetic, the general practice of hospitality and charity amongst each other, and above all, a

जिनका भारतीयों के साथ जितने अधिक लम्बे समय तक निकट संपर्क रहा वे उनके लिए उतनी ही अच्छी राय रखते हैं, किन्तु यह तो मानव स्वभाव की बात हैं और दूसरी जातियों के बारे में भी यही कहा जा सकता है। किन्तु बात ऐसी है नहीं, क्योंकि जो लोग भारत के अतिरिक्त अन्य अनेक देशों में भी रह चुके हैं वे सब दूसरे सर्वाधिक प्रशंसित देशों के साथ तुलना करने पर भी भारतीय जनता को ही श्रेष्ठ ठहराते हैं।

८५. हमारे यहां भारतीयों के चरित्र को लेकर जो तरह-तरह उल्टी की सीधी बातें अहर्निश कही सुनी जाती हैं उनसे भी कहीं अधिक कष्ट तो मुझे यहां के जनमानस में भारतीयों के प्रति घृणा और विरोध के भाव जगाने के लिए अपनाए जाने वाले एक सुनियोजित षडयन्त्र को देखकर होता है। भारत के विरुद्ध रचे जा रहे इस षडयन्त्र के द्वारा मात्र भारत विरोधी कुछ लोगों के विचारों और वक्तव्यों को बड़े जोर-शोर से उछाला जाता है, इसके विपरीत ऐसे दुर्भावना पूर्ण वक्तव्यों के झूठ का पर्दाफाश करने वालों अत्युच्च कोटि के राजनयिकों और आई० सी० एस अंग्रेज अधिकारियों तथा अन्य बड़े बड़े लोगों की जोरदार आवाजों, महत्त्वपूर्ण सम्मतियों व वक्तव्यों को सर्वथा अनदेखा और अनसुना कर दिया जाता है। ऐसी दूसरी तरह की साक्षियों में से कुछ एक को मैं यहां आप के समक्ष उद्धृत करना चाहूंगा।

८६. वारेन हेस्टिंग्स हिन्दुओं के लिये सर्वमान्य एक सामान्य तथ्य यह बताता है—"वे सुशील, सौम्य व परोपकारी हैं। अपने लिए किये गए उपकारों के लिए वे सदा कृतज्ञ रहते हैं और खूब धन्यवाद देते हैं। इसके विपरीत बुराई का बदला लेने की बात इनके मन में बहुत कम आती है। भूमंडल पर स्थित संपूर्ण मानव जाति की अपेक्षा हिन्दू लोग कहीं अधिक स्वामिभक्त, कानून के पाबन्द व सौहार्दपूर्ण हैं।

८७. विशपहैवर लिखता है कि—'हिन्दू लोग वीर, साहसी बुद्धिमान्, ज्ञान विज्ञान व परिष्कार के लिए प्रयत्नशील गंभीर प्रकृति के पुरुषार्थी एवं अपने माता-पिता के प्रति कर्त्तव्य परायण, छोटों से स्नेह करने वाले सुशील और धैर्यवान् हैं। अब तक मैं जिन मानव-समुदायों से मिला हूं, उनमें वे अपने प्रति दिखाई गई कृपा और सहानुभूति से सर्वाधिक प्रभावित होने वाले हैं।'

८८. एलफिस्टन कहता है—भारत में सभी ग्रामवासियों को आप सौहार्दपूर्ण अपने परिवार के प्रति ममतामय व कर्त्तव्यपरायण पायेंगे वे अपने पड़ोसियों के साथ बड़े प्रेम से मिलजुलकर रहते हैं। सरकार के प्रति तो वे, विशेष रूप से ईमानदार और सच्चे रहते हैं। यदि ठगों और डाकुओं को भी उनमें ही मान लिया जाए, तो भी भारत में अपराधी प्रवृत्ति के लोग इग्लैंड से कहीं कम हैं।

ठगों की तो अपनी एक अलग जाति ही है। इसी प्रकार डाकू लोग भी हत्यारों के अपने गिरोह के समाज से सदा अलग-अलग रहते हैं; समाज में उनके लिए कभी कोई स्थान नहीं होता। हिन्दू लोग बड़े कोमल हृदय और सुशील हैं। बन्दियों के प्रति वे जितनी दया दिखाते हैं, वैसी अन्य कोई एशिया वासी नहीं दिखाता। प्रत्येक हिन्दू दुराचारण से इस प्रकार अछूता रहता है कि उससे प्रत्येक व्यक्ति और समाज को अनेक उप-

treatment of the female sex full of confidence, respect, and delicacy, are among the signs which denote a civilised people—then the Hindus are not inferior to the nations of Europe, and if civilisation is to become an article of trade between England and India, I am convinced that England will gain by the import cargo.'

92. My own experience with regard to the native character has been, of course, very limited. Those Hindus whom I have had the pleasure to know personally in Europe may be looked upon as exceptional, as the best specimens, it may be, that India could produce. Also, my intercourse with them has naturally been such that it could hardly have brought out the darker sides of human nature. During the last twenty years, however, I have had some excellent opportunities of watching a number of native scholars under circumstances where it is not difficult to detect a man's true character, I mean in literary work and, more particularly, in literary controversy. I have watched them carrying on such controversies both among themselves and with certain European scholars, and I feel bound to say that, with hardly one exception, they have displayed a far greater respect for truth, and a far more manly and generous spirit than we are accustomed to even in Europe and America. They have shown strength, but no rudeness ; nay I know that nothing has surprised them so much as the coarse invective to which certain Sanskrit scholars have condescended, rudeness of speech being, according to their view of human nature, a safe sign not only of bad breeding, but of want of knowledge. When they were wrong, they have readily admitted their mistakes ; when they were right, they have never sneered at their European adversaries. There has been, with few exceptions, no quibbling, no special pleading, no untruthfulness on their part, and certainly none of that low cunning of the scholar who writes down and publishes what he knews perfectly well to be false, and snaps his fingers at those who still value truth and self-respect more highly than victory or applause at any price. Here, too, we might possibly gain by the import cargo.

93. Let me add that I have been repeatedly told by English merchants that commercial honour stands higher in India than in any other country, and that a dishonoured bill is hardly known there.

94. I have left to the last the witnesses who might otherwise have been suspected—I mean the Hindus themselves. The whole of their literature from one end to the other is pervaded by expressions of love and reverence for truth. Their very word for truth

योगी लाभ सदैव मिलते रहे हैं। उनके आचरण और व्यवहार की पवित्रा की उत्कृष्टता के समक्ष अपने चरित्र पर हमारा घमण्ड हवा हो जाता है।"

८९. इतना सब-कुछ कहते हुए भी एलफिंस्टन ने भारत के लोगों की कमियों पर भी बड़े तीखे प्रहार किए हैं। वह लिखता है—"आजकल उनमें पाई जाने वाली बुराईयों में से सबसे बड़ी बुराई उनकी सत्यनिष्ठा में कमी है।" किन्तु इसके साथ ही वह यह स्पष्ट कर देता है कि एक या दूसरे सन्दर्भ में सरकार के सम्पर्क में आने वाले लोगों में ही आमतौर पर प्रवंचना या असत्य की प्रवृत्ति पाई जाती है। भारत में लगान-वसूली का जो नया तरीका लागू किया गया है उसके कारण छोटे-मोटे ग्रामवासियों तक को छल-कपट से शक्ति का सामना करने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है।

९०. सर जॉन माल्कम लिखते हैं—"मुझे ऐसा कोई मामला याद नहीं आता जबकि भारत के जनसाधारण से एक दूसरे की भाषा को ठीक से समझते हुए शान्ति और निर्भयता के साथ बातचीत की गई हो या विश्वस्त दुभाषिये के द्वारा उसे सही ढंग से समझाया गया हो और उसका निष्कर्ष यह न निकला हो कि पहले जो कुछ असत्य कहा गया था, वह या तो भय के कारण अथवा बात को ठीक से न समझ पाने के कारण था।"

९१. मेरे कहने का आशय यह नहीं कि दूसरे राष्ट्रों की जनता की अपेक्षा भारतीय प्रजा इस बुराइ से अधिक बची हुई है, तथापि मैं दृढ़ता के साथ यह कह सकने की स्थिति में हूँ कि वे अन्य किसी जाति की अपेक्षा अधिक असत्यशील नहीं हैं।

९२. निस्सन्देह भारतीयों के चरित्र के बारे में मेरा अपना वैयक्तिक अनुभव सीमित है। यहाँ यूरोप में जिन हिन्दुओं से भेंट करने का आनन्ददायक सुअवसर मुझे मिलता रहा, उन्हें तो विशिष्ट अपवादभूत और भारत-भूमि की श्रेष्ठतम उपज कहा जा सकता है। इसके सिवा मेरा भारतीयों के साथ जो विचार-विनिमय होता रहा है, वह भी स्वभावतः ऐसा होता था, जिसमें मानव-स्वभाव का दुर्बल पक्ष शायद ही कभो प्रकट हो पाए। तथापि पिछले बीस वर्षों से मुझे अनेक भारतीय विद्वानों को ऐसी स्थितियों में परखते रहने के अनेक महत्त्वपूर्ण सुअवसर मिलते रहे हैं, जहाँ मानव की सच्ची प्रकृति का पता लगा लेना कुछ कठिन नहीं होता मेरा आशय साहित्य के ऐसे क्षेत्र से है जहाँ परस्पर-विरोधी मतों का बोलबाला है। भारतीय विद्वानों के अपने यहाँ के प्रतिपक्षियों अथवा यूरोपीयन विद्वानों के साथ भी मतभेदों के सन्दर्भ में मैंने उन्हें भली भाँति जाँचा-परखा है और मैं यह कहने को बाध्य हूं कि एकाध अपवाद के सिवा, सर्वत्र उन्होंने सत्य के प्रति अपनी अगाध निष्ठा ही जतलाई। हम लोग यहाँ यूरोप में और अमेरिका में भी एक-दूसरे के प्रति जैसी और जितनी उदार-भावना दिखाने के अभ्यस्त हैं, भारतीय विद्वानों में वह भावना उससे कहीं अधिक विद्यमान है। प्रतिपक्षी के विचारों के खण्डन में वे लोग अपनी पूरी शक्ति लगाते हुए अपनी दृढ़ता और क्षमता अवश्य दिखाते थे, किन्तु ऐसा करते हुए भी उनके व्यवहार में कहीं कोई अशिष्टता नहीं झलकती थी। इतना ही क्यों, मुझे ज्ञात है, यदि कभी कोई संस्कृत का विद्वान् किसी दूसरे विद्वान् पर

is full of meaning. It is *sat* or *satya*, *sat* being the participle of the verb *as*, to be. True, therefore, was with them simply *that which is*. The English *sooth* is connected with *sat*, also the Greek *on*, and the Latin *sens*, in *proesens*.

95. We are all very apt to consider truth to be what is trowed by others, or believed in by large majorities. That kind of truth is easy to accept. But whoever has once stood alone, surrounded by noisy assertions, and overwhelmed by the clamour of those who ought to know better, or perhaps who did know better —call him Galileo or Darwin, Colenso or Stanlly, or any other name—he knows what a real delight it is to feel in his heart of hearts, this is true—this is—this is *sat*—whatever daily, weekly, or quarterly papers, whatever bishops, archbishops, or popes, may say to the contrary.

96. Another name for truth is the Sanskrit *rita*, which originally seems to have meant *straight*, *direct*, while *anrita* is untrue, false.

97. Now one of the highest praises bestowed upon the gods in the Veda is that they are *satya*, true, truthful, trustworthy ; and it is well known that both in modern and ancient times, men always ascribe to God or to their gods those qualities which they value most in themselves.

98. Other words applied to the gods as truthful beings, are *adrogha*, lit, not deceiving. *Adrogha-vak* means, he whose word is never broken. Thus Indra, the Vedic Jupiter, is said to have been praised by the fathers 'as reaching the enemy, overcoming him, standing on the summit, *true* of *speech*, most powerful in thought'.

99. *Droghavak*, on the contrary, is used for deceitful men. Thus Vasishtha, one of the great Vedic poets, says : 'If I had worshipped false gods, or if I believed in the gods vainly—but why art thou angry with us. O Jatavedas ? May liars go to destruction !'

100. *Satyam*, as a neuter, is often used as an abstract, and is then rightly translated by truth. But it also means that which is, the true, the real; and there are several passages in the Rig-veda where, instead of *truth*, I think we ought simply to translate *satyam* by the true, that is, the real, *to ontos on*. It sounds no doubt, very well to translate *Satyena uttabhita bhumih* by 'the earth is founded on truth;' and I believe every translator has taken *satya* in that sense here. Ludwig translates, 'Von der Wahrheit its die Erde gestutzt.'

भद्दा और अशिष्ट आक्षेप करता तो वे अत्यन्त दुःखित और विस्मित हो उठते थे, क्योंकि उनके विचार में बातचीत में अशिष्टता का प्रदर्शन केवल अकुलीनता का ही नहीं, अपितु ज्ञानलव-दुर्विदग्धता का भी सूचक है। जब उनका पक्ष गलत होता तो अपनी भ्रान्ति को तत्काल स्वीकार कर लेते। किन्तु, यदि उनका पक्ष सही होता तो वे अपने यूरोपियन प्रतिपक्षी पर भी कभी व्यंग्य बाण नहीं छोड़ते थे। उन्होंने न तो कभी वाक्छल से ही काम लिया और न अपनी बात को सिद्ध करने के लिए हठधर्मिता ही दिखाई। उन्होंने अपनी समझ में कभी असत्य पक्ष का समर्थन नहीं किया। **मुझे ऐसा कोई सस्कृत का विद्वान् दिखाई नहीं दिया जो यह जानते हुए भी कि उसका मत असत्य सिद्ध हो जाएगा, अपने पक्ष के समर्थन में लिखता रहे।** जो लोग किसी भी कीमत पर शास्त्रार्थ में जोड़-तोड़ बैठाकर विजय प्राप्त कर लेने अथवा लोगों की वाहवाही लूट लेने की अपेक्षा सत्य और आत्मसम्मान को अधिक महत्त्व देते हैं, उन पर उन्होंने कभी अँगुलो नहीं उठाई। इस क्षेत्र में भी भारत से कुछ आयात करके हम लाभ उठा सकते हैं।

९३. इस प्रसंग में मैं यहाँ यह जोड़ना चाहूँगा कि भारत के साथ व्यापार करने गए अंग्रेज व्यापारियों ने बार-बार यह बताया है कि किसी भी अन्य देश की अपेक्षा भारत में व्यापार-व्यवसाय के नियमों का आदर सम्मान कहीं अधिक होता है। वहाँ के लोग किसी हुण्डी के भुगतान न होने की तो बात जानते ही नहीं।

९४. हिन्दुओं के चरित्र में सत्यनिष्ठा के इस महत्त्वपूर्ण पहलू को प्रतिपादित करने वाले दूसरे सशक्त प्रमाणों तथा साक्ष्य को मैंने सबसे अन्त में प्रस्तुत करने के लिए रख छोड़ा है। क्योंकि, यदि मैं उसे पहले ही प्रस्तुत कर देता तो सम्भवतः आप लोगों को उसकी प्रामाणिकता पर भरोसा न हो पाता। वे साक्षी तथा प्रमाण हैं स्वयं हिन्दू-समाज। हिन्दुओं का सम्पूर्ण साहित्य आद्यन्त सत्य के प्रति सम्मान और प्यार से ओत-है। उन्होंने Truth के लिए जिस शब्द का प्रयोग किया है वह अपने आप में बहुत सार-गर्भित है। यह शब्द है 'सत्' या 'सत्य'। सत् शब्द होना अर्थ वाली अस् धातु और 'त' प्रत्यय के योग से बना कृदन्त रूप है। इसलिए हिन्दुओं के लिए सत् या सत्य वही है 'जो है'। अंग्रेजी का 'सूद सत् से ही सम्बद्ध है। ग्रीक ओन और लातिन सेत्स भी इसी के सजातीय हैं।

९५. जो दूसरे लोगों की दृष्टि में ठीक है अथवा बहुसंख्यक लोग जिसे ठीक मानते हैं, हम लोग उसे ही सच समझने के आदी हो गए हैं। इस प्रकार के सच लोग को अनायास ही स्वीकार कर लेते हैं। किन्तु अपनी बात को मनाने के लिए किये जा रहे भयंकर हो-हल्ले तथा ऐसे लोगों की चिल्ल-पों से जिनके बारे में यह समझा जाता है कि वे अधिक सही समझते हैं (और सम्भवतः समझते भी हों—सभी ओर से घिर जाने पर भी जो अकेला ही अडिग रहता है, साप्ताहिक तथा मासिक पत्र-पत्रिकाओं में जो चाहे छपता रहे और विशप, आर्चबिशप या पोप उसके विरोध में जो चाहे कहते रहें, किन्तु अपने अन्तर्तम में वह जानता है कि 'सत्य यही है' यही सत् है। उसे अपने अन्तर्तम के आनन्द की कितनी दिव्य अनुभूति होती है! चाहे वह गैलीलियो हो या डार्विन, कोलेन्सों हो या

But such an idea, if it conveys any tangible meaning at all, is far too abstract for those early poets and philosophers, They meant to say 'the earth, such as we see it, is held up, that is, rests on something real, though we may not see it, on something which they called the Real, and to which in course of time, they gave many more names, such as *Rita*, the right, Brahman,' etc.

101. Of course where there is that strong reverence for truth, there must also be the sense of guilt arising from untruth. And thus we hear one poet pray that the waters may wash him clean, and carry off all his sins and all untruth :

102. Carry away, ye waters, whatever evil there is in me, wherever I may have deceived, or may have cursed, and also all untruth *(anritam)*.

103. Or again, in the Atharva-veda iv. 16.

104. May all thy fatal snares, which stand speead out seven by seven and threefold, catch the man who tells a lie, may they pass by him who tells the truth !'

105. From the Brahmanas, or theological treatises of the Brahmans, I shall quote a few passages only :

106. Whosoever speaks the truth, makes the fire on his own altar blaze up, as if he poured butter into the lighted fire. His own light grows larger and from to-morrow to to-morrow he becomes better. But whosoever speaks untruth, he quenches the fire on his altar, as if he poured water into the lighted fire ; his own light grows smallerand smaller, and from to-morrow to to-morrow he becomes more wicked. Let man therefore speak truth only.

107. And again : 'A man becomes impure by uttering falsehood.'

108. And again : 'As a man who steps on the edge of a sword placed over a pit cries out. I shall slip, I shall slip into the pit so let a man guard himself from falsehood (or sin)'.

109. In later times we see the respect for truth carried to such an extreme that even a promise unwittingly made, is considered to be binding.

110. In the Katha-Upanishad, for instance, a father is introduced offering what is called an *All*-sacrifice, where everything is supposed to be given up. His son, who is standing by, taunts his father with not having altogether fulfilled his vow, because he has not sacrificed his son. Upon this, the father, though angry and against his will, is obliged to sacrifice his son. Again, when the son arrives in the lower world he is allowed by the Judge of the

स्टेनली (ये सब दूसरे लोगों के विरोध की परवाह न कर उन्हें जो सत्य लगा वही कहते और मानते रहे)।

९६. संस्कृत में सत्य के लिए एक और शब्द है 'ऋत'। प्रतीत होता है कि इस शब्द का मूल आशय 'सीधा' रहा होगा, और अनृत का अर्थ है असत्य।

९७-९८. वेदों में देवताओं की प्रशंसा में जो कुछ कहा गया है, उसमें सर्वाधिक यह महत्त्व प्रतिपादित है कि वे सत्य हैं, सत्यपूर्ण हैं, विश्वसनीय है। हम यह भी देखते हैं कि चाहे प्राचीन युग के हों या आज के, भारत के लोग देवताओं में उन्हीं गुणों का आरोपण करते रहे हैं, जिनको वे सर्वाधिक मूल्यवान समझते हैं। देवताओं के सत्य-स्वरूप होने के लिए 'अद्रोघ' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। 'अद्रोघ-वाक्' का अर्थ है जो कभी अपना वचन भंग नहीं करता। इस प्रकार इन्द्र (वैदिक जुपीटर) के लिए कहा गया है 'शत्रु का नाश कर डालने वाले सर्वोच्च शिखर पर आसीन इन्द्र सत्यवाक् हैं और उनके विचार दृढ़ हैं।'

९९. इसके विपरीत असत्यभाषी धोखेबाज़ लोगों के लिए 'द्रोघवाक्' शब्द प्रयुक्त हुआ है। महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—

"हे जातवेदा! आप हम से क्यों रुष्ट हैं? क्या मैंने कभी किसी असत्य देव की या अश्रद्धा से देवताओं की उपासना की है? असत्यवादी का नाश हो!"

१००. 'सत्यम्' नपुंसक लिंग में प्रयुक्त भाववाचक संज्ञा है और अंग्रेजी में इसका सही अनुवाद Truth है, किन्तु इसका आशय यह भी है—जो सत्य है, जिसकी सत्ता या अस्तित्व है, जो वास्तविक है। ऋग्वेद में ऐसे अनेक स्थल, हैं जहाँ मेरे विचार में 'सत्यम्', का अनुवाद सत्य की बजाय जो 'सत्य या वास्तविक है, जिसकी सत्ता या अस्तित्व है, किया जाना चाहिए।

सत्येन उत्तभिता भूमिः का साधारण अर्थ है 'यह धरती सत्य पर टिकी हुई है' प्रत्येक अनुवादक ने सत्य शब्द से यही आशय लिया है। लुडविग ने जर्मन भाषा में इस वाक्य का यह अनुवाद दिया है। **वारहीट** =सत्य, **वोन डर**—पर, **इस्ट**—है, **अर्डे**—पृथिवी, **गैस्ट्यूट्ज**—स्थित अर्थात् पृथिवी सत्य पर स्थित है।

इस विचार से यदि कोई स्पष्ट आशय व्यक्त होता है तो उन प्राचीन वैदिक कवियों और दार्शनिकों के लिए निश्चित ही वह भाववाचक नहीं था। वे सम्भवतः यह कहना चाहते थे कि 'धरती जैसी कि हमें यह दिखाई देती है, किसी वास्तविक सत्ता या तत्त्व पर टिकी हुई है, भले ही हम उसे न देख पाएं।' उसे ही वे लोग रीयल कहते थे तथा धीरे-धीरे उसे ऋत्, दि राइट, ब्रह्मन नामों से भी अभिहित किया जाने लगा।

१०१-२. निस्सन्देह जहाँ सत्य के लिए इतना आदर-सम्मान होगा, वहाँ असत्य के प्रति घृणा और पाप की भावना भी रहेगी ही। इस प्रकार एक मन्त्र में ऋषि प्रार्थना करता है कि जल हमें शुद्ध और पवित्र कर दें तथा सब प्रकार के पाप और असत्यों से छुड़ा दें— मुझमें जो कुछ पाप या दुर्गुण हो, हे जल! आप उससे मुझे छुड़ा दें तथा मैंने यदि कभी किसी से छल-कपट किया हो, किसी को कोसा हो अथवा असत्य-भाषण किया

Dead to ask for three favours. He then asks to be restored to life, to be taught some sacrificial mysteries, and as the third boon, he asks to know what becomes of man after he is dead. Yama, the lord of the Departed, tries in vain to be let off from answering this last question. But he, too, is bound by his promise, and then follows a discourse on life after death, or immortal life which forms one of the most beautiful chapters in the ancient literature of India.

111. The whole plot of one of the great Epic poems, the Ramayana, rests on a rash promise given by Dasharatha, king of Ayodhya, to his second wife, Kaikeyi, that he would grant her two boons. In order to secure the succession of her own son, she asks that Rama, the eldest son by the king's other wife, should be banished for fourteen years. Much as the king repents his promise, Rama, his eldest son, would on no account let his father break his word, and he leaves his kingdom to wander in the forest with his wife Sita and his brother Lakshmana. After the father's death, the son of the second wife declines the throne, and comes to Rama to persuade him to accept the kingdom of his father. But all in vain. Rama will keep his exile for fourteen years, and never disown his father's promise. Here follows a curious dialogue between a Brahman Jabali and Prince Rama of which I shall give some extracts.

112. The Brahman, who is a priest and coutrier, says, 'Well, descendant of Raghu, do not thou, so noble in sentiments, and austere in character, entertain, iike a common man, this useless thought. What man is a kinsman of any other ? What relationship has any one with another ? A man is born alone and dies alone. Hence he who is attached to any one as his father or his mother, is to be regarded as if he were insane, for no one belongs to another. Thou oughtest not to abandon thy father's kingdom and stay here in a sad and miserable abode, attended with many trials. Let thyself be inaugurated king in the wealth Ayodhya. Dashharatha, thy father is nothing to thee, or thou to him ; the king is one, and thou another, do therefore what is said... Then offer oblations to the departed spirits (of thy forefathers) on pre cribed days; but see what a waste of food. For what can a dead man eat ? If what is eaten by one here enters into the body of another (viz. of the departed), let Sraddhas be offered to those who are travelling, they need not then get food to eat on their journey. These books, the Vedas, (which enjoin men to sacrifice, give,

हो तो उसके पाप से भी मुझे छुड़ा दें।

१०३. इसी प्रकार अथर्ववेद के चतुर्थ काण्ड के सोलहवें सूक्त के एक मन्त्र में कहा गया है—

१०४. जो व्यक्ति असत्य-भाषण करता है, उसे वरुण के सात और तीन प्रकार के पाश जकड़े रहते हैं, किन्तु जो सत्य बोलता है वह उनसे मुक्त रहता है।

१०५. ब्राह्मण-ग्रन्थों से अथवा ब्राह्मण-ग्रन्थों के दैवतवाद में से मैं यहां दो एक ही उद्धरण देना चाहूंगा—

१०६. जो सत्य बोलता है वह अपने सत्य-भाषण के द्वारा अपने यज्ञकुण्डों की तीनों अग्नियों को सदा प्रज्वलित रखता है जैसे कि घृत की आहुतियों से अग्नि दीप्त होती है। उसका अपना तेज और ओज उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है और प्रतिदिन वह श्रेष्ठ-तर और समृद्धतर होता रहता है। इसके विपरीत जो असत्य-भाषण करता है वह अपनी यज्ञाग्नि को वैसे ही बुझा देता है जैसे कोई अपनी प्रदीप्त अग्नि में पानी उँडेल दे। उसका अपना तेज और ओज प्रतिदिन क्षीण होता जाता है। इसके फलस्वरूप वह विकट और क्रूर बन जाता है इसलिए लोगों को चाहिए कि वे सदा सच ही बोलें।

१०७-८. और यह भी कि असत्य-भाषण से मनुष्य अपवित्र हो जाता है। जो कोई किसी गड्ढे पर रखी तलवार की धार पर चलता है, वह यही चिल्लाता रहता है कि मैं अब फिसला, अब गिरा। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी सुरक्षा के लिए असत्य-भाषण व पापाचरण से बचे।

१०९. बाद में सत्य के प्रति आस्था और आदर इस सीमा तक बढ़ गया था कि अनजाने में दिया गया वचन भी मनुष्य को उस से बाँधे रखता था। और उस वचन पालन के लिए वह बाध्य रहता था।

११०. उदाहरण के लिए कठोपनिषद् में यह प्रसंग आता है—एक पिता (वाज-श्रवा ऋषि) ने अपना सर्वस्व-त्याग कर देने के लिए सर्वमेध-विश्वजित्-यज्ञ किया। पास ही खड़े उसके पुत्र (नचिकेता) ने इस पर व्यंग्य किया कि पिताजी, आपने अपनी प्रतिज्ञा का पूरी तरह पालन नहीं किया, क्योंकि आपने अपना पुत्र रूपी दाय को तो किसी को दिया ही नहीं। आप मुझे किसे दे रहे हैं ? इस पर पिता ने क्रोध में आकर अनिच्छा से ही कह दिया कि मैं तुझे मृत्यु (यम) को देता हूं। यमलोक में पहुंचने पर मृत्यु का अधिष्ठातृ देवता यम, नचिकेता से तीन वर माँगने के लिए कहता है।

इसपर नचिकेता पहले वर में अपना पुनर्जीवन माँगता है, दूसरे में यज्ञ के कुछ रहस्य जानना चाहता है और तीसरे में वह इस गूढ़ तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है कि मृत्यु के बाद मनुष्य की क्या गति होती है। यम इसका उत्तर देने में टालमटोल करता है, किन्तु स्वयं यम भी तो अपने वचन में बँधा हुआ है, इसलिए यम और नचि-केता का मृत्यु के पश्चात् आरम्भ होने वाले अविनश्वर जीवन के बारे में ऐसा संवाद आरंभ होता है, जो प्राचीन भारतीय वाङ्मय का एक परममनोहारी अध्याय है।

'रामायण' महाकाव्य की तो कथा ही दशरथ के द्वारा अपनी दूसरी रानी कैकेयी

consecrate themselves, practise austerities, and forsake the world), are composed by clever men to induce others to bestow gifts. Authoritative words do not fall from heaven. Let me, and others like yourselves, embrace whatever assertion is supported by reason. Adhere to what is apparent of the senses and reject what is invisible... *This world is the next world* ; do thou therefore enjoy pleasure, for every virtuous man does not gain it, Virtuous men are greatly distressed, while the unrighteous are seen to be happy.'

113. These positivist sentiments sound strange, particularly from the mouth of a Brahman. But the poet evidently wishes to represent a Brahman living at court, who has an argument ready for anything and everything that is likely to please his king.

114. But what does Rama answer ? 'The word, he says, which you have addressed to me, though they recommend what *seems* to be right and salutary, advise, in fact, the, contrary. The sinful transgressor, who lives according to the rules of heretical systems, obtains no esteem from good men. It is good conduct that marks a man to be noble or ignoble, heroic or a pretender to manliness, pure or impure. Truth and mercy are immemorial characteristics of a king's conduct. Hence royal rule is in its essence *truth*. On truth the world is based. Both sages and gods have esteemed truth. The man who speaks truth in this world attains the highest imperishable state. Men shrink with fear and horror from a liar as from a serpent. In this world the chief element in virtue is truth ; it is called the basis of everything. Truth is lord in the world; virtue always rests on truth. All things are founded on truth ; nothing is higher than it. Why, then, should I not be true to my promise, and faithfully observe the truthful injuction given by my father ? Neither through covetousness, nor delusion, nor ignorance, will I, overpowered by darkness, break throgh the barrier of truth, but remain true to my promise to my father. How shall I, having promised to that I would thus reside in the forest, transgress his injunction, and do what Bharata recommends ?'

115. The other epic poem too, the Mahabharata, is full of episodes showing a profound regard for truth and an almost slavish submission to a pledge once given. The death of Bhishma, one of the most important events in the story of the Mahabharata, is due to his vow never to hurt a woman. He is thus killed by Sikhandin, whom he takes to be a woman.

को उतावलेपन में दिये गए अविवेकपूर्ण दो वरों पर आधृत है। कैकेयी अपने बेटे भरत को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने के लिए दशरथ की पटरानी कौसल्या के सुपुत्र और उन के बड़े बेटे राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास का वर माँगती है। इधर राजा को अपने द्वारा दिये गए वरों पर जहाँ पश्चात्ताप हो रहा है, वहीं दूसरी ओर राम किसी प्रकार अपने पिता का वचन-भंग नहीं होने देना चाहते और वे अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण के साथ जंगलों में भटकते रहने के लिए अयोध्या से निकल पड़ते हैं। पिता के स्वर्ग सिधार जाने के बाद कैकेयी का पुत्र भरत राजसिंहासन पर बैठना स्वीकार नहीं करता। वह वन में श्रीराम के पास पहुंचकर उन्हें पैतृक राज्य को स्वीकार करने का आग्रह करने लगा। किन्तु भरत का सारा अनुनय-विनय और आग्रह व्यर्थ गया और श्रीराम चौदह वर्ष वनवास में बिताने के अपने निश्चय पर अडिग रहे। उन्होंने अपने पिता का वचन-भंग नहीं होने दिया। यहीं राम और ब्राह्मण जाबालि का एक विचित्र सा संवाद होता है। मैं यहाँ आपको इस प्रसंग के कुछ अंश सुनाना चाहूँगा—

११२. ब्राह्मण जाबालि, जो एक राजपुरोहित और राजदरबारी है, श्री राम से कहता है कि "हे रघुपुंगव श्रीराम ! आप अत्यन्त उदात्त भावनाओं से सम्पन्न और दृढ़चरित्र हैं। तथापि, आपको एक साधारणजन की भाँति इस निरर्थक विचार की कुछ परवाह नहीं करनी चाहिए। मनुष्य का एक-दूसरे से भला क्या नाता है ? क्या वास्तव में मनुष्य किसी का सम्बन्धी है ? मनुष्य अकेला पैदा होता है और अकेला मर जाता है। इसलिए जो यह समझता है कि उसका पिता या माता है और उनके साथ बंधा रहता है, उसे पागल ही समझना चाहिये, क्योंकि इस दुनियां में कोई किसी का नहीं। आपको अपने पिता के राज्य का परित्याग नहीं करना चाहिए और न इन संकट भरे भयानक जंगलों में ही भटकते रहना चाहिए। आपको वैभवशाली अयोध्या के राज सिंहासन पर बैठना चाहिए। न तो महाराज दशरथ को आपसे और न आप को उन से कुछ लेना-देना है। महाराज का अपना व्यक्तित्व है। इसलिए शास्त्रोक्त विधिविधान को सम्पादित कीजिए।... आप अपने पिता और पूर्वजों के लिए शास्त्र-विहित श्राद्ध-तर्पण, पिण्ड दान आदि विधि-विधान भले ही सम्पादित करें, किन्तु ऐसा करते हुए भी सदा यह ध्यान रहे कि इन सब कार्यों में अन्न और भोजनादि द्रव्यों का कितना दुरुपयोग होता है। भला कभी कोई मरा हुआ व्यक्ति भी श्राद्ध आदि का अन्न ग्रहण कर सकता है ? यदि किसी व्यक्ति द्वारा यहाँ खाया हुआ भोजन किसी दूसरे (मृत) व्यक्ति को पहुंच सकता है, तब विदेश में यात्रा कर रहे व्यक्तियों का भी श्राद्ध कर दिया जाए ताकि उन्हें अपनी यात्रा में भोजन करने की कोई आवश्यकता ही न रहे। ये वेदादि शास्त्र (जो लोगों को त्याग, बलिदान, तपश्चर्या एवं संसार के परित्याग आदि का उपदेश देते हैं) उन चालाक और धूर्त लोगों ने बनाए हैं जो दान-दक्षिणा के लालच से दूसरों को उकसाते हैं। आप्तवाक्य कहीं कोई स्वर्ग से तो उतरते नहीं ! इसलिए मुझे और आप जैसे बुद्धिमान् लोगों को चाहिए कि तर्क सम्मत बातों को ही स्वीकार करें। जो कुछ प्रत्यक्ष है। हमें उसी को स्वीकार करना चाहिए और जो परोक्ष है उसे कभी नहीं मानना चाहिए। वास्तव में

116. Were I to quote from all the law-books, and from still later works, everywhere you would hear the same keynote of truthfulness vibrating through them all.

117. We must not, however, suppress the fact that, under, certain circumstances, a lie was allowed, or, at all events, excused by Indian lawgivers. Thus Gautama says : 'An untruth spoken by people under the influence of anger, excessive joy, fear, pain, or grief, by infants, by very old men, by persons labouring under a delusion, being under the influence of drink, or by mad men, does not couse the speaker to fall, or, as we should say, is a venial, not a mortal sin.'

118. This is a large admission, yet even in that open admission there is a certain amount of honesty. Again and again in the Mahabharata is this excuse pleaded. Nay there is in the Mahabharata the well known story of Kaushika, called Satyavadin, the Truth-speaker, who goes to hell for having spoken the truth. He once saw men flying into the forest before robbers (dasyu. The robbers came up soon after them, and asked Kaushka, which way the fugitives had taken. He told them the truth, and the men were caught by the robbers and killed. But Kaushika, we are told, went to hell for having spoken the truth.

119. The Hindus may seem to have been a priest-ridden race, and their devotion to sacrifice and ceremonial is well known. Yet this is what the poet of the Mahabharata dares to say :

120. 'Let a thousand sacrifices (of a horse) and truth be weighed in the balance—truth will exceed the thousand sacrifices.'

121. These are words addressed by Shakuntala, the deserted wife, to King Dushyanta, when he declined to recognise her and his son. And when he refuses to listen to her appeal, what does she appeal to as the highest authority ?—*The voice of conscience.*

122. 'If you think I am alone,' she says to the king, you do not know that wise man within your heart. He knows of your evil deed—in *his* sight you commit sin. A man who has committed sin may think that no one knows it. The gods know it and the old man within.

123. This must suffice. I say once more that I do not wish to represent the people of India as so many millions of angels, but I do wish it to be understood and to be accepted as a fact, that the damaging charge of untruthfulness brought against that people is utterly unfounded with regard to ancient times. It is not only not true, but the very opposite of the truth. As to modern times, and

परलोक भी यही लोक है इसलिए मजे से आनन्दोपभोग करो, क्योंकि अधिकांश में गुणी लोग सुख-सुविधाओं से वंचित ही दिखाई देते हैं। गुणवान् व्यक्ति सदा ही दुःख भोगते हैं, जबकि अयोग्य व्यक्ति मौज उड़ाते हैं।

११३. ये भौतिकतावादी विचार बड़े विचित्र प्रतीत होते हैं, विशेषतः उस अवस्था में जब कि ये किसी ब्राह्मण के मुख से निकले हों। किन्तु यहाँ जाबालि के माध्यम से आदि कवि वाल्मीकि राजदरबार में रहने वाले किसी ऐसे ब्राह्मण का चित्र अंकित करना चाहते हैं, जो अपने राजा की खुशामद के लिए सदा हाजिर जवाब रहता है और जैसा मौका देखता है, वैसी ही बात करने में निपुण होता है।

११४. किन्तु श्रीराम ने जाबालि की इन बातों का क्या उत्तर दिया, यह जानने हैं। सुनिये, श्रीराम क्या कहते है—मुनिवर ! मुझे आपने जो उपदेश दिया है और जो कुछ करने को कहा है, वह देखने में तो सर्वथा समीचीन, सत्य और हितकारी प्रतीत होता है, किन्तु वास्तव में है सर्वथा विपरीत। नास्तिकता, दम्भ और पाखण्ड के पथ पर चलने वाले एवं अमर्यादित धर्मविरुद्ध आचरण करने वाले को भले लोग कभी अच्छा नहीं समझते, उसे कभी अच्छी निगाह से नहीं देखते। मनुष्य का शुद्ध आचरण ही यह प्रमाणित करता है कि वह श्रेष्ठ है या निकृष्ट, वह वीर है या मानवता का पाखण्ड ही करता है, वह पवित्र है या अपवित्र। सत्य और दया ही एक योग्य शासक की अविस्मरणीय विशेषताएँ समझो जाती है। यही उसके आचरण का श्रेष्ठ प्रमाण हैं। इसलिए राजकीय नियमों का सम्पूर्ण सार सत्य में निहित है। सत्य पर ही यह जगत् टिका हुआ है। ऋषि-मुनियों और देवताओं ने बार-बार सत्य की महिमा गाई है। जो व्यक्ति सदा सत्य-भाषण करता है, उसे इस लोक में भी अविनश्वर उच्चतम पद प्राप्त होता है। जैसे कोई साँप से डरता है, वैसे ही मनुष्य असत्य बोलने वाले से भयभीत रहता है। इस संसार के गुणों का सारभूत तत्त्व सत्य ही है। सत्य वस्तुतः प्रत्येक सद्‌गुण का मूल आधार है इस जगत् का स्वामी है और सभी गुणसत्य में ही निहित हैं। प्रत्येक वस्तु सत्य पर ही आधृत है। जब सत्य से बढ़कर और सच से ऊँची कोई वस्तु ही नहीं, तब मैं अपने वचन का सच्चा क्यों न रहूँ और अपने पिता की आज्ञा का पूरी ईमानदारी और सच्चाई से पालन क्यों न करूँ ! न तो मैं किसी लोभ-लालच, माया मोह या अज्ञानान्धकार के वशीभूत होकर सत्य के बन्धन तोड़ूंगा और न मर्यादा का उल्लंघन ही करूँगा। मैं अपने पिता को दिए गए वचन का सत्यनिष्ठा से पालन करता रहूंगा। अपने पिताजी को (चौदह वर्ष तक) वनवास का जो मैंने वचन दिया है, उसका उल्लंघन कैसे करूँ और भरत की प्रार्थना कैसे स्वीकार कर लूं ?

११५. इसी प्रकार संस्कृत का दूसरा महाकाव्य 'महाभारत' भी सत्य के प्रति अगाध निष्ठा के परिचायक कथानकों से भरा पड़ा है। यहाँ भी अपने दिए हुए वचन का आँख मींचकर पालन करने की बात बार-बार बताई गई है। 'महाभारत' के कथानक में भी भीष्म की मृत्यु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटनाओं में से एक है। भीष्म की मृत्यु अपनी इस प्रतिज्ञा के कारण होती है कि वे कभी किसी स्त्री पर हाथ नही उठाएँगे और इस

I date them from about 1,000 after Christ, I can only say this. If you frighten a child, that child will tell a lie—if you terrorise millions, you must not be surprised if they try to escape from your fangs. Truthfulness is a luxury, perhaps the greatest, and let me assure you, the most expensive in our life—and happy the man who has been able to enjoy it from his very childhood. It may be easy enough in our days and in a free country, like England, never to tell a lie—but the older we grow, the harder we find it to be always true, to speak the truth, the whole truth and nothing but the truth. The Hindus too had made that discovery. They too knew how hard, nay how impossible it is always to speak the truth, the whole truth, and nothing but the truth. There is a short story in the Shatapatha Brahmana, to my mind full of deep meaning, and pervaded by the real sense of truth, the real sense of the difficulty of truth. His kinsman said to Aruna Aupavesi. 'Thou art advanced in years, establish thou the sacrificial fires.' He replied : Thereby you tell me henceforth to keep silence. For he who has established the fires must not speak an untruth, and only by not speaking at all, one speaks no untruth. To that extent the service of the sacrificial fires consists in truth.

124. I doubt whether in any other of the ancient literatures of the world you will find traces of that extreme sensitiveness of conscience which despairs of our ever speaking the truth, and which declares silence gold and speech silver, though in a much higher sense than our proverb.

125. What I should wish to impress on those who will soon find themselves the rulers of millions of human beings in India is the duty to shake off national prejudices, which are apt to degenerate into a kind of madness. I have knonwn people with a brown skin whom I could look up to as my betters. Look for them in India, and you will find them, and if you meet with disappointments as, no doubt you will think of the people with white skins whom you have trusted, and whom you can trust no more. We are all apt to be Pharisees in international judgments. I read only a few days ago in a pamphlet written by an enlightened politician, the following worlds :

126. 'Experience only can teach that nothing is so truly astonishing to a morally depraved people as the phenomenon of a race of men in whose word perfect confidence may be placed.... The natives are conscious of their inferiority in nothing so much

प्रकार वे शिखण्डी के द्वारा मारे जाते हैं, क्योंकि वे उसे एक स्त्री ही मानते हैं।

११६. यदि मैं धर्म शास्त्रों या स्मृति-ग्रन्थों से अथवा उससे भी परवर्ती रचनाओं से कुछ उद्धरण देना चाहूं तो भी आद्यन्त सत्यनिष्ठा का वही मूल स्वर सुनाई देगा।

११७. यहाँ हमें इस तथ्य को भी आँख से ओझल नहीं करना होगा कि भारतीय धर्मशास्त्रियों या स्मृतिकारों ने कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में असत्य-भाषण की भी छुट दे दी है। इसी सन्दर्भ में महर्षि गौतम कहते हैं—क्रोध, अत्यधिक आनन्द, भय, पीड़ा या कष्ट और शोक आदि के कारण अथवा बालकों, बूढ़े लोगों अथवा किसी छलावे या कपट-प्रपंच में फँसे लोगों अथवा मदोन्मत्त या विक्षिप्त व्यक्तियों के द्वारा बोला गया झूठ उनके पतन का कारण नहीं होता। इसे यूं भी कहा जा सकता है कि ऐसा 'असत्य', घातक पाप न होने का कारण क्षम्य है।

११८. ऐसे अपवादों की भी बहुतायत है, किन्तु इस सबके रहते हुए भी इसमें काफी ईमानदारी है। "महाभारत में इन अपवादों के समर्थन में अनेक दृष्टान्त दिए गए है। इतना ही क्यों, "महाभारत" में तो एक सत्यवादी कौशिक का भी कथानक है जिसे सच बोलने के कारण ही नरक में जाना पड़ा। एक बार उसने जंगल में डाकू के डर के मारे भागते हुए व्यक्ति को देखा। थोड़ी ही देर में उसका पीछा करने वाले डाकू भी वहाँ आ पहुंचे। उन्होंने सत्यवादी कौशिक से पूछा कि वह भगोड़ा किधर गया है ? उसने उन्हें उसका सही मार्ग बता दिया। इस पर उन लोगों ने उसे जा दबोचा और मार डाला। इस प्रकार हमें बताया गया है कि उस सत्यवादी कौशिक को अपने सत्य-भाषण के कारण ही नरक में जाना पड़ा।

११९. हिन्दू जाति पुरोहित के द्वारा संचालित प्रतीत होती है। अपने यज्ञ-याग और देवार्चन आदि के लिए वह विख्यात है। किन्तु इस प्रसंग में महाभारत कार क्या कहते हैं, सुनिये—

१२०. हजार (अश्वमेध) बड़े यज्ञों को तराजू के एक पलड़े में रख दिया जाए और दूसरे पलड़े में सत्य को। इन दोनों में सत्य का पलड़ा ही भारी निकलेगा।'

१२१. ये शब्द कह रही है शकुन्तला—महाराज दुष्यन्त की प्रवंचिता पत्नी; जबकि दुष्यन्त ने उसे और उसके पुत्र को अपनाने और पहचानने तक से इन्कार कर दिया ! जब दुष्यन्त ने उसके रोने-गिड़गिड़ाने पर भी कुछ ध्यान नहीं दिया तो शकुन्तला ने सर्वोच्च सत्ता 'अन्तर्तम की आवाज' की दुहाई दी। वह कहती है—

१२२. राजन ! तुम समझते हो कि तुम अकेले हो (तुम जो कुछ करते हो या

---

१. आपः शुन्धन्तु मैनसः।

२. ये ते पाशा वरुण सप्त-सप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विशिता रुशन्तः।
छिन्द्रतु सर्वे अनृतं वदन्तं यःसत्यं वदति तं सृजन्तु ॥

३. अश्वमेधसहस्रञ्च सत्यञ्च तुलयाधृतम्।
अश्वमेध सहस्रेण सत्यमेव विशिष्यते ॥

as in this. They,require to be taught rectitude of conduct much more than literature and science'.

127, 128. If you approach the Hindus with such feelings, you will teach them neither rectitude, nor science, nor literature. Nay, they might appeal to their own literature, even to their law-books, to teach us at least one lesson of truthfulness, truthfulness to ourselves, or, in other words,—humility. What does Yagnavalkya say ?

129. 'It is not our hermitage, he says—our religion we might say—still less the colour of our skin, that produces virtue; virtue must be practised. Therefore let no one do to others what he would not have done to himself.'

130. And the Laws of the Manavas, which were so much abused by Mill, what do they teach ?

131. 'Evil doers think indeed that no one sees them; but the gods see them, and the old man within'.

132. 'Self is the witness of Self, Self is the refuge of Self. Do not despise thy own Self, the highest witness of men.'

133. 'If, friend, thou thinkest thou art self-alone, remember there is the silent thinker (the Highest Self) always within thy heart, and *he* sees what is good, and what is evil.'

134. 'O friend, whatever good thou mayest have done from thy very birth, all will go to the dogs, if thou speak an untruth'.

135, 136. Or in Vashishtha : 'Practise righteousness, not unrighteousness; speak truth, not untruth; look far, not near, look up towards the Highest not towards anything low'.

137. No doubt, there is moral depravity in India, and where is there no moral depravity in this world But to appeal to international statistics would be, I believe, a dangerous game. Nor must we forget that our standards of morality differ, and, on some points, differ considerably from those recognised in India ; and we must not wonder, if sons do not at once condemn as criminal what their fathers and grandfathers considered right. Let us hold by all means to *our* sense of what is right and what is wrong; but in judging others whether in public or in private life, whether as historians or politicians, let us not forget that a kindly spirit will never do any harm. Certainly I can imagine nothing more mischievous, more dangerous, more fatal to the permanence of English rule in India, than for the young Civil Servants to go to that country with the idea that it is a sink of moral depravity, and ant's nest of lies ; for no one is so sure to go wrong whether in public or in private life, as he who says in his haste : 'All men are liars'.

तुमने जो कुछ किया उसे कोई देखता या जानता नहीं), किन्तु तुम्हारे अन्तर्तम में विद्यमान उस साक्षी चेता पुरुष को तुम भूल गए हो। वह तुम्हारे दुष्कृत को जानता है, जिसकी उपस्थिति में तुमने दुराचरण किया। मनुष्य भले ही यह सोचता रहे कि उसने जो दुराचरण या पापाचार किया उसे दूसरा कोई नहीं जानता, किन्तु देवता उसे जानते हैं और प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर्तम में विद्यमान वह पुराणपुरुष भी जानता है।

१२३. ये ही उद्धरण पर्याप्त होंगे। मैं यहाँ फिर दोहराना चाहूँगा कि मैं भारतवासियों को लाखों-करोड़ों देवदूतों के रूप में प्रस्तुत करना नहीं चाहता, तथापि इतना तो चाहता ही हूं कि भारतवासियों पर असत्यशील होने का जो दोषारोपण किया जाता है वह सर्वथा निराधार है, यह भली-भाँति समझ और मान लिया जाए। भारत के लोग सत्यनिष्ठ नहीं होते—यह कहना सच नहीं है, अपितु सचाई के एकदम विरुद्ध भी है। आधुनिक युग अर्थात् एक हजार ईस्वी के बाद के समय के बारे में मैं यह कह सकता हूं। यदि आप किसी बच्चे को निरन्तर डराते-धमकाते रहेंगे तो वह झूठ बोलने लगेगा। इसी प्रकार यदि आप पूरे समाज या लाखों-करोड़ों लोगों को भयभीत किये रहेंगे तो निश्चय ही वे लोग आपके भय के उस विषदंश से बचने का प्रयत्न करेंगे। सत्य वास्तव में एक आनन्दप्रद वस्तु है। सम्भवतः यह सर्वाधिक आनन्ददायक है और मैं आपको यह भी विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि इस सत्य के लिए मनुष्य को अपने जीवन में बहुत बड़ी कीमत भी चुकानी पड़ती है। इसलिये जो बचपन से ही सच बोलने का आदी हो गया, वह सचमुच बहुत सुखी है। आज के युग में और इंगलैण्ड जैसे स्वतन्त्र देश में 'सच बोलना, सच के सिवा कुछ न बोलना' कुछ कठिन नहीं, किन्तु ज्यों-ज्यों हम बड़े होते हैं, त्यों-त्यों हमारे लिए सच बोलना और सच के सिवा कुछ न बोलना कठिन हो जाता है।

हिन्दुओं ने भी सत्य के बारे में इस तथ्य का आविष्कार कर लिया था। वे भी यह जान गए थे कि सच बोलना और सच के सिवा कुछ न बोलना कितना कठिन, अपितु असम्भव है। मुझे यहाँ 'शतपथ ब्राह्मण' का एक कथानक याद आ रहा है। उस कथानक से सत्य की वास्तविकता—सच बोलने में आनेवाली वास्तविक कठिनाई भली-भाँति उजागर हो जाती है। कथानक यह है—अरुण औपवसि को उसके घरवालों ने कहा—'अरुण ! तुम बड़े हो गए हो, अब तुम्हें अग्न्याधान कर लेना चाहिए।' अरुण औपवसि ने उत्तर दिया—तो 'क्या आप लोग चाहते हैं कि अब मैं मौन धारण कर लूं ? क्योंकि अग्न्याधान कर लेने वाले आहिताग्नि को कभी झूठ नहीं बोलना होता और यह तभी सम्भव है, जबकि कोई कुछ बोले ही नहीं। अग्न्याधान करने वाले के लिए सत्य को अपनाना और असत्य का परित्याग प्रथम नियम है।'

आपने देखा कि एक आहिताग्नि के लिए यज्ञाग्नि की उपासना करने में व्यक्ति को किस प्रकार सत्यनिष्ठ होना होता है।

१२४. सच बोलने के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को व्यक्त करने वाली अन्तर्तम की ऐसी नैराश्यपूर्ण सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति अन्यत्र शायद ही कहीं मिल सके। हमारे यहाँ 'मौन स्वर्ण और भाषा रजत है' की कहावत प्रचलित है, किन्तु ब्राह्मण-ग्रन्थ

NOTES

LECTURE-I

Towers of Silence. on which Parsis expose dead bodies that they may be devoured by vultures, as required by their religion.

Sir William Jones (1746-1794). became Judge of the Supreme Court at Calcutta in 1783. He was the first English scholar to study Sanskrit. Founder and first President of the Asiatic Society of Bengal, established 1784.

Thomas Colebrooke (1765-1837). A great mathematician and astronomer, and a profund Sanskrit scholar. Judge of the Sadar Diwani Adalat in 1801, and head of that court four years later; member of the Supreme Council from 1807 to 1812, and then of the Board of Revenue till the close of 1814 when he returned to England; President of the Asiatic Society of Bengal (1807-1814). Helped at the foundation of the Royal Asiatic Society, London, in 1823, and became its Director.

Hooker. (William Jackson). 1785-1865. English botanist; director of the Botanical garden of Kew, London.

Haeckel (Ernst Heinrich) 1834-1919. German biologist who publiashed an account of his Indian travels in 1882. The first to draw up a genealogical tree of the relationship between the various orders of animals.

Darics. Old Persian gold coins bearing the effigy of Darius.

Plato's Cratylus. Cratylus, 411 A. 'Still as I have put on the lion's skin, I must not be faint-hearted. Poasible, how ever, this may refer to Hercules, and not to the fable of the donkey in the lion's or the tiger's skin. In the *Hitopadesa*, a donkey, being nearly starved, is sent by his master into a cornfield to feed. In order to shield him he put a tiger's skin on him. All goes well till a watchman approaches, hiding himself under his grey coat, and trying to shoot the tiger. The donkey thinks it is a grey female donkey begins to bray, and is killed (M.M.).

Bopp. (Franz), 1791-1867. German philologist who first developed the scientific principles of Indo-European philology in the work mentioned by Max Muller.

Dugald Stewart. professor of Moral Philosophy at Edinburgh, 1785-1810.

Sir John Malcolm. 1769-1833. Distinguished himself in the E.I. Company's military and diplomatic servic. Author of *A History of Persia* and several works on Indian historical subjects.

LECTURE II

Wilson. (Horace Hayman), 1786-1860. Was in the E.I. Company's service in India from 1808-1832. Assay-master of the Calcutta mint, 1816-1832. A great orientalist who combined a variety of attainments as linguist historian, chemist, accountant, numismatist, actor and musician. An edition of the Vishnu Purana, a translation of the Rig-veda and the

के उक्त वाक्य में तो इससे कहीं अधिक ऊँची बात कही गयी है।

१२५. आप लोग भारत के शासक और भाग्यविधाता बनकर वहाँ के लाखों-करोड़ों लोगों पर हुकूमत करने के लिए जा रहे हैं, अतः मैं आपके हृदयों में पैठे हुए भारतीयों के प्रति दुर्भावनापूर्ण पूर्वाग्रहों को उखाड़ फेंकना अपना कर्त्तव्य समझता हूं, क्योंकि ऐसे पूर्वाग्रह कभी-कभी पागलपन का रूप भी ले-लेते हैं । मैं ऐसे अनेक रंगीन या काली चमड़ी-वाले (भारतीय) लोगों को जानता हूं जिन्हें मैं अपने से श्रेष्ठ मानता हूं और मैं चाहता हूं कि आप लोग भी वहाँ ऐसे लोगों की तलाश करें ; निश्चित ही आपको बहुत-से ऐसे लोग मिल जाएँगे ।

यदि आपको वहाँ किसी भारतीय से (उसकी चारित्रिक कमी के कारण) निराशा भी हाथ लगे तो, ऐसे अवसरों पर अपने ही देशवाशी किसी ऐसे अंग्रेज के बारे में सोच लेना चाहिए, जिसका आप पहले पूरा भरोसा करते रहे, किन्तु बाद में उस पर से आपका विश्वास उठ गया (जैसे कोई आपका ही देशवासी कभी अविश्वसनीय हो सकता है, वैसे ही किसी परिस्थिति-विशेष में कोई भारतीय भी आपका विश्वास खो बैठे, यह स्वाभाविक है, किन्तु इससे आप यह निष्कर्ष तो नहीं निकाल सकते कि सभी भारतीय अविश्वसनीय होते हैं)। कोई अन्तर्राष्ट्रीय निर्णय लेते समय हमारा भटक जाना स्वाभाविक है, जैसेकि अभी कुछ दिन पहले ही एक राजनयिक के लिखे विवरण में मैंने ये शब्द पढ़े हैं—

१२६. 'यह तो अनुभव से ही सीखा जा सकता है कि चारित्रिक दृष्टि से कमजोर या चरित्रहीन भारतीय लोगों के लिए इससे बढ़कर और कोई आश्चर्य का विषय नहीं हो सकता कि विश्व में कोई ऐसी भी जाति (अंग्रेज) है, जिसकी बात पर पूरा भरोसा किया जा सकता है ।...भारत के लोगों को इस मामले में अपनी हीनता का जितना अहसास है, उतना अन्य किसी बात का नहीं (अर्थात् वे अपनी इस कमी को खूब महसूस करते हैं)। इसलिए ज्ञान-विज्ञान और साहित्य आदि की शिक्षा देने की अपेक्षा हिन्दुस्तानियों को आचरण की शुद्धता सिखाना कहीं अधिक आवश्यक है ।'

१२७. यदि आप लोग ऐसी ही भावना लेकर भारत पहुंचेंगे तो निश्चित ही आप हिन्दुओं को न तो शुद्धाचरण ही सिखा पाएँगे और न ज्ञान-विज्ञान ही । इसके विपरीत सत्य का पाठ पढ़ने के लिए—अपने प्रति अर्थात् सम्पूर्ण मानव-जाति के प्रति सत्यशील रहना सिखाने के लिए—वे हमें ही अपने साहित्य, यहाँ तक कि अपने धर्मशास्त्र और स्मृति-ग्रन्थों को पढ़ने के लिए प्रेरित करना चाहेंगे ।

१२८. इस सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य क्या कहते हैं, जरा ध्यान दीजिए—

१२९. 'संन्यास, वेशभूषा अथवा धर्म से हममें सदाचरण की वृत्तियाँ नहीं उत्पन्न हुआ करतीं और रंगरूप या वर्ण से तो बिल्कुल ही नहीं । सद्गुण या श्रेष्ठाचरण तो अभ्यास के द्वारा ही सम्भव है । अतः मनुष्य जिस बात को दूसरों से अपने लिए किया जाना पसन्द नहीं करता —नहीं चाहता कि लोग मेरे साथ ऐसा करें, वह स्वय भी दूसरों के साथ कदापि वैसा न करे।'

१३०. मानव-धर्मशास्त्र—जिसकी बुराई करते हुए मिल अघाता नहीं, हमें क्या

edition with a continuation of Mill's *History of India* are the best known among his works.

Another Professor of Sanskrit. E. B. Cowell (1826-1903). First Professor of Sanskrit at Cambridge, 1867. Professor of History and Political Economy, Presidency College, Calcutta (1856-1864). Also Principal of the Sanskrit College, Calcutta, from 1858-1864, when he left India.

Col. Sleeman. 1788-1856. Soldier diplomat, author. Advised against the annexation of Oudh.

Mill. (James). Published in 1818 his *History of British India*. Associate of Bentham and Ricardo and fatner of John Stuart Mill.

Dr. Robertson. (Wiliam), 1721-1793. Scottish historian ; author of *Disquistion Concerning the Knowledge which the Ancients had of India* (1791).

Sir Henry Maine. 182--1888. Legal member of the Supreme Council of India from 1862-1869. Professor of Jurisprudence at Oxford, 1869-1878. Author of *Ancient Law* (1861), *Village Communities in the East and West* (1871) and other works.

Nearchus. Greek Admiral who came to India with Alexander the Great, some years before Megasthenes.

Artaxerxes Mnemon. King of Persia, 405-359 B.C. Defeated and killed at the battle of Cunaxa his brother Cyrus who had rebelled against him.

Mountstuart Elphinstone. 1779-1859. Governor of Bombay, 1819-1827; twice refused the Governor-Generalship of India. The Elphinstone College, Bombay, was founded in his honour. His *History of India* (1841) has earned for him the title of 'The Tacitus of Modern Historians'.

Bishop Heber. 1783-18 6. Bishop of Calcutta; travelled continuosly throughout India in the discharge of his episcopal duties, and wrote a narrative of his travels in his *Journey through India*. Died at Trichinopoly.

Galileo. Galilei (1564-162). Italian mathematician and physicist. Persecuted by the Inquisition for his opinion that the sun, not the earth, was the centre of the planetary world. He was, the founder of experimental science in Italy.

Darwin. (Charles), 1809-1882. His *Origin of the Species*, published in 159, started the theory of Evolution, which was at first vilently opposed.

Colenso. (J. W.), 1814-1883. Bishop of Natal. His criticisms of certain books of the Bible led to his excommunication ; he was, however, restored to his seet by the law courts.

Stanley. (Aurther), 1815-1881 Dean of Westminster. Leader of the Broad Church Movement and courageous advocate of religious toleration.

सिखाता है, देखिए—

१३१. दुराचरण करने वाला व्यक्ति सोचता है कि वास्तव में उसे कोई नहीं देख रहा, किन्तु देवता उसे और उसके प्रत्येक कार्य को सदा देखते रहते हैं और उसके अन्तर्तम में विद्यमान वह पुराण और अविनश्वर पुरुष भी सदा उसे देखता है।

१३२. आत्मा ही आत्मा का साक्षी तथा आत्मा ही आत्मा की शरण है। इस लिए अपने इस आत्मतत्त्व को धोखा देने की कभी कोशिश मत करो, क्योंकि यह मानव का सर्वोच्च साक्षी है।

१३३. मित्र ! यदि तुम समझते हो कि तुम एकाकी हो तो तुम्हें ध्यान रहे कि वह मुनि (मौन प्रचेता—सर्वोच्च आत्मतत्त्व) सदा तुम्हारे हृदय में विद्यमान रहता है और वह सदा यह देखता रहता है कि क्या भला है और क्या बुरा।

१३४. मित्र ! यदि तुम असत्य बोलोगे तो तुमने अपने जन्म से लेकर आज तक जो भी पुण्य और सत्कर्म किये हैं, उन्हें तत्काल कुत्ते खा जाएँगे।

१३५. इसी प्रकार 'वसिष्ठस्मृति' में कहा गया है—

१३६. सत्कर्मशील बनने का प्रयत्न करो, दुष्कर्मी नहीं। दूरदर्शी बनो, अदूरदर्शी नहीं। उस सर्वोच्च सत्ता की ओर निहारो, किसी निम्न या निकृष्ट वस्तु की ओर नहीं।

१३७. निस्सन्देह भारत के लोगों में भी चारित्रिक गुणों की कमी हो सकती है, और फिर इस संसार में ऐसा भला कौन-सा देश है, जहाँ चारित्रिक गुणों की कमी न पायी जाय ? किन्तु, यदि हम अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र के आंकड़े इकट्ठा करने लगें तो मैं समझता हूं कि यह एक बड़ा खतरनाक खेल होगा (सम्भवतः दूसरे देशों में पायी जाने वाली चारित्रिक दुर्बलताओं को देखकर हम चौंक उठें)। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि हमारे चारित्रिक मानदण्ड दूसरों से भिन्न हो सकते हैं और भारत में स्वीकृत कुछ चारित्रिक बिन्दु तो हमसे बिल्कुल मेल नहीं खाते। साथ ही हमारे बाप-दादा जिस बात को बुरा समझते थे, आज यदि हम उसे बुरा नहीं मानते तो इसमें कोई विचित्र बात थोड़े ही है !

हमें सदा यह ध्यान में रखना है कि क्या सही है और क्या गलत। चाहे सार्वजनिक जीवन हो या वैयक्तिक, ऐतिहासिक हो या राजनैतिक, किसी भी क्षेत्र में व्यवहार करते समय इस सार्वभौम सिद्धान्त को सदा ध्यान में रखना होगा कि करुणा की भावना से कभी किसी की कोई हानि नहीं होती। निश्चित ही कोई युवक इस भावना के साथ भारत का आई० सी० एस० अफसर बनकर जाए कि मैं असत्य के दीमक घर तथा हीन-चरित्र लोगों के आगार भारत में जा रहा हूं, तो उसके लिए इससे बढ़कर दुःखदायक और खतरनाक दूसरी और कोई बात नहीं हो सकती। चाहे वैयक्तिक रूप से हो अथवा सामाजिक रूप से, इससे बढ़कर और कोई गलत बात नहीं कही जा सकती कि 'सब लोग झूठे हैं'।

+ ० +

LECTURE III

HUMAN INTEREST OF SANSKRIT LITERATURE

1 My first Lecture was intended to remove the prejudice that India is and always must be a strange country to us, and that those who have to live there will find themselves stranded, and far away from that living stream of thought and interests which carries us along in England and in other countries of Europe.

2. My second Lecture was directed against another prejudice, namely, that the people of India with whom the young Civil Servants will have to pass the best years of their life are a race so depraved morally, and more particularly so devoid of any regard for truth, that they must always remain strangers to us, and that any real fellowship or friendship with them is quite out of the question.

3. To-day I shall have to grapple with a third prejudice, namely, that the literature of India, and more especially the classical Sanskrit literature, whatever may be its interest to the scholar and the antiquarian, has little to teach us which we cannot learn better from other sources, and that at all events it is of little practical use to young civilians. If only they, learn to express themselves in Hindustani or Tamil that is considered quite enough; nay, as they have to deal with men and with the ordinary affaire of life, and as, before everything else, they are to be men of the world and men of business, it is even supposed to be dangerous, if they allowed themselves to beocme absorbed in questions of abstruse scholarship or in researches on ancient religion mythology, and philosophy.

4. I take the very opposite opinion, and I should advise every young man who wishes to enjoy his life in India, to spend his years there with profit to himself and to others, learn Sanskrit, and to learn it well.

5. I know it will be said, What can be the use of Sanskrit at the present day ? Is not Sanskrit a dead language ? And are not the Hindus themselves ashamed of their ancient literaure ? Do they not learn English, and do they not prefer Locke, and Hume, and Mill to their ancient poets and philosophers ?

6. No doubt Sanskrit, in one sense, is a dead language. It was, I believe, a dead language more than two thousand years ago.

तृतीय व्याख्यान

संस्कृत साहित्य का मानव पक्ष

१. भारत एक अनोखा देश है और वह आप के लिए सदा अजनबी बना रहेगा, या जिनको वहाँ रहना पड़ेगा वे अपने आप को बिल्कुल एकाकी पायेंगे और इंग्लैण्ड या यूरोप के किसी भी देश में रहते हुए चिंतन और अभिरुचियों के जिस सजीव स्रोत से जीवन सरस और उत्फुल्ल बना रहता है, उसके भी वहां कहीं दर्शन न होंगे। आप लोगों की ऐसी भ्रांत धारणा को जड़-मूल से उखाड़-फेंकना मेरे पहले व्याख्यान का उद्देश्य था।

२. मैंने अपने दूसरे व्याख्यान में (इंग्लैण्ड के लोगों के) इस पूर्वाग्रह के निराकरण की चेष्टा की थी कि भारत के जिन लोगों के साथ आई० सी० एस० अधिकारियों को अपने जीवन का श्रेष्ठतम (यौवन) काल बिताना होगा, चारित्रिक दृष्टि से वे बहुत दुर्बल हैं और सत्य के प्रति उनकी कोई आस्था नहीं। वे लोग हमारे लिए सदा अनजाने ही बने रहेंगे, इसलिए उनके साथ किसी प्रकार के साहचर्य या मैत्री का तो प्रश्न ही नहीं।

३. आज मुझे इस तीसरे व्याख्यान में इस पूर्वाग्रह को निरस्त करने का प्रयत्न करना है कि भारतीय-साहित्य और विशेष रूप से संस्कृत-साहित्य का विद्वानों व पुरातत्त्व प्रेमियों के लिये कुछ महत्त्व भले ही हो, किन्तु यह हमें ऐसी कोई बात नहीं सिखा सकता, जिसे हम किसी दूसरी भाषा के साहित्य से न सीख सकें। किसी युवक आई० सी० एस० ऑफिसर के लिए तो संस्कृत का ज्ञान कतई उपयोगी नहीं हो सकता। उनके लिए यही काफी है कि वे हिन्दुस्तानी या तमिल में बातचीत करना सीख लें दैनिक जीवन के कार्य-कलापों और जन-साधारण से ही तो उनका मुख्य रूप से वास्ता पड़ने वाला है। अतः उन्हें विश्व नागरिक —इस विश्व का श्रेष्ठ व एक सुसभ्य सदस्य तथा काम-काजी मानव बनना है। इस दृष्टि से उनके लिए यह बड़ा ही खतरनाक होगा कि वे संस्कृत का गहन साहित्यिक वैदुष्य, प्राचीन धर्म की विशेषज्ञता और देवतावाद या दर्शन जैसे विषयों के शोध-कार्य में लग जायें।

४. किन्तु मैं ऐसी बातों से सर्वथा असहमत हूं। मेरा मत है कि जो कोई युवक भारत में रहते हुए जीवन का वास्तविक आनंद प्राप्त करना चाहता है और भारत-प्रवास की इस अवधि से जो स्वयं को तथा दूसरों को लाभान्वित करना चाहता है, मैं उसे समझाना चाहूंगा कि वह संस्कृत भाषा अवश्य सीखे और संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त करे।

५. मैं जानता हूं कि यह पूछा जाएगा कि आज के युग में संस्कृत की क्या प्रासंगिकता है ? क्या संस्कृत एक मृत भाषा नहीं है ? और क्या स्वयं हिन्दुओं को भी आज इस

Buddha, about 500 B.C., commanded his disciples to preach in the dialects of the people; and King Asoka, in the third century B.C., when he put up his Edicts, which were intended to be read or, at least, to be understood by the people, had them engraved on rocks and pillars in the various local dialects from Cabul in the North to Mysore in the South, from Gujerat in the West to Orissa in the East. These various dialects are as different from Sanskrit as Italian is from Latin, and we have therefore good reason to suppose that, in the third century B.C., if not earlier, Sanskrit had ceased to be the spoken language of the people at large.

7. There is an interesting passage in the Chullavagga, where we are told that, even during Buddha's lifetime, some of his pupils, who were Brahmans by birth, complained that people spoiled the words of Buddha by every one repeating them in his own dialect (nirutti). They proposed to translate his words into Sanskrit; but he declined, and commanded that each man should learn his doctrine in his own language.

8. And there is another passage, quoted by Hardy in his Manual of Buddhism, where we read that at the time of Buddha's first preaching each of the countless listeners thought that the sage was looking towards him. and was speaking to him in his own tongue, though the language used was Magadhi.

9. Sanskrit, therefore, as a language spoken by the people at large, had ceased to exist in the third century B.C.

10. Yet such is the marvellous continuity between the past and the present in India, that in spite of repeated social convulsions, religious reform, and foreign invasions, Sanskrit may be said to be still the only language that is spoken over the whole extent of that vast country.

11. Though the Buddhist sovereigns published their edicts in the vernaculars, public inscriptions and private official documents are composed in Sanskrit to the present day. And though the language of the sacred writings of Buddhists and Jainas was borrwed from the vulgar dialects, the literature of India never ceased to be written in Paninean Sanskrit, while the few exceptions, as, for instance, the use of Prakrit by women and inferior characters in the plays of Kalidasa and others, are themselves not without an important historical significance.

12. Even at the present moment, after a century of English rule and English teaching, I believe that Sanskrit is more widely under-

प्राचीन साहित्य (की चर्चा) से कुछ शर्म-सी महसूस नहीं होती ? क्या वे लोग अंग्रेजी नहीं पढ़ रहे हैं ? और क्या वे अपने प्राचीन (संस्कृत के) कवियों और दार्शनिकों आदि की अपेक्षा लॉक और ह्यूम व मिल को श्रेष्ठ नहीं समझते हैं ?

६. निस्संदेह संस्कृत एक दृष्टि से अप्रयुक्त भाषा है। मेरी समझ में दो हजार से भी कुछ अधिक वर्ष पहले से इस का आम बोल-चाल में प्रचलन उठ गया था। ५०० ई० पू० के लगभग बुद्ध ने अपने अनुयायियों को आदेश दिया था कि वे उनके उपदेशों का जनता की बोलियों में प्रचार किया करें। और ई० पू० तीसरी सदी में सम्राट् अशोक ने उत्तर में काबुल से लेकर दक्षिण में मैसूर और पश्चिम में गुजरात से पूर्व में उड़ीसा तक अपने शिलालेखों और स्तंभों पर अपने धर्मादेश स्थानीय बोलियों में ही उत्कीर्ण करवाये हैं, ताकि जनसाधारण उन्हें सरलता से पढ़ ले या उनका आशय तो समझ ही ले। ये विभिन्न बोलियाँ संस्कृत से वैसे ही भिन्न हैं, जैसे लैटिन से इतालवी भाषायें और इसलिए हमें यह मान लेने का एक अच्छा प्रमाण है कि यदि उससे और पहले नहीं तो ई० पू० तीसरी सदी में सामान्यतया संस्कृत में बोल-चाल का आम प्रचलन बंद हो गया था।

७. चुल्लबग्ग में एक रोचक प्रसङ्ग है। इसमें बताया गया है कि बुद्ध के कुछ ब्राह्मण शिष्यों ने उनसे शिकायत की कि कुछ लोग उनके उपदेशों को अपनी-अपनी बोलियों में सुनाकर विकृत कर रहे हैं। इसलिए उन्होंने उनके समक्ष यह सुझाव रखा कि उन उपदेशों को संस्कृत में अनूदित कर दिया जाये किन्तु बुद्ध ने यह बात नहीं मानी और कहा कि सब लोग अपनी-अपनी बोलियों में ही उनके उपदेश सुने सीखें।

८. थामस हार्डी ने 'मैन्युअल ऑफ बुद्धिज्म' नामक अपनी पुस्तक में एक और उद्धरण दिया है कि बुद्ध के प्रथम प्रवचन को सुनने वाले अपार श्रोताओं में से प्रत्येक यही समझ रहा था कि बुद्ध उसी की ओर निहार रहें हैं और उसी की भाषा में बोल रहे हैं। यद्यपि वे मागधी प्राकृत में बोल रहे थे।

९. इसलिए ई० पू० तीसरी सदी तक सामान्य रूप से जन-साधारण की बोल-चाल के रूप में संस्कृत का प्रयोग बंद हो चुका था।

१० तथापि प्राचीन और आधुनिक भारत के बीच यह एक शानदार निरंतरता है कि बार-बार के सामाजिक विप्लव, धार्मिक सुधार और विदेशी आक्रमणों के बावजूद इस विशाल भारत के अत्यधिक विस्तृत सम्पूर्ण क्षेत्र में मात्र संस्कृत ही एक ऐसी भाषा है जो सर्वत्र समान रूप से बोली और समझी जाती है।

११ यद्यपि बौद्ध सम्राटों ने अपने धर्मादेश स्थानीय बोलियों (विभिन्न प्राकृतों) में ही प्रचारित किये थे। फिर भी, सार्वजनिक अभिलेख और वैयक्तिक तथा सरकारी अभिलेखादि आज तक (अधिकतर) संस्कृत में ही लिखे जाते हैं। और यद्यपि बौद्ध और जैन धर्मग्रंथों की भाषा आम लोगों की बोलियों से ली गयी थी, तथापि पाणिनीय संस्कृत में भारत के साहित्य की निर्माण-प्रक्रिया कभी बंद नहीं हुई। हाँ, कालिदास और ऐसे ही दूसरे कवियों के नाटकों में स्त्रियों तथा कुछ अन्य पात्रों के द्वारा प्रयुक्त प्राकृतों का भी ऐतिहासिक विकास-क्रम में अपना एक विशेष महत्त्व भी है, किन्तु इन्हें तो अपवाद ही

stood in India than Latin was in Europe at the time of Dante.

13. Whenever I receive a letter from a learned man in India, it is written in Sanskrit. Whenever there is a controversy on questions of law and religion, the pamphlets published in India are written in Sanskrit. There are Journals written in Sanskrit which must entirely depend for their support on readers who prefer that classical language to the vulgar dialects. There is THE PANDIT, published at Benares, containing not only editions of ancient texts, but treatises on modern subjects, reviews of books published in England, and controversial articles, all in Sanskrit.

14. Another paper of the same kind is the 'Pratna-Kamra-nandini','the Delight of lovers of old things,' published likewise at Benares, and full of valuable materials.

15. There is also the 'Vidyodaya', 'the Rise of Knowledge,' a Sanskrit journal published at Calcutta, which sometimes contains important articles. There are probably others, which I do not know.

16. There is a Monthly Serial published at Bombay, by M.Moreshwar Kunte, called the 'Shad-darshana-Chintanika' or 'Studies in Indian Philosophy,' giving the text of the ancient systems of philosophy, with commentaries and treatises, written in Sanskrit, though in this case accompanied by a Marathi and an English translation.

17. Of the Rig-veda, the most ancient of Sanskrit books, two editions are now coming out in monthly numbers, the one published at Bombay, by what may be called the liberal party, the other at Prayaga (Allahabad) by Dayananda Sarasvati, the representative of Indian orthodoxy. The former gives a paraphrase in Sanskrit, and a Marathi and an English translation; the latter a full explanation in Sanskrit, followed by a vernacular commentary. These books are published by subscription, and the list of subscribers among the natives of India is very considerable.

18. There are other journals, which are chiefly written in the spoken dialects, such as Bengali, Marathi, or Hindi; but they contain occasional articles in Sanskrit also, as, for instance, the 'Harischandra-chandrika', published at Benares, the 'Tattvabodhini', published at Calcutta, and several more.

19. It was only the other day that I saw in the 'Liberal', the journal of Keshub Chunder Sen's party, an account of a meeting between Brahmavrata Samadhyayi, a Vedic scholar of Nuddea, and Kashinath Tryambak Telang, a M. A. of the University of Bombay. The one came from the east, the other from the west, yet both could

कहा जा सकता है।

१२. और आज भारत में अंग्रेजों के शासन व अंग्रेजी की पढ़ाई के सौ वर्ष बीत जाने पर भी मैं समझता हूं कि यूरोप में महाकवि दान्ते के समय में जितनी लातीनी समझी और जानी जाती थी, भारत में आज संस्कृत उससे कहीं अधिक समझी जाती है।

१३-१६. मुझे भारत के किसी विद्वान् का जब कोई पत्र मिलता है तो वह संस्कृत में ही लिखा होता है। भारत में धर्म और विधि-संहिताओं को लेकर उत्पन्न होने वाले मतभेदों से सम्बद्ध विषयों की चर्चा संस्कृत में लिखित पुस्तक-पुस्तिकाओं में ही होती है। भारत में संस्कृत की पत्र-पत्रिकायें भी प्रकाशित होती हैं और, इनका व्यय-भार भी ऐसा पाठक-वर्ग ही उठाता है जो इस क्लासिकल भाषा को अपनी-अपनी बोलियों से भी ज्यादा महत्त्व देता है। बनारस से प्रकाशित होने वाला एक पत्र है, **पंडित**। इसमें प्राचीन ग्रंथों के शुद्ध पाठ ही नहीं अपितु आधुनिक विषयों की चर्चा, इंग्लैण्ड में प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा व अनेक विवादास्पद विषयों पर लेखादि भी रहते हैं, और ये सब-के-सब संस्कृत में। बनारस से ही निकलने वाली एक दूसरी पत्रिका है 'प्रत्नकम्रनंदिनी'। इसमें भी बहुमूल्य सामग्री रहती है। कलकत्ता से प्रकाशित होने वाला एक पत्र है 'विद्योदय'। इसमें भी बीच-बीच में महत्त्व पूर्ण लेख रहते हैं। इनके अतिरिक्त संस्कृत के और भी कई पत्र होंगे, जिनका मुझे पता नहीं है। श्री एम० मोरेश्वर कुंठ के द्वारा बंबई से मासिक रूप से प्रकाशित 'षड्दर्शनचिन्तनिका' नामक ग्रंथमाला में छहों दर्शनों का मूल पाठ और उनकी संस्कृत में व्याख्या विवेचना के साथ मराठी व अंग्रेजी में अनुवाद भी दिया जा रहा है।

१७. संस्कृत के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद के भी मासिक रूप से प्रकाशित आजकल दो संस्करण निकल रहे हैं। इनमें से बम्बई से निकलने वाली मासिक ग्रंथमाला में ऋग्वेद के पद पाठ आदि के साथ संस्कृत, मराठी और अंग्रेजी में अर्थ भी दिये जा रहे हैं। भारत की प्राचीन परंपरा के पोषक (स्वामी) दयानंद सरस्वती के द्वारा प्रयाग से मासिक रूप से प्रकाशित 'ऋग्वेद' में मंत्रों की संस्कृत व्याख्या के साथ हिंदी अनुवाद भी दिया जा रहा है। और ये दोनों ग्रथमालाएं नियमित ग्राहकों से प्राप्त धन से ही प्रकाशित हो रही हैं। भारत में ही ऐसे ग्राहकों की काफी बड़ी संख्या है।

१८. बंगला, मराठी या हिंदी आदि भाषाओं में प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं में भी बीच-बीच में संस्कृत के लेखादि छपते रहते हैं। (भारतेन्दु हरिश्चंद्र द्वारा संपादित तथा) बनारस से प्रकाशित 'हरिश्चंद्रचंद्रिका' तथा कलकत्ता से निकलने वाली 'तत्त्वबोधिनी' व ऐसे ही कई अन्य पत्र-पत्रिकायें हैं।

१९. एक दिन केशवचन्द्र सेन की संस्था की पत्रिका 'लिबरल' में नदिया के वैदिक विद्वान् ब्रह्मावर्त्त समध्यायी और बंबई (विश्व-विद्यालय) काशीनाथ त्र्येयंबक एम० ए० के पारस्परिक मिलन का समाचार पढ़ा। इनमें से एक भारत के पूर्वी क्षेत्र से और दूसरा पश्चिमी क्षेत्र से आया था, फिर भी ये दोनों धारा-प्रवाह संस्कृत में वार्तालाप करते रहे।

२० इससे भी अधिक विशेष ध्यान देने योग्य वहाँ के मुद्रणालयों द्वारा प्रकाशित

converse fluently in Sanskrit.

20. Still more extraordinary is the number of Sanskrit texts, issuing from native presses, for which there seems to be a large demand, for if we write for copies to be sent to England, we often find that, after a year or two, all the copies have been bought up in India itself. That would not be the case with Anglo Saxon texts in England, or with Latin texts in Italy !

21. But more than this, we are told that the ancient epic poems of the Mahabharata and Ramayana are still recited in the temples for the benefit of visitors, and that in villages large crowds assemble around the Kathaka, the reader of these ancient Sanskrit poems, often interrupting his recitations with tears and sighs, when the hero of the poem is sent into banishment, while when he returns to his kingdom, the houses of the village are adorned with lamps and garlands. Such a recitation of the whole of the Mahabharata is said to occupy ninety days, or sometimes half a year. The people at large require, no doubt, that the Brahman narrator (Kathaka) should interpret the old poem, but there must be some few people present who understand, or imagine they understand, the old poetry of Vyasa or Valmikl.

22. There are numbers of Brahmans even now, when so little inducement exists for Vedic studies, who khow the whole of the Rig-veda by heart and can repeat it; and what applies to the Rig-veda applies to many other books.

23. But even if Sanskrit were more of a dead language than it really is, all the living languages of India, both Aryen and Dravidian draw their very life and soul from Sanskrit. On this point, and on the great help that even a limited knowledge of Sanskrit would render in the acquisition of the vernaculars, g, and others better qualified than I am, have spoken so often, though without any practical effect, that I need not speak again. Any candidate who knows but the elements of Sanskrit grammar will well understand what I mean, whether his special vernacular may be Bengali, Hindustani, or even Tamil. To a classical scholar I can only say that between a Civil Servant who knows Sanskrit and Hindustani, and another who knows Hindustani only, there is about the same difference in their power of forming an intelligent appreciation of India and its inhabitants, as there is between a traveller who visits Italy with a knowledge of Latin, and a party personally conducted to Rome by Messrs. Cook and Co.

24. Let us examine, however, the objection that Sanskrit literature is a dead or an artificial literature, a little more carefully, in

संस्कृत ग्रंथों की संख्या है। इन पुस्तकों की वहाँ इतनी मांग रहती है कि दो-तीन वर्षों में ही उनके संस्करण समाप्त हो जाते हैं, क्योंकि जब हम उनमें से कोई पुस्तक मंगाना चाहते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि पुस्तक की सब प्रतियाँ बिक गयीं। ऐंग्लो सैक्सन पुस्तकों या इटली में लातीनी पुस्तकों के बारे में यह बात नहीं कही जा सकती।

२१ और इससे भी बढ़कर—भारत के मंदिरों में आने वाले दर्शनार्थीगणों के लिए आज भी वहाँ 'रामायण' और 'महाभारत' आदि की कथाएँ होती हैं। गाँवों और कस्बों आदि में होने वाली कथाओं में आज भी बहुत बड़ी भीड़ लगती है और क्षेत्रीय भाषाओं में कथा सुनाने वाले कथावाचक के नेत्र नायक के वनगमन जैसे कारुणिक प्रसंगों के श्लोक सुनाते समय अश्रुसिक्त हो जाते हैं। इसी प्रकार श्री राम जैसे (चरित नायकों के अपनी राजधानी में वापस लौट आने के प्रसंगों के अवसर) पर वहाँ के घरों और बाजारों को खूब सजाया संवारा जाता है तथा दीपावली कीं जाती है। कहा जाता है कि महाभारत का पारायण तीन या छः मास में संपन्न होता है। यह ठीक है कि कथावाचक ब्राह्मण कथा का स्थानीय बोलियों में अर्थ समझाता है। तथापि कुछ श्रोता वाल्मीकि और व्यास के श्लोकों का अर्थ या भाव समझने वाले भी रहते ही हैं।

२२. वेदों के अध्ययनाध्यापन के प्रति उत्साह में कमी के रहते हुए भी आज भी बहुत से ऐसे ब्राह्मण मिलते हैं जिन्हें सम्पूर्ण ऋग्वेद कण्ठस्थ है और जो सारे ऋग्वेद का मौखिक पाठ कर सकते हैं। ऋग्वेद के लिए प्रयुक्त यह कथन अन्य अनेक ग्रन्थों पर भी वैसे ही लागू होता है।

२३. यद्यपि संस्कृत जितनी और जिस अंश में एक अप्रयुक्त भाषा है, भले ही यह उससे भी अधिक क्यों न हो, तथापि **भारत की आर्य और द्राविड़ दोनों प्रकार की भाषाएं अपना जीवन और प्राण-शक्ति संस्कृत से ही ग्रहण करती हैं**। इस बिन्दु पर तथा संस्कृत का सीमित ज्ञान भी भारत की क्षेत्रीय भाषाओं को सीखने में कितना अधिक सहायक हो सकता है, यह समझाने के लिए मैंने तथा मुझसे भी अधिक योग्य अनेक व्यक्तियों ने इतनी अधिक बार बताया हैं, उसका कोई व्यावहारिक प्रभाव या लाभ भले ही न हुआ हो, मैं उसे यहां दोहराना नहीं चाहता। जिस प्रत्याशी को संस्कृत व्याकरण का आरम्भिक ज्ञान भी है, वह मेरे कथन को सम्यक्तया समझता है। मेरा आशय यह है कि भले ही उसकी, क्षेत्रीय भाषा बंगाली, हिन्दुस्तानी या तमिल ही क्यों न हो, किसी समझदार या विद्वान् के लिए तो मैं यही कह सकता हूँ कि एक संस्कृत तथा हिन्दुस्तानी दोनों भाषाओं के ज्ञाता एवं केवल हिन्दुस्तानी जानने वाले नागरिक प्रशासक के भारत और भारतवासियों की बौद्धिक प्रतिभा को परखने के सम्बन्ध में उनकी अपनी योग्यता व क्षमता में लगभग वैसा ही अंतर रहेगा जैसा कि इटली के एक लैटिन के ज्ञाता पर्यटक तथा मैसर्स कुक एण्ड कम्पनी के द्वारा आयोजित पर्यटक दल में सम्मिलित किसी व्यक्ति के इटली संबंधी ज्ञान में हो सकता है।

२४. तथापि संस्कृत साहित्य अप्रयुक्त और कृत्रिम है इस आपत्ति की भी परीक्षा करली जाए, ताकि हम जान सकें कि क्या इस में कुछ तथ्य है। कुछ लोगों का ख्याल है कि

order to see whether there is not some kind of truth in it. Some people hold that the literary works which we possess in Sanskrit never had any real life at all, that they were altogether scholastic productions, and that therefore they can teach us nothing of what we really care for, namely the historical growth of the Hindu mind. Others maintain that at the present moment, at all events, and after a century of English rule, Sanskrit literature has ceased to be a motive power in India, and that it can teach us nothing of what is passing now through the Hindu mind and influencing it for good or for evil.

25. Let us look at the facts. Sanskrit literature is a wide and a vague term. If the Vedas, such as we now have them, were composed about 1500 B.C., and if it is fact that considerable works continue to be written in Sanskrit even now, we have before us a stream of literary activity extending over three thousand four hundred years. With the exception of China there is nothing like this in the whole world.

26. It is difficult to give an idea of the enormous extent and variety of that literature. We are only gradually becoming acquainted with the untold treasures which still exist in manuscripts, and with the titles of that still larger number of works which must have existed formerly, some of them being still quoted by writers of the last three or four centuries.

27. The Indian Government has of late years ordered a kind of bibliographical survey of India to be made, and has sent some learned Sanskrit scholars, both European and native, to places where colleections of Sanskrit MSS are known to exist, in order to examine and catalogue them. Some of these catalogues have been published, and we learn from them that the number of separate works in Sanskrit, of which MSS. are still in S.L. existence, amounts to about 10,000. This is more, g believe, than the whole classical literature of Greece and Italy put together. Much of it no doubt, will be called mere rubbish; but then you know that even in our days the writings of a very eminent philosopher have been called 'mere rubbish.[7] What I wish you to see is this, that there runs through the whole history of India, through its three or four thousand years, a high road, or, is perhaps more accurate to say, a high mountain-Path of literature. It may be remote from the turmoil of the Plain, hardly visible perhaps to the millions of human beings in their daily struggle of life. It may have been trodden by a few solitary wanderers only. But ठ the historian of the human race, to the

आज हमें जो संस्कृत साहित्य उपलब्ध है, वह अपने वास्तविक या मूल रूप में कभी नहीं रहा, वह तो मात्र भाष्यकारों या व्याख्याताओं की बौद्धिक उपज है। इसलिए वह हिन्दु मस्तिष्क और चिंतन के विकास के बारे में हमें ऐसा कुछ नहीं सिखा सकते जिसकी ओर हमें ध्यान देना चाहिए। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि अंग्रेजों की एक सौ साल की हुकूमत के बाद आज संस्कृत की रचनात्मक व निर्माणात्मक शक्ति सर्वथा लुप्त हो चुकी है, इसलिए भारतीय मस्तिष्क की आधुनिक चिन्तनधारा के बारे में संस्कृत साहित्य से कुछ जानकारी नहीं मिल सकती और न यही जान सकते हैं कि आज का हिन्दू-चिन्तन किस प्रकार आगे बढ़ रहा है और इसका क्या भला या बुरा प्रभाव हो रहा है।

२५. तो आइये अब जरा इस आपत्ति की भी जांच पड़ताल कर ली जाए। सर्वप्रथम ध्यान में रखने योग्य तथ्य यह है कि 'संस्कृत साहित्य' यह एक अत्यन्त व्यापक और अस्पष्ट सी संज्ञा है। यदि वेद आज जिस रूप में हमें प्राप्त हैं, ई० पू० १५०० में संकलित हुए हैं और यदि यह भी सत्य है कि आज भी संस्कृत साहित्य पर्याप्त मात्रा में निर्मित हो रहा है, तो हमें साहित्यिप्रक वृत्तियों का एक ऐसा प्रवाह मिलता है जो ३४०० वर्ष से भी अधिक समय से निरंतर जारी है। चीन के सिवा सारे विश्व में साहित्य का ऐसा निरंतर प्रवाह अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

२६. संस्कृत साहित्य की इस अतिविशालता और विविधता की सही झलक दिखाना कठिन है। संस्कृत की पाण्डुलिपियों में विद्यमान विशाल ज्ञानराशि से धीरे-धीरे हम परिचित होते जा रहे हैं। इससे भी कहीं अधिक संख्या में हमें उन ग्रंथों के नाम मात्र ही मिल रहे हैं, जो कभी विद्यमान रहे होंगे, उनमें से कुछ के उद्धरण तो अभी ३-४ सौ वर्ष पहले तक के लेखकों ने दिए हैं।

२७. भारत सरकार ने कुछ वर्ष पहले ही भारतीय ग्रंथ-सूची का सर्वेक्षण करने के आदेश दिए हैं और भारत तथा यूरोप के कुछ संस्कृत के विद्वानों को ऐसे स्थानों में भेजने के लिए कहा है जहाँ संस्कृत पाण्डुलिपियों का संकलन है, ताकि उनका निरीक्षण कर सूचीपत्र बनाया जा सके। उनमें से कुछ सूचीपत्र प्रकाशित हो चुके हैं, जिनसे हमें ज्ञात होता है कि संस्कृत की विभिन्न प्रकार की पाण्डुलिपियाँ जो अभी तक विद्यमान हैं, दस हजार से भी अधिक हैं। इस प्रकार मैं समझता हूँ कि यूनान और इटली दोनों देशों के सम्पूर्ण क्लासिकल साहित्य से भी यह संख्या कहीं अधिक है। निस्सन्देह इनमें से अधिकतर ग्रन्थों को मात्र 'कूड़ा कर्कट' कह दिया जाएगा, किन्तु इस प्रकार तो आज के अपने युग के बहुत से सुविख्य।त दार्शनिकों की रचनाएं भी मात्र 'कूड़ा कर्कट' ही कहीं जा रही हैं, यह भी आप भली भाँति जानते ही हैं। मैं चाहता हूं कि इस साहित्य में आप यह देखे कि भारत के सम्पूर्ण इतिहास के बीच में से इसके तीन या चार हजार वर्ष से अभी अधिक लम्बे युग में एक राजपथ और अधिक सही शब्दों में कहें तो साहित्य की दुर्गम पर्वतीय घाटियों में से गुजरने वाला शुरू से लेकर आखीर तक जाने वाला एक अविच्छिन्न राजपथ विद्यमान है। हो सकता है यह राजपथ मैदानी विप्लवों से असम्पृक्त और अत्यन्त दूर या कटा रहा हो, तथा अपने दैनिक जीवन-संघर्ष में सदा उलझे रहने वाले कोटि-कोटि जन

student of the development of the human mind, those few solitary wanderers are after all the true representatives of India from age to age. Do not let us be deceived. The true history of the world must always be the history of the few; and we measure the Himalaya by the height of Mount Everest, we must take the true measure of India from the poets of the Veda, the sages of the Upanishads, the founders of the Vedanta and Sankhya philosophies, and the authors of the oldest law-books, and not from the millions who are born and die in their villages, and who have never for one moment been roused out of their drowsy dream of life.

28. To large multitudes in India, no doubt, Sanskrit literature was not merely a dead literature, it was simply non-existant; but the same might be said of almost every literature, and more particularly of the literatures of the ancient world.

29. Still, with all this, I am quite prepared to acknowledge to a certain extent the truth of the statement, that a great portion of Sanskrit literature has never been living and national, in the sense in which the Greek and Roman literatures reflected at times the life of a whole nation; and it is quite true besides, that the Sanskrit books which are best known to the public at large, belong to what might correctly be called the Renaissance period of Indian literature, when those who wrote Sanskrit had themselves to learn the language, as we learn Latin, and were conscious that they were writing for a learned and cultivated public only, and not for the people at large.

30. This will require a fuller explanation.

31. We may divide the whole of Sanskrit literature begining with the Rig-Veda and ending with Dayananda's Introduction to his edition of the Rig-veda, his by no means uninteresting Reg-veda-bhumika, into two great Periods: that preceding the great Turanian invasion, and that following it.

32. The former comprises the Vedic literature and the ancient literature of Buddhism, the latter all the rest.

33. If I call the invasion which is generally called the invasion of the Sakas, or the Scythians, or Indo-Scythiana, or Turushkas, the 'Turanian invasion,' it is simply because I do not as yet wish to commit myself more than I can help as to the nationality of the tribes who took possession of India, or, at least, of the government of India, from about the first century B.C. to the third century A.D.

34. They are best known by the name of 'Yueh-chi,' this being the name by which they are called in Chinese chronicles. These

सामान्य ने उसकी ओर कभी आँख भी न उठायी हो, भले ही कुछ एक एकाकी जन ही इस मार्ग पर चलने वाले पथिक रहे हों, किन्तु मानव जाति के इतिहासकार, और मानव चिंतन की विकासधारा के अध्येताओं के लिए तो वे कुछ एकांतचारी पथिक ही युग-युग से भारत के सच्चे प्रतिनिधि रहे हैं। हमें धोखा नहीं खाना चाहिए। विश्व का सच्चा इतिहास कुछ ही लोगों का इतिहास हो सकता है और जैसे हम हिमालय की ऊंचाई को माउण्ट एवरेस्ट से मापते हैं, वैसे ही हमें वैदिक ऋषियों, उपनिषदकारों तथा वेदान्त व सांख्य दर्शन के प्रवर्तकों तथा प्राचीनतम विधिशास्त्र-निर्माताओं आदि के माध्यम से ही भारत का मूल्यांकन करना चाहिए, न कि उन लाखों-करोड़ों लोगों से जो अपने गाव में पैदा होकर वहीं मर खप जाते और अपने जीवन की खुमारी स जिनकी आंख एक क्षण के लिए भी कभी खुल ही नहीं पाई।

२८. इसमें तो कोई संदेह नहीं कि भारत में बहुत बड़ी भीड़-भाड़ के लिए संस्कृत-साहित्य मृत साहित्य ही नहीं, अपितु अस्तित्वहीन साहित्य ही रहा है। किन्तु यह तो प्राय: प्रत्येक साहित्य के लिए कहा जा सकता है। और विशेषत: प्राचीन साहित्य के लिए तो और भी अधिक यह बात कही जाती है।

२९. यह सब कुछ होते हुए भी मैं इस कथन की सच्चाई को मानने को उद्यत हूँ, कि अपने समय के समाज को प्रतिबिम्बित करने के कारण यूनान और इटली का साहित्य जिस अर्थ में सजीव और राष्ट्रीय कहलाता है, संस्कृत-साहित्य के बहुत बड़े भाग को वैसा नहीं कह सकते। इसके अतिरिक्त यह भी सर्वथा सत्य है कि सामान्यतया भली-भाँति जानी-पहचानी संस्कृत पुस्तकें सही अर्थों में भारतीय साहित्य के पुनर्जागरण युग से सम्बद्ध हैं। आज जैसे हम लैटिन सीखतें हैं, उस समय संस्कृत साहित्यकार स्वयं भी वैसे ही संस्कृत सीखा करते थे, और यह भी उनके ध्यान में रहता था कि वे सुशिक्षित और सभ्य समाज के लिए लिख रहे हैं, जनसाधारण के लिए नहीं।

३०. इस विषय का कुछ अधिक विवेचन अपेक्षित है।

३१-३२. ऋग्वेद से लेकर स्वामी दयानन्द सरस्वती को रोचक ऋग्वेद भूमिका तक के साहित्य को हम दो भागों में निबद्ध कर सकते हैं —(1) तूरानियन आक्रमण से पूर्ववर्ती, (2) परवर्ती। वैदिक और बौद्ध-साहित्य प्रथम भाग में और शेष सब द्वितीय भाग में आता है।

३३. शक, सीथियन या भारतीय शक या तुरष्क आक्रमण को मैंने 'तुरानियन आक्रमण' इसलिए कहा है कि ई० पू० पहली से लेकर तीसरी सदी तक जो आक्रमणकारी कबीले भारत में विद्यमान थे या उसके किसी भाग पर शासन कर रहे थे, उनकी राष्ट्रीयता अभी तक ठीक से निर्धारित नहीं हो पाई है। उन्हें 'यूची' के नाम से ज्यादा अच्छी तरह जाना पहचाना जाता है। चीन के पुराने लेखों में उनका यही नाम है। चीन की यह सामग्री जिससे हमें उन जातियों के बारे में ज्ञान प्राप्त हुआ, उनके द्वारा भारत पर आक्रमण के पूर्वापर काल से संबद्ध है। दूसरी जातियों के साथ उनके संबन्ध के बारे में कई मत हैं। गुलाबी चमड़ी वाले इन लोगों को दौड़ते हुए घोड़ों पर बैठे ही बैठे लक्ष्य-भेद

Chinese chronicles form the principal source from which we derive our knowledge of these tribes, both before and after their invasion of India. Many theories have been started as to their relationship with other races. They are deseribed as of pink and white complexion and as shootin from horseback; and as there was some similarity between their Chinese name 'Yueh-chi' and the 'Gothi or Goths,' they were identified by Remusat with those German tribes, and by others with the 'Getae,' the neighbours of the Goths. Tod went even a step further, and traced the Jats in India and the Rajputs back to the 'Yuirh-chi and Getae.' Some light may come in time out of all this darkness, but for the present we must be satisfied with the fact tha between the first century before and the third century after our era, the greatest political revolution took place in India owing to the repeated inroads of Turanian, or, to use a sill less objectionable term, of Northern tribes. Their presence in India, recorded by Chinese historians, is fully confirmed by coins by inscriptions, and by the traditional history of the country, such as it is; but to my mind nothing attests the presence of these foreign invaders more clearly than the break, or I could almost say, the blank in the Brahmanical literature of India from the first century before to the third century after our era.

35. If we consider the political and social state of that country, we can easily understand what would happen in a case of invasion and conquest by a warlike race. The invaders would take possession of tne strongholds or castles, and either remove the old Rajahs, or make them their vassals and agents. Everything else would then go on exactly as before. The rents would be paid, the taxes collected and the life of the villegers, that is, of the great majority of the people of India, would go on almost undisturbed by the change of government. The only people who might suffer would be, or, at all events, might be the priestly caste, unless they should come to term with the new conquerors. The priestly caste, however, was also to a great extent the literary caste, and the absence of their old patrons the native Rajahs, might well produce for a time a complete cessation of literatry activity. The rise of Buddhism and its formal adoption by King Asoka had already considerably shaken the power and inflvence of the old Brahmanic hierarchy. The Northern conquerors, whatever their religion may have been, were certainly not believers in the Veda. They seem to have made a kind of compromise with Buddhism, and it is probably due to that compromise, or to an amalgamation of Saka legends with Buddhist doctrines, that we owe

में निपुण अच्छे घुड़सवार बताया गया है। चीनियों के द्वारा दिए गए उनके नाम यू-चि और 'गाँथ' या 'गाँथी' नामों में कुछ साम्य है। Remusat ने उनकी पहचान जर्मन गाँथ लोगों से की है। कुछ लोग उन्हें उन का पड़ोसी मानते हैं। टॉड इससे भी एक कदम आगे बढ़कर भारत के आधुनिक जाटों और राजपूतों की पहचान यूची और गाँथ लोगों से करता है। आशा है कि समय आने पर इस अंधकार-आवृत इतिहास में से भी प्रकाश की कुछ किरणें फूट निकलेंगी। किन्तु अभी तो हमें इतने से संतोष करना होगा कि ई० पू० पहली से ई० तीसरी सदी ई० तक बार-बार के तुरानियन आक्रमणों के कारण भारत में बहुत बड़ी उथल-पुथल हुई थी। इन लोगों को 'उत्तरी जातियाँ' यह अपेक्षाकृत कम आपत्तिजनक नाम दिया जा सकता है। भारत में उनकी उपस्थिति के जो विवरण चीनियों ने दिए हैं, सिक्कों, अभिलेखों व स्थानीय पारंपरिक इतिहास से उनका समर्थन होता है। किन्तु ई० पू० पहली सदी से तीसरी सदी ई० तक के इस युग में ब्राह्मण-साहित्य की अविद्यमानता या उस कड़ी के बीच में से टूट जाने से बढ़ कर सर्वथा स्पष्ट प्रमाण इन आक्रमणकारियों की वहाँ उपस्थिति के बारे में मेरे मन मस्तिष्क में दूसरा कोई नहीं है।

३५. भारत की तत्कालिक, राजनैतिक व सामाजिक अवस्था पर विचार करने पर अनायास ही स्पष्ट हो जाता है कि एक युद्धप्रिय जाति के आक्रमण एवं विजय के अनन्तर किसी देश की कैसी दशा हो सकती थी। आक्रान्ता जातियाँ महत्त्वपूर्ण सामरिक स्थानों व दुर्गों पर अपना अधिकार जमा लेती और या तो पुराने राजाओं को सत्ताच्युत कर देतीं या उन्हें अपना 'जी-हुज़ूरी' बना लेतीं। बाकी सब बातों में यथास्थिति बनी रहती। राजस्व और लगान आदि वैसे ही दिए लिए जाते। शासनतन्त्र के बदल जाने पर भी भारत के जनसामान्य के बहुत बड़े वर्ग—ग्रामीण समाज का जीवन ज्यों का त्यों चलता रहता। इससे केवल उन्हीं लोगों की जो पौरोहित्य वर्ग के थे, नये शासनतन्त्र के साथ अपनी पटरी न बैठ पाने के कारण बड़ी विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ता रहा। और यह ब्राह्मण वर्ग ही प्रमुखतया साहित्यिक वर्ग भी था। उन्हें देशी राजाओं का संरक्षण न मिलने के कारण कुछ समय के लिए पूर्ण प्रतिरोध उत्पन्न हो गया। बौद्धधर्म के उदय व सम्राट् अशोक के द्वारा उसके राजकीय धर्म के रूप में अपना लिए जाने से भी पुरानी ब्राह्मण धार्मिक परंपरा और शक्ति को बहुत बड़ा धक्का लगा। उत्तर से आने वाली उक्त आक्रमणकारी जातियों का धर्म चाहे कुछ भी रहा हो, निश्चित ही वेदों में उनकी कुछ आस्था न थी। वे बौद्ध धर्म के साथ अपना समन्वय बैठाते प्रतीत होते हैं। शकों की दन्त कथाओं व बौद्ध सिद्धान्तों से कुछ लगाव भी उन्हें है। इसी के फलस्वरुप कनिष्क के द्वारा आयोजित बौद्ध महा-सभा या संगीति में महायान शाखा का प्रादुर्भाव हुआ। पहली सदी ई० में भारत के (अधिकतर भाग पर) शासन करने वाला कनिष्क भी उत्तरी आक्रमणकारी जाति का ही था।

३६. ऐसी अवस्था में संपूर्ण संस्कृत साहित्य को तुरानियन आक्रमण का पूर्ववर्ती और परवर्ती इन दो भागों में बाँट दिया जाए तो पहले वाङ्मय को पुरातन व स्वाभाविक तथा दूसरे साहित्य को नव्य एवं आयाससाध्य साहित्य कह सकते हैं।

the so called Mahayana form of Buddhism which was finally settled at the Council under Kanishka, one of the Turanian rulers of India in the first century A.D.

36. If then we divide the whole of Sanskrit literature into these two periods, the one anterior to the great Turanian invasion, othe ther posterior to it, we may call the literature of the former period 'ancient and natural,' that of the latter 'modern and artificial'.

37. Of the former period we possess, 'first,' what has been called the 'Veda,' i.e. Knowledge, in the widest sense of the word—a considerable mass of literature, yet evidently a wreck only, saved out of a general deluge; 'secondly,' the works collected in the Buddhist Tripitaka, now known to us chiefly in what is called the Pali dialect, the Gatha dialects, and Sanskrit, and probably much added to in later times.

38. The second period of Sanskrit literature comprehends everything else. Both periods may be subdivided again, but this does not concern us at present.

39. Now I am quite willing to admit that the literature of the second period, the modern Sanskrit litrature, never was a living or national literature. It may here and there contain relics of earlier times, adapted to the literary, religous, and moral tastes of a later period; and whenever we are able to disentangle those ancient elements, they may serve to throw light on the past, and, to a certain extent, supplement what has been lost in the literature of the Vedic times. The metrical Law-books, for instance, contain old materials which existed during the Vedic period, partly in prose, as Sutras, partly in more ancient metres, as Gathas. The Epic poems, the Mahabharata and Ramayana, have taken the place of the old Itihasas and Akhyanas. The Puranas, even, may contain materials, though much altered, of what was called in Vedic literature the Purana.

40. But the great mass of that later literature is artificial or scholastic, full of interesting campositions, and by no means devoid of originality and occasional beauty; yet, with all that, curious only, and appealing to the interests of the Oriental scholar far more than the broad human sympathies of the historian and the philosopher.

41. It is different with the ancient literature of India, the literature dominated by the Vedic and the Buddhistic religions. That literature opens to us a chapter in what has been called the Education of the Human Race, to which we can find no parallel anywhere else. Whoever cares for the historical growth of our language, that, is, of

३७. पहले वर्ग में वह साहित्य आता है, जिसका नाम 'वेद' है या व्यापक अर्थों में जिसे 'ज्ञान' कह सकते हैं। वैदिक साहित्य बहुत विशाल और समृद्ध है, किन्तु समय की बाढ़ में इसके कुछ अवशेष ही बच पाए हैं। दूसरे स्थान पर बौद्ध त्रिपिटक हैं, ये मुख्यतः पाली प्राकृत में मिलते हैं। इनका कुछ अंश गाथा और संस्कृत में भी है। इसमें बहुत कुछ बाद में जुड़ गया लगता है।

३८. दूसरे वर्ग के संस्कृत-साहित्य में अन्य सब विधायें सम्मिलित हैं। पहले और दूसरे दोनों वर्गों के साहित्य को अनेक अन्य उपविधाओं में भी विभाजित किया जा सकता है, किन्तु यहाँ उसकी चर्चा आवश्यक नहीं है।

३९. अब मैं यह मान लेने को प्रस्तुत हूँ कि दूसरे काल का आधुनिक संस्कृत-साहित्य कभी भी जीवन्त या राष्ट्रीय साहित्य नहीं रहा। हाँ, उसमें जहाँ-तहाँ साहित्यिक, धार्मिक तथा नैतिक परवर्ती रुचि के अनुकूल पड़ने वाले पुराने साहित्य के कुछ अवशेष भी मिल जाते हैं। जब हम इनमें विद्यमान पुरातन अंशों की ग्रन्थियाँ सुलझा लेते हैं तो उससे अतीत पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है और किसी सीमा तक वैदिक काल के लुप्त साहित्य की पूर्ति भी हो जाती है। उदाहरण के लिये पद्यबद्ध स्मृति-ग्रन्थों में वैदिक युग की वह सामाग्री समाविष्ट है, जो सूत्र ग्रन्थों के गद्य में और कुछ उससे भी पुराने गाथा-छन्दों में निर्मित है ; पुराने इतिहास और आख्यानों का स्थान 'रामायण' और 'महाभारत' ने ले लिया। पुराणों में वैदिक वाङ्मय के 'पुराणों' की बहुत सी सामाग्री सुरक्षित है, भले ही बहुत परिवर्तित ही क्यों न हो।

४०. इस दूसरे वर्ग के साहित्य का अधिकांश आयाससाध्य और वैदुष्यपूर्ण है। वैसे इसमें मौलिकता की कहीं कोई कमी नहीं तथा ये रचनायें रोचक, सरस, सुन्दर और अलंकृत हैं।

यह साहित्य ऐतिहासिकों तथा दार्शनिकों की अपेक्षा प्राच्यविद्याविदों की अभिरुचियों को ही अधिक आर्कषित करता है। यह भारत के प्रत्न वैदिक साहित्य तथा बौद्ध-साहित्य से भिन्न प्रकार का साहित्य है।

४१. वैदिक साहित्य हमारे समक्ष मानव-जाति की शिक्षा कहलाया जाने वाला एक ऐसा अध्याय खोलता है, जिसका समानान्तर कोई दूसरा अध्याय हमें अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

जो अपनी भाषा के ऐतिहासिक विकास, अपनी चिन्तन-धारा की क्रमिक अभिव्यक्ति, धार्मिक-पौराणिक आख्यानों के बारे में जानना चाहता है, जो उस विज्ञान के मूल को समझना चाहता है, जो आगे चलकर नक्षत्र-विद्या के नाम से विख्यात हुआ, जो व्याकरण, निरुक्त या व्युत्पत्ति-विज्ञान एवं छन्द-शास्त्र आदि के बारे में अध्ययन करना चाहता है जो दार्शनिक चिन्तन की प्रथम अभिव्यक्ति एवं धर्म-परंपरा, रीति-रिवाज, प्रथा 'समय' (अनुबन्ध) पर आधारित परिवार, ग्राम तथा राज्यों के जीवन के निर्माण की दिशा में किये गये प्रथम एवं प्रारंभिक प्रयत्नों के बारे में ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, उसे अब यूनान, रोम और जर्मनी के साहित्य के बराबर ही वैदिक वाङ्मय पर भी

our thoughts; whoever cares for the first intelligible development of religion and mythology; whoever cares for the first foundation of what in later times we call the science of astronomy, metronomy, grammar, and etymology; whoever cares for the first intimations of philosophical thought, for the rst attempts at regulating family life, village life, and state life, as founded on religion, ceremonial, tradition and contract (samaya)—must in future pay the same attention to the literature of the Vedic period as to the literatures of Greece and Rome and Germany.

42. As to the lessons which the early literature of Buddhism may teach us, I need not dwell on them at present. If I may judge from the numerous questions that are addressed to me with regard to that religion and its striking coincidences with Christianity, Buddhism has already become a subject of general interest, and will and ought to become so more and more. One that whole class of literature, however, it is not my intention to dwell in this short course of Lectures, which hardly suffice even for a general survey of Vedic literature, and for an elucidation of the principal lessons which, I think, we may learn from the Hymns, the Brahmanas, the Upanishads, and the Sutras.

43. It was a real misfortune that Sanskrit literature became first known to the learned public in Europe through specimens belonging to the second, or, what I called, the Renaissance period. The Bhagavadgita, the plays of Kalidasa, such as Sakuntala or Urvasi, a few episodes from the Mahabharata and Ramayana, such as that of Nala, the febles of the Hitopadesa, and the sentences of Bhartrihari are, no doubt, extremely curious; and as, at the time when they first become known in Europe they were represented to be of extreme antiquity, and the work of a People formerly supposed to be quite incapable of high literaray efforts, they naturally attracted the attention of men such as Sir William Jones in England, Herder and Goethe in Germany, who were pleased to speak of them in terms of highest admiration. It was the fashion at that time to speak of Kalidasa, as, for instance, Alexander von Humboldt did even is so recent a work as his Kosmos, as 'the great contemporary of Virgil and Horace, who lived at the splendid Court of Vikramaditya,' this Vikramaditya being supposed to be the founder of the Samvat era, 56 B.C. But all this is now changed. Whoever the Vikramaditya was who is supposed to have defeated the Sakas, and to have founded another era, the Samvat era, 56 B.C., he certainly did not live in first century B.C. Nor are the Indians looked upon any longer as an illiterate race, and

ध्यान देना होगा।

प्रारंभिक बौद्ध-साहित्य से हमें जो शिक्षा मिल सकती है, मुझे यहाँ उसकी चर्चा नहीं करनी है। बौद्ध-धर्म और ईसाई-धर्म में प्रत्यक्ष दृश्यमान महत्त्वपूर्ण समानताओं के बारे में मुझसे अनेक प्रश्न पूछे जाते रहे हैं, उनके आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ कि बौद्ध मत हमारे यहाँ सामान्य रुचि का विषय समझा जाने लगा है। आगे चलकर उसके प्रति रुचि अधिकाधिक बढ़ेगी और बढ़नी भी चाहिये।

४२. मेरा यह विचार नहीं कि व्याख्यानमाला की इस संक्षिप्त-सी अवधि में उस सम्पूर्ण वैदिक साहित्य की चर्चा करूँ या वैदिक सूक्तों, ब्राह्मण-ग्रंथों, उपनिषदों और सूत्र-ग्रंथों से जो प्रमुख शिक्षायें हमें मिलती हैं, उन पर प्रकाश डालूं। क्योंकि इतने थोड़े समय में तो वैदिक साहित्य का मामूली सर्वेक्षण भी नहीं किया जा सकता।

४३. वास्तव में यह एक प्रकार से दुर्भाग्य ही था कि यूरोप के शिक्षित वर्ग का संस्कृत-साहित्य से प्रथम परिचय द्वितीय युग, अथवा मैं जिसे 'पुनर्जागरण'-युग कहता हूँ, की कृतियों के नमूनों के माध्यम से हुआ। भगवद्गीता, कालिदास के 'शकुन्तला' और 'उर्वशी' जैसे नाटक 'महाभारत' और 'रामायण' के नलोपाख्यान आदि, हितोपदेश की कथाएँ तथा भर्तृहरि के पद्य निस्संदेह अनूठे व रोचक हैं। जब यूरोप के लोगों को उनके बारे में पहले-पहल पता लगा, तब इन कृतियों को प्राचीनतम रचना का प्रतिनिधि तथा ऐसे लोगों की कृतियाँ मान लिया गया, जिन्हें पहले किसी भी प्रकार के उत्कृष्ट साहित्य के सर्जन के लिए नितांत अयोग्य समझा जाता था। इसलिए स्वभावतः इंग्लैण्ड के सर विलियम जोन्स तथा जर्मनी के हर्डर और गेटे जैसे महानुभवों का ध्यान इन्हीं रचनाओं की ओर गया और वे इनकी बेहद प्रशंसा करने लगे। इन दिनों कालिदास की चर्चा करना यूरोप में एक फैशन-सा बन गया था। उदाहरण के लिये एलैक्जैण्डर हम्बोल्ड्ट ने आजकल की भी 'कोस्मोस' नामक अपनी कृति में कालिदास को विरजिल और होरेस का महान् समकालिक व विक्रमादित्य की सभा का सभासद् बताया है। यह विक्रमादित्य ५६-५७ ई०-पू० में प्रचारित विक्रम-संवत् का प्रवर्त्तक माना जाता है, किन्तु अब यह धारणा बदल गयी है। विक्रमादित्य चाहे कोई भी रहा हो, जिसके बारे में यह माना जाता है कि उसने शकों को पराजित किया था और विक्रमी संवत् के नाम से ५६(५७) ई० पू० में एक नया संवत् चलाया था, वह निश्चित रूप से ईसा की पहली सदी में नहीं हुआ। अब भारतीयों को न तो एक अशिक्षित जाति ही माना जाता है और न ही उनके काव्यों को सौंदर्यविहीन। इसके विपरीत, अब उन्हें भी उसी मानदण्ड से मापा जाता है, जिससे ईरान, अरब, इटली या फ्रांस के लोगों को मापा जाता है। यह भी मान लिया गया है कि संस्कृत के उन अन्य अनेक नाटकों—जिनकी पाण्डुलिपियों पर हमारे ग्रंथागारों की अलमारियों में धूल जम रही है—की अपेक्षा कालिदास के नाटक बहुत अधिक उत्कृष्ट नहीं हैं। संस्कृत-साहित्य के शोधकर्त्ता एवं विवेचक विद्वान् अब उन्हें उतना प्राचीन भी नहीं मानते। ई० ५८५-८६ (शके ५०७) के एक शिलालेख में भारवि के साथ कालिदास का एक विख्यात कवि के रूप में उल्लेख हुआ है। मेरी समझ में कालिदास को इससे बहुत पहले का मानने का कोई कारण दिखाई नहीं देता। कहा जाता है कि भारवि के 'किरातार्जुनीयम्' काव्य के १५वें

their poetry as popular and artless. On the contrary, they are judged now by the same standards as Persians and Arabs, Italians or French; and, measured by that standard, such works as Kalidasa's plays are not superior to many plays that have long been allowed to rest in dust and peace on the shelves of our libraries. Their antiquity is no longer believed in by any critical Sanskrit scholar. Kalidasa is mentioned with Bharavi as a famous poet in an inscription dated A.D. 585-6 (507 Saka era), and for the present I see no reason to place him much earlier. Avinita, who wrote a commentary on fifteen cantos of Bharavi's Kiratarjuniya, is said to have lived about 470 A.D. But even if we accept this date, Bharavi and Kalidasa need not have lived before the fifth century A.D. As to the Laws of Manu, which used to be assigned to a fabulous antiquity, and are so still sometimes by those who write at random or at second-hand, I doubt whether, in their present form they can be olde than the fourth century of our era, nay I am quite Prepared to see an even later date assigned to them. I know this will seem heresy to many Sanskrit scholars, but we must try to be honest to ourselves. Is there any evidence to constrain us to assign the Manava-dharma-sastra Such as we now possess it, written in continuous Slokas; to any date anterior to 300 A.D.? And if there is not, why should we not openly state it, challenge opposition, and feel grateful if our doubts can be removed?

44. That Manu was a name of high legal authority before that time, and that Manu and the Manavam are frequently quoted in the ancient legal Sutras, is quite true; but this serves only to confirm the conviction that the literature which succeeded the Turanian invasion is full of wrecks saved from the intervening deluge. If what we call the 'Laws of Manu' had really existed as a Code of Laws, like the Code of Justinian, during previous centuries, is it likely that it should nowhere have been quoted and appealed to?

45. Varahamihira (who died 587 A.D.) refers to Manu several times, but not to a Manava-dharma-sastra; and the only time where he seems actually to quote a number of verses from Manu, these verses are not to be met with in our text.

46. I believe it will be found that the fourth, fifth, and sixth centuries were the age of the literary Renaisance in India. That Kalidasa and Bharavi were famous at that time, we know from the evidence of inscriptions. We know that in the sixth century the fame of Indian Literature had reached Persia, and that the King of Persia, Khosru Nushirvan (reigned 531-579 A.D.), sent his physician,

सर्ग का टीकाकार अविनीत ई० ४७० के लगभग विद्यमान था और यदि इसे स्वीकार भी कर लें, तो भी भारवि और कालिदास को चौथी-पाँचवीं सदी से पहले का मानने की हमें कोई आवश्यकता नहीं। 'मनुस्मृति' को काल्पनिक रूप से अत्यन्त प्राचीन माना जाता रहा और आज भी सहसा अथवा सुनी-सुनाई बातों के आधार पर उसे बहुत पुराना मान लिया जाता है, किन्तु मुझे इसमें संदेह है कि 'मनुस्मृति' अपने वर्त्तमान रूप में चौथी सदी से पूर्व की है। इतना ही क्यों, मैं तो यह मानने को तैयार हूँ कि इस रचना के लिये और भी बाद की तिथि निर्धारित की जानी चाहिये। मैं जानता हूँ कि इससे अनेक संस्कृत विद्वानों को कुछ बुरा लगेगा, किन्तु हमें अपने प्रति ईमानदार रहना है। ऐसा कोई साक्ष्य या प्रमाण है जिसके आधार पर मानव-धर्म-शास्त्र-जैसा कि आज श्लोकबद्ध उपलब्ध है—का समय ई० ३०० से पहले मानने को हम विवश हों। यदि ऐसा कोई प्रमाण नहीं तो क्यों न हम सबके सामने यह बात कहें तथा विपक्ष को अपना मत प्रस्तुत करने का अह्वान करें? और यदि हमारी शंकाओं का निवारण हो जाये तो उनके हम कृतज्ञ हों।

४४-४५. पहले भी मनु का नाम एक उत्कृष्ट धर्म-शास्त्री के रूप में लिया जाता रहा है और पुरातन धर्मसूत्रों में 'मनु' या 'मानव' का बार-बार उल्लेख है। किन्तु इससे इतना ही प्रमाणित होता है कि तुरानियन आक्रमण के बाद के साहित्य में उस बड़े विप्लव के बाद बचे हुए प्रत्न वाङ्मय के अवशेष भी यत्र तत्र बचे रह गये। यदि जस्टी-नियन की संहिता की भाँति पहली सदियों में 'मानव-धर्म-शास्त्र' भी संहितावद्ध था तो कहीं भी उसे उद्धृत क्यों नहीं किया गया।

वराहमिहिर (मृत्यु ५८७ ई०) अनेक बार मनु का नाम लेते हैं, किन्तु कहीं भी 'मानव-धर्मशास्त्र' की चर्चा नहीं करते। जहाँ वे वास्तव में मनु के कुछ श्लोक उद्धृत करते प्रतीत भी होते हैं, वे श्लोक आज की मनुस्मृति में कहीं मिलते ही नहीं।

४६. मेरा विश्वास है कि शीघ्र ही यह सिद्ध हो जायेगा कि चौथी, पाँचवीं और छठी सदी भारत में साहित्यिक-पुनर्जागरण का युग था। शिलालेख साक्षी हैं कि उस समय तक कालिदास और भारवि विख्यात हो चुके थे। हम जानते हैं कि छठी सदी में भारतीय साहित्य की ख्याति ईरान तक पहुँची हुई थी और यह कि ईरान के सम्राट-खुसरू नौशेरवां (५३१-५७९ ई०) ने 'पंचतंत्र' की कुछ कथाओं अथवा उनके मूलरूप का संस्कृत से पहलवी में अनुवाद करने के लिये अपने चिकित्सक बारजोई को भारत भेजा था। प्रसिद्ध 'नवरत्न' अथवा 'नवकवि' भी पूर्णतया नहीं तो आंशिक रूप से इसी युग के हैं। मुझे इसमें संदेह है कि जो संस्कृत-साहित्य हमें उपलब्ध है, वैदिक और बौद्ध वाङ्-मय को छोड़कर अन्य कोई रचना इससे बहुत पहले की प्रमाणित हो सके।

४७. यद्यपि लौकिक संस्कृत-साहित्य के जो नमूने यहाँ पहली बार लोगों के सामने आए, उनसे यूरोपवासियों में संस्कृत-साहित्य के प्रति रुझान और आकर्षण जाग्रत होने में बड़ी सहायता मिली और आज भी भारतीय साहित्य के प्रति एक उथली सहानुभूति बनाये रखने में ये रचनाएँ आंशिक रूप से सहायक सिद्ध हो रही हैं, किन्तु अधिक गम्भी-रता से अध्ययन करने वाले विद्यार्थी शीघ्र ही इन रचनाओं से निराश हो गये और यह

Barzoi, to India, in order to translate the feble of the Panchatantra, or rather than the original, from Sanskrit into Pahlavi. The famous 'Nine gems.' or 'the nine classics,' as we should say, have been referred, at least in part, to the same age. and I doubt whether we shall be able to assign a much earlier date to anything we possess of Sanskrit literature, excepting always the Vedic and Buddhistic writings.

47. Although the specimens of this modern Sanskrit literature, when they first became known, served to arouse a general interest, and serve even now to keep alive a certain superficial sympathy for Indian literature, more serious students had soon disposed of these compositions, and while gladly admitting their claim to be called pretty and attractive, could not think of allowing to Sanskrit literature a place amog the world-literatures, a place by the side of Greek and Latin, Italian, French, English or German.

48. There was indeed a time when people began to imagine that all that was worth knowing about Indian literature was known, and that the only ground on which Sanskrit could claim a place among the recognised branches of learning in a University was its usefulness for the study of the Science of Language.

49. At that very time, however, now about forty years ago, a new, start was made, which has given to Sanskrit scholarship an entirely new character. The chief auther of that movement was Burnouf then professor at the *College de France* in paris, an excellent scholar, but, at the same time a man of vide views and true historical instincts, and the last man to waste his life on mere Nalas and Sakuntalas. Being brought up in the old traditions of the classical school in France (his father was the author of the well-known Greek Grammer), then for a time a promising young barristor, with influential friends such as Guizot, Thiers, Mignet, Villmain, at his side, and with a brilliant future before him, he was not likely to spend his life on pretty Sanskrit ditties. What he wanted when he threw himself on Sanskrit was history, human history, world-history, and with an unerring grasp he laid hold of Vedic literature and Buddhist literature, as the two stepping-stones in the slough of Indian literature. He died young, and has left a few arches only of the building he wished to rear. But his spirit lived on in his pupils and his friends, and who would deny that the few impulse, directly or indirectly, to all that has been accomplished since by the students of Vedic and Buddhist literature, was given by Burnouf and his lectures at the *College de France*.

सोचकर कि उनकी मान्यतायें लोगों को आकर्षक और सुन्दर लगें, कई विद्वानों ने संस्कृत साहित्य को विश्व-साहित्य में स्थान ही नहीं दिया। उन्होंने ग्रीक, लेटिन, इटालियन, फ्रेंच, इंग्लिश और जर्मन-साहित्य के साथ संस्कृत-साहित्य को बैठाया ही नहीं।

४८. एक समय था जबकि लोग यह समझने लगे थे कि भारतीय साहित्य में जो कुछ ज्ञातव्य था, वह सब जान लिया गया है। विश्वविद्यालयों में स्वीकृत पाठ्य-विषयों में संस्कृत के स्थान पाने का एक मात्र आधार भाषा-विज्ञान में उसकी उपयोगिता मानी जाने लगी।

४९. ठीक ऐसे ही समय में आज से लगभग ४० वर्ष पूर्व एक ऐसी नयी ज्ञानदृष्टि का आविर्भाव हुआ, जिसके फलस्वरूप यूरोप के संस्कृत विद्वानों को एक नयी दिशा मिल गयी। संस्कृत-साहित्य के प्रति इस नवीन दृष्टि-सम्पन्न आन्दोलन के प्रमुख पुरोधा थे—पेरिस के कॉलेज द फ्राँस के तात्कालिक प्रोफेसर बर्नूफ। वे बड़े प्रभावशाली और जाने-माने विद्वान् तो थे ही, उनका दृष्टिकोण भी बहुत उदार था और उनमें एक सच्चे ऐतिहासिक की भावना तथा परख भी विद्यमान थी। वे नल और शकुन्तला में ही सारा समय बिता देने वाले यूरोपियन विद्वानों में अन्तिम थे। उनके पिता सुविदित ग्रीक-व्याकरण के लेखक थे और उनका पालन-पोषण तथा पठन-पाठन फ्रांस की पुरानी परम्पराओं के अनुसार हुआ था। कुछ समय तक उन्होंने एक योग्य बैरिस्टर के रूप में कार्य किया। यूजोट; चर्स; मिग्नेट, विलमेन जैसे मित्रों के साथ रहने वाले बर्नूफ ने अपने अत्युज्ज्वल भविष्य की ओर से मुंह मोड़कर संस्कृत के लिये अपना, जीवन खपा देने का तो कभी विचार ही नहीं किया था। जब उन्होंने अपने-आपको संस्कृत के लिये समर्पित किया तो वे इसके माध्यम से इतिहास, मानव-इतिहास और विश्व-इतिहास में अपनी पकड़ को मजबूत करना चाहते थे।

श्री बर्नूफ ने वैदिक एवं बौद्ध साहित्य में अपनी इसी निर्भ्रान्त तथा मजबूत पकड़ के फलस्वरूप भारतीय वाङ्मय की लचीली भूमि में दो बड़ी पक्की आधारशिलायें रख दीं। वे जिस भव्य भवन का निर्माण करना चाहते थे, वे उसकी अभी मेहराबें ही बना पाये थे कि युवावस्था में ही हमसे सदा के लिये बिछुड़ गये। किन्तु उनकी आत्मा एवं प्रेरणा उनके अपने शिष्यों एवं मित्रों में कार्य करती रही। इसे भला कौन अस्वीकार करेगा कि उनके बाद आज तक वैदिक एवं बौद्ध-वाङ्मय के क्षेत्र में यूरोपियन विद्वानों के द्वारा जो अभूतपूर्व कार्य हुआ है, वह सब उन्हीं की प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रेरणा तथा 'कॉलिज द फ्रांस' में दिये गये उनके व्याख्यानों का ही सुफल है।

५०. अब आप शायद मुझसे पूछना चाहेंगे कि—**'तो संस्कृत के उस प्राचीन साहित्य में ऐसा क्या है, जो हमें अन्यत्र नहीं मिल सकता ?**

मेरा उत्तर यह है कि जिस आर्य-मानव को हम लोग अब तक यूनानी, रोमन, जर्मन या स्लाव आदि नानाविध रूप-रंगों में जानते आये हैं, संस्कृत-साहित्य के माध्यम से अब हम उनके एक सर्वथा नये चारित्रिक वैशिष्ट्य संपन्न व्यक्तितत्त्व से परिचित हो गये हैं। उत्तर की ओर प्रवासी आर्य-मानव की जहाँ कर्म-तत्परता एवं राजनैतिक क्षमता

50. What then, you may ask, do we find in that ancient Sanskrit literature and can not find anywhere else ? My answer is, We find there the Aryan man, whome we know in his various characters, as Greek, Roman, Celt and slave, in an entirely new character. Whereas in his migrations northward his active and political energies are called out and brought out to their highest perfection, we find the other side of the human character, the passive and meditative, carried to its fullest growth in India. In some of the hymns of the Rig-veda we can still watch an earlier phase. We see the Aryan tribes taking possession of the land, and under the guidance of such warlike gods as Indra and the Maruts, defending their new homes against the assults of the black-skinned aborigines as well as against the inroads of later Aryan colonists. But that period of war soon came to an end, and when the great mass of the people had once settled down in their homesteads, the military and political duties seem to have been monopolised by what we call a caste, that is by a small aristocracy, while the great majority of the people were satisfied with spending their days within the narrow spheres of their villages, little concerned about the outside world, and content with the gifts that nature bestowed on them without much labour. Bhartrihari says :

51. 'There is fruit on the trees in every forest, which every one who likes may pluck withaut trouble. There is cool and sweet water in the pure rivers here and there. There is a soft bed made of twigs of beautiful creepers. And yet wreched people suffer pain at the door of the rich !'

52. At first sight we may feel inclined to call this quiet enjoyment of life, this mere looking on, a degeneracy rather than growth. It seems so different from what we think life ought to be. Yet, from a higher point of view, it may appear that those Southern Aryas have chosen the good part, or at least the part good for them. while we, Northern Aryas, have been careful and troubled about many things.

53. It is all events a problem worth considering whether, as there is in nature a South and a North, there are not two hemispheres also in human nature, both worth developing—the active, combative, and political on one side. the passive, meditative, and philosophical on the other : **and for the solution of that problem no literature furnishes such ample materials as that of the Veda, beginning with the Hymns and ending with the Upnishads. We inter into a new world —not always an attractive one, least of all to us: but it possesses**

अपने चरमोत्कर्ष पर जा पहुंची, किन्तु दक्षिण की ओर के 'आर्य' जन की एक अन्य प्रकार की प्रकृति— चिंतन-मनन व बौद्धिक क्षमता—का चरम विकास भारत में हुआ। ऋग्वेद के कुछ सूक्तों में हमें अब भी आर्यजन की पहली अवस्था की झलक मिल जाती है। इन्द्र, मरुत् जैसे युद्ध-देवताओं के नेतृत्व में हम आर्यजनों को भारत के कृष्णवर्ण आदिवासियों के धावों एवं बाद में आने वाले आर्यों के दलों से अपने आवासों की रक्षा में तत्पर पाते हैं। किन्तु लड़ाई-भिड़ाई और संघर्ष के वे दिन शीघ्र ही समाप्त हो गये। एक बार लोग अपने स्थानों पर ठीक से जम गये तो अपने-अपने क्षेत्र की सुरक्षा और प्रशासन का दायित्त्व आभिजात्य वर्ग-विशेष ने अपने ऊपर ले लिया, जबकि जनसाधारण का बहुत बड़ा भाग अपने गांव के तंग घरों में ही दिन बिता देने में मस्त रहने लगा। उन्हें बाहरी दुनिया से कोई सरोकार नहीं था। अधिक श्रम किये बिना ही प्रकृति से उन्हें जो कुछ मिल जाता, वे उसी में संतुष्ट रहने लगे। जैसा कि भर्तृहरि ने कहा है—

फलों से लदे वृक्षों से जंगल भरे पड़े हैं। उन फलों को जब चाहे अनायास ही तोड़कर अपना पेट भरा जा सकता है। जहाँ देखो वहीं शीतल-मधुर जलपूर्ण स्वच्छ पवित्र नदियाँ बह रही हैं। सोने के लिए वृक्ष— लताओं और मृदुल घास के सुकोमल कालीन सर्वत्र बिछे हुए हैं। इस प्रकार खाने-पींने, उठने-बैठने तथा सोने के लिये प्रकृति ने हमें इतना कुछ प्रदान किया है, फिर भी ये कृपण लोग कुछ मिल जाने की आशा में धनवानों के द्वार पर पड़े कष्ट उठाते हैं।

५१. आपाततः प्रतीत होता है कि यह स्थिति जीवन के लिये परमानन्ददायक है, किन्तु थोड़ा-सा विचार करने पर यह आर्यों की परम्परा के सर्वथा विपरीत प्रतीत होती हैं। यह उन्नति की नहीं, ह्रास की परिचायक है। हम आर्य लोग जीवन को जैसा बनाना चाहते हैं, यह प्रवृत्ति उसके एकदम विपरीत है। तथापि इससे भी ऊँची दृष्टि से विचार करने पर प्रतीत होगा कि भारतीय आर्यों ने अपने जीवन के लिये श्रेयस्कर तत्त्व को चुना था, जबकि, उत्तर की ओर आने वाले हम यूरोपवासी आर्य लोग थोडे से ही संतुष्ट न होकर प्रभूत भौतिक समृद्धि को ही सब कुछ मान बैठे।

५२. यहाँ यह भी विचारणीय है कि जैसे प्रकृति या भूगोल में उत्तर और दक्षिण हैं। कहीं ठीक उसी प्रकार मानव-प्रकृति में भी तो उत्तरी और दक्षिणी क्षेत्र विद्यमान नहीं हैं? पहला क्रियाशील संघर्षमय और राजनैतिक है तो दूसरा शान्त, चिंतनशील एवं दार्शनिक। निश्चित ही ये दोनों विकसित होने चाहिये और इस गुत्थी को सुलझाने के लिये ऋग्वेद के सूक्तों से आरंभ होकर उपनिषदों में समाप्त होने वाले वेद जितनी प्रचुर सामग्री प्रस्तुत करते हैं, उतनी संसार के अन्य किसी वाङ्मय में नहीं मिलेगी।

वेदों का स्वाध्याय हमें एक सर्वथा नये संसार में पहुंचा देता है। चाहे हमें इसका प्रत्येक अंश आकर्षक और सरस न भी लगे, तो भी आप देखेंगे की वैदिक वाङ्मय में आद्यन्त एक प्रकार की मनोहारिता विद्यमान है, और यह है उसकी नैसर्गिकता और अकृत्रिमता। दूसरी सभी प्राकृतिक वस्तुओं की भाँति वैदिक साहित्य का विकास भी नैसर्गिक रूप में ही हुआ है। जैसे निसर्ग-विकसित अन्यान्य वस्तुओं में कोई-न कोई उद्देश्य

one charm, it is real, it is of natural growth and like everything of natural growth, I believe it had a hidden purpose, and was intended to teach us some kind of lesson that is worth learning and that certainly we could learn nowhere else. We are not called upon either to admire or to despise that ancient Vedic literature : we have simply to study and to try to understand it.

54. There have been silly persons who have represented the development of the Indian mind as superior to any other, nay, who would make us go back to the Veda or to the sacred writings of the Buddhists in order to find there a truer religion, a purer morality, and a more sublim philosophy than our own. I shall not even mention the names of these writers or the titles of their works. But I feel equally impatient when I see other scholers criticising the ancient literature of India as if it were the work of the nineteenth century, as if it represented an enemy that must be defeated. and that can claim no mercy at our hands. That the Veda is full of childish, silly, even to our minds monstrous conceptions, who would deny ? But even these monstrorities are interesting and instructive; nay, many of them, if we can but make allowance for different ways of thought and language, contain germs of truth and rays of light, all the more striking, because breaking upon us through the veil of the darkest night.

55. Here lies the general, the truly human interest which the ancient literature of India processess, and which gives it a claim on the attention, not only of Oriental scholars or of students of ancient history, but of every educated man and woman.

56. There are problems which we may put aside for a time, aye, which we must put aside while engaged each in our own hard struggle for life, but which will recur for all that, and which, whenever they do recur, will stir us more deeply than we like to confess to others, or even to ourselves. It is true that with us one day only out of seven is set apart for rest and meditation, and for the consideration of what the Greeks called to megista—'the great things. It is true that that seventh day also is passed by many of us either in mere church-going routine or in thoughtless rest. But whether on week-days or on Sundays, whether in youth or in old age, there are moments, rare though they be, yet for all that the most critical moments of our life, when the old simple questions of humanity return to us in all their intensity, and we ask ourselves, What are we ? What is this life on earth meant for ? Are we to have no rest here, but to be always toiling and building up our own happiness.

अवश्य अन्तर्निहित है, वैसे ही वेदों का भी एक लक्ष्य है और वह लक्ष्य है हम लोगों को ऐसे पाठ पढ़ाना जो वास्तव में पठनीय हैं। वेदों के ये उपदेश ग्रहण करने योग्य हैं निश्चित ही ऐसी शिक्षा हमें और कहीं नहीं मिल सकती।

हमें यह नहीं बताया गया है कि उस पुरातन वैदिक साहित्य का अध्ययन हम उसकी प्रशंसा या आलोचना के लिये करें।

हमें तो सर्वथा निष्काम भाव से वैदिक साहित्य का स्वाध्याय एव उसके अर्थो का मनन करना चाहिये।

५३. यूरोप में ऐसे सरल स्वभाव के सुधीजन भी हैं जो भारतीय मनीषा के विकास को विश्व के सर्वश्रेष्ठ चिंतन का प्रतिनिधित्त्व करने वाला मानते हैं। इतना ही क्यों वे तो धर्म के वास्तविक स्वरूप के साक्षात्कार व पवित्र नैतिकता की प्राप्ति, तथा हमारे अपने दर्शन की अपेक्षा कहीं अधिक सुनिश्चित एवं सुदृढ़ दार्शनिक चिंतन के लिये हमें पीछे मुड़ कर वेदों के स्वाध्याय के लिये और वेद तक हमारी पहुंच न हो सके तो प्राचीन बौद्ध-साहित्य को ही पढ़ लेने की प्रेरणा देते हैं। यहाँ ऐसे विद्वानों और उनकी कृतियों के नाम बताना आवश्यक नहीं।

५४. इसके विपरीत ऐसी आलोचनायें पढ़कर मैं उद्विग्न हो उठता हूँ, जिनमें कहा गया है: 'मानो यह १९वीं सदी की रचनायें हों या यह हमारा ऐसा शत्रु है, जिसे हर हालत में दबा ही दिया जाना चाहिये। इसलिये हमारी किसी प्रकार की दया या सहानुभूति पाने का इसे कोई हक नहीं है। वे लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि वेद निरी बचकानी और मूर्खतापूर्ण रचनाओं से भरे पड़े हैं वेदों के विचार हमारे लिये बड़े अटपटे और कठिन हैं, यह मानने से भला कौन इनकार करेगा? किन्तु यदि मान भी लिया जाये कि वेद कठिन हैं, तथापि वे हैं बड़े रोचक और शिक्षाप्रद। यदि हम अपने ही विचारों से जकड़े न रह कर दूसरे के विचारों को समझने व अन्य भाषाओं को पढ़ने के लिए भी तैयार हो जायें तो हमें ज्ञात होगा कि—**वेद सत्य और प्रकाश की किरणों से जगमगा रहे हैं।** इनका महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है जब हमें यह ज्ञात होता है कि—**प्रकाश की ये किरणें घनांधकारावृत्त रात्रि के पर्दे को फाड़कर प्रकट हो रही हैं।**

५५. बस इसी एक तथ्य में भारत के पुरातन वाङ्मय का महत्त्व निहित है। यही कारण है कि मानव की सामान्य रुचि, जिसे हम उसकी सच्ची व वास्तविक रुचि कह सकते हैं वैदिक साहित्य के प्रति बराबर बनी हुई है। इसी कारण—**वैदिक-साहित्य यह दावा कर सकता है कि प्राच्य-विद्या विशारद या प्राचीन इतिहास के छात्र ही नहीं, अपितु प्रत्येक शिक्षित पुरुष और महिला दत्तचित्त होकर वेदों का स्वाध्याय करे।**

५६. अपने ही जीवन-संघर्षों में उलझे रहने के कारण कुछ समस्याओं को हम तात्कालिक रूप से टालते रहते अथवा अनदेखा कर देते हैं, फिर भी उनकी ओर बार-बार हमारा ध्यान जाता है। कभी-कभी वे समस्यायें हमारे मन-मस्तिष्क को इतनी जोर से झकझोर देती हैं कि किसी दूसरे के आगे यहाँ तक कि अपने आप में भी हम उन्हें मान लेना नहीं चाहते। आराम व चिंतन के लिये, तथा यूनानी लोगों के द्वारा महत्तम जीवन के सबसे बड़े तत्त्वों के बारे में विचार करने के लिये हमारे लिये सप्ताह में केवल एक

out of the ruins of the happiness of our neighbours ? And when we have made our home on earth as comfortable as it can be made with steam and gas and electricity, are we really so much happier than the Hindu in his primitive homestead ?

57. With us, as I said just now, in these Northern climates, where life is and always must be a struggle, and a hard struggle too, and where accumulation of wealth has become almost a necessity to guard against the uncertainties of old age or the accidents inevitable in our complicated social life, with us, I say, and in our society, hours of rest and meditation are but few and far between. It was the same as long as we know the history of the Teutonic races; it was the same even with Romans and Greek. The European climate with its long cold winters, in many places also the difficulty of cultivating the soil, the conflict of interests between small communities, has developed the instinct of self preservation (not to say, self-in-dulgence) to such extent that most of the virtues and most of the vices of European society can be traced back to that source Our own character was formed under these influences, by inheritance, by education, by necessity. We all lead a fighting-life. We work till we can work no longer, and are proud, like old horses, to die in harness. We point with inward satisfaction to what we and our ansestors have achieved by hard work, in founding a faimly or a business, a town or a state. We point to the marvels of what we call civilization—our splendid cities, our high roads and bridges, our ships, our railways, our telegraphs, our electric light, our pictures, our statues, our music, our theatres. We imagin we have made life on earth quite perfect; in some cases so perfect that we are almost sorry to leave it again. But the lesson which both Brahmans and Buddhists are never tired of teaching is that this life is but a journey from one village to another, and not a resting place. Thus we read :

58. 'As a man journeying to another village may enjoy a night's rest in the open air, but, after leaving his resting-place, proceeds again on his journey the next day, thus father, mother, wife, and wealth are all but like a night's rest to us—wise people do not cling to them for ever.

59. Instead of simply despising this Indian view of life, might we not pause for a moment and consider whether their philosophy of life is entirely wrong, and ours entirely right; whether this earth was really meant for work only (for with us pleasure also has been changed into work), for constant hurry and flurry; whether we, sturdy Northern Aryas, might not have been satisfied with a little

दिन नियत किया गया है। उसे भी कई लोग चर्च जाने की परिपाटी को निभाने या बिना सोचे-समझे यों ही ऐशो-आराम में बिता दिया करते हैं। चाहे अवकाश का दिन हो या कार्य-दिवस, जवानी हो या बुढ़ापा, यदा-कदा ऐसे क्षण भी अवश्य आते हैं— स्वल्प होने पर भी हमारे जीवन के लिये वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं—जब मानवता से संबद्ध कुछ सीधे-सादे प्रश्न अपनी संपूर्ण सघनता के साथ हमारे मन-मस्तिष्क में कौंध जाते हैं और हम अपने आप से पूछने लगते हैं - हम क्या हैं? इस संसार में हमारे जीवन का आखिर उद्देश्य क्या है? क्या हमें एक क्षण के लिये भी विश्राम नहीं मिलना चाहिये? और क्या हमें अपने पड़ोसियों की सुख-शांति के खंडहरों पर ही अपनी खुशियों के महल खड़े करने के लिए दिन-रात दौड़-धूप करते रहना चाहिये? हमने अपने घरों को गैस तथा बिजली आदि से जितना सुख-सुविधापूर्ण बना सकते थे बना लिया है, तो भी हम क्या सचमुच अपने पुराने साधारण से घरों में रहने वाले किसी भारतीय से अधिक सुखी हो पाये हैं?

५७. हमारे लिए, जैसा कि मैंने पहले कहा—उत्तरी क्षेत्र के इस वातावरण में, जहां जीवन सदैव संघर्षपूर्ण रहा है, अपने आनेवाले बुढ़ापे तथा निरन्तर समस्याग्रस्त सामाजिक जीवन में घटनेवाली दुर्घटनाओं को ध्यान में रखते हुए, अधिकाधिक धन संचित करते रहना हमारे जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता बन गया है। इसके फलस्वरूप अपने वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में चिन्तन के क्षण हमें बहुत कम और यदा-कदा ही मिल पाते हैं। जहाँ तक हमें यूरोप की ट्यूटन, रोमन और ग्रीक जातियों का इतिहास ज्ञात है, उनके बारे में भी यही बात कही जा सकती है। यूरोप में बहुत दिनों तक कड़ाके की ठण्ड पड़ती है। ऐसे जलवायु में खेतीबाड़ी करना कठिन होता है। यही कारण है कि यहाँ की छोटी-छोटी जातियों के अपने-अपने स्वार्थों के संघर्षों से आत्मरक्षा (न कि आत्मचिन्तन) की ऐसी मनोवृत्ति यहाँ तक विकसित हो गई कि यूरोपियन समाज की अधिकतर अच्छाइयाँ और बुराइयाँ भी इन्हीं से उद्भूत होने लगीं। हमारा अपना चरित्र भी इन्हीं सब प्रभावों में रहते हुए आनुवंशिक रूप से, या शिक्षा के माध्यम से, या आवश्यकता से निर्मित हुआ है। हम संघर्षमय जीवन बिताते हैं। जीवन ही हमारे जीवन का सर्वोच्च आदर्श है। हम तब तक काम में जुटे रहते हैं जब तक हमारी कार्य करने की शक्ति बिल्कुल जवाब न दे जाए और बूढ़े घोड़े की तरह काम में जुटे रहकर ही मर जाने का हमें घमण्ड होता है। अपने परिवार, या व्यापार, अथवा ग्राम, नगर या राज्य की स्थापना के लिए हमने या हमारे पूर्वजों ने कठोर परिश्रम के द्वारा जो कुछ उपलब्ध किया है, उस की चर्चा हम बड़े आत्म-सन्तोष के साथ किया करते हैं। अपनी सभ्यता का—अपने भव्य नगरों, अपने विस्तीर्ण राजमार्गों, बड़े-बड़े पुलों, जहाजों, रेलों, तारघरों, अपने भव्य सजीव चित्रों, मूर्तियों, संगीत-नृत्य आदि कलाओं, विशाल प्रेक्षागृहों व बिजली की जगमगाहट आदि की हम बहुत शान बघारते हैं। हम सोचते हैं कि इस धरती पर अपने जीवन को हमने परिपूर्ण बना लिया है तथा किसी अंश में तो इतना परिपूर्ण कि अब इससे बिछुड़ना हमें कभी गवारा नहीं होगा। किन्तु ब्राह्मण और बौद्ध, दोनों ही प्रकार के वाङ्मय हमें यह

less of work, and a littlle less of so-called pleasure, but with a little more of thought, and a little more rest. For short, as our life is, we are not mere Mayflies that are born in the morning do die at night. We have a past to look back to and a future to look farward to, and it may be that some of the riddles of the future find their solution in the wisdom of the past.

60. Then why should we always fix our eyes on the present only ? Why should we always be racing, whether for wealth or for fame ? Why should we never rest and be thankful ?

61. I do not deny that the manly vigour, the silent endurance, the public spirit, and the private virtues too of the citizens of European states represent one side, it may be a very important side, of the destiny which man has to fulfil on earth.

62. But there is surely another side of our nature, and possibly another destiny open to man in his journey across this life, which should not be entirely ignored. If we turn our eyes to the East, and particularly to India, where life is, or at all events was, no very severe struggle, where the climate was mild, the soil fertile, where vegetable food in small quantities sufficed to keep the body in health and strength, where the simplest hut or cave in a forest was all the shelter required, and where social life never assumed the gigantic, aye, monstrous proportions of a London or Paris, but fulfilled itself within the narrow boundaries of village communities,—was it not, I say, natural there, or, if you like, was it not intended there, that another side of human nature should be developed—not the active, the combative, and acquisitive, but the passive, the meditative, and reflective ? Can we wonder that the Aryas who stepped as strangers into some of the happy fields and valleys along the Indus or the Ganges should have looked upon life as a perpectual Sunday or Holyday, or a kind of Long Vacation, delightful so long as it lasts, but which must come to an end sooner or later ? Why should they have accumulated wealth ? why should they have built palaces ? why should they have toiled day and night ? After having provided from day to day for the small necessities of the body, they thought they had the right, it may be the duty, to look round upon this strange exile, to look inward upon themselves, upward to something not themselves, and to see whether they could not understand a little of the true purport of that mystery which we call life on earth.

63. Of course we should call such notions of life dreamy, unreal, unpractical, but may not they look upon our notions of life

समझाते नहीं थकते कि 'अरे ! यह जीवन तो एक गाँव से दूसरे गाँव की यात्रा है, न कि विश्राम-स्थल।' हम पढ़ते हैं—

५८. एक से दूसरे गाँव को जाने वाला यात्री खुली हवा में एक रात बिताने के लिए ठहर जाता है, किन्तु एक रात के विश्राम के बाद वह अगले दिन फिर अपनी यात्रा पर चल पड़ता है। इस प्रकार माँ-बाप, पति-पत्नी और धन-सम्पत्ति आदि सभी कुछ हमारे लिए एक रात्रि का विश्राम मात्र हैं, इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति उनके साथ सदा के लिए चिपटा नहीं रहता (न तेषु रमते बुधः)।

५९-६०. भारतीय चिन्तन की इस विचारधारा को यों ही अनदेखा कर देने की बजाय क्या हमें एक क्षण को यह सोचने के लिए ठहर नहीं जाना चाहिए कि जीवन के बारे में उनका यह दर्शन क्या बिल्कुल गलत और हमारा दृष्टि-कोण सर्वथा सही है ? क्या यह विश्व वास्तव में केवल काम करते रहने के लिए बना है ? (हमारे लिए तो आनन्द भी काम में ही परिणत हो गया) क्या रात-दिन की दौड़धूप, जद्दो-जहद और संघर्ष ही का नाम जीवन है? हम उत्तरी आर्यों को कुछ कम परिश्रम तथा कामकाज एवं तथाकथित कुछ कम सुख से ही क्या सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए ? इसके विपरीत क्या हमें कुछ अधिक चिन्तन और थोड़ा अधिक आराम नहीं करना चाहिए ? क्योंकि हमारा जीवन बहुत छोटा है, फिर भी हम मात्र ऐसे कीट-पतंग भी नहीं हैं जो प्रातः पैदा होकर सांझ पड़ने पर मर जाते हैं। हमारे पास पीछे मुड़कर देखने के लिए लम्बा अतीत है और आगे की ओर निहारने के लिए सुन्दर भविष्य। साथ ही यह भी सम्भव है कि भविष्य की कुछ जटिल समस्याओं का समाधान हमें अपने अतीत में ही मिल जाये। फिर भला हम वर्तमान पर ही आँखें क्यों गड़ाये रहें ? हम रात-दिन धन वैभव, शक्ति और ख्याति के पीछे ही क्यों दौड़ते रहें ? हम आराम क्यों न करें और जो उपलब्ध है, उसके लिए धन्यवाद क्यों न दें ?

६१. मैं इससे इन्कार नहीं करता कि मानव-शक्ति, सहिष्णुता सार्वजनिक जीवन में यश-प्रतिष्ठा की भावना और वैयक्तिक गुण भी यूरोपियन नागरिकों के एक पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं और यह पक्ष भी मानव-नियति का एक ऐसा महत्त्वपूर्ण पक्ष हो सकता है, जिसे इस धरती के मानव को देखना ही होता है।

६२. किन्तु, निश्चित ही हमारी प्रकृति का एक दूसरा पक्ष भी है, और सम्भवतः इस जीवन के उस पार भी एक नियति है, उसे भी हमें सर्वथा अनदेखा नहीं कर देना चाहिए। यदि हम पूर्व की, और विशेषतः भारत की ओर निहारें जहां जीवन किसी भी अवस्था में एक कठोर संघर्ष नहीं है या नहीं था, जहां की प्रकृति सुकोमल तथा धरती उर्वरा है, जहाँ थोड़े-से शाक-पात और भोजन से ही शरीर को स्वस्थ और सशक्त बनाए रखा जा सकता है, जहाँ एक साधारण-सी कुटिया ही निवास के लिए पर्याप्त समझी जाती थी, जहाँ का सामाजिक जीवन इतना या ऐसा विकट नहीं था, जैसा लन्दन और पेरिस मे दिखाई देता है, अपितु अपने गाँव की सीमाओं में ही वह अपनी सम्पूर्णता के साथ व्यक्त हो जाया करता था, तो क्या ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक

as short-sighted, fussy, and, in the end, most unpractical, because involving a sacrifice of life for the sake of life ?

64. No doubt these are both extreme views. and they have hardly ever been held or realised in that extreme form by any nation, whether in the East or in the West. We are not always plodding— we some times allow ourselves an hour of rest and peace and thought —nor were the ancient people of India always dreaming and meditating on *ta megista,* on the great problems of life, but, when called upon, we know that, they too could fight like heroes. and that, without machinery, they could by patient toil raise even the meanest handiwork into a work of art, a real joy to the maker and to the buyer.

65. All then that I wish to put early before you is this that the Aryan man, who had to fulfil his mission in India, might naturally be deficient in many of the practical and fighting virtues, which were developed in the Northern Aryas by the very struggle without which they could not have survived, but that his life on earth had not therefore been entirely wasted. His very view of life, though we cannot adopt it in this Northern climate, may yet act as a lesson and a warning to us, not, for the sake of life to sacrifice the highest objects of life.

66. The greatest conqueror of antiquity stood in silent wonderment before the Indian Gymnosophists, regretting that he could not communicate with them in their own language, and that their wisdom could not reach him except through the contaminating channels of sundry interpreters.

67. That need not be so at present. Sanskrit is no longer a difficult language, and I can assure every young Indian Civil Servant that if he will but go to the fountain-head of Indian wisdom, he will find there, among much that is strange and useless some lessons of life which are worth learning, and which we in our haste are too apt to forget or to despise.

68. Let me read you a few sayings only, which you may still hear repeated in India, when after the heat of the day, the old and the young assemble together under the shadow of their villege tree—sayings which to them seem truth, to us, I fear, mere truism !

69. 'As all have to sleep together laid low in the earth, why do foolish people wish to injure one another ?'

'A man seeking for eternal happiness (moksha) might obtain it by a hundredth part of the sufferings which a foolish man endures

नहीं था कि वहाँ मानव-प्रकृति का दूसरा पक्ष विकसित होता, अथवा वहाँ के लोग इस दूसरे पक्ष के लिए प्रयत्नशील रहते ? यह पक्ष वस्तुतः रात-दिन काम में जुटे रहने, संघर्ष-निरतता तथा और-और की दौड़ में बढ़ते रहने के विपरीत शान्ति, आत्मचिन्तन और सन्तोष का पक्ष है। सिन्धु और गंगा की घाटियों के सौख्यदायी धरातल पर अपने पहले कदम रखने वाले आर्यों ने यदि जीवन को सतत अवकाश अथवा रविवार के रूप में देखा और अनुभव किया कि यह जीवन चाहे कितना ही सुख-सुविधापूर्ण क्यों न हो, एक-न-एक दिन इसका अन्त हो जाने वाला है, तो आश्चर्य की क्या बात। फिर भला वे ढेरों धन-वैभव क्यों इकट्ठा करते ? अपने रहने के लिए बड़े-बड़े आलीशान महल क्यों बनाते ? रात-दिन काम में ही क्यों जुटे रहते ? अपने दैनन्दिन जीवन में शरीर-निर्वाह के लिए सामान्य आवश्यकताएँ जुटा लेने के बाद वे लोग सोचते कि अपने वास्तविक स्थान से इस मानव-जीवनरूपी निर्वासन-काल में क्या आत्मचिन्तन में लग जाना ठीक नहीं है ? अथवा क्या आत्मचिन्तन ही प्रमुख कर्त्तव्य या ध्येय नहीं है ? जिसे हम इस विश्व में जीवन कहते हैं, उसके निहित रहस्यों के वास्तविक अभिप्राय को समझने के लिये कुछ मनन-चिन्तन क्या आवश्यक नहीं है ?

६३. हम भले ही जीवन के बारे में ऐसे मत को तन्द्रिल, अवास्तविक और व्यर्थ कह दें, किन्तु इसके विपरीत क्या वे लोग हमारी जीवन धारा को भी अदूरदर्शिता-पूर्ण, कोलाहलमय और अन्ततोगत्वा वैसा ही अव्यवहार्य और अनुपयोगी नहीं बता सकते और यह नहीं कह सकते कि हम लोग जीवन के लिए ही अपने जीवन की बलि देने पर उतारू हैं।

६४. निस्सन्देह ये दोनों प्रकार की अतिवादी विचारधाराएँ हैं। पूर्व हो या पश्चिम, कहीं इनमें से किसी एक ही विचारधारा को पूरी तरह से कभी अपनाया नहीं गया। हम लोग रात-दिन काम-काज में ही जुटे नहीं रहते; ऐसी फुरसत की घड़ियाँ भी निकाल लेते हैं, जिनमें कुछ शान्ति मिल जाये और हम कुछ चिन्तन-मनन कर लें। इसके विपरीत प्राचीन भारत के लोग भी सदैव चिन्तन-मनन में ही मग्न नहीं रहा करते थे। जैसा कि हम जानते हैं, ललकारे जाने पर वे बड़ी वीरता के साथ युद्ध-क्षेत्र में कूद पड़ते थे। साथ ही यह भी कि बिना यान्त्रिक उपकरणों के ही अपने अपार धैर्य और परिश्रम से उन लोगों ने ऐसी सूक्ष्म और हृदयग्राही कलाकृतियों का निर्माण किया, जो अपने निर्माताओं को तथा ग्राहकों को अनुपम आनन्द प्रदान करती रही हैं, और करती रहेंगी।

६५. मेरे कहने का आशय यह है कि जिस आर्य मानव ने भारत में अपने जीवन के ध्येय को पूर्ण कर लिया था, भले ही उसमें स्वभावतः उन अनेक व्यावहारिक तथा ऐसे संघर्षमय गुणों की कमी रह गयी हो, जो उत्तर के आर्यों में क्रमशः विकसित हो गये, इनके बिना हम उत्तरी आर्यों का जीवन दूभर हो जाता—दूसरी ओर, इन गुणों की कमी रह जाने से भारतीय आर्य मानव का जीवन व्यर्थ हो गया, ऐसा हमें कदापि नहीं मानना चाहिए। यद्यपि भारतीय आर्यों की जीवन-दृष्टि को हम

in the persuit of riches.'

'Poor men eat more excellent bread than the rich : for hunger gives it sweetness.

'Our body is like the foam of the sea, our life like a bird, our company with those whom we love does not last for ever; why then sleepest thou. my son ?'

'As two logs of wood meet upon the ocean and then separate again, thus do living creatures meet..'

'Family, wife, children, our very body and our wealth, they all pass away. They do not belong to us. What than is ours ?—Our good and our evil deeds.

'When thou goest away from here, no one will follow thee. Only the good and thy evil deeds, they will follow thee wherever thou goest.

'According to the Veda the soul (life) eternal, but the body of all creatures is perishable. When the body is destroyed, the soul departs elsewhere, fettered by the bonds of our works.

'As a man puts on new garments in this world, throwing aside those which he formerly wore, even so the Self of man puts on new bodies which are in accordance with his acts.'

'No weapons will hurt the Self of man, no fire will burn it, no water moisten it, no wind will dry it up.'

'It is not to be hurt, not to be burnt, not to be moistened, not to be dried up. It is imperishable, unchanging, immovable, without beggining.'

It is said to be immaterial, passing all understanding, and unchangeable. If you know the Self of man to be all this, grieve not.

'There is nothing higher than the attainment of the knowledge of the Self.'

'All living creatures are the dwelling of the Self who lies envloped in matter, who is immortal, and spotless. Those who worshis the Self, the immovable, living in a movable dwelling, become immortal.

'Despising everything else, a wise man should strive after the knowledge of the Self.'

70. We shall have to return to this subject again, for this knowledge of the Self is really the Vedant. that is, the end, the highest goal of the Veda. The highest wisdome of Greece was 'to know ourselves;' the highest wisdom of India is 'to know our Self.'

अपने उत्तर के इस वातावरण में पूर्णतया अपना तो नहीं सकते, तथापि यह जीवन-दृष्टि यह चेतावनी और शिक्षा तो देती ही है कि इस जीवन के लिए कहीं जीवन के परमोच्च लक्ष्य की ही हम बलि न दे दें !

६६. पुराने समय का महान् विजेता (सिकन्दर) भारतीय योगियों मनीषियों-के समक्ष स्तब्ध-सा खड़ा रह गया, क्योंकि वह उनके साथ अपनी या उनकी भाषा में बातचीत नहीं कर सकता था और दुभाषियों के अनुवादों के सिवा किसी अन्य माध्यम से उनकी विवेक-बुद्धि का उसे पता नहीं लग पा रहा था।

६७-६८. आज वह स्थिति नहीं है। अब संस्कृत एक कठिन भाषा नहीं रही और मैं प्रत्येक युवक आई० सी० एस० अधिकारी को यह विश्वास दिला सकता हूं कि यदि वह भारतीय विवेक एवं तत्त्व-चिन्तन के इस मूल-स्रोत (संस्कृत) का ज्ञान प्राप्त कर लेगा तो उसे कई अंशों में विचित्र व अनुपयोगी लगने वाली कई बातों में जीवन की कुछ ऐसी शिक्षाएँ अवश्य मिलेंगी जो निश्चित रूप से ग्रहण करने योग्य हैं और जिन्हें हम अपनी रात-दिन की दौड़धूप एवं व्यस्तता में फँसकर या तो भूल जाते हैं अथवा तुच्छ समझ लेते हैं। यहाँ मैं कुछ ऐसी सूक्तियाँ सुनाना चाहता हूं जो आपको भारत में स्थान-स्थान पर सुनाई देंगी। वहाँ के लोग साँझ पड़ने पर, दिनभर की गर्मी से राहत पाने के लिए गांव के किसी वृक्ष की छाया के नीचे जा बैठते हैं और ऐसी सूक्तियाँ कहते-सुनते हैं जिनमें सत्य (तत्त्व) निहित रहता है; किन्तु हम लोगों के लिए तो ये बातें सत्यवाद मात्र हैं—

६९. 'जब सबको इस धरती की गोद में एक साथ ही सोना है, फिर भला ये वेसमझ लोग क्यों एक-दूसरे को हानि पहुंचाना चाहते हैं ?'

'मूर्ख व्यक्ति धन-वैभव की प्राप्ति के लिए जितने हाथ-पैर मारता और कष्ट झेलता है, मुमुक्षु ज्ञानीजन उन के शतांश मात्र से ही नित्यानन्द को प्राप्त कर लेते हैं।'

'धनवानों की अपेक्षा निर्धन कहीं बढ़िया रोटी खाते हैं, क्योंकि भूख में सभी चीजें अच्छी लगती हैं।'

'हमारा शरीर समुद्र की झाग के और हमारा जीवन एक पक्षी के समान है। जिन लोगों को हम इतना चाहते हैं, उनके साथ हमारे सम्बन्ध सदा रहने वाले नहीं, फिर हे वत्स ! तुम क्यों सोए पड़े हो ?'

'जैसे समुद्र में बहती हुई लकड़ियाँ क्षणभर के लिए एक-दूसरे से मिल जाती और फिर अलग हो जाती हैं, वैसे ही प्राणी भी एक-दूसरे से मिलकर बिछुड़ते रहते हैं।'

'पत्नी, परिवार, बाल-बच्चे, धन-सम्पत्ति और अपना यह शरीर, सभी-कुछ क्षणभंगुर है। ये हमारे नहीं हैं, तो फिर यहाँ हमारा अपना क्या है ? मात्र अपने भले-बुरे कर्म।'

'जब तू परलोक को जाएगा तो कोई भी तेरे साथ नहीं जायेगा तेरे भले-बुरे कर्म ही तेरे साथ जाएँगे।'

'वेदों के अनुसार प्रत्येक प्राणी का शरीर क्षणभंगुर है, जबकि आत्मा नित्य और

If I were asked to indicate by one word the distinguishing featureof the Indian character, as I have here tried to sketch it, I should say it was transcendent. using that word, not in its strict technical sence, as fixed by Kant, but in its more general acceptation, as denoting a mind bent on transcending the limits of empirical knowledge. There are minds perfectly satisfied with empirical knowledge, a knowledge of facts, well ascertained, well classified, and well labelled. Such knowledge may assume very vast proportions, and, if knowledge is power, it may impart great power, real real intellectual power to the man who can wield and utilise it. Our own age is proud of that kind of konwledge, and to be content with it, and never to attempt to look beyond it is, I believe, one of the happiest states of mind to be in.

72. But, for all that, there is a Beyond, and he who has once caught a glance of it, is like a man who has gazed at the sun—wherever he looks, everywher he sees the image of the sun. Speak to him of finite things, and he will tell you that the Finite is imposible and meeningless without the Infinite. Speak to him of death, and he will call it birth; speak to him of time, and he will call it the mere shadow of eternity, To us the senses seem to be the organs, the tools. the most powerful engines of knowledge; to him they are, if not actually deceivers, at all events heavy fetters, checking the flight of the spirit. To us this earth, this life, all that we see, and hear, and touch is certain. Here, we feel, is our home, here lie our duties, here our pleasure. To him this earth is a thing that once was not, and that again will cease to be; this life is a short dream from which we shall soon awake. Of nothing he professes greater ignorance than of what to others seems to be most certain, namely what we see. and hear, and touch; and as to our home, wherever that may be he knows that certainly it is not here.

73. Do not suppose that such men are mere dreamers. Far from it ! And if we can only bring ourselves to be quite honest to ourselves, we shall have to confess that at times we all have been visited by these transcendental aspirations, and have been able to understand what Wordsworth meant when he spoke of those.

> 'Obstinate questionings
> Of sence and outward things,
> Fallings from us, vanishings ;
> Blank misgivings of a creature
> Moving about in worlds not realised.'

74. The transcendent temperament acquired no doubt a more complete supremacy in the Indian character than anywhere else :

अमर है। शरीर तो नष्ट हो जाता है, किन्तु यह आत्मा अपने शुभाशुभ कर्मों के साथ परलोक चला जाता है।'

'जिस प्रकार मनुष्य इस संसार में पुराने उतारकर नए वस्त्र पहन लेता है, उसी प्रकार यह आत्मा भी इस शरीर के त्यागने के बाद अपने-अपने कर्मों के अनुसार नये देह धारण कर लेता है।'

'इस आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न आग जला सकती है, न पानी गला सकता है और न हवा सुखा सकती है।'

'यह आत्मा न कट सकता है, न जल सकता है, न गल सकता है और न सूख ही सकता है। यह तो नित्य और अनादि है, सदा स्वरूपस्थ स्थाणु (अपरिवर्तनशील) है, अचल है और अमर है।'

'इस आत्मा को अभौतिक, ज्ञानातीत और अपरिवर्तनशील या नित्य कहा गया है। यदि तुमने इस आत्म-तत्त्व का साक्षात्कार कर लिया तो सब-कुछ जान-समझ लिया।'

'आत्मज्ञान की उपलब्धि से बढ़कर और कुछ नहीं है।'

'सब प्राणी इस नित्य अजर-अमर आत्मा के आवासमात्र हैं। यह आत्मा भौतिक आवरणों से आवृत रहता हुआ भी उनसे निर्लेप रहता है। जो इस विनश्वर शरीर में विद्यमान उस नित्य आत्मतत्त्व की उपासना करता है, वह भी अजर-अमर हो जाता है।'

'विज्ञजन को और सब-कुछ छोड़कर आत्मज्ञान की प्राप्ति में ही लगे रहना चाहिए।'

७०. अब हम फिर से अपने विषय पर आ जाएँ। यह आत्मज्ञान ही वास्तविक वेदान्त है। यही वेदों का अन्त या परमध्येय है 'अपने-आपको पहचनाना' ही यूनान का उच्चतम ज्ञान था। भारत की परमोच्च विवेक-ख्याति है—आत्मज्ञान।

७१. भारतीय चरित्र के जिस प्रमुख वैशिष्ट्य की रूपरेखा अंकित करने का मैंने अबतक प्रयत्न किया, यदि मुझे उसे एक शब्द में बताने के लिए कहा जाए तो मैं कहूंगा कि यह अतिश्रेष्ठ है। काण्ट ने जिस संकुचित तकनीकी या पारिभाषिक अर्थ में इस शब्द को रूढ़ बना दिया, मैं उसे इतने संकुचित अर्थ में नहीं लेता, किन्तु प्रायौगिक ज्ञान की सीमाओं को लाँघ जाने वाले उस अतिश्रेष्ठ विवेकख्याति के लिए प्रयत्नशील मस्तिष्क की ओर निर्देश करना चाहता हूं। ऐसे बुद्धिमान् जन भी हैं जो तथ्यों के बारे में प्रायौगिक ज्ञान की सर्व-श्रेष्ठता से ही सर्वथा सन्तुष्ट हो जाते हैं, क्योंकि उस प्रायौगिक ज्ञान को निश्चित, भलीभाँति वर्गीकृत और सर्वजन-विदित होने का प्रमाण-पत्र दे दिया गया है। हो सकता है कि यह ज्ञान अत्यधिक विशाल क्षेत्र में व्याप्त हो गया हो और यदि ज्ञान ही शक्ति है तो यह बहुत बड़ी शक्ति प्रदान करता है। इससे मानव को एक ऐसा बौद्धिक बल मिलता है, जिसे उपयोग में लाकर वह लाभ उठा सकता है। हमारे आज के इस युग को अपने इसी प्रकार के (प्रायौगिक) ज्ञान पर

but no nation, and no individual, is entirely without that 'yearing beyond :' indeed we all know it under a more familiar name—namely, Religion.

75. It is necessary, however, to distinguish between religion and a religon, quite as much as in another branch of philosophy we have to distinguish between language and a language or many languages. A man may accept a religion, he may be converted to the Christian religion, and he may change his own particular religion from time to time, just as he may speak different languages. But in order to have a religion, a man must have religion. He must once at least in his life have looked beyond the horizon of this world, and carried away in his mind an impression of the Infinite, which will never leave him again, A being satisfied with the word of sense, unconscious of its finite nature, undisturbed by the limited of negative character of all perceptions of the senses, would be incapable of any religious concepts. Only when the finite character of all human knowledge has been perceived, is it possible for the human mind to conceive that which is beyond the Finite, call it what you like, the Beyond, the Unseen, the Infinite, the supernatural, or the Divine. That step must have been taken before religion of any kind becomes possible. What kind of religion it will be, depends on the character of the race which elaborates it, its surroundings in nature, and its experience in history.

76. Now may seem to know a great many religions I speak hear, of course, of ancient religions only, of what are some called national or autochthonous religions—not of those founded in later times by individual prophets or reformers.

77. Yet, among those ancient religions we seldom know, what after all is the most important point their origin and their gradual growth. The jewish religin is represented to us as perfect and complete from the very first and it is with great difficulty that we can discover its real beginings and its historical growth. And take the Greek and the Roman religions, take the religions of the Teutonic, Slavonic or Celtic tribes, and you will find that their period of growth has always passed, long before we know them, and that from the time we know them, all their changes are purely metamorphic—changes in form of substances ready at hand.

78. Now let us look to the ancient inhabitants of India. With them, first of all, religion was not only one interest by the side of many. It was the all absorbing interest; it embraced not only worship and prayer, but what we call philosophy, morality, law, and

बड़ा घमण्ड है और वह इसी से सन्तुष्ट रहना चाहता है। वह इससे परे अपने अन्तर्तम की परमानन्दावस्था की ओर तो देखना ही नहीं चाहता, मुझे ऐसा लगता है।

७२. किन्तु इस सबसे परे वह परात्पर (आत्मतत्त्व) है। जिसे उसकी एक बार झलक मिल गई, उसकी ठीक वही स्थिति हो जाती है जो निरन्तर सूर्य की ओर अपलक दृष्टि लगाए रहने वाले की होती है। फिर उसे जहाँ देखो वहीं सूर्य-ही-सूर्य दिखाई देता है। आप उससे अपूर्ण की बात कीजिए, वह आपसे पूर्ण की बात करेगा। आप उससे मृत्यु की बात करेंगे तो वह कहेगा कि यह मृत्यु नहीं, जन्म है। आप उससे काल (समय-प्रवाह) की बात कहेंगे तो वह कहेगा कि यह तो उस नित्य तत्त्व की ही छाया है। हम लोगों को अपनी इन्द्रियाँ ही ज्ञान की सबसे बड़ी साधन और उपकरण हैं, किन्तु उसके लिए ये इन्द्रियाँ एक बहुत बड़ी प्रतारक या छलने वाली नहीं तो भी कम-से-कम ऐसी मजबूत बेड़ियां तो हैं ही, जो आत्मा की उस अनन्त की ओर उड़ान में बाधक बन जाती हैं। हम तो समझते हैं कि यह धन-धरती, यह जीवन और जो कुछ हम देखते-सुनते और स्पर्श करते हैं वह सब वास्तविक और तात्त्विक है। हम समझते हैं सब-कुछ यहीं है—यहीं हमारा आवास है, हमारे कर्त्तव्य भी यहीं तक सीमित हैं और हमारा आनन्द भी यहीं है। किन्तु उसके लिए यह सब-कुछ न तो पहले था और न बाद में ही रहेगा। जीवन तो एक ऐसा स्वप्न है, जिससे हमारी आँख खुलने ही वाली है। उसके लिए इससे बढ़कर और कोई अज्ञान की बात नहीं है कि मनुष्य इस दृश्यमान जगत् और धराधाम को ही अपना घर मान बैठे, जबकि वह यह भी जानता है कि यह सब सदा रहने वाला नहीं है। श्रवण, दर्शन, स्वाद और स्पर्श आदि इन्द्रिय-सुखों में जो आसक्त नहीं होता, वही वास्तव में बुद्धिमान् है।

७३. यह मत समझिये कि ये लोग स्वप्नदर्शी हैं या इनका मत सत्य के सर्वथा विपरीत है। यदि हम अपने-आपको अपने प्रति बिल्कुल सच्चा और ईमानदार बना लें तो मानना पड़ेगा कि हमारे जीवन में भी अनेक बार ऐसे क्षण उपस्थित होते हैं, जब हम उस परमश्रेष्ठ तत्त्व की भावना से अभिभूत हो उठते हैं, और तभी हमें वड्र्स-वर्थ की अनेक कविताओं के आशय समझ में आने लगते हैं।

७४. निःसन्देह विश्व के किसी अन्य देश की अपेक्षा भारतीय चरित्र ने परि-पूर्ण एवं सर्वोच्च रूप में उस परमतत्त्व का साक्षात्कार किया है, किन्तु कोई भी राष्ट्र या व्यक्ति उस परमतत्त्व के प्रति औत्सुक्य से बिल्कुल कोरा नहीं है। वास्तव में हम सब उसे धर्म के नाम से जानते-पहचानते हैं।

७५. यहाँ यह आवश्यक है कि हम धर्म और एक धर्म में जो अन्तर है उसे भली-भाँति समझ लें। यह अन्तर ठीक वैसा ही है जैसाकि भाषा का भाषा से या भाषाओं से होता है। कोई मनुष्य चाहे तो किसी एक धर्म को स्वीकार कर सकता है, वह ईसाई धर्म या अन्य किसी धर्म में धर्मान्तरित हो सकता है और अपने उस धर्म विशेष को वह जब चाहे बदल भी लेता है, ठीक वैसे ही जैसे वह अनेक भाषाएं बोला करता है। किन्तु मनुष्य को अपने किसी एक धर्म या धर्म-विशेषों के लिए 'धर्म'

government,—all was pervaded by religion. Their whole life was to them a religion—everything else was, as it were, a mere concession made to the ephemeral requirements of this life.

79. What then can we learn from the ancient religious literature of India—or from the Veda ?

80. It requires no very profound knowledge of Greek religion and Greek language to discover in the Greek deities the original outlines of certain physical phenomena. Every school boy knows that in Zeus there is something of the sky, in poseidon of the sea, in Artemis of the moon, in Hephoestos of the fire. But for all that, there is, from a Greek point of view, a very concederable difference between Zeus and the sky, between Poseidon and the sea, between Apolloand the sun, between Artemis and the moon.

81. Now what do we find in the Veda ? No doubt here and there a few philosophical hymns which have been quoted so often that people have begun to imagine that the Veda is a kind of collection of Orphic hymns. We also find some purely mythological hymns, in which the Devas or gods have assumed nearly as much dramatic personality as in the Homeric hymns.

82. But the great majority of Vedic hymns consists in simple invocations of the fire, the water, the sky, the sun, and the storms, often under the same names which afterwards became the proper names of Hindu deities, but as yet nearly free from all that can be called irrational or mythological. There is nothing irrational, nothing I mean we cannot enter into or sympathyse with, in people imploring the storms to cease, or the sky to rain, or the sun to shine. I say there is nothing irrational in it, though perhaps it might be more accurate to say that there is nothing in it that would surprise anybody who is acquainted with the growth of human reason, or, at all events, of childish reason. It does not matter how we call the tendency of the childish mind to confound the manifestation with that which manifests itself, effect with cause, act with agent. Call it Animism, Personification, Metaphor or Poetry, we all know what is meant by it, in the most general sense of all these names: we all know that it exists, and the youngest child who beats the chair against which he has fallen, or who scolds his dog, or who sings, 'Rain, rain, go to Spain', can teach us that, however irrational all this may seem to us. It is

को तो अपनाना होगा। उसे अपने जीवन में कम-से-कम एकाध बार तो इस भौतिक जीवन के क्षितिज से आगे भी निहारना होगा और उस 'पूर्ण' का चिन्तन करना होगा। फिर तो वह उस पूर्ण में ही रम जाएगा, वह उस से कभी अलग नहीं हो सकता। जो व्यक्ति सदा इन्द्रिय-सुख में ही रमता है और उसकी नश्वरता का जिसे ज्ञान नहीं है, इन्द्रियजन्य ज्ञान की सीमितता और नश्वरता के बारे में जो नहीं जानता, वह किसी भी धार्मिक सिद्धान्त को अपनाने में सर्वथा अक्षम ही है। मनुष्य जब सभी प्रकार के मानवीय ज्ञान की सीमितता का अनुभव कर लेता है, तभी मानव-मस्तिष्क इस असीम से परे उस के साक्षात्कार के योग्य बन पाता है। आप उस असीम को परात्पर कह लें, या परोक्ष सत्ता, अनन्त अतिमानवीय, या दिव्य आदि किसी भी नाम से अभिहित क्यों न कर लें; कोई भी धर्म क्यों न हो, प्रत्येक धर्म के लिए सबसे पहला कदम यही है। उस धर्म का स्वरूप क्या होगा, यह तो उस धर्म को मानने वाले लोगों के चरित्र, वहाँ के प्राकृतिक वातावरण और इतिहास के अनुभव आदि पर निर्भर करता है।

७६. आज हम भले ही अनेक धर्मों से परिचित प्रतीत होते हैं, किन्तु मैं यहाँ केवल पुराने धर्मों की ही चर्चा कर रहा हूँ इन धर्मों को राष्ट्र-धर्म या प्राकृतिक धर्म के नाम से भी अभिहित किया जाता है—मैं यहां उन धर्मों की चर्चा नहीं कर रहा जो बाद में पैगम्बरों या सुधारकों आदि के द्वारा चलाए गए हैं।

७७. तथापि, उन पुराने धर्मों के बारे में हम कदाचित् ही इस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व को सही जान पाते हैं कि उनका मूल क्या है और उनका क्रमिक विकास कैसे हुआ। यहूदी धर्म को हमारे समक्ष आरम्भ से ही एक सर्वाङ्गपूर्ण धर्म के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा है। उसके मूल-उद्गम और आरम्भिक विकास को जान लेना हमारे लिए बड़ा कठिन है। इसी प्रकार हम यूनान और रोम, अंग्रेज, जर्मन आदि, ट्यूटन और स्लाव तथा केल्ट लोगों के धर्मों के बारे में जानना चाहें तो हमें ज्ञात होगा कि उन लोगों के धर्मों के बारे में हमारी जानकारी से पहले ही वे धर्म लुप्त हो चुके थे और उनमें जो कुछ परिवर्तन हुआ वह अपने मूल तत्त्व से दूसरे (ईसाई) धर्म में रूपान्तर मात्र है। इन सब जातियों का धर्म आज भी हमें इसी धर्मान्तरित रूप में दिखाई दे रहा है।

७८-८०. इसके विपरीत, हम भारत के प्राचीन निवासियों की ओर देखते हैं तो पाते हैं कि उनके लिए धर्म जीवन के लिए उपयोगी अनेक तत्त्वों में से अन्यतम तत्त्व मात्र नहीं था। उनके लिए धर्म एक ऐसा तत्त्व था, जिसमें अन्य सभी तत्त्व समाहित हो जाते हैं। धर्म में केवल यज्ञ-याग, पूजा-पाठ अथवा स्तुति-प्रार्थनाएँ आदि ही सम्मिलित नहीं थीं, अपितु जिसे हम दर्शन, नैतिकता, न्याय या विधिशास्त्र और शासन-तन्त्र कहते है, सभी-कुछ तो धर्म में निहित था और सभी का उद्भव धर्म से ही होता था। यूनान के देवताओं तथा कुछ विशिष्ट भौतिक या प्राकृतिक तत्त्वों के रूप में उनकी मूल रूपरेखाएँ अंकित करने के लिए यूनानियों के प्राचीन धर्म अथवा ग्रीक भाषा के गहन अध्ययन की आवश्यकता नहीं है। आज (इंग्लैण्ड) का प्रत्येक छात्र

perfectly rational, natural. aye inevitable in the first periods, or the childish age of the human mind.

83. Now it is exactly this period in the growth of ancient religion. which was always presupposed, or postulated, but was absent everywhere else, that is clearly put before us in the hymns of of the Rig-veda. It is this ancient chapter in the history of the human mind which has been preserved to us in Indian literature, while we look for it in vain in Greece or Rome or elsewhere.

84. It has been a favourite idea of those who call themselves 'students of man', or anthropologists, that in order to know the earliest or so-called prehistoric phases in the growth of man. we should study the life of savage nations, as we may watch it still in some parts of Asia, Africa, Polynesia, and America.

85. There is much truth in this, and nothing can be more useful than the observations which we find collected in the works of such students as Waitz, Tylor, Lubbock, and many others. But let us be honest, and confess, first of all, that the materials on which we have here to depend are often extremely untrustworthy.

86. Nor is this all. What do we know of savage tribes beyond the latest chapter of their history ? Do we ever get an insight into their antecedents ? Can we understand. What after all is everywhere the most important and the most instructive lesson to learn, how they have come to be what they are ? There is indeed their language, and in it we see traces of growth that point to distant ages, quite as much as the Greek of Homer, or the Sanskrit of the Vedas. Their language proves indeed that these so-called heathens, their artificial customs, their unintelligible whims and savageries, are not the creatures of to-day or yesterday. Unless we admit a special creation for these savage, they must be as old as the Hindus, the Greek and Romans, as old as we ourselves. We may assume, of course, if we like, that their life has been stationary, and that they are to-day what the Hindus were no longer 3,000 years ago. But that is mere guess, and is contradicted by the facts of their language. They may have passed through ever so many vicissitudes, and what we consider a primitve may be, for all we know, a relapse into savagery, or a corruption of something that was more rational and intelligible in former stages. Think only of the rules that determine marriage among

जानता है कि यूनानियों के ज्यूस या जुपिटर में आकाशतत्त्व, पोसिडोन में समुद्रतत्त्व, हेडस में भूमितत्त्व, अपोलो में सूर्य, आर्तेमिस में चन्द्रमा और हेफिस्टोप में अग्नि-तत्त्व निहित है। यह होते हुए भी यूनानी दृष्टिकोण से ज्यूस और आकाश एवं अपोलो तथा सूर्य आदि में बहुत अन्तर है।

८१. अब देखना है कि हमें वेदों में क्या मिलता है। निस्सन्देह वेदों में दार्शनिक तत्त्वों से परिपूर्ण कुछ ऐसे सूक्त भी हैं, जिन्हें बार-बार उद्धृत किया जाता है। उन्हीं के आधार पर लोग प्रायः यह समझने लगते हैं कि वेद वास्तव में अत्यन्त मनमोहक सूक्तों का संकलन है। होमर के (इलियड और ओडिसी) जैसे महाकाव्यों के अनेक प्रसंगों की भांति वेद के कुछ सूक्तों में भी अनेक देवताओं का व्यक्तित्व रूपक के रूप में प्रस्तुत हुआ है।

८२. तथापि, बहुसंख्यक वैदिक सूक्त अग्नि, सूर्य, वरुण और इन्द्रादि से ही सम्बद्ध हैं, जो आगे चलकर इन्हीं नामों वाले देवताओं के रूप में अभिहित किये जाने लगे, किन्तु यहाँ अयथार्थ अथवा अविवेक या मात्र दैवतवाद की कहीं कोई झलक नहीं मिलती। झंझावातों के बन्द हो जाने, आकाश से पानी बरसाने तथा सूर्य से तपते रहने की उन लोगों की प्रार्थनाओं को देखकर हम उनके प्रति अपनी सहानुभूति खो न बैठें। इसमें कुछ भी बेतुकी या बेसमझी की कोई बात नहीं है। जिसने मानव-विवेक के और विशेषतः बालस्वभाव के क्रमिक विकास का अध्ययन किया है, उसके लिए तो यह कोई अस्वाभाविक तर्कहीन बात हो ही नहीं सकती। कार्य और कारण की एकता की बाल-बुद्धि को चाहे हम मानवीकरण या प्रतीकवाद अथवा रूपक या कविता, कुछ भी क्यों न कह लें, उसे अयथार्थ या तर्कहीन नहीं कह सकते। बच्चे का कुर्सी से ठोकर खाकर उसे पीटना, या अपने कुत्ते को गाली देना अथवा 'मेघा-मेघा ! पानी दे' जैसे गीत गाना हमें बुद्धिसंगत न दिखाई दें, फिर भी हैं तो ये सब बातें सर्वथा स्वाभाविक और तर्क-संगत। विशेषतः मानव-चिन्तन के शैशवकाल के आरम्भिक दिनों के लिए तो यह सर्वथा स्वाभाविक ही था।

८३. प्राचीन धर्मों के उदय का ठीक यही समय स्वयंसिद्ध मान लिया गया है, ऋग्वेद के सूक्तों में ही हमारे सम्मुख यह स्पष्ट रूप में विद्यमान है, उस युग के किसी अन्य धर्म का अन्यत्र कहीं नाम-निशान भी नहीं मिलता। मानव-मस्तिष्क के इतिहास का यह पुरातन इतिहास हमें भारतीय साहित्य में सुरक्षित मिलता है, जबकि हम यूनान या रोम जैसे दूसरे स्थानों में व्यर्थ ही उसे खोजते फिरते हैं।

८४. अपने-आपको नृ-तत्त्व-विज्ञान के शोधक समझने वाले लोगों को मानव-विकास के पुरातन या तथाकथित प्रागैतिहासिक युग की जानकारी के लिए एशिया, अफ्रिका, पोलोनेशिया और अमेरिका में आज भी कहीं-कहीं पायी जाने वाली जंगली जातियों के जन-जीवन के अध्ययन का विचार बड़ा अच्छा लगता है।

८५. इस में काफी सचाई है, तथा वेट्ज, टिलर, ल्यूबक और ऐसे ही अन्य शोधकर्ताओं की रचनाओं में संकलित सामग्री से अधिक उपयोगी बातें अन्यत्र कहीं

the lowest of savage tribes. Their complication, passes all understanding, all seems a chaos of prejudice, superstition, pride, vanity and stupidity. And yet we catch a glimpse here and there that there was some reason in most of that unreason; we see how sense dwindled away into nonsense, custom into ceremony, ceremony into farce. Why then should this surface of savage life represent to us the lowest stratum of human life, the very beginings of civilization, simply because we connot dig beyond that surface ?

87. Now, I do not wish to be misunderstood. I do not claim for the ancient Indian literature any more than I should willingly concede to the fables and traditions and songs of savage nations, such as we can study at present in what we call a state of nature. Both are important documents to the student of the Science of Man. I symply say that in the Veda we have a nearer approach to a begining, and an intelligible begining, than in the wild invocations of Hottentots or Bushmen. But when I speak of a begining. I do not mean an absolute begining, a begining of all things. Again and again the question has been asked whether we could bring ourselves to believe that man, as soon as he could stand on his legs, instead of crawling on all fours, as he is supposed to have done, burst fourth into singing Vedic hymns ? But who has ever maintained this. But whoever has eyes to see can see in every Vedic word, as many rings within rings as is in the oldest tree that was ever hewn down in the forest.

88. I shall say even more, and I have said it before, namely, that supposing that the Vedic hymns were composed between 1500 and 1000 B.C., we can hardly understand how, at so early a date, the Indians had developed ideas which to us sound decidedly modern. I should give anything if I could escape from the conclusion that the collection of the Vedic Hymns, a collection in 19 books, existed at least 1000 B.C., that is about 500 years before the rise of Buddhism. I do not meen to say that something may not be discovered hereafter to enable us to refer that collection to a later date. All I say is that, so far as we know at present, so far as all honest Sanskrit scholars know at present, we cannot well bring our pre-Buddhistic literature into narrower limits than 500 years.

89. What then is to be done ? We must simply keep our preconceived notions of what people call primitive humanity in abeyance for time, and if we find that people three thousand years ago were

नहीं मिल सकतीं, किन्तु हमें ईमानदारी के साथ पहले स्वीकार करना होगा कि इस विषय में जिस सामग्री पर हमें निर्भर रहना पड़ता है, वह प्रायः अत्यधिक अविश्वसनीय है।

८६. इतना ही क्यों, इन जंगली जातियों के इतिहास के अन्तिम अध्याय से पहले युगों के बारे मे हम क्या जानते हैं ? क्या उनके पुरातन इतिहास के आन्तरिक तत्त्व की एक झलक भी हमें कहीं दिखाई दी। और क्या हम यह समझ पाए कि उनमें अत्यधिक महत्त्वपूर्ण लोग हमें सीखने योग्य कोई निर्देशात्मक पाठ है। आज ये लोग जैसे हैं, उसका विकास कैसे हुआ ? निश्चित ही उनकी भी भाषा है और उसमे भी होमर की ग्रीक और वेदों की संस्कृत के समान ही सुदूर अतीत से आरम्भ होने वाले विकास के कुछ चिह्न दिखाई दे जाएँ। इन तथाकथित आदि जातियों की भाषा यह भी सिद्ध करती है कि उनकी जटिल पौराणिक देवोपासनापद्धति, कृत्रिम रीति-रिवाज, समझ में न आने वाले झक्की स्वभाव और जंगलीपन और ऐसी अन्य अनेक बातें आज या कल की ही उपज नहीं हैं। इन जंगली जातियों की उत्पत्ति किसी विशेष प्रकार से हुई है, यदि ऐसा न मान लिया जाए तो वे जातियाँ भी उतनी ही पुरानी होनी चाहिएँ जितनी कि हिन्दू, यूनानी, ट्यूटन और रोमन आदि जातियाँ हैं। हम चाहें तो यह कल्पना कर सकते हैं कि इन जंगली जातियों का जीवन स्थिर और अपरिवर्तनशील रहा है। और वे आज भी वैसे ही हैं जैसे हिन्दू ३००० वर्ष पहले थे। किन्तु यह तो अनुमान मात्र है जो उनकी भाषा से ही असत्य सिद्ध हो जाता है। हो सकता है कि उन लोगों के जीवन में भी अनेक बार उलट-फेर हुए हों। उनके बारे में हम जितना-कुछ जानते हैं, उसके आधार पर भले ही उन्हें आदिम जातियाँ मान लिया जाए, किन्तु यह भी तो हो सकता है कि वे दुबारा जगली जातियों के रूप में परिवर्तित हो गयी हों, अथवा उनमें ऐसे विजातीय मिश्रण हो गये हों जो उस आरम्भिक युग के लिए कुछ अस्वाभाविक नहीं ! इन जंगली जातियों के निम्नतम कबीलों में भी जिन नियमों के आधार पर शादियाँ होती हैं, उनके बारे में जरा सोचिये तो सही ! उनकी जटिलताएँ समझ मे बाहर हैं। सभी-कुछ तो पूर्वाग्रह, अन्धविश्वास, घमण्ड, दिखावे और मूर्खताओं में गड्डमड्ड हो गया है। इन सब निरर्थकताओं में भी हमें युक्ति-संगतता की झलक भी कहीं-न-कहीं मिल ही जाती है। हम देखते हैं कि इन जंगली जातियों की सूझबूझ कैसे मूर्खता में, रीतिरिवाज आडम्बरों में और ये आडम्बर भी नानाविध हुड़दंगों में बदलते रहे हैं, तो फिर भला इन जंगली जातियों के जीवन की यह ऊपरी सतह मानव-जीवन की सबसे निचली सतह की प्रतिनिधि कैसे हो सकती है ? क्योंकि हम ऊपरली सतह से नीचे के तल की खुदाई नहीं कर सके, इसीलिए उसे ही सभ्यता का आरम्भ कैसे मान लें ?

८७. आप लोग मुझे कहीं गलत न समझ बैठें। मैं प्राचीन भारतीय साहित्य के बारे में कोई बहुत बढ़-चढ़कर दावे नहीं कर रहा हूं। मैं यह भी मानता हूं कि जंगली जातियों के वर्तमान में उपलब्ध किस्से-कहानियों, रीति-रिवाजों, परम्पराओं और गीतों का भी अपना महत्त्व है। वे आज जिस रूप में मिलते हैं, उन्हें हम लोग प्राकृतिक अवस्था का कहा करते हैं। मानव-विज्ञान के अध्येता के लिए इन दोनों प्रकार की

familiar with ideas that seem novel and nineteenth-century-like to us. well, we must somewhat modify our conceptions of the primitive savage, and remember that things hid from the wise and prudent have sometimes been revealed to babes.

90. I maintain then that for a study of man, or, if you like, for a study of Aryan humanity, there is nothing in the world equal in importance with the Veda. "I maintain that to everybody who cares for himself, for ancestors, for his history, or for his intellectual development, a study of Vedic literature is indispensable;" and that, as an element of liberal education, it is far more important and far more improving than the reigns of Babylonian and Persian kings, aye even than the dates and deeds of many of the kings of Judah and Israel.

91. It is curious to observe the reluctance with which these facts are accepted, particularly by those to whom they ought to be most welcome. I mean the students of anthropology. Instead of devoting all their energy to the study of these documents, which have come upon us like a miracle, they seem only bent on inventing excuses why they need not be studied. Let it not be supposed that, because there are several translations of the Rig-veda in English, French, and German, therefore all that the Veda can teach us has been learned. Far from it.

92. Every one of these translations has been put forward as tentative only. I myself. though during the last thirty years I have given translations of a number of the more, important hymns, have only ventured to publish a specimen of what I think a translation of the Veda ought to be; and that translation, that 'traduction raisonnee' as I ventured to call it, of twelve hymns only, fills a whole volume.

93. We are still on the mere surface of Vedic literature, and yet our critics are ready with ever so many arguments why the Veda can teach us nothing as to a primitive state of man. If they mean by primitive that which came absolutely first, then they ask for something which they will never get, not even if they discovered the private correspondence of Adam and Eve, or of the first homo andFemina sapiens. We mean by primitive the earliest state of

साक्षियों का महत्त्व है। मेरे कहने का आशय यह है कि वेद में हमें सृष्टि के आरम्भ का निकटतम ज्ञान प्राप्त होता है, और सृष्टि के या सभ्यता के प्रारम्भ के बारे में प्राप्त होने वाला यह ज्ञान सर्वथा युक्तियुक्त, बुद्धिगम्य और तर्कसम्मत है। जबकि बुशमैन या होटेन्टोस जातियों के गीत ऐसे नहीं हैं। यहाँ मेरा आशय सर्वप्रथम प्रारम्भ से नहीं है, या इसका अर्थ यह भी नहीं है कि किसी वस्तु की वही आद्यावस्था है। यह प्रश्न बार-बार पूछा जाता है—जैसा कि आजकल माना जाता है, मनुष्य ने चौपाए से दोपाया बनते ही—क्या वैदिक सूक्तों का गान आरम्भ कर दिया था? ऐसे लोगों से मैं पूछना चाहूंगा कि क्या किसी ने आज तक कोई ऐसी बात कही है? हाँ, यह बात सुनिश्चित है कि जिस किसी के पास देख सकने की दृष्टि है, वह यह भलीभाँति समझ जाता है कि जैसे किसी पुरातनतम वृक्ष के बहुत मोटे तने में एक के बाद दूसरे घेरे या चक्कर होते हैं, वैसे ही वेद के प्रत्येक सूक्त ही क्यों, एक-एक शब्द के अन्दर भी छल्ले के भीतर छल्ले निकलते जाते हैं।

८८. यहाँ मैं इससे भी आगे बढ़कर यह कहता हूं और पहले भी मैंने बार-बार कहा है कि वेद और ऋग्वेद का वर्तमानरूप आज से लगभग साढ़े तीन हजार वर्ष पहले विद्यमान था। आप लोग कह सकते हैं कि यह बात हमें जँचती नहीं, क्योंकि आज से हजारों वर्ष पहले भारतीयों में वे विचार भला कैसे विकसित हो सकते थे जो बिल्कुल आज के-से लगते हैं? इस सम्बन्ध में मेरा यह कहना है कि यदि मुझे अपनी इस मान्यता में कि 'ईसा से एक हजार वर्ष पहले ही ऋग्वेद के दसों मण्डल और उनके सूक्तों का संकलन अपने वर्तमान रूप में विद्यमान था' रंचक भी सन्देह होता तो मैं अपनी धारणा बदल लेता। में यह दावा तो नहीं करता कि आगे चलकर कुछ ऐसे प्रमाण नहीं ढूंढ लिये जाएंगे जिनके आधार पर मेरी इस मान्यता में परिवर्तन कर दिया जाए। मैं तो यही कहता हूं कि हम जहाँ तक जान पाए हैं और जो कुछ सभी निष्पक्ष संस्कृत के विद्वान् जानते हैं, उसके आधार पर प्राग्बौद्धकालीन वैदिक साहित्य को बुद्ध-पूर्व ५०० वर्ष से इधर का तो बता हीं नहीं सकते।

८९. ऐसी अवस्था में क्या किया जाए? समय की दुविधा में पड़कर लोग जिसे आदिमानवता के नाम से पुकारते हैं, उसके बारे में अपने-अपने विचार उन्हें मुबारक हों, और यदि हमें यह ज्ञात हो जाए कि आज से ३००० वर्ष पहले के लोगों के भी ऐसे आश्चर्यजनक विचार थे, जो आज हमें इस १९वीं सदी के जैसे लगते हैं, तो हमें आदिम जातियों के बारे में भी अपनी धारणाएँ बदल देनी होंगी। आप यह मान सकते हैं कि कभी-कभी बच्चों को ऐसी बातें सूझ जाती हैं जो बड़ों के भी ध्यान में नहीं आ पातीं।

९०. मैं बार-बार प्रतिपादित करता आ रहा हूँ कि मानव विशेष रूप से आर्य मानवता के सम्यक् अध्ययन व परिचय के लिए विश्व में वेद के समान महत्त्वपूर्ण अन्य कोई साहित्य नहीं है। मैं यह भी जोर देकर पुनः प्रतिपादित करता हूं कि **जो कोई अपने ही स्वरूप को जानना चाहता है, जिसे अपने पूर्वजों को पहचानने की**

man of which, from the nature of the casc, we can hope to gain any knowledge ; and here next to the archives hidden away in the secret drawers of language, in the treasury of words common to all the Aryan tribes, and in the radical elements of which each word is compounded, there is no literary relic more full of lessons to the true anthropologist, to the true student of mankind, than the Rigveda.

ललक है, जो अपने इतिहास का जिज्ञासु है, जिसे अपने बौद्धिक विकास के बारे में जानने की उत्सुकता है, उसके लिए निश्चित रूप मे वैदिक वाङ्मय का अध्ययन अनिवार्य है। आज के सामान्य ज्ञान की शिक्षा में वेदों का ज्ञान बेबीलोन और ईरान के सम्राटों तथा जद्दा और इजरायल के बादशाहों के तिथिक्रमों व कार्यों को जानने की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण, ज्ञानवर्धक व जीवन-निर्माणकारी है।

६१. जिन लोगों के द्वारा इनका अत्यधिक स्वागत होना चाहिए, उन्हीं के द्वारा इनकी उपेक्षा देखकर मुझे बड़ी हैरानी होती है। मेरा आशय नृ-तत्त्व-शास्त्र के अध्येताओं से है। यह लिखित सामग्री जो हमें एक बहुत बड़े आश्चर्य के रूप में उपलब्ध हुई है, उसके अध्ययन में अपनी पूर्ण शक्ति लगाने की अपेक्षा ये लोग ऐसे बहाने ढूढते दिखाई देते हैं कि हमें इस सामग्री (वैदिक वाङ्मय) का अध्ययन क्यों नहीं करना चाहिए। किन्तु मैं कहता हूं कि **हमें यह नहीं मान लेना चाहिए कि क्योंकि ऋग्वेद के अंग्रेजी, फ्रेञ्च और जर्मन भाषाओं में अनेक अनुवाद हो गए हैं, इसलिए वेद हमें जो कुछ सिखा सकते हैं वह सब-कुछ सीख लिया गया, क्योंकि वास्तविक स्थिति इसके सर्वथा विपरीत है।**

६२. ये सब-के-सब अनुवाद प्रयोग मात्र हैं। मैं स्वय तीस वर्ष से निरन्तर वेदों का अनुशीलन कर रहा हूँ और अपने ज्ञान व अनुभव के बाद भी वेदमन्त्रों का अनुवाद किस ढंग से किया जाना चाहिए, यह दिखाने के लिए इस लम्बी अवधि में ऋग्वेद के कुछ ही सूक्तों का अंग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित करवा सका हूं। इस भाग में केवल १२ सूक्तों का ही मेरा अनुवाद प्रकाशित हो पाया है, जिसे मैं केवल भाषान्तरण मात्र कहने की हिम्मत कर सकता हूं, न कि यथार्थ अनुवाद।

६३. इस प्रकार अभी तो हम वैदिक **वाङ्मय की सबसे ऊपर की सतह को ही देख पाए हैं।** हमारे कई आलोचक तर्क करते हैं कि वेदों से हमें कोई शिक्षा नहीं मिलती और उनसे सृष्टि के आरम्भ का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। यदि इस प्रारम्भिक ऐतिहासिक ज्ञान से उनका आशय सृष्टि के आदिकाल से हैं, तब तो आदम और हव्वा के पारस्परिक प्रेमालापों का पता लगा लेने पर भी वे शायद ही सन्तुष्ट हो पाएँ। प्रारम्भिक से हमारा आशय मानव की वह प्राचीनतम स्थिति है जिसके बारे में हम जानकारी मिलने की आशा कर सकते हैं। इस प्रसंग में भाषाओं के रहस्यमय पर्दों में छपे हुए कुछ प्रत्न अभिलेखों को अपवाद माना जाए तो **नृतत्त्वविद्या-पारखी तथा मानवता के सच्चे विद्यार्थी के लिए सम्पूर्ण आर्य जाति के द्वारा समान रूप से प्रयुक्त शब्दों की निधि से भरपूर और प्रत्येक शब्द का निर्माण करने वाली मूलधातु से युक्त तथा शिक्षाप्रद, ऋग्वेद से बढ़कर अन्य कोई साहित्यिक सामग्री नहीं है।**

LECTURE IV

WAS VEDIC CULTURE EXCLUSIVE ?

1. It may be quite true that controversy often does more harm than good, that it encourages the worst of all talents, that of plausibility, not to say dishonesty, and generally leaves the world at large worse confounded than it was before. It has been said that no clever lawyer would shrink from taking a brief to prove that the earth forms the centre of the world and, with all respect for English Juries, it is not impossible that even in our days he might gain a verdict against Galileo. I do not deny that there is a power and vitality in truth which in the end overcomes and survives all opposition, as shown by the very doctrine of Galileo which at present is held by hundreds and thousonds who would find it extremely difficult to advance one single argument in its support. I am ready to admit also that those who have done the best work, and have contributed most largely toward the advancement of knowledge and the progress of truth, have seldom wasted their time in controversy, but have marched on straight, little concerned either about applause on the right or abuse on the left.

2. All this is true, perfectly true, and yet I feel that I cannot escape from devoting the whole of a lecture to the answering of certain objections which have been raised against the views which I have put forward with regard to the character and the historical importance of Vedic literature. We must not forget that the whole subject is new, the number of competent judges small, and mistakes not only possible but almost inevitable. Besides, there are mistakes and mistakes, and the errors of able men are often instructive, nay one might say sometimes almost indispensable for the discovery of truth. There are criticisms which may be safely ignored, criticisms for the sake of criticism, if not inspired by meaner motives. But there are doubts and difficulties which suggest themselves naturally, objections which have a right to be heard, and the very removal of which forms the best approach to the stronghold of truth.

चतुर्थ व्याख्यान

क्या वैदिक संस्कृति वैराग्यमूलक थी ?

१-३ 'मतवैभिन्यों के कारण लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होती है, प्रतिभाओं की उत्कृष्टता की अपेक्षा इससे निकृष्टता को ही प्रोत्साहन मिलता है, और सामान्यतया विश्व जिस दुविधा-जनक स्थिति में होता है विविध मतभेदों से वह उससे भी बुरी अवस्था में हो जाता है।' यह सर्वथा सत्य हो सकता है। कहा जाता है कि कोई भी चालाक वकील यह सिद्ध करने से कभी नहीं हिच-किचाएगा कि यह सौरमण्डल पृथ्वी के चारों ओर घूम रहा है तथा अंग्रेजों की न्यायपालिका के प्रति अपना सम्पूर्ण आदर रखते हुए भी कहा जा सकता है कि आज भी वह वकील गैलेलियो के विरुद्ध डिग्री हासिल कर सकता है। मैं जानता हूँ कि आज सैंकड़ों-हजारों ऐसे लोग भी हैं जिन्हें गैलेलियो की मान्यता के पक्ष में एक भी युक्ति नहीं सूझ पाती फिर भी वे उसे मानते हैं, इसलिए 'सत्यमेव जयते' के सिद्धान्त की सच्चाई अन्ततोगत्वा सिद्ध हो ही जाती है। मैं यह भी मानता हूँ कि जिन्होंने श्रेष्ठतम कार्य कर दिखलाए और ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में आगे बढ़ाने या सत्य की शोध में अपना महान् योगदान दिया उन्होंने नानाविध प्रचलित मतभेदों की ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया और न उन्होंने कभी अपने अनुकूल पक्ष की प्रशंसा अथवा विरोधियों की निन्दा की ही कभी कुछ परवाह की। अपितु वह सदा अपने पथ पर ही अग्रसर होते रहे। यह सब तो सत्य और सर्वथा सत्य है। तथापि वैदिक वाङ्मय का महत्त्व प्रतिपादित करने के लिए मैंने अब तक जो कुछ कहा है, उसके विरुद्ध उठने वाली आपत्तियों या आक्षेपों का उत्तर मैं आज के अपने इस व्याख्यान में देने का विचार छोड़ नहीं पा रहा हूँ। हमें यह नहीं भूलना है कि यह एक सर्वथा नया विषय है और इस विषय के सक्षम तथा योग्य निर्णायक भी बहुत कम हैं। यहां त्रुटियां सम्भावित ही नहीं अपरिहार्य भी हो सकती हैं। यहां भूलें भी हैं और किसी योग्य व्यक्ति की भूल से भी कभी कोई नई बात मिल जाया करती है। इतना ही क्यों भूलें भी यदा कदा सत्य के अनुसंधान में आवश्यक हो जाती हैं। किसी प्रकार की दुर्भावना से प्रेरित न होकर आलोचना के लिए ही की गई आलोचना उपेक्षणीय भी हो सकती है, किन्तु कुछ सन्देह और कठिनाइयाँ ऐसी भी होती हैं जिनसे उठी हुई आपत्तियों को सुनना समझना और जिनका समाधान सत्य को पकड़ने में सहायक बन जाता है। भारतीय साहित्य में इस सिद्धान्त को जिस परिपूर्णता के साथ मान्यता प्रदान की गई है, वैसी अन्यत्र कहीं नहीं। नियम यह है कि जिस विषय का प्रतिपादन करना है, पहले युक्ति प्रमाण एवं तर्कों के आधार पर उसका पूर्व पक्ष प्रस्तुत किया जाता है। और विपक्ष की कोई आपत्ति ओछी, अवांछनीय और असम्भव नहीं हो तो पहले उसे समझाया

3. Nowhere has this principle been so fully recognised and been acted on as in Indian literature. Whatever subject is started, the rule is that the argument should begin with the cons, the so-called purvapaksha, with all that can be said against a certain opinion. Every possible objection is welcome, if only it is not altogether frivolous and absurd and then only follow the pros, the uttarapaksha, with all that can be said against these objections and in support of the original opinion. Only when this process has been fully gone through is it allowed to represent and opinion as siddhanta, or established.

4. Therefore, before opening the pages of the Veda, and giving you a description of the poetry, the religion, and philosophy of the ancient inhabitants of India, I thought it right and necessary to establish, first of all, certain points without which it would be impossible to form a right appreciatian of the historical value of the Vedic hymns, and of their importance even to us who live at so great a distance from those early poets.

5. The *first* point was purely preliminary, namely that the Hindus in ancient, and in modern times also, are a nation deserving of our interest and sympathy, worthy also of our confidence and by no means guilty of the charge so recklessly brought against them—the change of an habitual disregard of truth.

6. *Secondly*, that the ancient literature of India is not to be considered simply as a curiosity and to be handed over to the good pleasure of Oriental scholars, but that, Both by its language, the Sanskrit, and by its most ancient literary documents, the Vedas, it can teach us lessons which nothing else can teach. As to the origin of our own language, the first formation of our own concepts, and the true natural germs of all that is comprehended under the name of civilization, at least the civilization of the Aryan race, that race to which we and all the greatest nations of the world—the Hindus, the Persians, the Greeks and Romans, the Slavs, the Celts, and last, not least, the Teutons, belong.

7. A man may be a good and useful ploughman without being a geologist, without knowing the stratum on which he takes his stand, or the strata beneath, which give support to the soil whereon he lives and works, and from whence he draws his nourishment. And a man may be a good and useful citizen, without being an historian, without knowing how the world in which he lives

जाता है। बाद में उत्तर पक्ष रखा जाता है, जिसमें पूर्व पक्ष की आपत्तियों का सम्यक्तया समाधान किया जाता है। इस प्रकार पूर्व तथा उत्तर दोनों पक्षों पर भली-भाँति विचार करने पर सिद्धान्त पक्ष स्वीकृत कर लिया जाता है।

४. अतएव वेदों से सम्बद्ध इस अध्याय का श्रीगणेश एवं भारत के प्राचीन निवासियों की कविता, धर्म और दार्शनिकता आदि का वर्णन आरम्भ करने से पूर्व यह उचित व आवश्यक होगा कि कुछ सिद्धान्त स्थिर कर लिये जायें, क्योंकि ऐसा किये बिना वेदों के सूक्तों के ऐतिहासिक मूल्यों एवं उनसे इतनी अधिक दूर पड़े हम लोगों के लिये भी जो उनका महत्त्व है, उसकी सही समीक्षा नहीं हो पायगी।

५. सबसे पहला और प्रमुख तत्त्व तो यही है कि हिन्दु प्राचीन युग में, और आज भी हमारी रुचि और सहानुभूति की एवं हमारे विश्वास की पूर्ण अधिकारिणी जाति है, और असत्यशीलता आदि के झूठे आरोप उस पर किसी प्रकार नहीं लगाए जा सकते।

६. **दूसरी बात**—भारत के प्राचीन साहित्य को एक अनोखी वस्तु नहीं समझना होगा और न उसे केवल प्राच्य विद्याविदों के एक अच्छे मनोरंजन के लिये ही छोड़ दें।

७-८. **अपनी संस्कृत भाषा और अपनी अत्यन्त प्राचीन प्रामाणिक सामग्री इन दोनों ही रूपों में वेदों से हमें** हमारी अपनी भाषा के मूल रूप, हमारी अपनी मान्यताओं के प्रथम निर्धारण, और 'सभ्यता' के अन्तर्गत जिन किन्ही तत्त्वों का समावेश हो सकता है, कम से कम 'आर्य जाति'—जिससे हम और विश्व की अन्य सभी महान्तम जातियों—हिन्दु, पारसी, यूनानी, रोमन, स्लाव, केल्ट और अन्तिम किन्तु उतनी ही महत्त्वपूर्ण टयूटन जातियाँ सम्बद्ध हैं—की सभ्यता के वास्तविक एवं प्राकृतिक मूल के बारे में जो शिक्षा हमें वेदों से प्राप्त होती है, वह और कहीं से नहीं। हम अपने उन पूर्वजों के बारे में भी जिज्ञासु हैं, जो हमारे लिए परमोपयोगी विरासत छोड़ गए। निश्चित ही आज जो भी कुछ हम हैं या बन सके हैं, वह उन्ही के कारण बन पाए हैं। वे सम्पूर्ण आर्यजाति के पूर्वज थे। उन्होंने ही 'हमारी' शब्द-सम्पत्ति को प्रथम रूप प्रदान किया और वे ही हमारे चिन्तन को आदिकाव्य के रूप में अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले थे। उन्होने ही हमें विधि-विधान या धर्म-शास्त्र प्रदान किये हैं। वे ही हमारे देवताओं और देवाधिदेव परब्रह्म के प्रथम प्रस्तोता थे।

९. इन सब बातों को जानने या न जानने का प्रयत्न करने वाले लोगों को प्राप्त यह वरिष्ठता उन दूसरे लोगों के लिए भी सुलभ है, जो इस क्षेत्र में प्रवेश के इच्छुक हैं, जो अतीत के प्रति संवेदनशील हैं, अपने चिन्तन एवं बौद्धिक विकास की परम्परा को जानने को जो उत्सुक हैं, जिनके हृदय में अपने उद्‌बुद्ध पूर्वजों के प्रति कुछ आदरभाव है और जो वास्तविक अर्थों में इतिहास के जिज्ञासु हैं, अर्थात् अपने उस अतीत के बारे में जानना चाहते हैं, जो बीत भले ही गया हो, नष्ट नहीं हो पाया है।

came about, and how many phases mankind had to pass through in language, religion, and philosophy, before it could supply him with that intellectural soil on which he himself lives and works, and from which he draws his best nourishment.

8. But there must always be an aristocracy of those who know, and who can trace back the best which we possess, not merely to a Norman Count, or a Scandinavian Viking or a Saxon Earl, but to far older ancestors and benefactors, who thousands of years ago were toiling for us in the sweat of their face, and without whom we should never be what we are—the ancestors of the whole Aryan race, the first framers of our words, the first poets of our thoughts, the first givers of our laws, the first prophets of our gods, and of Him who is God above all gods.

9. That aristoracy of those who know,—*di color che sanno,*—or try to know, is open to all who are willing to enter, to all who have a feeling for the past, an interest in the pedigree of our thoughts and a reverence for the ancestry of our intellect, who are in fact historians in the true sense of the word, i.e. inquirers into that which is past, but not lost.

10. *Thirdly*, having explained to you why the ancient literature of India, the really ancient literature of that country, I mean that of the Vedic period, deserves the careful attention, not of Oriental scholars only, but of every educated man and woman who wishes to know how we, even we here England and in this nineteenth century of ours, came to be what we are, I tried to explain to you the difference, the natural and inevitable difference, between the development of the hùman character in such different climates as those of India and Europe. And while admitting that the Hindus were deficient in many of those manly virtues and practical achievements which we value most.

11. I wished to point out that there was another sphere of intellectual activity in which the Hindus excelled—the meditative and transcendent—and that here we might learn from some lessons of life which we ourselves are but too apt to ignore or to despise.

12. *Fourthly*, fearing that I might have raised too high expectations of the ancient wisdom, the religion and philosophy of the Vedic Indians, I felt it my duty to state that, though primitive in one sense we must not expect the Vedic religion to be primitive in the antropological sense of the word, as containing the utterances

१०-११. तीसरी बात—प्राच्यविद्या-विशारदों को ही नहीं अपितु हम आज यहाँ इस १६ वीं शताब्दी और इंग्लैण्ड में भी जो-कुछ और जिस रूप में हैं, अपने इस क्रमिक रूप के जिज्ञासु **प्रत्येक शिक्षित नर-नारी को भारत के प्राचीन वैदिक साहित्य की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए**, यह समझाते हुए मैंने स्पष्ट किया था कि भारत और यूरोप की जलवायु या वातावरण में अन्तर के कारण वहाँ के निवासियों की विशेषताएँ भी भिन्न-भिन्न रूपों में विकसित हुई हैं। वह स्वीकार करते हुए भी कि हिन्दू लोग मानव की ऐसी अनेकविध क्षमताओं और उपलब्धियों में पिछड़ रह गए, जिन्हें हम बहुत अधिक महत्त्व देते हैं, तथापि **वे उस परमोच्च तत्त्व के चिन्तन-मनन में हमसे कहीं आगे निकल गए। इस क्षेत्र में हम उनसे जोवन के बारे में ऐसी शिक्षा ले सकते हैं**, जिसे हम लोग या तो सर्वथा अनदेखा कर देने, या तिरस्कार की दृष्टि से देखने के आदी हो गए हैं।

१२. चौथी बात मेरे मन्तव्यों से जो आप लोगों के मनों में भारतीयो के धर्म दर्शन ओर चिन्तन के सम्बन्ध में उच्च संभावनाएँ जागृत हुई हैं, उनके स्पष्टीकरण में मैं बताना चाहूंगा कि वैदिक धर्म अपने वर्तमान रूप में प्रचीनतम है, तथापि नृतत्त्व विद्या की दृष्टि से यह उन आदि प्राणियों का धर्म नहीं है जो हाल ही में अपने खोल से बाहर निकले थे और जो अपने चारों ओर के विश्व को आश्चर्य से देख रहे थे।

१३. **वेद सृष्टि के आदि साहित्य माने जाते हैं, क्योंकि उनसे पुराना और कोई साहित्य नहीं है। साथ ही वेदों में संस्कृति, भाषा, पुराण, इतिहास और दर्शन का ऐसा सुदूरगामी विराट्दृश्य हमारे सामने उपस्थित होता है, जिसे काल की सीमा-रेखा में कदापि आबद्ध नहीं किया जा सकता।** इतना ही क्यों वेदों में सरल, स्वाभाविक, नैसर्गिक और शिशुओं के से छलछन्द विहीन विचारों के साथ ही साथ ऐसे गहन-गम्भीर गूढ़ विषय भी प्रतिपादित हुए हैं, जिन्हें सर्वथा आधुनिक या द्वितीय अथवा तृतीय स्तर का भी कहा जा सकता है। निश्चित ही वैदिक साहित्य अन्य किसी भी साहित्यिक सामग्री से पुरातनतम है। मानव-चिंतन के इतिहास के उस आदि युग के बारे में वैदिक साहित्य से हमें ऐसी विश्वसनीय जानकारी मिली है, जिसे वेदों से परिचित होने से पहले हम बिल्कुल नहीं जानते थे।

१४. इतना सब कुछ होते हुए भी अभी तक हमारा मार्ग प्रशस्त नहीं हो पाया है। वेदों को प्रामाणिक ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में स्वीकार करने में अनेक अन्य आपत्तियाँ भी उठाई गई हैं। उनमें से कुछ महत्त्व रखती हैं और ऐसी आपत्तियों के बारे में उठाए जाने वाले वाद-विवादों में यदा-कदा मैंने भी भाग लिया है। दूसरे प्रकार की आपतियाँ सूचनात्मक हैं। ऐसी, और अन्य आपत्तियाँ हम जिस आधार पर खड़े हैं, उसे परखने का हमें अवसर प्रदान करती हैं।

१५. वेदों को लिखित ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में स्वीकार किये जाने के विरुद्ध पहली आपत्ति यह उठाई जाती है कि वे राष्ट्रीय चरित्र के अभिव्यंजक नहीं

of beings who had just broken their shells, and were wonderingly looking out for the first time upon this strange world. Primitive, because there is no other literary document more primitive than it :

13. The Veda may be called but the language, the mythology, the religion and philosophy that meet us in the *Veda open vistas of the past which no one would venture to measure in years.* Nay, they contain, by the side of simple, natural, childish thoughts, many ideas which to us sound modern, or secondary and tertiary, as I called them, but which nevertheless are older than any other literary document, and give us trustworthy information of a period in the history of human thought of which we knew absolutely nothing before the discovery of the Vedas.

14. But even thus our parth is not yet clear. Other objections have been raised against the Veda as an historical document. Some of them are important; and I have at times shared them myself. Others are at least instructive, and will give us an opportunity of testing the foundation on which we stand.

15. The first objection then against our treating the Veda as an historical document is that it is not truly national in its character, and does not represent the thoughts of the population of India, but only of a small minority, namely of the Brahmans, and not even of the whole class of Brahmans, but only of a small minority of them, namely of the professional priests.

16. Objections should not be based on demands which, from the nature of the case, are unreasonable. Have those who maintain that the Vedic hymns do not represent the whole of India, that is the whole of its ancient population, in the same manner as they say that the Bible represents the Jews or Homer the Greeks, considered what they are asking for ? So far from denying that the Vedic hymns represent only a small and, it may be, a priestly minority of the ancient population of India, the true historian would probably feel inclined to urge the same cautions against the Old Testament and the Homeric poems also.

17. No doubt, after the books which compose the Old Testament had been collected as a Sacred Canon they were known to the majority of the Jews. But when we speak of the primitive state of the Jews, of their moral, intellectual, and religious status while in Masopotamia or Canaan or Egypt, we should find that the

हैं और न सम्पूर्ण भारतीय समाज की चिंतनधारा का ही प्रतिनिधित्व करते हैं, वे तो केवल ब्राह्मणों, और वह भी सभी ब्राह्मणों का नहीं, मात्र व्यावसायिक पौरोहित्य-वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करते हैं ।

१६. अपने विषय से असम्बद्ध किन्हीं मांगों के आधार पर कोई आपत्ति नहीं उठाई जानी चाहिए । वेद के विरुद्ध जिन आक्षेपकर्ताओं का यह कहना है कि जैसे बाइबल यहूदियों का और होमर यूनानियों का प्रतिनिधित्व करता है, ठीक वैसे ही वैदिक सूक्त प्राचीन भारत का, प्राचीन भारत की सम्पूर्ण जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करते । उनसे मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या उन्होंने कभी सोचा है कि इस प्रकार की आपत्तियाँ उठाकर वे क्या जानना या सिद्ध करना चाहते हैं ? माना कि वैदिक सूक्त प्राचीन भारत के छोटे-से वर्ग, और हो सकता है कि वह मात्र पौरोहित्य वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करते हैं, तो क्या इतिहास का सच्चा जिज्ञासु होमर के काव्य और ओल्ड टेस्टामेंट के बारे में भी उतना ही जागरूक है ।

१७. निस्सन्देह ओल्ड टेस्टामेंट का संकलन हो जाने के बाद बहुसंख्यक यहूदी लोग उसे पवित्र धर्मग्रन्थ मानने लगे, किन्तु मैसोपोटेमिया (ईरान, ईराक) अथवा घाना या मिश्र में रहनेवाले यहूदियों के नैतिक, बौद्धिक और धार्मिक तथा सामाजिक आदि नानाविध आरम्भिक अवस्थाओं तथा परिस्थितियों के बारे में ओल्ड टेस्टामेंट से क्या हमें कुछ भी सही जानकारी मिल पाती है ? जब हम यूनान या रोम के इतिहास की बात करते हैं, तब भी उन के सामाजिक, बौद्धिक और धार्मिक जीवन से सम्बद्ध सम्पूर्ण राष्ट्रीय चरित्र का एक सर्वांगपूर्ण चित्र हमें उनमें कहीं नहीं मिलता ।

मध्य युग के भी सम्पूर्ण समाज के चिन्तकों के जीवन-वृत्त और अपने ही युग के समाज का भी हमें कितना ज्ञान है ? हम भले ही अपने राजा-महाराजाओं, बादशाहों, राजनयिकों, मंत्रियों और सेनापतियों के बारे में थोड़ा बहुत जानते हों, किन्तु जन-साधारण के जीवन के बारे में तो हमारा ज्ञान नहीं के बराबर ही है । मंत्रियों या सेनापतियों आदि का भी हमें जो कुछ ज्ञान है वह भी वही है, जो हम अपने सम-सामयिक लाखों-करोड़ों लोगों में से दो-एक यूनानी कवियों या यहूदी पैगम्बरों आदि ने अपनी समझ के अनुसार हमें बता दिया ।

१८. कहा जा सकता है कि यूनानी और यहूदी लेखक भले ही कुछ ही रहे हों, किन्तु उनके पाठक अनेक थे—क्या यह सही है ? मैं समझता हूँ कि आप लोग यह सुनकर चकित होंगे कि ओल्ड टेस्टामेंट और होमर के काव्य को आज के युग में भी पढ़ने वाले कितने कम हैं, जबकि पुराने-जमाने में पढ़ना-लिखना एक विशिष्ट वर्ग का ही अधिकार था । हो सकता है कि सार्वजनिक या वैयक्तिक उत्सवों, पूजा पद्धतियों के अवसर पर ओल्ड टेस्टामेंट और होमर की कथाएं सुनी-सुनाई जाती रही हों, तथा नाटकों में भी उन्हें प्रस्तुत किया जाने लगा हो, तथापि आज की परिभाषा में 'पाठक' एक सर्वथा नया आविष्कृत शब्द है ।

१९-२०. यूरोप में इन दिनों पढ़ने-पढ़ाने की प्रवृत्ति का जितने व्यापक क्षेत्र

different books of the Old Testament teach us as little of the whole Jewish race, with all its local characteristics and social distinctions, as the Homeric poems do of all the Greek tribes, or the Vedic hymns of all the inhabitants of India. Surely, even when we speak of the history of the Greeks or the Romans, we know that we shall not find there a complete picture of the social, intellectual, and religious life of a whole nation. We know very little of the intellectual life of a whole nation, even during the Middle Ages, aye even at the present day. We may know something of the generals, of the commanders-in-chief, but of the privates of the millions, we know next to nothing. And what we do know of kings or generals or ministers is mostly no more than what was thought of them by a few Greek poets or Jewish prophets, men who were one in a million among their contemporaries.

18. But it might be said that though the writers were few, the readers were many. Is that so ? I believe you would be surprised to hear how small the number of readers is even in modern times, while in anceint times reading was restricted to the very smallest class of privileged persons. There may have been listeners at public and private festivals, at sacrifices, and later on in theatres, but readers in our sense of the word, are a very modern invention.

19. There never has been so much reading, reading spread over so large an area, as in our times. But if you asked publishers as to the number of copies sold of books which are supposed to have been read by everybody, say Macaulay's History of England, the Life of the Prince Consort, or Darwin's Origin of Species, you would find that out of a population of thirty-two millions not one million has possessed itself of a copy of these works. The book which of late has proably had the largest sale is the Revised Version of the New Testament ; and yet the whole number of copies sold among the eighty millions of English speaking people is probably not more than four millions.

20. Of ordinary books which are called books of the season, and which are supposed to have had a great success, an edition of three or four thousand copies is not considered unsatisfactory by either publishers or authors in England. But if you look to other countries, such. for instance, as Russia, it would be very difficult indeed to name books that could be considered as representative of the whole nation, or as even known by more than a very small minority.

में प्रचार हुआ है, वैसा पहले कभी नहीं रहा। आज मैकाले-रचित इंगलैंड का इतिहास और प्रिंस कन्सर्ट की जीवनी या डार्विन की रचनाओं को सबके द्वारा पढ़ी गई समझा जाता है, किन्तु यदि उनके प्रकाशकों से पूछा जाए तो वे बताएंगे कि इंगलैंड की लगभग सवा तीन करोड़ की जनसंख्या में से आठ-दस लाख लोगों के पास भी इनमें से एकाध भी पुस्तक नहीं है। न्यू टेस्टामेंट का संशोधित संस्करण सम्भवतः सबसे अधिक बिका है। आठ करोड़ अंग्रेजी भाषियों में से तीस-चालीस लाख लोगों से अधिक के पास यह पुस्तक भी नहीं है। दूसरे प्रकार की साधारण पुस्तकों को सामयिक साहित्य कहा जाता है, वे बड़ी सफल पुस्तकें मानी जाती हैं, क्योंकि उनकी तीन-चार हजार प्रतियों के संस्करण निकल चुके हैं। उनके प्रकाशक और लेखक इससे असन्तुष्ट नहीं हैं। इंगलैंड को छोड़कर यदि हम दूसरे देशों की ओर देखें, उदाहरण के लिए रूस को ही ले लीजिए, वहाँ यदि हम कोई ऐसी पुस्तक ढूंढना चाहें जिसके बारे में यह समझा जाता हो कि यह सारे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है, तो ऐसी किसी पुस्तक के नाम का पता लगा लेना भी बहुत कठिन है। ऐसे देशों में कोई एक-आध पुस्तक भी तो नहीं मिल पायेगी, जिसे कुछ इने-गिने लोगों के सिवा दूसरों ने पढ़ा या देखा-सुना भी हो।

२१. यदि हम यूनान, रोम, ईरान, और बेबीलोनिया जैसे प्राचीन राष्ट्रों की ओर देखे तो हमें ज्ञात होगा कि वहाँ के लोग होमर के काव्य के सिवा अन्य किसी पुस्तक के नाम से भी परिचित नहीं हैं; और क्या होमर का काव्य भी कुछ हजार से अधिक लोगों ने कभी सुना-पढ़ा है ? हम समझते हैं कि यूनान और ग्रीक के लोग शिक्षित थे और निःसन्देह वे लोग पढ़े-लिखे थे, किन्तु उनकी पढ़ाई-लिखाई दूसरे प्रकार की थी—वह नहीं जिसे आज हम शिक्षा या पढ़ना-लिखना कहते हैं। पहली बात तो यह कि हम मात्र एथेन्स या रोम जैसे नगरों के निवासियों को ही समग्र यूनानी और रोमन जाति मान बैठते हैं। इनमें से भला ऐसे कितने बुद्धिमान और ज्ञानवरिष्ठ लोग हैं जो कभी भूले-भटके डायलोग ऑफ प्लेटो या एपिस्ट्ल्स ऑफ होरेस जैसी रचनाओं की कभी चर्चा करते हैं ? जिन्हें हम इतिहास अर्थात् अतीत की स्मृति कहते हैं, वे सभी तो इने-गिने लोगों की कृतियाँ ही हैं। लाखों-करोड़ों लोग तो किसी की नजर में आए बिना ही चल बसे। अपनी भाषा तथा भावना को रमणीय रूप में अभिव्यक्त कर सकने का वरदान पाए हुए केवल इने-गिने लोग ही अतीत के साक्षी के रूप में बचे रह जाते हैं।

२२. इस सन्दर्भ में जब हम अत्यन्त प्राचीन युग की चर्चा करते हैं जिसका प्रतिनिधित्व ऋग्वेद करता है और उस युग के भारत की चर्चा करते हैं जो सर्वथा असंगठित था तथा आज भी लगभग असंगठित और असंयुक्त ही है, तब निस्संदेह जो वेद मन्त्र आज हमें बर्फ़ीली चोटियों से ढके दिखाई देते हैं, उनके अन्दर छिपे हुए तत्त्वों को जानने-पहचानने तथा समझने एव उनके प्रतिनिधित्व को ठीक से मान्यता प्रदान करने के लिए हमें उनके बारे में कुछ अधिक गम्भीरता से विचार करना होगा।

21. And if we turn our thoughts back to the ancient nations of Greece and Italy, or of Persia and Babylonia, what book is there, with the exception perhaps of the Homeric poems, of which we could say that it had been read or even heard of by more than a few thousand people ? We think of Greeks and Romans as literary people, and so no doubt they were, but in a very different sense from what we mean by this. What we call Greeks and Romans are cheifly the citizens of Athens and Rome, and here again those who could produce or who could read such works as the Dialogues of Plato or the Epistles of Horace constituted a very small intellectual aristocracy indeed. What we call history—the memory of the past—has always been the work of minorities. Millions and millions pass away unheeded, and the few only to whom has been given the gift of fusing speech and thought into forms of beauty remain as witnesses of the past.

22. If then we speak of times so distant as those represented by the Rig-veda, and of a country so disintegrated, or rather as yet so little integrated as India was three thousand years ago, surely it requires but little reflection to know that what we see in the Vedic poems are but a few snow-clad peaks, representing to us, from a far distance, the whole mountian-range of a nation, completely lost beyond the horizon of history.

23. When we speak of the Vedic hymns as representing the religion, the thoughts and customs of India three thousand years ago, we cannot mean by India more than some unknown quantity of which the poets of the Veda are the only spokesmen left. When we now speak of India, we think of 250 millions, a sixth part of whole human race, peopling the vast peninsula from the Himalayan mountains between the arms of the Indus and the Ganges, down to Cape Comorin and Ceylon, an extent of country nearly as large as Europe. In the Veda the stage on which the life of the ancient kings and poets is acted, is the valley of the Indus and the Punjab, as it is now called, the Sapta Sindhavah, the Seven Rivers of the Vedic poets. The land watered by the Ganges is hardly known, and the whole of the Dekkan seems not yet to have been discovered.

24. Then again, when these Vedic hymns are called the lucubrations of a few priests, not the outpourings of the genius of a whole nation, what does that mean ? We may no doubt call these ancient Vedic poets priests, if we like, and no one would deny that their poetry is pervaded

बहुत दूर से देखने पर समग्र भारतीय आर्यजनों की परम्परा ऐसी लगती है मान वह सम्पूर्ण पर्वत-शृंखला इतिहास के क्षितिज के पार कहीं ओझल है।

२३. ज़ब हम ऋग्वेद के सूक्तों के लिए कहते हैं कि वे आज से 3000 वर्ष से भी अधिक पुराने भारत के धर्म, चिन्तन, रीति-रिवाज और परम्पराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, तब हमारा आशय उस अज्ञात जनसंख्या वाले भारत से ही होता है जिसके एक-मात्र प्रवक्ता के रूप में वैदिक ऋषि ही बच रहे हैं। आज जब हम भारत की चर्चा करते हैं तो हमारे सामने २५ करोड़ जनसंख्यावाले एक ऐसे बड़े उपमहाद्वीप का चित्र उभरकर आता है जो उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी और श्रीलंका तक गंगा और सिन्धु की भुजाओं में सिमटा हुआ है। यह देश लगभग हमारे यूरोप महाद्वीप के बराबर ही बड़ा है। भारत की जनसंख्या सम्पूर्ण मानव-जाति का छठा भाग है। जिस मंच पर वैदिक युग के ऋषियों और शासकों की जीवन घटनाएँ घटित हुईं, वह सिन्धु घाटी और आजकल का पंजाब ही था। इस प्रदेश को ही वैदिक ऋषियों ने 'सप्त सिन्धवः' के नाम से अभिहित किया है। गंगा से सिंचित क्षेत्र तब तक अज्ञात जैसा ही था और दक्षिण के पूरे-के-पूरे पठार की तो उन्हें जानकारी भी नहीं मिली थी।

२४. जो लोग यह कहते हैं कि वैदिक सूक्त सम्पूर्ण राष्ट्र के मौलिक चिन्तन को प्रकाशित न कर मात्र थोड़े-से पुरोहितवर्ग की निगूढ़तम भावनाओं को ही अभिव्यक्त करते हैं, तब मैं यह पूछना चाहूँगा कि उनके इस कथन का आखिर आशय क्या है ? यदि कोई वेद के इन प्राचीन कवियों या ऋषियों को 'ऋत्विज' या पुरोहित कहता है तो इसमें कुछ हर्ज नहीं और इस बात से भी कोई इन्कार नहीं कर सकता कि वैदिक ऋचाओं में मात्र धार्मिक, आधिदैविक या दार्शनिक तत्त्व ही नहीं भरे पड़े हैं, अपितु यज्ञ-याग तथा नानाविध कर्मकाण्डों के विधि-विधान भी विद्यमान हैं। तथापि, हम सुदूर अतीत में पहुँचकर किसी याज्ञिक पुरोहित या ऋत्विज के स्वरूप का अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि वेद के वे कवि या ऋषि आज के युग के हमारे धार्मिक कार्यों के व्यवस्थापक तथा राजकीय समितियों के सांसद कहे जा सकते हैं और इस प्रकार उन्हें सम्पूर्ण समाज के प्रतिनिधि के रूप में अपने विचार व्यक्त करने का पूरा अधिकार था। इस प्रकार आप भले ही वसिष्ठ को कुल मिलाकर एक पुरोधा कह लें, किन्तु ऐसा करते हुए यह न मान बैठें कि वह कार्डिनल मैनिंग (चर्चों का मुखिया पादरी) जैसा कुछ रहा होगा।

२५. वेदों के बारे में किए जाने वाले नानाविध आक्षेपों के बारे में पूरी रियायत देने के बाद भी उनमें से अधिकांश सर्वथा मिथ्या सिद्ध होते हैं—इस तथ्य को कोई भला कैसे अस्वीकार कर सकता है कि वेद की ये ऋचाएँ सर्वथा परिष्कृत एवं परिनिष्ठित भाषा में विरचित हैं तथा इनका छन्दोविधान भी सर्वांग शुद्ध है ! इन वैदिक ऋचाओं में आर्यों के देवताओं, मानव समाज, यज्ञ-याग तथा युद्धों आदि के बारे में सर्वथा सही जानकारी दी गई है। इसी प्रकार बदलती हुई प्रकृति के नाना रूपों,

not only by religious, mythological, and philosophical, but likewise by sacrificial and ceremonial conceits. Still a priest, if we trace him back far enough, is only a *presbyteros* or an elder, and, as such, those Vedic poets had a perfect right to speak in the name of a whole class or of the village community to which they belonged. Call Vasishtha a priest by all means, only do not let us imagine that he was therefore someting like Cardinal Manning.

25. After we have made every possible concession to arguments, most of which are purely hypothetical, there remains this great fact that here, in the Rigveda, we have poems, composed in perfect language, in elaborate metre, telling us about gods and men, about sacrifices and battles, about the varying aspects of nature and the changing conditions of society, about duty and pleasure, philosophy and morality—articulate voices reaching us from a distance from which we never heard before the faintest whisper; and instead of thrilling with delight at this almost miraculous discovery, some critics stand aloof and can do nothing but find fault, because these songs do not represent to us primitive men exactly as they think they ought to have been; not like Papuas or Bushmen, with arboraceous habits and half-bestial clicks, not as worshipping stocks or stones, or believing in fetishes, as according to Comte's inner consciousness they ought to have done, but rather, I must confess, as beings whom we can understand, with whom to a certain exent we can sympathise, and to whom, in the historical progress of the human intellect, we may assign a place, not very far behind the ancient Jews and Greeks.

26. Once more then, if we mean by primitive, people who inhabited this earth as soon as the vanishing of the glacial period made this earth inhabitable, the Vedic poets were certainly not primitive. If we mean by primitive, people who were without a knowledge of fire, who used unpolished fints, and ate raw flesh, the Vedic poets were not primitive. If we mean by primitive, people who did not cultivate the soil, had no fixed abodes, no kings, no sacrifices, no laws, again, I say, the Vedic poets were not primitive.

27. But if we mean by primitive the people who have been the first of the Aryan race to leave behind literary relics of their existence on earth, then I say the Vedic poets are primitive, the Vedic language is primitive, the Vedic religion is primitive, and, taken as a whole, more primitive than anything else that we are ever likely to recover in the whole history of our race.

समाज की परिवर्त्तनशील व्यवस्था, लोगों के कर्त्तव्य और आमोद-प्रमोद के साधन आदि का परिचय भी प्राप्त होता है। इतना ही क्यों, वेदों में गहन दार्शनिक चिन्तन और उच्च नैतिकता के आदर्श भी उपलब्ध हैं। ध्वनि-विज्ञान के बारे में वेदों से पूर्व हमने कहीं हल्की-सी फुसफुसाहट भी नहीं सुनी थी। ध्वनिविज्ञान के इस आश्चर्य-जनक आविष्कार पर आनन्दोत्फुल्ल होने की बजाय कुछ आलोचक वेदों के प्रति पूरी उपेक्षा दिखाते हैं तथा उनमें नानाविध कमियाँ दिखाने के सिवा और कुछ करते ही नहीं। वे कहते हैं वेदों में क्योंकि आदिम जंगली जातियों के नानाविध देवी-देवताओं आदि की पूजा करने-वाले अर्धपशु-मानव-बुशमैन् जैसी जँगली जातियों के क्रियाकलापों आदि का कहीं कोई चिह्न नहीं है, इसलिए उन्हें आदिकाव्य नहीं माना जा सकता। उनकी इस आपत्ति के बारे में मैं मानता हूँ कि उस मानव-समुदाय के रूप में, जिसकी भाषा और विचारों को हम समझ सकते हैं, जिनके साथ हमारी सहानुभूति हो सकती है, उन भारतीय आर्यों को मानव-चिन्तन तथा ज्ञान-विज्ञान के ऐतिहासिक विकासक्रम में प्राचीन यहूदियों और यूनानियों से बहुत ज्यादा पुराना नहीं कहा जा सकता।

२६. यदि आदिमानव-समुदाय से हमारा आशय उन लोगों से है, जिन्होंने आरम्भिक हिम-युग के पश्चात् प्रकट होने वाली इस धरती को निवास-योग्य बनाया था, या वे लोग आग जलाना नहीं जानते थे और अनघड़ पत्थरों का प्रयोग करते तथा कच्चा मांस खाया करते थे, तब तो वैदिक कवि निश्चित ही आदियुग के नहीं थे। यदि आदि-युग के मानव से हमारा अभिप्राय यह है कि वे खेती-बाड़ी करना नहीं जानते थे और कहीं एक स्थान पर नहीं रहते थे, अपितु घूमन्तू जीवन बिताया करते थे, उनका न तो कोई राजा ही था न यज्ञ-याग और पूजा-पद्धति ही थी और न धर्म-संहिताएँ या विधि-विधान आदि ही थे, तो मैं कहूँगा कि वैदिक कवि कदापि आदिमानव कहलाने के अधिकारी नहीं हैं।

२७. किन्तु यदि आदिमानव से हमारा आशय उन लोगों से है जो समग्र आर्य जाति में इस धरती पर अपनी उपस्थिति के साहित्यिक प्रमाण अपने पीछे छोड़ गए हैं, तो मैं कहूँगा कि—

वैदिक कवि ही आदिम-मानव थे, वैदिक भाषा ही आदिभाषा है, वैदिक धर्म ही आदि धर्म है।

इस प्रकार यह माना जा सकता है कि अपनी जाति के सम्पूर्ण इतिहास में हमें जो भी कुछ मिल सकता है, वैदिक धर्म और वेद की ऋचाएँ, भाषा आदि सभी-कुछ प्राचीनतम या आदिम हैं।

२८. जब वेदों के बारे में आक्षेप करने वाले प्रतिवादियों की सब युक्तियाँ निरस्त हो गईं, तब अन्त में उन्होंने अपनी आखिरी तुरुप चाल चली और कहने लगे कि यदि वेद दूसरे देशों की उपज और उपलब्धि न भी हों, तो भी वे विदेशियों से, विशेषतः सैमेटिक जातियों से प्रभावित हैं। किन्तु संस्कृत के विद्वान् सदैव वैदिक साहित्य की सबसे बड़ी और आकर्षक बात यह बताते रहे हैं कि इसके द्वारा धार्मिक चिन्तन के

28. When all these objections had failed, a last trump was played. The ancient Vedic poetry was said to be, if not of foreign origin, at least very much infected by foreign, and more particularly by Semitic influences. But had always been urged by Sanskrit scholars as one of the chief attractions of Vedic literature that it not only allowed us an insight into a very early phase of religious thought, but that the Vedic religion was the only one the development of which took place without any extraneous influences, and could be wateched through a longer series of centuries than any other religion.

29. Now with regard to the first point, we know how perplexing it is in the religion of ancient Rome to distinguish between Italian and Greek ingredients, to say nothing of Etruscan and Phoenician influences.

30. We know the difficulty of finding out in the religion of the Greeks what is purely home-grown, and what is taken over from Egypt, Phoenicia, it may be, from Scythia; or at all events, slightly coloured by those foreign rays of thought. Even in the religion of the Hebrews, Babylonian, Phoenician, and at a later time Persian influences have been discovered, and the more we advance towards modern times, the more extensive becomes the mixture of thought, and the more difficult the task of assigning to each nation the share which it contributed to the common intellectual currency of the world.

31. In India alone, and more particularly in Vedic India, we see a plant entirely grown on native soil, and entirely nurtured by native air. For this reason, because the religion of the Veda was so completely guarded from all strange infections, it is full of lessons which the student of religion could learn nowhere else.

32. Now what have the critics of the Veda to say against this ? They say that the Vedic poems show clear traces of *babylonian* influences.

33. I must enter into some details, because, small as they seem, you can see that they involve very wide consequences.

34. There is one verse in the Rig-veda, which has been translated as follows : 'O Indra, bring to us a brilliant jewel, a cow, a horse, an ornament, together with a golden Mana.'

35. Now what is a golden Mana ? The word does not occur again by itself either in the Veda or anywhere else and it has

आरम्भिकतम युग को समझने और परखने की सुविधाएँ ही प्राप्त नहीं हुई हैं, अपितु वैदिक धर्म ही एकमात्र ऐसा धर्म है जिसका विकास बिना किसी बाह्य प्रभाव के हुआ है और किसी भी दूसरे धर्म की अपेक्षा इस धर्म के सदियों पुराने विकास-क्रम को भली-भाँति देखा, समझा और परखा जा सकता है।

२९-३०. इसी क्रम में जब हम प्राचीन रोम के धर्म में से इटली और यूनान के निर्माणकारी तत्त्वों को पृथक्-पृथक् करके देखने का प्रयत्न करें तो हम नानाविध भ्रमजाल में फँस जाते हैं। इन धर्मों पर यूट्रस्कन या फ़िनीशिया, का कितना प्रभाव पड़ा अथवा वे प्राचीन धर्म एक-दूसरे में किस प्रकार गड्ड-मड्ड हो गए थे, यूनानियों के धर्म में कितना उनका अपना मौलिक तत्त्व है और मिस्र और सीथिया के माध्यम से अथवा स्वतंत्र रूप से फ़िनीशिया से उन लोगों ने क्या-कुछ ग्रहण किया था, कम-से-कम दूसरे देशों के चिन्तन एवं बौद्धिक प्रकाश का कितना रंग उनपर चढ़ा था, यह कौन बता सकता है! यहाँ तक कि यहूदी धर्म पर भी बेबीलोन, फ़िनीशिया और परवर्ती काल में ईरान के धर्मों का प्रभाव ज्ञात हो चुका है। समय के साथ हम ज्यों-ज्यों आधुनिक युग की ओर आगे बढ़ते जा रहे हैं, विभिन्न धर्मों की विचारधाराओं का पारस्परिक सम्मिश्रण भी आज उतना ही अधिक सिद्ध होता जा रहा है। विश्व की बौद्धिक टकसाल में किस-किस राष्ट्र का कितना विशिष्ट योगदान रहा है, इसका ठीक से निर्धारण कर लेना भी आज उतना ही कठिन होता जा रहा है।

३१. इस भूमण्डल पर केवल भारत में, विशेष रूप से वैदिक भारत में, संपूर्णतया अपने ही जलवायु और वातावरण तथा अपनी ही मिट्टी में उगता, पनपता, पल्लवित होता तथा फूलता-फलता पौधा हम देख पा रहे हैं। **वैदिक धर्म बाहरी छूत के विषाणुओं से जिस प्रकार सर्वथा सुरक्षित रहा है, मात्र इस एक कारण से भी धर्म के जिज्ञासुओं के लिए वेद व वैदिकधर्म ऐसी शिक्षाओं से परिपूर्ण है, जैसी अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकतीं।**

३२. अब वेद के आलोचकों के पास कहने को रह क्या गया है? इसके उत्तर में उनका कहना है कि स्वयं वेदमन्त्रों से ही वेदों पर बेबीलोन का प्रभाव ढूँढा जा सकता है।

३३. मुझे यहाँ इस आक्षेप से सम्बद्ध प्रत्येक आक्षेप की चर्चा कुछ विस्तार से करनी होगी क्योंकि ये बातें देखने में भले हीं छोटी लगती हों, किन्तु इनका दुष्परिणाम कहीं अधिक घातक सिद्ध हो सकता है।

३४. ऋग्वेद में एक मन्त्र है जिसका यह अर्थ बताया गया है 'हे इन्द्र! हमें देदीप्यमान रत्न, गौएँ, घोड़े, आभूषण आदि और 'सौवर्ण मना' भी दीजिए।'

३५-३६ यहाँ विचारणीय प्रश्न यह है कि यह 'सोने का मना' क्या है? यह मना शब्द वेदों में बस इसी एक स्थान पर प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत-साहित्य में अन्यत्र कहीं भी यह शब्द उपलब्ध नहीं है। वेद के यूरोपियन विद्वान्, लेटिन के मिना और ग्रीक

been identified by Vedic scholars with the Latin *mina*, the Greek *mina*, the Phoenician *manah*, the well-known weight which we actually possess now among the treasures brought from Babylon and Nineveh to the British Museum.

36. If this were so, it would be irrefragable evidence of at all events a commercial intercourse between Babylon and India at a very early time, though it would in no way prove a real influence of Semitic on Indian thought. But is it so ? Although the passage is difficult, because mana does not occur again in the Rig-veda, I should think we might take mana hiranyaya for a dual and translate, 'Give us also two golden armlets.'

37. To suppose that the Vedic poets should have borrowed this one word and this one measure from the Babylonians, would be against all the rules of historical criticism. The word mana never occurs again in the whole of Sanskrit literature, no other Bobylonian weight occurs again in the whole of Sanskrit literature, and it is not likely that a poet who asks for a cow and a horse, would ask in the same breath for a foreign weight of gold, that is, for about sixty sovereigns.

38. But this is not the only loan that India has been supposed to have negotiated in Babylon. The twentyseven Nakshatras, or the twenty-seven constellations, which were chosen in India as a kind of lunar Zodiac, were supposed to have come from Babylon. Now the Babylonian Zodiac was solar, and, in spite of repeated researches no trace of a lunar Zodiac has been found, where so many things have been found, in the cuneiform inscriptions. But supposing even that lunar Zodiac had been discovered in Babylon, no one acquainted with Vedic literature and with the ancient Vedic ceremonial would easily allow himself to be persuaded that the Hindus had borrowed that simple division of the sky from the Babylonians.

39. It is well known that most of theVedic sacrifices depend on the moon, far more than on the sun. As the Psalmist says. 'He appointed the moon for seasons; the sun knoweth his going down,' we read in the Rigveda in a verse addressed to sun and moon, 'They walk by their own power, one after the other (or from east to west), as playing children they go round the sacrifice. The one looks upon all the words, the other is born again and again, determining the seasons.

मन फ़िनीशिया के माक को ही वेद में प्रयुक्त 'मना' मानते हैं। बेबीलोन और निन्वेह से खोज निकाली गई जो वस्तुएँ आज भी ब्रिटिश म्यूजियम में विद्यमान हैं, उनमें यह मना भी रखा हुआ है। यदि यही बात है तो यह उस अत्यन्त प्राचीन युग में भी भारत और बेबीलोन के पारस्परिक व्यापारिक सम्बन्ध का एक अकाट्य प्रमाण है, यद्यपि इससे भी भारत की चिन्तन-धारा पर किसी प्रकार का सैमेटिक प्रभाव कदापि सिद्ध नहीं किया जा सकता। किन्तु क्या यही बात है ? यद्यपि ऋग्वेद के मन्त्र का यह अंश बहुत क्लिष्ट है, क्योंकि यह 'मना' शब्द ऋग्वेद में अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं, तथापि मैं समझता हूँ कि वेदमन्त्र के 'मना, हिरण्या' ये दोनों शब्द द्वितीया द्विवचन के हैं। इस प्रकार इस पद का अर्थ यह होगा—'हमें सोने के दो बाजूबन्द या कंकण दीजिए।'

३६. वैदिक ऋषियों ने सम्भवतः 'मना' शब्द और उसका परिमाण बेबीलोन के निवासियों से लिया है, यह कल्पना इतिहास की समीक्षा के लिए निर्धारित सब नियमों के सर्वथा विरुद्ध है। इस एक स्थान के सिवा यह 'मना' शब्द सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य में न तो अन्यत्र कहीं प्रयुक्त ही हुआ है और न बेबीलोन के किसी अन्य सिक्के या परिमाण की ही कहीं कोई चर्चा है। फिर यह कैसे संभव है कि वैदिक ऋषि गौ, अश्व आदि के लिए प्रार्थना करते हुए उसी साँस में किसी दूसरे देश के परिमाण-विशेष 'मना' में सोना देने की याचना भी कर डाले ? यह 'मना' आजकल के ६० पौण्ड के लगभग का है।

३७. यूरोपियन प्रतिपक्षी विद्वान् इतना ही कहकर चुप नहीं रहते, वे तो यहाँ तक कहते हैं कि भारतीय चन्द्र-परिभ्रमण-पथ के २७ नक्षत्रों का ज्ञान भी भारत में बेबीलोन से आया है। किन्तु बेबीलोन में १२ राशियों का सौर-परिभ्रमण-पथ ही प्रचलित रहा है। कीलाक्षराभिलेखों से जहाँ अन्य सैंकड़ों नई-नई बातों का ज्ञान हुआ है, वहाँ सूक्ष्म शोध के बाद भी चान्द्रगणना के इन २७ नक्षत्रों का कहीं संकेत नही मिल पाया।

और यदि हम एक क्षण को मान भी लें कि चान्द्र-नक्षत्र-गणना का आविष्कारक भी बेबीलोन है, तथापि वैदिक वाङ्मय और यज्ञयाग आदि के किसी भी ज्ञाता को यह कदापि स्वीकार नहीं होगा कि आकाश का २७ नक्षत्रों में सरल-सा विभाजन हिन्दुओं ने बेबीलोन से सीखा था। यह भी सर्वविदित है कि वैदिक यज्ञ-याग आदि सौर-गणना की अपेक्षा चान्द्र-पद्धति पर ही मुख्यतया आश्रित है। एक स्तुति में कहा गया है 'उस (ब्रह्म) ने ऋतु चक्र के लिए चन्द्रमा को नियुक्त किया है। सूर्य उसके उदयास्त को जानता है।' सूर्य और चन्द्र को संबोधित ऋग्वेद की एक अन्य ऋचा में कहा गया है कि सूर्य और चन्द्रमा अपनी आकर्षण-शक्ति के सहारे एक के बाद दूसरे उदित और अस्त होते रहते हैं। इनमें से सूर्य सारे विश्व को देखता रहता है।

३९. चन्द्रमा बार-बार नवोदित होता रहता है। चन्द्रमा के इस नए उदय से ही ऋतु-चक्र व मास निर्धारित होते रहते हैं। नित्य नवीन रूप में उदित होने वाला

40. 'He becomes new and new, when he is born; as the herald of the days. he goes before the dawns. By his approach he determines their share for the gods, the moon increases a long life'.

41. The moon, then, determines the seasons, the ritus, the moon fixes the share, that is, the sacrificial oblation for all the gods. The seasons and the sacrifices were in fact so intimately connected together in the thoughts of the ancient Hindus, that one of the commonest names for priest was ritv-ig, literally, the season-sacrificer.

42. Besides the rites which have to be performed every day such as the five Mahayagnas, and the Agnihotra in the morning and the evening, the important sacrifices in Vedic times were the Full and New-moon sacrifices; the Season-sacrifices, each season consisting of four months; and Half-early sacrifices, at the two solstices. There are other sacrifices to be performed in autumn and summer, others in winter and spring, whenever rice and barley are ripening.

43. The regulation of the seasons, as one of the fundamental conditions of an incipient society, seems in fact to have been so intimately connected with the worship of the gods, as the guardians of the seasons and the protectors of law and order, that it is sometimes difficult to say whether in their stated sacrifices the maintenance of the calendar or the maintenance of the worship of the gods was more prominent in the minds of the old Vedic priests.

44. The twenty-seven Nakshatras then were clearly suggested by the moon's passage. Nothing was more natural for the sake of counting days, months, or seasons than to observe the twenty-seven places which the moon occupied in her passage from any point of the sky back to the same point. It was far easier than to determine the sun's position either from day to day, or from month to month; for the stars, being hardly visible at the actual rising and setting of the sun, the idea of the sun's conjunction with certain stars could not suggest itself to a listless observer. The moon, on the contrary, progressing from night to night, and coming successively in contact with certain stars, was like the finger of a clock, moving round a circle, and coming in contact with one figure after another on the dial-plate of the sky. Nor would the portion of about one-third of a lunation in addition to the twenty-seven stars from new moon to new moon, create much confusion in the minds of the rough-and-ready reckoners of those early times.

चन्द्रमा दिन के आगमन की सूचना-सी देता हुआ उषा से पहले ही चल देता है। वह अपने उदयास्त के द्वारा देवताओं के लिए किए जाने वाले यज्ञादि के काल का निर्धारण करता है और हमें दीर्घायुष्य प्रदान करता है।

४०-४१ चन्द्रमा ऋतु-चक्र का निर्धारक है, वह यज्ञों में देवताओं का भाग निश्चित करता है। प्राचीन हिन्दुओं के चिन्तन में ऋतु चक्र और यज्ञ इतनी घनिष्ठता से संबद्ध थे कि यज्ञ करने वाले को 'ऋत्विज' कहा जाता है। दैनिक पंच महायज्ञों के साथ दार्श और पौर्णमास इष्टि, प्रत्येक ऋतु के अनुसार की जाने वाली चातुर्मासेष्टि, वासंतिक आग्रहायण तथा कर्क और मकर संक्रान्ति पर की जाने वाली षाण् मासिक इष्टियाँ नवसस्येष्टियाँ तथा शरद्, ग्रीष्म, हेमन्त तथा वसंत सस्येष्टियाँ भी की जाती थीं।

४२. ऋतुओं का सदा अपने निर्धारित समय पर आगमन उस आदिम युग के समाज के लिये ऋतु चक्र के नियामक व नियम व्यवस्था के संरक्षक देवगण के निमित्त किये जाने वाले यज्ञ याग से घनिष्ठतया सम्वद्ध ऐसी प्राकृतिक घटना प्रतीत होती है कि कभी कभी तो निश्चय पूर्वक यह कह सकना भी कठिन हो जाता है कि ऋत्विजों के लिये इनके द्वारा अपने यज्ञयागोपयोगी पचांग के तिथ्यादि के ज्ञान अथवा देवयजन में से किस का प्राधान्य रहा होगा।

४३-४५. चन्द्रमा के इस भ्रमण पथ पर 27 नक्षत्र स्पष्टतया निर्दिष्ट कर दिए गए थे। चन्द्रमा के किसी एक निर्धारित निश्चित स्थान से चलकर वापिस वहीं पहुंच जाने के इस यात्रा पथ में इन २७ स्थानों पर ध्यान देते रहने से बढ़कर दिन, मास या ऋतु-चक्र की गणना के लिए अन्य कोई सरल साधन नहीं हो सकता था।

सूर्य की दैनिक या मासिक गति से कालचक्र के निर्धारण की अपेक्षा चान्द्र-तिथि गणना सरल थी। सूर्य के उदयास्त के समय किसी ग्रह-नक्षत्र को देख पाना कठिन था। किसी ग्रह विशेष के साथ सूर्य की युति भी किसी साधारण निरीक्षक की दृष्टि को कदाचित ही अपनी ओर आकृष्ट कर पाती होगी। इसके विपरीत प्रतिदिन घटता- बढ़ता और रात्रि में अपने उदयास्त का स्थान बदलता हुआ चन्द्रमा एक से दूसरे नक्षत्र या नक्षत्रपुंज पर ठीक वैसे ही पहुँच जाया करता था जैसे हमारी घड़ी की सूइयाँ अगले अंको पर पहुंचती रहती हैं। आकाशस्थ चन्द्रमा का यह भ्रमण पथ ही उस प्राकृतिक घड़ी का एक प्रकार का डायल था। आरम्भिक युग के उन ग्रह नक्षत्रविदों के लिए यह कोई ध्यान देने योग्य तत्त्व नहीं था कि २७ नक्षत्रों के चन्द्रपथ में एक तृतीयांश के लगभग की वढोतरी की जानी चाहिए उनके लिए तो इतना ही पर्याप्त था कि आकाश में स्थापित मील के पत्थरों के समान ऐसे २७ नक्षत्रों का ज्ञान-प्राप्त कर लिया गया था जिनके आधार पर वर्ष, मास, ऋतु-चक्र और दिनों का ठीक से निर्धारण किया जा सकता था। ये २७ नक्षत्र ऐसे थे जो वैदिक युग की वेधशाला के खगोल-वृत में समान दूरी पर बने हुए स्तम्भों का कार्य करते थे। किसी एक नक्षत्र के स्वरूप और स्थान का सुनिश्चित ज्ञान हो जाने पर उसी के

45. All they were concerned with were the twenty-seven celestial stations which, after being once traced out by the moon, were fixed, like so many mile-stones, for determining the celestial travellers that could be of any interest for signs and for seasons, and for days and for years.

46. A circle divided into twenty-seven sections, or any twenty-seven poles planted in a circle at equal distances round a house, would answer the purpose of a primitive Vedic observatory. All that was wanted to be known was between which pair of poles the moon, or afterwards the sun also, was visible at their rising or setting, the observer occupying the same central position on every day.

47. Our notions of asronomy cannot in fact be too crude and too imperfect if we wish to understand the first beginnings in the reckoning of days and seasons and years. We cannot expect in those days more than what any shepherd would know at present of the sun and moon, the stars and seasons. Nor can we expect any observations of heavenly phenomena unless they had some bearing on the practical wants of primitive society.

48. If then we can watch in India the natural, nay inevitable, growth of the division of the heaven into twenty-seven equal division, each division marked by stars, which may have been observed and named long before they were used for this new purpose—if, on the other hand we could hardly understand the growth and development of the Indian ceremonial except as determined by a knowledge of the lunar asterisms, the lunar months, and the lunar seasons, surely it would be a senseless hypothesis to imagine that the Vedic shepherds or priests went to Babylonia in search of a knowledge which every shepherd might have acquired. on the banks of the Indus, and that, after their return from that country only, where a languages was spoken which no Hindu could understand, they set to work to compose their sacred hymns, and arrange their simple ceremonial.

49. We must never forget that what is natural in one place is natural in other places also, and we may sum up without fear of serious contradication, that no case has been made out in favour of a foreign origin of the elementary astronomical notins of the Hindus as found or presupposed in the Vedic hymns.

आधार पर अन्य 27 नक्षत्रों का ज्ञान भी हो गया। इन्हीं 27 नक्षत्रों के क्रान्तिवृत्त में सूर्यादि ग्रह निरन्तर परिभ्रमण करते रहते हैं। इनके इस भ्रमण के कारण ही उत्तरायण-दक्षिणायन, ऋतुचक्र, मास एवं दिन-रात आदि बनते हैं। पूर्वी और पश्चिमी गोलार्द्धों में चन्द्रमा या आगे चलकर सूर्य के भी उदयास्त के स्थान को सुनिश्चित करने के लिए यही आवश्यक था कि उनका निरीक्षण करने वाला व्यक्ति सदा किसी एक ही स्थान से इनका निरीक्षण करता रहे।

47. यदि हम दिन रात, ऋतुचक्र और वर्ष की गणना आदि से सम्बद्ध ज्योतिर्विज्ञान के सर्वप्रथम आरम्भ होने के बारे में ज्ञान प्राप्त करना चाहें तो वास्तव में उस पुरातन ज्योतिर्विज्ञान के विकास के बारे में व्यक्त की गई हमारी यह धारणा अधूरी या असंशोधित सिद्ध नहीं होगी। आज का एक साधारण चरवाहा भी सूर्य, चन्द्र, शुक्र तथा ग्रह-नक्षत्रों एवं ऋतुचक्र को जितना जानता-पहचानता है, हमें उस युग में इससे अधिक आशा नहीं करनी चाहिए। साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उस आदिम समाज के लिए आवश्यक और उपयोगी खगोल-पिण्डों के बारे में सही-सही जानकारी प्राप्त कर लेना ही पर्याप्त था। जब तक नितान्त आवश्यकता प्रतीत न हुई हो तब तक आकाशीय प्राकृतिक घटना-चक्र के अनुसंधान में भी आदिम समाज प्रवृत्त न होता।

48. भारतवासियों ने यज्ञ-यागों में नक्षत्रों की उपयोगिता आदि निर्धारित करने से बहुत पहले ही खगोल में विद्यमान 27 समान विभागों या अंशों के प्राकृतिक अथवा अटल नियमों के अनुसार घटित होने वाले उदयास्त आदि का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लिया था और उनके नाम भी रख दिये थे, क्योंकि ग्रह-नक्षत्रों की गति की सूक्ष्म गणना के ज्ञान के बिना ये निर्देश कैसे दिये जा सकते थे कि चन्द्रमा आदि की अमुक स्थिति या नक्षत्र में रहने के समय ये विधि-विधान सम्पन्न किए जाएँ ऐसी स्थिति में कोई भी समझदार व्यक्ति इस मूर्खतापूर्ण कल्पना को कैसे स्वीकार कर सकता है कि अपनी चान्द्रगणना पर आधारित याज्ञिक विधि-विधानों, व्रतपर्वों, ग्रह-नक्षत्रों, चाद्रमासों तथा चन्द्रमा के साथ रहने वाले नक्षत्रों के ज्ञान के लिए भारत के चरवाहे या ऋषि ठेठ बेबीलोन पहुँचे थे—जबकि एक साधारण से किसान को भी इन सबके बारे में पहले ही से परिपूर्ण ज्ञान सिन्धु तट पर ही हो चुका था—बेबीलोन से 27 नक्षत्रों का ज्ञान प्राप्त कर लौटने के बाद ही वैदिक ऋषियों ने अपने वैदिक सूक्तों का संकलन तथा सर्वधारण के लिए उपयोगी व्रत पर्व आदि का विधान किया, जबकि भारतीय जन और बेबीलोनिया के निवासी एक दूसरे की भाषा से भी सर्वथा अपरिचित थे। यहाँ हमें यह बात भी नहीं भुला देनी चाहिए कि जो बात एक देश के लिए जितनी स्वाभाविक है, वही किसी दूसरे देश के लिए भी उतनी ही स्वाभाविक हो सकती है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए संक्षेप में हम यह बात निर्भय होकर दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि वैदिक ऋचाओं में प्रदर्शित ज्योतिर्विज्ञान सम्बन्धी किसी भी तत्त्व पर किसी विदेशी प्रभाव को कदापि सिद्ध नहीं किया जा सकता।

49. अरब में चन्द्रमा की 28 मंजिलें प्रचलित हैं। यद्यपि मैं यह स्वीकार करता हूँ कि—

50. The Arabs, as is well known, have 28 lunar stations, the Manzil, and I can see no reason why Mohammed and his Bedouins in the desert should not have made the same observation as the Vedic poets in India, though I must admit at the same time that Colebrooke has brought forward very cogent arguments to prove that, in their scientific employment at least, the Arabic Manzil were really borrowed from an Indian source.

51. The Chinese, too, have their famous lunar stations, the Sieu, originally 24 in number, and afterwards raised to 28. But here again there is no necessity whatever for admitting, with Biot, Lassen and others, that the Hindus went to China to gain their simplest elementary notions of lunar chrononomy. First of all, the Chinese began with 24, and raised them to 28 ; the Hindus began with 27, and raised them to 28. Secondly, out of these 28 asterisms, there are 17 only which can really be identified with the Hindu stars. Now if a scientific system is borrowed, it is borrowed complete.

But, in our case, I see really no possible channel through which Chinese astronomical knowledge could have been conducted to India so early as 1000 before our era. In Chinese literature India is never mentioned before the middle of the second century before Christ ; and if the Chinas in the later Sanskrit literature are meant for Chinese, which is doubtful, it is important to observe that that name never occurs in Vedic literature.

52. When therefore the impossibility of so early a communication between China and India had at last been recognised, a new theory was formed, namely, 'that the knowledge of Chinese astronomy was not imported straight from China to India, but was carried, together with the Chinese system of division of the heavens into twenty-eight mansions, into Western Asia, at a period not much later than 1100 B.C., and was then adopted by some Western people, either Semitic or Iranian. In their hands it was supposed to have received a new form, such as adapted it to a ruder and less scientific method of observation, the limiting stars of the mansions being converted into zodiacal groups or constellations, and in some instances altered in position, so as to be brought nearer to the general planetary path of the ecliptic. In this changed form, having become a means of roughly determining and describing the places and movements of the planets, it was believed to have passed into the keeping of the Hindus, very probably along with the first knowledge of the planets themselves, and entered upon an independent career of history in India. It still maintained itself in its old seat, leaving its

50. श्री कोलब्रुक ने बड़े अकाट्य एवं सुदृढ़ प्रमाणों के द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि अरबों ने अपना नक्षत्र-विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान और कम से कम उनकी ये चन्द्रमा की 28 मंजिलें तो निश्चित रूप से भारतीय स्रोतों से ही अपनायी हैं, तथापि मैं इस सम्भावना से भी इन्कार नहीं कर सकता कि शायद बदायूँनी ने उन रेगिस्तानों में उसी प्रकार इन नक्षत्रों का स्वतन्त्र रूप से निरीक्षण कर लिया हो।

51. चीनवासियों को भी चन्द्रमा के भ्रमणपथ के सीयु नामक इन नक्षत्रों का ज्ञान था। वे लोग पहले 24 नक्षत्र ही मानते थे, किन्तु बाद में बढ़ते-बढ़ते उनकी संख्या 28 तक जा पहुँची। इस संबंध में भी बोट, लासेन जैसे विचारकों से सहमत होने की कोई आवश्यकता नहीं, जिन्होंने कहा है कि हिन्दू चन्द्रमा सम्बन्धी सरल और आरम्भिक ज्योतिर्विज्ञान का विचार प्राप्त करने के लिए चीन पहुँचे थे। उनके ऐसे विचारों का खण्डन प्रथम तो इसी बात से हो जाता है कि चीनवालों को पहले 24 नक्षत्रों का ही ज्ञान था। धीरे-धीरे उन्होंने अपने ज्ञान में संशोधन और परिवर्धन कर 28 नक्षत्रों की पहचान की, जबकि हिन्दू आरम्भ से ही 27 नक्षत्र मानते रहे और आगे चलकर यह संख्या 28 कर दी गई। दूसरी बात यह कि चीन के इन 28 नक्षत्रों में से केवल 17 नक्षत्र ही ऐसे हैं जिन्हें हिन्दू नक्षत्रों के रूप में पहचाना जा सकता है। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि जब कोई देश किसी दूसरे देश से कोई वैज्ञानिक प्रक्रिया अपनाता है तो वह उसे सर्वांगपूर्ण रूप में ही अपना सकता है न कि किसी टूटे-फूटे रूप में, और इस विषय में तो ऐसे किसी उपाय या माध्यम की सम्भावना भी नहीं थी कि अत्यन्त पुरातन काल में—आज से 3000 वर्ष पूर्व—चीन से ज्योतिर्विज्ञान भारत पहुँचा हो। चीन के साहित्य में भी भारत का उल्लेख ई० पू० दूसरी शताब्दी से पूर्व कहीं नहीं मिलता और संस्कृत साहित्य में जिस चीन शब्द का प्रयोग हुआ है वह भी सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में कहीं प्रयुक्त नहीं हुआ। यद्यपि यह भी संदिग्ध है कि संस्कृत साहित्य में उपलब्ध यह चीन शब्द वर्तमान चीन देश के लिए ही प्रयुक्त हुआ है।

52. तब यह कहा गया कि जिन पश्चिम एशियावासी सैमेटिकों या ईरानियों ने चीनियों की वह पद्धति ग्रहण कर ली, उन लोगों तक यह नक्षत्र-गणना पूर्ण वैज्ञानिक और सूक्ष्म रूप में न पहुँचकर, स्थूल रूप में ही पहुँच पाई थी। उन लोगों ने 27 नक्षत्रों के रूप में उन मंजिलों का स्थान 27 तारक-पुंजों को दे दिया। इसके साथ ही कुछ तारों या तारक-पुंजों के स्थान में भी परिवर्तन कर दिया गया ताकि उसे ग्रह-नक्षत्रों के भ्रमण पथ या क्रान्तिवृत्त के निकटतम बनाया जा सके। वे लोग ऐसा मानते हैं कि ग्रह-नक्षत्रों की गतिविधियों और स्थानों के निर्धारित करने की यह विधि जब सुनिश्चित हो गई तो वह ग्रहों के ज्ञान के साथ ही साथ भारत पहुँची। गतिविधियों और स्थानों के निर्धारण की इस विधि के सुनिश्चित हो जाने पर वह ग्रहों के ज्ञान के साथ ही साथ भारत आई थी। इस प्रकार वहाँ पर उस ज्योतिर्विज्ञान के विकास का अपने ढंग से स्वतन्त्र रूप में विकास हो गया। अपने पूर्व स्थान में अब भी इसकी चर्चा है और बन्दाहिश में परवर्ती काल में भी इसके कुछ चिह्न विद्यमान थे। फिर यह विद्या पश्चिम की ओर आगे बढ़ती गई और

traces later in the Bundahish ; and made its way so far westward as finally to become known and adopted by the Arabs.'

53. With due respect for the astronomical knowledge of those who hold this view, all I can say is that this is a novel, and nothing but a novel without any facts to support it, and that the few facts which are known to us do not enable a careful reasoner to go beyond the conclusions stated many years ago by Colebrooke, that the 'Hindus had undoubtedly made some progress at an early period in the astronomy cultivated by them for the regulation of time.

54. Their calendar, both civil and religious, was governed chiefly, not exclusively, by the moon and the sun ; and the motions of these luminaries were carefully observed by them, and with such success, that their determination of the moon's synodical revolution, which was what they were principally concerned with, is a much more correct one than the Greeks ever achieved. They had a division of the ecliptic into twenty-seven and twenty-eight parts, suggested evidently by the moon's period in days, and seemingly their own ; it was certainly borrowed by the Arabians.'

55. There is one more argument which has been adduced in support of a Babylonian, or, at all events, a Semitic influence to be discovered in Vedic literature which we must shortly examine. It refers to the story of the *Deluge*.

56. That story, as you know, has been traced in the traditions of many races, which could not well have borrowed it from one another ; and it was rather a surprise that no allusion even to a local deluge should occur in any of the Vedic hymns, particularly as very elaborate accounts of different kinds of deluges are found in the later Epic poems, and in the still later Puranas, and form in fact a very familiar subject in the religious traditions of the people of India.

57. Three of the *Avataras* or incarnations of Vishnu are connected with a deluge, that of the *Fish*, that of the *Tortoise*, and that of the *Boar*, Vishnu in each case rescuing mankind from destruction by water, by assuming the form of a fish, or a tortoise, or a boar.

58. This being so, it seemed a very natural conclusion to make that, as their was no mention of a deluge in the most ancient literature of India, that legend had penetrated into India from without at a later time.

59. When, however, the Vedic literature became more generally known, stories of a deluge were discovered, if not in the hymns, at least in the prose writings, belonging to the second period, commonly called the Brahmana period. Not only the story of Manu

अन्त में अरबों ने इसे सीख कर स्वीकार कर लिया।

53. ऐसे विचार वालों के प्रति आदर प्रदर्शित करते हुए भी मैं यही कहना चाहूँगा कि उनकी ये बातें केवल कपोल-कल्पना—अपने समर्थक तथ्यों से विहीन कपोल-कल्पना मात्र हैं। अन्य तथ्य भी विवेचक को कई वर्ष पहले कोलब्रुक के इन निष्कर्षों से आगे नहीं बढ़ने देते—'कालगणना के लिए हिन्दुओं ने ज्योतिर्गणना में उस प्रारम्भिक युग में ही निस्सन्देह अपने तौर पर ही पर्याप्त प्रगति कर ली थी।

54. सामाजिक तथा धार्मिक दोनों प्रकार के जीवन में सदा से प्रयुक्त उनके तिथि-क्रम का निर्धारण प्रमुखतया, सम्पूर्णतया नहीं, सूर्य और चन्द्र की गणना के आधार पर ही किया जाता था। इन ग्रहों की गति का उन्होंने इतनी सूक्ष्मता व सफलतापूर्वक निरीक्षण किया था कि उनकी चान्द्रगणना यूनानियों की अपेक्षा कहीं अधिक सही है। हिन्दुओं ने चन्द्रमा के भ्रमण पथ को 27 भागों में बाँटा है। अरबों ने चन्द्रमा का परिभ्रमण 28 दिन का बताया है, वह उनका अपना लगता है, किन्तु वह निश्चित रूप में अरबों ने भारत से लिया है ।'

55-57. वैदिक वाङ्मय में बेबीलोन अथवा कम से कम सैमेटिक प्रभाव को प्रदर्शित करने के लिए एक और प्रमाण प्रस्तुत किया गया है। यहाँ इसकी भी संक्षेप में चर्चा कर ली जाए जैसा कि आप जानते हैं यह है जल प्लावन की कथा। इस कथा को कई देशों और नानाजातियों ने एक दूसरे से नहीं अपनाया होगा। यह भी आश्चर्य की बात है कि 'महाभारत' आदि परवर्ती महाकाव्यों में जिस जलप्लावन की कथा विभिन्न रूपों में प्रस्तुत की गई, वैदिक सूक्तों में उसका कहीं कोई संकेत तक नहीं है आगे चलकर भारत की धार्मिक जनता की परम्परा में सुप्रचलित पुराणों के द्वारा यह कथा और प्रचारित हो गई। विष्णु के अवतारों में से मत्स्य, कूर्म और वराह, ये तीनों जल में से पृथ्वी का उद्धार करने वाले बताए गए हैं।

58. इसका यह स्वाभाविक परिणाम प्रतीत हो सकता है कि भारत के प्राचीनतम साहित्य में, क्योंकि जलप्लावन का कहीं कोई संकेत नहीं, अतः निश्चित रूप से यह उपाख्यान परवर्ती काल में कहीं बाहर से भारत में पहुँचा होगा।

59. तथापि वैदिक वाङ्गमय के ज्ञान की वृद्धि से ज्ञात हुआ कि भले ही संहिताओं में जलप्लावन की चर्चा न हो, तो भी ब्राह्मण ग्रन्थों में यह कथा है। वहाँ मनु और मत्स्य का आख्यान ही नहीं हैं, अपितु कूर्म और वराह अवतार की कथा भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है। इसके साथ ही यह धारणा भी समाप्त हो गई कि जलप्लावन की कथा भारतीयों ने कहीं बाहर से ली थी। जलप्लावन से सम्बद्ध इन में से एक शतपथ ब्राह्मण का उपाख्यान मैं आपको सुनाना चाहूँगा ताकि आप स्वयं यह निर्णय कर लें कि इस कथानक और जैनसिस के वर्णन में वास्तव में कुछ ऐसा साम्य है, जिसके आधार पर इस मिथ्या कल्पना को स्वीकार कर लिया गया कि हिन्दुओं ने जलप्लावन का यह उपाख्यान अपने निकटतम पड़ोसी सैमेटिक जातियों से लिया है।

शतपथ ब्राह्मण के 1-8-1 में कहा गया है।

and the *Fish*, but the stories of the *Tortoise* and of the *Boar* also, were met with there in a more or less complete form, and with this discovery the idea of a foreign importation lost much of its plausibility. I shall read you at least one of these accounts of a Deluge which is found in the Satapatha Brahmana, and you can then judge for yourselves whether the similarities between it and the account in Genesis are really such as to require, nay as to admit, the hypothesis that the Hindus borrowed their account of the Deluge from their nearest Semitic neighbours.

60. We read in the Satapatha Brahmana i. 8, 1 :

'1. In the morning they brought water to Manu for washing, as they bring it even now for washing our hands.

'While he was thus washing, a fish came into his hands.

'2. The fish spoke this word to Manu : "Keep me, and I shall save thee."

'Manu said : "From what wilt thou save me ?"

'The fish said : "A flood will carry away all these creatures, and I shall save thee from it."

'Manu said : "How canst thou be kept ?"

'3. The fish said : "So long as we are small, there is much destruction for us, for fish swallows fish. Keep me therefore first in a jar. When I outgrow that, dig a hole and keep me in it. When I outgrow that, take me to the sea, and I shall then be beyond the reach of destruction."

'4. He became soon a large fish, for such a fish grows largest. The fish said : "In such and such a year the flood will come. Therefore when thou hast built a ship, thou shalt meditate on me. And when the flood has risen, thou shalt enter into the ship, and I will save thee from the flood."

'5. Having thus kept the fish, Manu took him to the sea. Then in the same year which the fish had pointed out, Manu, having built the ship, meditated on the fish. And when the flood had risen, Manu entered into the ship. Then the fish swam towards him, and Manu fastened the rope of the ship to the fish's horn, and he thus hastened towards the Northern Mountain.

'6. The fish said : "I have saved thee ; bind the ship to a tree. May the water not cut thee off ; while thou art on the mountain. As the water subsides, do thou gradually slide down with it." Manu then slid down gradually with the water, and therefore this is called "the Slope of Manu" on the Northern Mountain. Now the flood

60. जैसाकि भारत में आजकल भी प्रथा है, मनु के हाथ धोने के लिए एक दिन प्रात: काल अर्घ्य जल लाया गया।

1. उनके हाथ में अर्घ्य जल के साथ छोटी-सी मछली भी आ गई।

2. उसने मनु से कहा—आप मुझे बचा लीजिए, मैं आपकी रक्षा करूँगी।

तुम मुझे कैसे बचाओगी ?

एक जलप्लावन में सब प्राणी बह जाएँगे। मैं उससे तुम्हें बचा लूँगी।

मैं तुम्हें कैसे बचा सकता हूँ ?

3. मछली बोली—'जब तक हम मछलियाँ छोटी रहती हैं, तब तक हमें नाना विपत्तियों का सामना करना पड़ता है, क्योंकि बड़ी मछली छोटी को निगल जाती है। इसलिए तुम मुझे पहले जलपात्र में रख दो। जब मैं कुछ बड़ी हो जाऊँ तो एक गड्ढा खोद कर उसके पानी में मुझे डाल देना। कुछ समय बाद जब मैं और भी बड़ी हो जाऊँ तो मुझे वहाँ से निकाल कर समुद्र में डाल आना। वहाँ मैं इतनी बड़ी हो जाऊँगी कि मुझे किसी प्रकार का कोई भय नहीं रहेगा।'

4. यथा समय वह सबसे बड़ी मछली बन गई। तब वह बोली—'अमुक वर्ष में और अमुक समय में जलप्लावन होगा। उस समय आप एक नाव बनवा लेना और मेरा ध्यान करके उस नाव में बैठ जाना। मैं आपको उस जल-प्लावन से बचा लूँगी।'

5. मनु उसे समुद्र में छोड़ आए। निश्चित समय पर जल-प्लावन होने पर वे नौका में बैठ गए और उन्होंने अपनी नौका की रस्सी उस महामत्स्य के सींग के साथ बाँध दी, जिसने उन्हें तत्काल उत्तर के पर्वत तक पहुँचा दिया।

6. महामत्स्य बोला—'मैंने आपको बचा लिया है। आप नाव को वृक्ष से बाँध दें। यहाँ अब आपको जलप्लावन का कोई भय नहीं। जब धीरे-धीरे यह प्रवाह नीचे उतरने लगे तब आप भी नीचे आते रहें।' वह स्थान आज भी हिमालय में 'मनोरव-सर्पणम्' के नाम से विख्यात है। इस प्रकार बाकी सब प्राणी जल-प्लावन में बह गए, किन्तु अकेले मनु बच रहे।

7. अब एकाकी मनु देवताओं का स्तवन और मानव सन्तति परम्परा के विकास की कामना से पाक-यज्ञ करने लगे। वे प्रतिदिन जल में कुछ घृत, क्षीर और दही की हवि डालते रहे। एक वर्ष बाद एक दिन उस हवि में से एक नारी प्रकट हुई। ऐसा लग रहा था मानो वह आकाश से उतरी हुई (अप्सरा) हो जिसके नवनीत-निर्मित-से पदों की चाप धरती पर पहले पहल पड़ रही है। मित्र और वरुण उसे देखने आए।

8. उन्होंने उससे पूछा—तुम कौन हो ? मैं मनु की पुत्री हूँ—वह बोली। उन्होंने प्रसन्न होते हुए कहा—तुम तो यही बताओ कि तुम हमारी हो। नहीं, मैं उसी की हूँ जिसने मुझे उत्पन्न किया और पाला-पोसा है। तब उन्होंने चाहा कि वह उनकी बहन बन जाए। वह अधूरे-अनमने भाव से हाँ-ना करती हुई वहाँ से चली गई और मनु के पास जा पहुँची।

9. तब मनु ने उससे पूछा—तुम कौन हो ?

had carried away all these creatures, and thus Manu was left there alone.

'7. Then Manu went about singing praises and toiling, wishing for offspring. And he sacrificed there also with a Paka-sacrifice. He poured clarified butter, thickened milk, whey, and curds in the water as a libation. In one year a woman arose from it. She came forth as if dripping, and clarified butter gathered on her step. Mitra and Varuna came to meet her.

'8. They said to her : "Who art thou ?" She said : "The daughter of Manu." They rejoined : "Say that thou art ours." "No," she said, "he who has begotten me, his I am."

"Then they wished her to be their sister, and she half agreed and half did not agree, but went away, and came to Manu.

'9. Manu said to her : "Who art thou ?" She said : "I am thy daughter." "How, lady, art thou my daughter ?" He asked.

'She replied : "The libations which thou hast poured into the water, clarified butter, thickened milk, whey and curds, by them thou hast begotten me. I am a benediction—perform this benediction at the sacrifices. If thou perform it at the sacrifice, thou wilt be rich in offspring and cattle. And whatever blessing thou wilt ask by me, will always accrue to thee." He therefore performed that benediction in the middle of the sacrifice, for the middle of the sacrifice is that which comes between the introductory and the final offerings

'10. Then Manu went about with her, singing praises and toiling, wishing for offspring. And with her he begat that offspring which is called the offspring of Manu ; and whatever blessing he asked with her, always accrued to him. She is indeed Ida, and whosoever, knowing this, goes about (sacrifices) with Ida, begets the same offspring which Manu begat, and whatever blessing he asks with her, always accrues to him.'

61. This, no doubt, is the account of a deluge, and Manu acts in some respects the same part which is assigned to Noah in the Old Testament. But if there are similarities, think of the dissimilarities, and how they are to be explained. It is quite clear that, if this story was borrowed from a Semitic source, it was not borrowed from the Old Testament, for in that case it would really seem impossible to account for the differences between the two stories. That it may have been borrowed from some unknown Semitic source cannot, of course, be disproved, because no tangible proof has ever been produced that would admit of being disproved. But if it were, it would be

'मैं आपकी पुत्री हूँ'। हे 'देवी ! तुम भला मेरी पुत्री कैसे हो सकती हो'?

आप जल में घृत, दधि, क्षीर आदि जो हवि प्रतिदिन डालकर पंच यज्ञ किया करते थे, मैं उन्हीं से उत्पन्न हुई हूँ। मैं आपको उस यज्ञ की सजीव आशीर्वादात्मक कल्याणकारिणी इडा (स्तुति) हूँ। यदि आप यज्ञ-याग के समय इसका प्रयोग किया करेंगे तो आप धन-धान्य, पुत्र-पौत्रादि तथा गौ-अश्व आदि पशु से सुसम्पन्न हो जाएँगे। इसके साथ जो भी आप मुझसे चाहेंगे वह सब कुछ आपको मिलता रहेगा। तब से लेकर मनु अपने यज्ञ में उसका प्रयोग करने लगे। क्योंकि यज्ञ याग का मध्य वह है, जो आरम्भ के पश्चात् और समाप्ति से पूर्व होता है।

10. तत्पश्चात् इड़ा के साथ मनु स्तुतिगान और यज्ञ आदि करते हुए हिमालय से नीचे उतर आए। उनकी कामना थी कि उनकी सन्तति-परम्परा खूब फूले-फले। उसी से मनु को सन्तति-परम्परा की प्राप्ति हुई जो मानव कहलाती है। मनु ने इडा से जो भी चाहा, वह सब-कुछ उसे मिलता रहा। इडा का ध्यान करते हुए जो कोई यज्ञ-करता है, वह भी उसी प्रकार सन्तति-परम्परा से समृद्ध हो जाता है और वह जो भी कुछ चाहता है, उसे मिलता रहता है।

61. जलप्लावन और मनु का यह उपाख्यान ओल्ड टेस्टामेंट में वर्णित नूह से संबद्ध उपाख्यान से आंशिक रूप में मिलता है। इन दोनों उपाख्यानों में जहाँ कुछ समानताएँ हैं, वहाँ इनमें अन्तर भी तो अत्यधिक है, और यह अन्तर क्यों है, इसका विवेचन होना चाहिए। स्पष्ट है कि यदि यह उपाख्यान किसी सैमेटिक स्रोत से लिया गया भी हो तो भी ओल्ड टेस्टामेंट से तो कदापि नहीं लिया गया, क्योंकि उस अवस्था में इन दोनों उपाख्यानों में जो बड़ा भारी अन्तर है, उसका समाधान किसी प्रकार भी नहीं हो पाता। यह उपाख्यान किसी अन्य अज्ञात सैमेटिक स्रोत से भी नहीं लिया गया। तो भी यह हो सकता है, क्योंकि इसके विपक्ष में कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। सचमुच यदि ऐसा हो भी तो भी यह मानना पड़ेगा कि मात्र जलप्लावन की कथा ही सम्पूर्ण प्राचीन संस्कृत-साहित्य पर एकमात्र सैमेटिक ऋण है। किन्तु ऐसा सोचने से पहले यहाँ हमें कुछ रुकना होगा !

62. इस महामत्स्य के साथ ही वैदिक साहित्य में कूर्म और वराह की चर्चा भी तो विद्यमान है। तैत्तिरीय संहिता मे यह पाठ आता है—

63. 'आरम्भ में यह सब-कुछ जलमय था। प्राणिमात्र के उत्पादक प्रजापति ने वायुरूप में इस जल में हलचल उत्पन्न की। उन्होंने पृथिवी को देखा तो वराह-रूप धारण कर वे उसे जल से बाहर ले आए। तब प्रत्येक वस्तु के निर्माता विश्वकर्मा के रूप में उसी प्रजापति ने इस पृथिवी को स्वच्छ और शुद्ध किया। यह पृथु हो गई या फैल गई इसीलिए इसे 'पृथिवी' कहा जाने लगा।'

64-65. इसी प्रकार 'शतपथ ब्राह्मण' में भी हमें पौराणिक कूर्मावतार के सम्बन्ध में यह एक हल्की-सी झलक मिलती है :—

'प्रजापति ने कूर्म-रूप धारण कर सारी सृष्टि को उत्पन्न किया और क्योंकि कूर्म से ही सब जीवों की उत्पत्ति हुई, इसीलिए उसे कूर्म (कृ-म) कहा जाता है। कूर्म को

the only Semitic loan in ancient Sanskrit literature—and that ought to make us pause !

62. The story of the boar and the tortoise too, can be traced back to the Vedic literature. For we read in the Taittiriya Samhita :

63. 'At first this was water, fluid. Prajapati, the lord of creatures, having become wind, moved on it. He saw this earth, and becoming a boar, he took it up. Becoming Visvakarman, the maker of all things, he cleaned it. It spread and became the wide-spread Earth, and this is why the Earth is called Prithivi, the wide-spread.'

64. And we find in the Satapatha Brahmana the following slight allusion at least to the tortoise myth :

'Prajapati, assuming the form of a tortoise brought forth all creatures. In so far as he brought them forth, he made them, and because he made them he was (called) tortoise (Kurma). A tortoise is (called) Kasyapa, and therefore all creatures are called Kasyapa, tortoise-like. He who was this tortoise was really Aditya (the sun).'

65. One other allusion to something like a deluge, important chiefly on account of the name of Manu occurring in it, has been pointed out in the Kathaka where this short sentence occurs : 'The waters cleaned this, Manu alone remained.'

66. All this shows that ideas of a deluge, that is, of a submersion of the earth by water and of its rescue through divine aid, were not altogether unknown in the early traditions of India, while in later times they were embodied in several of the Avataras of Vishnu.

67. When we examine the numerous accounts of a deluge among different nations in almost every part of the world, we can easily perceive that they do not refer to one single historical event, but to a natural phenomenon repeated every year, namely the deluge or flood of the rainy season or the winter.

68. If that is so, we have surely a right to claim the same natural origin for the story of the Deluge in India which we are bound to admit in other countries. And even if it could be proved that in the form in which these legends have reached us in India they show traces of foreign influences, the fact would still remain that such influences have been percieved in comparatively modern treatises only, and not in the ancient hymns of the Rig-veda.

69. Other conjectures have been made with even less foundation than that which would place the ancient poets of India under

कश्यप भी कहते हैं, इसीलिए सब प्राणी काश्यपेय कहलाते हैं।' वास्तव में आदित्य ही कश्यप है। काठक (संहिता) में भी इस जलप्लावन का यह संक्षिप्त सा उल्लेख मिलता है; —यह सम्पूर्ण भूमण्डल जलप्लावित हो गया था, एकमात्र मनु ही उसमें बच रहे।

66. इससे सिद्ध होता है कि जलप्लावन में भूमि के जलमग्न हो जाने तथा दैवी सहायता से उसके उबर जाने की कथा प्राचीन भारतीय परम्परा में अविदित नहीं थी। आगे चलकर वे (मत्स्य, कूर्म और वराह) विष्णु के अवतार बन गए।

67. विश्व के अन्यान्य भागों के निवासियों तथा विभिन्न जातियों में प्रचलित जलप्लावन की विविध कथाओं की ओर ध्यान देने पर ज्ञात होता है कि ये कथाएँ किसी एक ऐतिहासिक घटना या तथ्य की सूचक न होकर अपने-अपने क्षेत्रों में यदा-कदा आने-वाली भयंकर बाढ़ों की सूचक मात्र हैं।

68. यदि यही बात है तो भारत में प्रचलित जलप्लावन के इस उपाख्यान का मूलस्रोत भी भारत ही है, न कि कोई अन्य देश। यदि किसी प्रकार यह प्रमाणित भी कर दिया जाए कि जिस रूप में ये उपाख्यान आज हमें उपलब्ध हैं, उनके भारतीय रूपों में कुछ विदेशी प्रभाव के चिह्न मिलते हैं, तो भी यह तथ्य तो स्वीकार करना ही होगा कि ये चिह्न अपेक्षाकृत परवर्तीकाल में ही दिखाए जा सकते हैं, न कि ऋग्वेद के सूक्तों जैसे पुरातन वाङ्मय में।

69. प्राचीन भारतीय वैदिक साहित्य पर विदेशी प्रभाव सिद्ध करने के लिए ऐसी ही और भी जो बातें कही जाती हैं, वे सर्वथा मिथ्या और निराधार ही हैं, क्योंकि उस प्राचीन युग में बेबीलोन या चीन ही क्यों, ईरान और पार्थिया तथा बैक्ट्रिया (बलख) भी भारत की पहुँच से बाहर थे। आश्चर्य तो यह है कि एक ओर तो वेदों में अफगानिस्तान का कई बार और वह भी बड़े सद्भाव से उल्लेख हुआ है, जबकि दूसरी ओर उन लुप्त प्राय प्राचीन यहूदी कबीलों का वहाँ कहीं कोई संकेत तक भी नहीं मिलता।

70. इस प्रकार भारत के प्राचीन वैदिक साहित्य पर विदेशी प्रभाव को प्रमाणित करने के लिए अनेक विद्वानों के द्वारा जो कुछ कहा गया है, उसकी सूक्ष्मतापूर्वक जाँच पड़ताल करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि वैदिक वाङ्मय की भाषा, वैदिक धर्म, यज्ञ-याग एवं विधि-विधान, कर्मकाण्ड व व्रतोत्सवादि पर किसी प्रकार के विदेशी प्रभाव का कहीं कोई चिह्न नहीं मिलता। वैदिक साहित्य आज जिस रूप में हमारे समक्ष विद्यमान है, वह उत्तर में पर्वत श्रृंखला की प्राचीर, पश्चिम में सिन्धु व मरुस्थल, दक्षिण में सिन्धु (समुद्र) और पूर्व में गंगा से घिरे भारत के भू-भाग में ही आविर्भूत एवं विकसित हुआ है। यह वैदिक वाङ्मय हमें विशुद्ध भारतीय कविता एवं धर्म के दर्शन करता है। इस वैदिक वाङ्मय में हमें यह बताने के लिए इतिहास भी सुरक्षित है कि यदि धरती को स्वर्ग बना देने वाले प्राकृतिक परिवेश एवं परिस्थितियों में मानव मस्तिष्क को उन्मुक्त चिन्तन के अवसर सुलभ हो जाएँ तो वह कितना कुछ संजो सकता है। किन्तु इसके लिए यह भी आवश्यक है कि कहीं मानव स्वर्ग को ही नरक बना डालने वाले अपने 'कौशल को ही न अपना' बैठे।

the influence of Babylon. China has been appealed to, nay even Persia, Parthia, and Bactria, countries beyond the reach of India at that early time of which we are here speaking. I only wonder that traces of the lost Jewish tribes have not been discovered in the Vedas, considering that Afghanistan has so often been pointed out as one of their favourite retreats.

70. After having thus carefully examined all the traces of supposed foreign influences that have been brought forward by various scholars. I think I may say that there really is no trace whatever of any foreign influence in the language, the religion, or the ceremonial of the ancient Vedic literature of India. As it stands before us now, so it has grown up, protected by the mountain ramparts in the North, the Indus and the Desert in the West, the Indus or what was called the sea in the South, and the Ganges in the East. It presents us with a home-grown poetry, and a home-grown religion ; and history has preserved to us at least this one relic, in order to teach us what the human mind can achieve if left to itself, surrounded by a scenery and by conditions of life that might have made man's life on earth a paradise, if man did not possess the strange art of turning even a paradise into a place of misery.

पंचम व्याख्यान

वैदिक धर्म

1. यद्यपि (हम यूरोपिग्रन लोगों के) ज्ञान की ऐसी कोई विधा नहीं है, जिसने भारत के प्राचीन साहित्य से अभिनव प्रकाश एवं नवजीवन प्राप्त न किया हो, तथापि धर्म तथा दैवतवाद या पौराणिकता-सम्बन्धी अध्ययन पर भारत के द्वारा जैसा महत्त्वपूर्ण, नवीन और समृद्ध प्रकाश पड़ा है, वैसा ज्ञान की अन्य किसी शाखा पर अभी तक नहीं पड़ पाया। यही कारण है कि मैं इस भाषणमाला के अपने शेष सभी व्याख्यान इसी विषय पर देना चाहूँगा। यह मैं इसलिए चाहता हूँ कि मैं स्वयं वैदिक साहित्य के उस प्राचीन-तम संसार में रम गया हूँ। दूसरे, इस वैदिक साहित्य से ही हम आर्यों के धर्म के निगूढ़ तत्त्वों का सम्यक् अध्ययन कर सकते हैं, तथा इसलिए भी कि आजकल हिन्दुओं के अत्यन्त गहन व गम्भीर दृढ़ विश्वासों या आपके विचार में पूर्वाग्रहों—को समझने के लिए वेदों के ज्ञान से अधिक उपयोगी और कुछ नहीं है, ऐसी मेरी सुनिश्चित धारणा है। यह भी सत्य है कि यदि हम यह मान बैठें कि विगत 3000 वर्षों में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं हुआ और अब भी ब्राह्मण धर्म सर्वथा वैदिक वाङ्मय का अनुवर्ती है, तो इससे बढ़कर हमारी और कोई भूल नहीं हो सकती। यह भूल तो ठीक वैसी ही होगी जैसे कोई यह मानने से इन्कार कर दे कि वैदिक भाषा और आधुनिक बोलचाल की बंगाल भाषा में बहुत बड़ा अन्तर है। इसके विपरीत सत्य यह है कि संस्कृत-व्याकरण से अनभिज्ञ कोई भी व्यक्ति बंगाल भाषा का न तो वैदुष्य ही प्राप्त कर सकता है और न उस भाषा के अन्तर-निगूढ़ प्रमुख स्रोतों से ही परिचित हो पाता है। ठीक इसी प्रकार हिन्दुओं के आधुनिक धर्म, दर्शन, विधि-विधान, धर्मशास्त्र और सामाजिक मान्यताओं आदि के बारे में तब तक वास्तविक ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। जब तक कि उन सब परम्पराओं का मूल स्रोत वैदिक वाङ्मय में न ढूंढ निकाला जाए।

2. मुझे (आज से लगभग 40-45 वर्ष) पहले के उन दिनों की याद है, जब मैंने संस्कृत में सायण-भाष्य सहित ऋग्वेद को प्रथम बार पूर्णरूपेण सुसम्पादित कर प्रकाशित कराने का उपक्रम किया था। तब कुछ लोग यह तर्क दिया करते थे कि भारत में भी विद्वान् लोग शुद्ध वेद-पाठ नहीं कर पाते, इसलिए वेद का प्रकाशन भारत के लिए तो निरर्थक है ही, ईसाई मिशनरियों या ऐसे दूसरे लोगों के लिए भी जो स्थानीय जनता के मस्तिष्कों को प्रभावित करने का प्रयत्न करना चाहते हैं, वेद किसी काम के नहीं। इसकी अपेक्षा तो हमें मनुस्मृति, रामायण और महाभारत आदि महाकाव्यों तथा विशेषतः पुराणों को पढ़ने में जुट जाना चाहिए। वेद जर्मन विद्वानों के काम के हो सकते हैं, किन्तु अँग्रेजों के नहीं।

LECTURE V

The Religion of the Veda

1. ALTHOUGH there is hardly any department of learning which has not received new light and new life from the ancient literature of India, yet nowhere is the light that comes to us from India so important, so novel, and so rich as in the study of religion and mythology. It is to this subject therefore that I mean to devote the remaining lectures of this course. I do so, partly because I feel myself most at home in that ancient world of Vedic literature in which the germs of Aryan religion have to be studied, partly because I believe that for a proper understanding of the deepest convictions, or, if you like, the strongest prejudices of the modern Hiudus, nothing is so useful as a knowledge of the Veda. It is perfectly true that nothing would give a falser impression of the present Brahmanical religion than the ancient Vedic litereture, supposing we were to imagine that three thousand years could have passed over India without producing any change. Such a mistake would be nearly as absurd as to deny any difference between the Vedic Sanskrit and the spoken Bengali. But no one will gain a scholarlike knowledge or a true insight into the secret springs of Bengali who is ignorant of the grammar of Sanskrit ; and no one will ever understand the present religious, philosophical, legal, and social opinions of the Hindus, who is unable to trace them back to their true sources in the Veda.

2. I still remember how, many years ago, when I began to publish for the first time the text and the commentary of the Rig-veda, it was argued by a certain, perhaps not quite disinterested party, that the Veda was perfectly useless, that no man in India, however learned, could read it, and that it was of no use either for missionaries or for any one else who wished to study and to influence the native mind. It was said that we ought to study the later Sanskrit, the Laws of Manu, the epic poems, and, more particularly, the Puranas. The Veda might do very well for German students, but not for Englishmen.

3. There was no excuse for such ignorant assertions even thirty years ago, for in these very books, in the Laws of Manu, in the Mahabharata, and in the Puranas, the Veda is everywhere proclaimed

3. किन्तु आज से 30 वर्ष पहले तक भी स्वयं मानव-धर्म शास्त्र, महाभारत एवं पुराण आदि के द्वारा वेदों का महत्त्व प्रदर्शित करने वाली निश्चित घोषणाओं से वे लोग अनभिज्ञ क्यों रहे ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए उनके पास क्या कोई लंगड़ा-सा बहाना भी है ? रामायण, महाभारत एवं पुराण आदि सभी ग्रन्थों में प्रत्येक विषय में वेदों की प्रामाणिकता एवं सर्वमान्यता की पदे-पदे घोषणा की गई है। मनु कहते हैं कि—जैसे अग्नि में गिरा हुआ सूखा तिनका तत्काल जल कर भस्म हो जाता है, 'वेद ज्ञान से शून्य ब्राह्मण वैसा ही सत्त्वहीन हो जाता है।' 'मनुस्मृति' में ही अन्यत्र लिखा है 'जो द्विज वेदों का अध्ययन नहीं करता, उसका सभी ब्राह्मणोचित कर्मों से शूद्र के समान बहिष्कार कर दिया जाना चाहिए।'

4. इस तथ्य को न मानने वाले ये लोग ब्राह्मणों पर यह दोष लगाते हैं कि 'इन धूर्त ब्राह्मण पुरोहितों ने अपनी जाति के सिवा दूसरे लोगों से वेदों को गुप्त रखा हुआ है।' विपरीत इसके ब्राह्मण लोग तो शूद्रों के सिवा दूसरे सब लोगों को अपने पवित्र वैदिक वाङ्मय के अध्ययन के लिए प्रेरित करते रहे हैं, भले ही अपने इस कार्य में उन्हें सफलता बहुत कम ही क्यों न मिली हो। मनु के उपर्युक्त आदेश में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णों के बच्चों को वेदाध्ययन न करने पर दण्ड की व्यवस्था है। ये लोग भारतीय चिन्तन के ऐतिहासिक अध्ययन में सहायक के रूप में भी वेदों का महत्त्व मानने को तैयार नहीं हैं।

5. सायण-भाष्य सहित ऋग्वेद का जो संस्करण मैंने हाल ही में (भाष्य को सुसम्पादित कर छह बड़े-बड़े भागों में) प्रकाशित करवाया है, उसका ब्राह्मणों ने जिस उत्साह से स्वागत किया और वेद के अध्ययन के लिए विविध सम्प्रदायों में जो स्पर्धा दिखाई देती है और अध्ययन की उपयोगिता आदि के बारे में विभिन्न सम्प्रदाय आज भी जिस प्रकार शास्त्रीय चर्चाएँ करते हैं, और अपने इस प्राचीन धार्मिक साहित्य के बारे में जितनी अधिक रुचि उनमें पायी जाती है, यह सब देखते हुए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जैसे कोई हिब्रू भाषा जानने वाला ओल्ड टेस्टामेंट का ज्ञाता न हो तो उसे अच्छा नहीं समझा जाता, वही स्थिति वेदविहीन संस्कृत जानने वाले की है।

6. अब मैं ऋग्वेद की ऋचाओं और वैदिक धर्म की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताओं के कुछ नमूने आप लोगों के सामने रखना चाहूँगा। एक तो जिसे ऋग्वेद संहिता कहते हैं, उसके 1017 सूक्तों का संकलन किसी क्रम विशेष से नहीं हुआ और यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे नमूने भी कुछ एक ही हैं। अतः, मैं यह विश्वास नहीं दिला सकता कि मेरे ये इने-गिने विवरण, हमारे वैदिक पूर्वज इस धरा-धाम पर जिस बौद्धिक जगत् में विचरण करते रहे, उस भव्य दृश्य को समग्र रूप से आपके सामने प्रस्तुत कर सकेंगे।

7. अब यदि आप लोगों में से कोई यह पूछ बैठे कि वैदिक धर्म एकेश्वरवादी था या बहुदेववादी, तो इस प्रश्न का भी कोई सीधा-सा उत्तर मैं नहीं दे पाऊँगा। यद्यपि यह भी सत्य है कि 'एकेश्वरवाद' शब्द का प्रयोग सामान्यतया आजकल जिस अर्थ में किया जाता है, निश्चित ही उस अर्थ में तो वैदिक धर्म 'एकेश्वरवादी' नहीं है। भले ही वेद में

as the highest authority in all matters of religion. 'A Brahman,' says Manu, 'unlearned in holy writ, is extinguished in an instant like dry grass on fire.' 'A twice-born man (that is a Brahmana, a Kshatriya, and a Vaisya) not having studied the Veda, soon falls, even when living, to the condition of a Sudra, and his descendants after him.'

4. How far this license of ignorant assertion may be carried is shown by the same authorities who denied the importance of the Veda for a historical study of Indian thought, boldly charging those wily priests, the Brahmans, with having withheld their sacred literature from any but their own caste. Now so far from withholding it, the Brahmans have always been striving, and often striving in vain, to make the study of their sacred literature obligatory on all castes, except the Sudras, and the passages just quoted from Manu show what penalties were threatened, if children of the second and third castes, the Kshatriyas and Vaisyas, were not instructed in the sacred literature of the Brahmans.

5. At present the Brahmans themselves have spoken, and the reception they have accorded to my edition of the Rig-veda and its native commentary, the zeal with which they have themselves taken up the study of Vedic literature, and the earnestness with which different sects are still discussing the proper use that should be made of their ancient religious writings, show abundantly that a Sanskrit scholar ignorant of or, I should rather say, determined to ignore the Veda, would be not much better than a Hebrew scholar ignorant of the Old Testament.

6. I shall now proceed to give you some characteristic specimens of the religion and poetry of the Rig-veda. They can only be few, and as there is nothing like system or unity of plan in that collection of 1017 hymns, which we call the Samhita of the Rig-veda, I cannot promise that they will give you a complete panoramic view of that intellectual world in which our Vedic ancestors passed their life on earth.

7. I could not even answer the question, if you were to ask it, whether the religion of the Veda was *polytheistic, or monotheistic.* Monotheistic, in the usual sense of that word, it is decidedly not, though there are hymns that assert the unity of the Divine as fearlessly as any passage of the Old Testament, or the New Testament, or the Koran. Thus one poet says : 'That which is *one*, sages name it in various ways—they call it Agni, Yama, Matarisvan.'

8. Another poet says : 'The wise poets represent by their words Him who is one with beautiful wings, in many ways.'

ऐसे सूक्त भी हैं, जो ओल्ड टेस्टामेंट या न्यू टेस्टामेंट के जैसी ही निर्भीकता के साथ 'एक देवता' का प्रतिपादन करते हैं। ऋग्वेद की एक ऋचा में कहा गया है—'उस एक ही परमतत्त्व को विज्ञजन अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि अनेक नामों से अभिहित किया करते हैं।'

8. एक अन्य ऋषि कहता है—'उस सुपर्ण (सर्वत्र पतन—उत्पतन-शील सर्व-व्यापक) परमतत्त्व का नाना नामरूपों में वर्णन किया जाता है।'

9. एक अन्य ऋचा में हमें सृष्टि के परमादितत्त्व 'हिरण्यगर्भ' के बारे में बताया गया है। (उसे यह नाम देने का मूल कारण चाहे कुछ भी रहा हो) ऋषि कहता है कि प्रारम्भ में वह 'हिरण्यगर्भ' था, वही इस सब का एकमात्र पति था। इस भूलोक और द्युलोक को उसने ही धारण किया हुआ है। उसी परमतत्त्व-देव को हम अपनी हवि-यज्ञ अर्चना आदि—समर्पित करते हैं। वह कौन देव है ? जिसे हम हवि समर्पित करते हैं ?

यहाँ ऋषि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि 'हिरण्यगर्भ' सब देवताओं का भी देवता है, सबसे ऊपर है। एक देवता का प्रतिपादन जैसा यहाँ हुआ है, उससे बढ़कर ओल्ड टेस्टामेंट में शायद ही कहीं मिले।

10. ऐसे मन्त्र कम ही हैं। वेदों में बाहुल्य ऐसे मन्त्रों का है, जिनमें अनेक देवताओं की प्रशंसा या प्रार्थनाएँ की गई हैं। इन देवताओं की संख्या के बारे में बताया गया है कि ग्यारह के त्रिगुणित अर्थात् तैंतीस हैं। अन्यत्र कहा गया है कि इनमें से [illegible] के अधिष्ठातृ ग्यारह देवता हैं। इसी प्रकार अन्तरिक्ष और पृथ्वी के भी ग्यारह-ग्यारह देवता हैं। यहाँ अन्तरिक्ष के देवता से मेघ, विद्युत एवं आकाशीय वातावरण आदि अभिप्रेत हैं। इन तैंतीस देवताओं के साथ उनकी पत्नियाँ भी निर्दिष्ट हैं। यद्यपि अपने अलग नाम प्राप्त करने का सम्मान उनमें से कुछ एक ही को प्राप्त हो पाया है।

11. सब वैदिक देवताओं का समावेश इन 33 देवताओं में ही हो जाता है। जैसे—अग्नि, सोम, पर्जन्य, मरुद्गण, अश्विनी कुमार, आप, उषा और सूर्य तथा चन्द्र आदि का पृथक्-पृथक् उल्लेख हुआ है। ऋषियों ने अपने इन देवताओं की संख्या 33 से 3339 तक बढ़ा दी।

12. इसलिए आपाततः ऋग्वेद के धर्म को 'बहुदेववादी' धर्म कह देना ठीक ही लगता है, किन्तु 'पोलिथिज्म' (बहुदेववाद) हमारे यहाँ जिस अर्थ में प्रयुक्त है, उस अर्थ में यह वैदिक धर्म के लिए कदापि प्रयुक्त नहीं हो सकता।

13. बहुदेववाद का जो विचार हमें यूनान या रोम से मिला है, इससे इतना ही समझा जाता है कि देवताओं का भी एक व्यवस्थित क्रम है। उनकी शक्तियाँ और पद भी एक दूसरे से पृथक् हैं और वे सब उस परमात्मा या गॉड, ज्यूस या जुपिटर के अधीन हैं। यूनानियों और रोमन लोगों के अथवा यूराल और अल्ताइक या अमेरिका या अफ्रीकी जातियों का बहुदेववाद वैदिक बहुदेववाद से उतना ही भिन्न है, जितना ग्राम पंचायत से साम्राज्य। ऐसे चिह्न भी मिलते हैं जिनसे परवर्ती लोकतांत्रिक व साम्राज्यवादी संविधानों में आरम्भिक पंचायत-प्रथा की अवस्था का पता लगाया जा सकता है, वैसे ही यूनान में

9. And again we hear of a being called Hiranyagarbha, the golden germ (whatever the original of that name may have been), of whom the poet says : 'In the beginning there arose Hiranyagarbha ; he was the one born lord of all this. He established the earth and this sky. Who is the god to whom we shall offer our sacrifice ?' That Hiranyagarbha, the poet says, 'is alone God above all gods'—an assertion of the unity of the Divine which could hardly be exceeded in strength by any passage from the Old Testament.

10. But by the side of such passages, which are few in number, there are thousands in which ever so many divine beings are praised and prayed to. Their number is sometimes given as 'thrice eleven' or thirty-three, and one poet assigns eleven gods to the sky, eleven to the earth, and eleven to the waters, the waters here intended being those of the atmosphere and the clouds. These thirty-three gods have even wives apportioned to them, though few of these only have as yet attained to the honour of a name.

11. These thirty-three gods, however, by no means include all the Vedic gods, for such important deities as Agni, the fire, Soma, the rain, the Maruts of Storm-gods, the Asvins, the gods of Morning and Evening, the Waters, the Dawn, the Sun, are mentioned separately ; and there are not wanting passages in which the poet is carried away into exaggerations, till he proclaims the number of his gods to be, not only thirty-three, but three thousand three hundred and thirty-nine.

12. If therefore there must be a name for the religion of the Rig-veda, polytheism, would seem at first sight the most appropriate. Polytheism, however, has assumed with us a meaning which renders it totally inapplicable to the Vedic religion.

13. Our ideas of polytheism being chiefly derived from Greece and Rome, we understand by it a certain more or less organised system of gods, different in power and rank and all subordinate to a supreme God, a Zeus or Jupiter. The Vedic polytheism differs from the Greek and Roman polytheism, and, I may add, likewise from the polytheism of the Ural-Altaic, the Polynesian, the American, and most of the African races, in the same manner as a confederacy of village communities differs from a monarchy. There are traces of an earlier stage of village-community life to be discovered in the later republican and monarchical constitutions, and in the same manner nothing can be clearer, particularly in Greece, than that the monarchy of Zeus was preceded by what may be called the septarchy of several

भी, ज्यूस के एकछत्र राज्य से पूर्व वहाँ के अनेक बड़े देवताओं का सप्तदेव था, इससे अधिक और स्पष्ट नहीं हो सकता। ट्यूटानिक दैवतवाद पर भी यही सिद्धांत लागू होता है।

14-15. किन्तु वैदिक बहुदेववाद की विशेषता यह है कि अलग-अलग परंपराओं में सर्वश्रेष्ठ के रूप में पूजित देवता एक-दूसरे के साथ प्रतिष्ठित हैं। उनमें से कोई एक सदैव प्रथम और सदा द्वितीय नहीं है। जिन देवताओं को द्वितीय श्रेणी का माना जाता है और जिनके गुण या कार्य सीमित हैं, उनमें से अनेक उनके स्तोता ऋषियों की दृष्टि में सर्वोच्च देव बन जाते हैं। इसलिए इस एक देवाधिदेव की उपासना को 'बहुदेवोपासना' से भिन्न कोई और नाम देना होगा, क्योंकि यहाँ यथाप्रसंग प्रत्येक देवता देवाधिदेव है।

मेरे विचार में वैदिक बहुदेववाद के लिए मोनोथीज्म और हैथोनीथीज्म (दूसरे देवताओं को मानते हुए भी किसी एक को देवाधिदेव मानकर उसकी उपासना करना) इन दोनों में से हेनोथीज्म यह छोटा नाम अधिक प्रचलित हो गया, क्योंकि मोनोथीज्म एक देवता को मानने के विपरीत हेनोथीज्म से किसी एक देव की उपासना का भाव व्यक्त होता है, और इससे इसका उद्देश्य भी ठीक से व्यक्त हो सकता है। तथापि ऐसे अनुसंधानों में तकनीकी पदावली के विरुद्ध हम अपने पक्ष में बहुत दृढ़ता से जमे नहीं रह सकते। यह अपरिहार्य है, तथापि मैं जानता हूं कि इस विषय में सुझाए गए दूसरे शब्द भ्रामक ही हैं। उदाहरण के लिए ऋग्वेद का एक सूक्त नदियों को सम्बोधित कर रचा गया है। इस सूक्त में सिन्धु तथा उसकी सहायक नदियों का वर्णन है। मैं आप लोगों से आग्रह करूँगा कि आप इस सूक्त का अनुवाद एक बार अवश्य पढ़ जाएँ, क्योंकि यह सूक्त उस क्षेत्र के भौगोलिक दृश्य को बिलकुल सही रूप में और अत्यन्त सूक्ष्मतया सुनिर्धारित करता है, जहाँ वैदिक ऋषि अपना जीवन-यापन किया करते थे। भारत के ऋषियों ने इन नदियों को देवता कहा है तथा वेद के यूरोपियन अनुवादकों ने भी उन्हें गॉड या गॉडेसस ही कहा है। किन्तु, ऋषि ने सिन्धु तथा दूसरी नदियों के लिए जिस पदावली का प्रयोग किया है, उसके आधार पर तब तक इन नदियों के लिए गॉड्स या गॉडेसस जैसे शब्दों का प्रयोग न्यायोचित नहीं कहा जा सकता जब तक कि वेद में नदियों के लिए प्रयुक्त देवतावाची पदावली को ग्रीक भाषा के नदी का देवता तथा नदी की देवी जैसी पदावली से सर्वथा भिन्न नहीं समझ लिया जाता, क्योंकि यूनान में निम्फ्स या नाजाडेस या क्यूसेस जैसे देवी-देवताओं को नदियों की देवी या देवता माना जाता है। (किन्तु वेद में ऐसा न होकर वे नदियाँ ही देवता हैं, उनसे भिन्न उनका अन्य कोई देवी-देवता नहीं है)।

16. इन नदियों के लिए प्रयुक्त तथ्य ही वेदों में वर्णित दूसरे सब देवताओं पर भी ठीक उसी रूप में लागू होता है। वे वैदिक देवता इन्द्रिय-ग्राह्य तथ्यों तथा कवि-कल्पनाजनित या काल्पनिक तत्त्वों के बीच में लटक रहे हैं। अनुभूयमान या प्रत्यक्ष पदार्थों में वे अनेकविध वस्तुएं भी हो सकती हैं, जो व्यक्ति या भाववाचक संज्ञा भी हो सकती हैं। कवि की अपनी कल्पना या भावना के अनुसार वे कार्य भी हो सकती हैं और कारण भी। यहाँ हमें प्राचीन भारत के देवतत्त्व के एक प्रमुख अध्येता निरुक्तकार आचार्य

of the great gods of Greece. The same remark applies to the mythology of the Teutonic nations also.

14. In the Veda, however, the gods worshipped as supreme by each sept stand still side by side. No one is first always, no one is last always. Even gods of a decidedly inferior and limited character assume occasionally in the eyes of a devoted poet a supreme place above all other gods. It was necessary, therefore, for the purpose of accurate reasoning to have a name, different from *polytheism*, to signify this worship of single gods, each occupying for a time a supreme position, and I proposed for it the name of *Kathenotheism*, that is a worship of one god after another, or of *Henotheism*, the worship of single gods. This shorter name of *Henotheism* has found more general acceptance, as conveying more definitely the opposition between *Monotheism*, the worship of one only God, and *Henotheism*, the worship of single gods ; and, if but properly defined, it will answer its purpose very well.

15. However, in researches of this kind we cannot be too much on our guard against technical terms. They are inevitable, I know ; but they are almost always misleading. There is, for instance, a hymn addressed to the *Indus* and the rivers that fall into it, of which I hope to read you a translation, because it determines very accurately the geographical scene on which the poets of the Veda passed their life. Native scholars call these rivers devatas or deities, and European translators too speak of them as gods and goddesses. But in the language used by the poet with regard to the Indus and the other rivers, there is nothing to justify us in saying that he considered these rivers as *gods* and *goddesses*, unless we mean by *gods* and *goddesses* something very different from what the Greeks called River-gods and River-goddesses, Nymphs, Najades, or even Muses.

16. And what applies to these rivers, applies more or less to all the objects of Vedic worship. They all are still oscillating between what is seen by the senses, what is created by fancy, and what is postulated by the understanding ; they are things, persons, causes, according to the varying disposition of the poets ; and if we call them gods or goddesses, we must remember the remark of an ancient native theologian, who reminds us that by devata or deity he means no more than the object celebrated in a hymn, while Rishi or seer means no more than the subject or the author of a hymn.

17. It is difficult to treat of the so-called gods celebrated in the Veda according to any system, for the simple reason that the concepts of these gods and the hymns addressed to them sprang up

यास्क के इस कथन को ध्यान में रखना होगा कि कवि या ऋषि अपनी कविता या मन्त्र या ऋचा में जिस किसी वस्तु या विषय का प्रतिपादन करना चाहता है, बस वही मन्त्र का देवता है, इससे अधिक या भिन्न और कुछ नहीं।

17. वेदों के इन देवताओं को किसी विशेष व्यवस्था के आधार पर वर्गीकृत कर देना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि किसी सूक्त-विशेष में प्रतिपादित देवता-विशेष के वर्णन की ऋषि के मन में कोई पूर्वनिश्चित योजना तो होती नहीं, वे देवता और उनकी स्तुति के मन्त्र तो वे ही हैं, जिनकी ऋषि ने कामना की। पाँचवीं सदी ई०पू० के समझने के लिए यह अच्छा होगा कि हम ईसा-पूर्व चौथी (वस्तुतः सातवीं) के प्राचीन ब्राह्मण लेखक (निरुक्त-कार आचार्य यास्क) का अनुसरण करें। यास्क का कथन है कि उसके समय से पूर्व केवल तीन ही देवता वेदों में चर्चित थे और वे तीन हैं—(i) अग्नि, (ii) वायु या इन्द्र, और (iii) सूर्य। इनमें से प्रथम अग्नि पृथिवी-स्थानीय है; द्वितीय वायु या इन्द्र अन्तरिक्ष-स्थानीय, इसे ही पर्जन्य देवता भी कह सकते हैं; और तीसरे हैं—द्युलोक के देवता सूर्य। आगे निरुक्तकार ने यह भी स्पष्ट शब्दों में बता दिया है कि जैसे एक ही यज्ञकर्ता ऋत्विक् या पुरोहित यज्ञ करते समय अपने विभिन्न कार्यों के अनुसार कभी होता, कभी उद्गाता, और कभी अध्वर्यु आदि नाना रूपों और नामों से अभिहित होता है, ठीक वैसे ही ये तीनों ही देवता महाभाग्य होने के कारण अथवा जब-जब, जो-जो करते हैं, अपने तत्तद् कार्यों के अनुसार नाना-रूपों से अभिहित होते हैं।

18. वैदिक देवताओं के बारे में चिन्तन-प्रक्रिया का यह एक प्रकार है। यद्यपि यह कुछ संकुचित सी लगती है, तथापि इसमें पर्याप्त तथ्य है। वैदिक देवताओं का एक-दूसरे ढंग से भी अत्यन्त उपयोगी विभाजन किया जा सकता था और यास्क ने वह किया भी है। यास्क ने देवताओं को इन तीन वर्गों में भी विभक्त किया है—(i) **पृथिवी-स्थानीय** (ii) **अन्तरिक्ष-स्थानीय और** (iii) **द्यु-स्थानीय**। यदि उस प्राचीन हिन्दू दैवतविज्ञानी ने यह अभिमत व्यक्त किया कि सम्पूर्ण प्राकृतिक शक्तियों या देवताओं की अभिव्यक्ति के प्रमुख केन्द्र तीन ही हैं—(क) पृथिवी, (ख) वायु या अन्तरिक्ष और (ग) द्यु-लोक, तो हमें उसका आभारी होना चाहिए, जिसने देवत्ववाद को इतनी स्पष्टता से समझा दिया।

19. किन्तु यास्क यह भी जानते हैं कि इन तीन वर्गों में सभी देवताओं का समावेश नहीं हो सकता। इसीलिए वे आगे कहते हैं कि ये पृथक्-पृथक् देवता भी हो सकते हैं, क्योंकि मन्त्रों में इनकी पृथक्-पृथक् स्तुतियाँ हैं और नाम भी हैं। यह बिलकुल सही है। और यह भी कि देवताओं के ये नाम भले ही भिन्न-भिन्न हों, किन्तु जिसके ये नाम हैं, वह एक ही है। किन्तु अधिकांश वैदिक ऋषियों की चिन्तनधारा सम्भवतः ऐसी नहीं रही होगी और यज्ञोत्सव आदि के अवसरों पर इन मन्त्रों को सुनने वाले लोगों की तो और भी कम। वेदों के उस युग के धार्मिक चिन्तन की विशेषता यह लगती है कि एक ही देव के अनेक रूप हैं और कई देवता एक ही कार्य करते है, तथापि उन्हें किसी एक वर्ग-विशेष या समुदायविशेष में बाँध लेने का कभी कोई प्रयत्न नहीं किया गया। जिससे देवता एक-दूसरे से पृथक् हो जायें और उनमें उच्चावच-भाव भी सुनिश्चित नहीं हो

spontaneously and without any pre-established plan. It is best perhaps for our purpose to follow an ancient Brahmanical writer, who is supposed to have lived about 400 B.C. He tells us of students of the Veda, before his time, who admitted three deities only, viz. Agni or fire, whose place is on the earth ; Vayu, the wind, or Indra, the god of the thunderstorm, whose place is in the air ; and Surya, the sun, whose place is in the sky. These deities, they maintained, received severally many appellations, in consequence of their greatness, or of the diversity of their functions; just as a priest, according to the functions which he performs at various sacrifices, receives various names.

18. This is *one* view of the Vedic gods, and, though too narrow, it cannot be denied that there is some truth in it. A very useful division of the Vedic gods might be made, and has been made by Yaska, into *terrestrial*, *aerial*, and *celestial*, and if the old Hindu theologian meant no more than that all the manifestations of divine power in nature might be traced back to three centres of force, one in the sky, one in the air, and one on the earth, he deserves great credit for his sagacity.

19. But he himself perceived evidently that this generations was not quite applicable to all the gods, and he goes on to say, 'Or it may be, these gods are all distinct beings, for the praises addressed to them are distinct, and their appellations also.' This is quite right. It is the very object of most of these divine names to impart distinct individuality to the manifestations of the powers of nature ; and though the philosopher or the inspired poet might perceive that these numerous names were but names, while that which was named was *one* and *one* only, this was certainly not the idea of most of the Vedic Rishis themselves, still less of the people who listened to their songs at fairs and festivals. It is the peculiar character of the phase of religious thought which we have to study in the Veda, that in it the Divine is conceived and represented as manifold, and that many functions are shared in common by various gods, no attempt having yet been made at organising the whole body of the gods, sharply separating one from the other, and subordinating all of them to several or, in the end, to one supreme head.

20. Availing ourselves of the division of the Vedic gods into terrestrial, aerial, and celestial, as proposed by some of the earliest Indian theologians, we should have to begin with the gods connected with the earth.

21. Before we examine them, however, we have first to consi-

पाया। उनमें से किसी को बड़ा या छोटा भी कैसे कहा जा सकता था। अन्त में उनमें से किसी एक को सर्वोच्च देवाधिदेव भी नहीं ठहराया गया।

20. भारत के दैव-विज्ञान के प्राथमिक आचार्यों का अनुसरण करते हुए हमें वैदिक देवताओं को (i) पृथिवी-स्थानीय, (ii) अन्तरिक्ष-स्थानीय और (iii) द्यु-लोक के देवता, त्रिविधि मानकर पृथिवी-स्थानीय देवताओं के विवेचन से ही आरम्भ करना चाहिए।

21. इससे पूर्व कि हम पृथिवी-स्थानीय देवताओं की परीक्षा करें, पहले उस तत्त्व के बारे में विचार कर लें, जिसकी स्तुति और उपासना सर्वत्र आद्य तत्त्व के रूप में की गई है और वह है—पृथिवी और द्यौ या द्यौ और पृथिवी। केवल भारत में ही क्यों, अन्य अनेक जातियों में भी, चाहे वे सभ्य हों या असभ्य अथवा अर्द्ध-सभ्य, पृथिवी और द्यौ का दम्पती या जोड़े, या सब प्राणियों के माता-पिता के रूप में वर्णन मिलता है। विश्व के प्रायः सभी देशों के प्रारम्भिकतम कवियों, दार्शनिकों और चिन्तकों ने पृथिवी और आकाश के इस जोड़े का माता-पिता या दम्पती के रूप में अथवा प्राकृतिक जोड़े आदि नानाविध नाम-रूपों में स्तुति, प्रार्थना और उपासना की है। उस आदिमतम युग के चिन्तक मनीषियों ने पहले पृथिवी के स्वतन्त्र अस्तित्व और व्यक्तित्त्व को समझ लिया और उसके साथ ही इस आकाश, अन्तरिक्ष या द्यौ की पृथक् सत्ता भी जान ली। यह कुछ आश्चर्य की-सी बात लगती है कि अग्नि, सूर्य, विद्युत और पर्जन्य की दिव्य शक्तियों को जान लेने के बाद भी पृथ्वी की पृथक् सत्ता और द्यौ की स्वतन्त्र सत्ता को तथा उसके बाद इन दोनों को सारे विश्व के आलिंगन में लिए हुए एक दिव्य दम्पती के रूप में देखने में ऐसे 'मनन' 'निंदध्यासन' के प्रयत्न की आवश्यकता हो।

22. तथापि वास्तविकता यही है। और क्योंकि इससे हमें पृथ्वी और द्यौ के सम्बन्ध में वेदों में उपलब्ध विचारों को समझने में सहायता मिलेगी और लगे हाथ इससे आर्यों के तथा जंगली जातियों के दैवत विज्ञान में जो बड़ा अन्तर है, उसे भी समझा जा सकेगा (यह अन्तर या विरोध बहुत महत्त्व का है यद्यपि उसे ठीक से समझाना बड़ा कठिन है)। मैं आपके समक्ष पहले अपने एक मित्र रेवरेण्ड विलियम येट् गिले की एक पुस्तक के कुछ अंश प्रस्तुत करना चाहूँगा। मेरे ये मित्र पोलीनेशियन द्वीपसमूहों में से अन्यतम मेनजिया में वर्षों तक एक सक्रिय एवं सफल मिशनरी के रूप में कार्य कर चुके हैं। स्मरण रहे कि ये पोलीनेशियन द्वीपसमूह इस सम्पूर्ण भूमण्डल के चतुर्थांश वृत्त को घेरे हुए हैं। इतने विस्तृत क्षेत्र में तथा इतनी दूर-दूर तक फैले हुए होने पर भी इन समग्र पोलीनेशियन द्वीपसमूहों में एक-सी भाषा बोली जाती है, एक ही धर्म प्रचलित है और एक ही प्रकार के देवताओं की पूजा होती है, साथ ही इन सब द्वीपवासियों के रीति-रिवाज और परम्पराएँ भी लगभग समान ही हैं। इस पुस्तक का नाम 'दक्षिण प्रशान्त महासागर के निवासियों के धर्म और गीत' है। यह पुस्तक धर्म तथा दैवतत्व के जिज्ञासुओं के लिए जितनी रोचक है, उतनी ही उपादेय भी।

23. मेनजिया के किसी निवासी ने मेरे उन मित्र को यह कहानी सुनाई थी—

24. यह आकाश कठोर नीले पत्थरों से बना हुआ है। आरम्भ में यह धरती के

der one of the earliest objects of worship and adoration, namely *Earth and Heaven*, or *Heaven and Earth*, conceived as a devine couple. Not only in India, but among many other nations, both savage, half-savage, or civilized, we meet with Heaven and Earth as one of the earliest objects, pondered on, transfigured, and animated by the early poets, and more or less clearly conceived by early philosophers. It is surprising that it should be so, for the conception of the Earth as an independent being, and of Heaven as an independent being, and then of both together as a divine couple embracing the whole universe, requires a considerable effort of abstraction, far more than the concepts of their divine powers, such as the Fire, the Rain, the Lightning, or the Sun.

22. Still so it is, and as it may help us to understand the ideas about Heaven and Earth, as we find them in the Veda, and show us at the same time the strong contrast between the mythology of the Aryans and that of real savages (a contrast of great importance, though I admit very difficult to explain), I shall read you first some extracts from a book, published by a friend of mine, the Rev. William Wyatt Gill, for many years an active and most successful missionary in Mangaia, one of those Polynesian islands that form a girdle round one quarter of our globe, and all share in the same language, the same religion, the same mythology, and the same customs. The book is called *Myths and Songs from the South Pacific*, and it is full of interest to the students of mythology and relegion.

23. The story, as told him by the natives of Mangaia, runs as follows :

24. 'The sky is built of solid blue stone. At one time it almost touched the earth ; resting upon the stout broad leaves of the teve (which attains the height of about six feet) and the delicate indigenous arrow-root (whose slender stem rarely exceeds three feet) .... In this narrow space between earth and sky the inhabitants of this world were pent up. Ru, whose usual residence was in Avaiki, or the shades, had come up for a time to this world of ours. Pitying the wretched confined residence of the inhabitants, he employed himself in endeavouring to raise the sky a little. For this purpose he cut a number of strong stakes of different kinds of trees, and firmly planted them in the ground at Rangimotia, the centre of the island, and with him the centre of the world. This was a considerable improvement, as mortals were thereby enabled to stand erect and to walk about without inconvenience. Hense Ru was named "The sky-supporter." Wherefore Teka sings (1794) :

इतना निकट था कि वह इसे लगभग छूता-सा प्रतीत होता था। यह आकाश टीव नामक एक छः फुट ऊँचे वृक्ष के अत्यन्त दृढ़ एवं फैले हुए चौड़े पत्तों के सहारे टिका था। इसके तीन फुट के लगभग ऊँचाई वाले इषु या सरकंडे भी इसे थामने में सहायता देते थे। धरती और आकाश की इस बहुत कम ऊँचाई के कारण यहाँ रहनेवाले लोगों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता था। अवैकी या छाया नामक किसी अन्य लोक का एक 'रू' नामक निवासी घूमता-घामता इस लोक में आ पहुँचा। उसने यहाँ के लोगों की (इतने कम ऊँचे स्थान के नीचे रहने के कारण होनेवाली) दुर्दशा देखी तो उसे दया आ गई और उसने आकाश को कुछ ऊँचा उठा देने का बीड़ा उठा लिया। उसने कुछ मजबूत वृक्षों के तने काटे और उन्हें इन द्वीपसमूहों के मध्यवर्ती रंगी मोतिया नामक स्थान पर गाड़कर उनके सहारे आकाश को कुछ उठा दिया। सारी धरती का केन्द्र भी यही स्थान था। इससे धरती के लोगों को सीध खड़े होने और बिना किसी असुविधा के चलने-फिरने में सहायता मिली। इसलिए यहाँ के अनेक लोकगीतों में 'रू' को आकाश को थामनेवाला बताया जाता है।

25. वह पुरातन पुरुष एक दिन अपने काम की देखभाल रहा कर था कि उसके कृतघ्न पुत्र माऊ ने तिरस्कारपूर्वक उससे पूछा—"रे बुड्ढे ! क्या कर रहा है ?"

"तुझे मुझसे यह पूछने का हक किसने दिया ?" रू ने उत्तर में कहा, "जानता नहीं मैं तुझे बात-की-बात में हवा में उड़ाकर फेंक सकता हूँ ? ले संभल !"

"बुड्ढे जो करना है सो कर ले।" माऊ चिल्लाया।

26. 'रू' अपने मन-वचन-कर्म में एक-सा था, इसलिए उसने तत्काल माऊ को पकड़ा और उसको जोर से आसमान में उछालकर फेंक दिया। आकाश से नीचे गिरते हुए माऊ ने पक्षी का रूप धारण कर लिया और इस प्रकार वह बिना चोट खाये धरती के साथ आ लगा। अब माऊ के मन में अपने बाप से बदला लेने की भावना भड़क उठी। वह फिर अपने वास्तविक रूप में आ गया। देखते-ही-देखते वह विकराल रूप धारण कर अपने बाप के सामने आ पहुँचा और बोला—"ओ रू, तू समझता है कि इस आकाश को तूने थाम रखा है ? मैं तुझे उठाकर आकाश में इतने ऊँचे उछाल फेंकूँगा कि तू वहाँ से कभी लौट नहीं पाएगा।"

यह कहते-कहते सचमुच उसने उस वृद्ध पुरुष की टाँगों के बीच में अपना सिर देकर उसे उठा लिया और आकाश में इतनी जोर से उसे उछाल फेंका कि सचमुच वह वहाँ से फिर कभी धरती पर नहीं लौट पाया। दुर्भाग्य से जो 'रू' अब तक आकाश को थामे हुए था, वही जब आकाश में पहुँच गया तो वहाँ उसके हाथ-पाँव आदि तारों में उलझकर रह गए। उसने तारों में उलझे अपने हाथ-पाँव आदि अंगों को छुड़ाने की भरसक चेष्टा की, किन्तु बेचारा अपने-आपको छुड़ा नहीं पाया। इधर अब माऊ धरती पर बड़ी अकड़ के साथ घूमने-फिरने लगा। उसने घमण्ड में आकर इस आकाश को वर्तमान ऊँचाई तक ऊँचा उठा दिया, किन्तु उस दुष्ट ने अपने पिता के शरीर और दोनों टाँगों को आकाश और धरती के बीच वैसे ही लटकता छोड़ दिया। इस प्रकार बेचारा 'रू' मर-खप गया। उसका शरीर तो लुप्त हो गया, किन्तु उसकी हड्डियाँ आकाश से धरती पर गिरती रहीं

"Force up the sky, O Ru,
And let the space be clear !"

25. 'One day when the old man was surveying his work, his graceless son Maui contemptuously asked him what he was doing there. Ru replied, "Who told youngsters to talk ? Take care of yourself, or I will hurl you out of existence."

"Do it, then," shouted Maui.

26. 'Ru was as good as his word, and forthwith seized Maui, who was small of stature, and threw him to a great height. In falling Maui assumed the form of a bird, and lightly touched the ground, perfectly unharmed. Maui, now thirsting for revenge, in a moment resumed his natural form, but exaggerated to gigantic proportions, and ran to his father, saying :

"Ru, who supportest the many heavens,
The third, even to the highest, ascend !"

Inserting his head between the old man's legs, he exerted all his prodigious strength, and hurled poor Ru, sky and all, to a tremendous height,—so high, indeed, that the blue sky could never get back again. Unluckily, however, for the sky-supporting Ru, his head and shoulders got entangled among the stars. He struggled hard, but fruitlessly, to extricate himself. Maui walked off well pleased with having raised the sky to its present height, but left half his father's body and both his legs ingloriously suspended between heaven and earth. Thus perished Ru. His body rotted away, and his bones came tumbling down from time to time, and were shivered on the earth into countless fragments. These shivered bones of Ru are scattered over every hill and valley of Mangaia, to the very edge of the sea.'

27. What the natives call 'the bones of Ru' are pieces of pumice-stone.

28. Now let us consider, first of all, whether this story, which with slight variations is told all over the Polynesian islands, is pure non-sense, or whether there was originally some sense in it. My conviction is that non-sense is everywhere the child of sense, only that unfortunately many children, like that youngster Maui, consider themselves much wiser than their fathers, and occasionally succeed in hurling them out of existence.

29. It is a peculiarity of many of the ancient myths that they represent events, which happen every day, or every year, as having happened once upon a time. The daily battle between day and night,

और सैकड़ों छोटे-मोटे टुकड़ों के रूप में वे आज भी यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं। विशेष रूप से (मैंगिया) द्वीप के प्रत्येक समुद्र-तट तथा पर्वतों और उपत्यकाओं आदि में 'रू' की ये हड्डियाँ आज भी दिखाई पड़ती हैं।

27. स्थानीय निवासी जिन्हें 'रू' की हड्डियाँ बताते हैं, वे वास्तव में लावा से बने छिद्रमय पत्थर हैं।

28. आइये, अब जरा विचार करें कि क्या यह एकदम अज्ञता की परिचायक एक कहानी है, अथवा इसके पीछे कोई समझदारी या सूझ-बूझ की भावना भी निहित है? स्मरण रहे कि यह कथा पोलोनेशिया के सभी द्वीपों में एक या दूसरे रूप में प्रचलित है। मेरी मान्यता है कि बाहर से दिखनेवाली अज्ञता या बे-समझी वस्तुतः किसी विवेक या सूझ-बूझ या ज्ञान की ही सन्तान होती है। समझने की बात केवल इतनी-सी है कि माऊ की भाँति अनेक नवजात सन्तानें दुर्भाग्य से अपने-आपको उत्पादकों से भी अधिक समझदार मानने लगती हैं और कभी-कभी तो वे उन्हें स्थान भ्रष्ट भी कर देती हैं या उनका अस्तित्व ही मिटा देती हैं।

29. पौराणिक उपाख्यानों की यह भी एक विशेषता है कि प्रतिदिन या प्रतिवर्ष नियमित रूप से घटनेवाली घटनाओं को भी उनमें 'एक बार की बात है' आदि से आरम्भ होनेवाली कहानी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। दिन और रात का दैनिक द्वन्द युद्ध और इसी प्रकार शिशिर और वसन्त के मध्य घटित होनेवाला वार्षिक संघर्ष भी इन पौराणिक उपाख्यानों में ऐतिहासिक युद्धों की भाँति प्रस्तुत किया जाता है। इनसे ऐसा लगता है कि नियमित रूप से घटित होनेवाली इन प्राकृतिक संघर्षों की घटनाएँ मानो वास्तव में कभी किसी स्थान-विशेष में घटित युद्ध आदि हों, जैसे यूनानी दन्तकथाओं में प्रसिद्ध ट्रॉय के घेरे का उपाख्यान। इसके विपरीत प्राचीन उपाख्यानों से जो विवरण प्राप्त होते हैं, उनकी ऐतिहासिक परम्परा की कड़ी जब आज्ञानान्धकार में लुप्त होने लगती है, तो उन प्राचीन युद्धों को रात्रि और प्रभात तथा शिशिर और हेमन्त के द्वन्द्व जैसी प्राकृतिक घटनाओं के रूप में चित्रित कर देने में बड़ी सुविधा रहती है। हम बचपन से ही ऐसी कई रोचक कहानियाँ सुनते रहते हैं, जिनमें किसी पुरातनकाल के किसी वीर नायक के साहसिक कार्यों और शत्रु पर अपने पराक्रम के द्वारा विजय प्राप्त करने का अलौकिक वर्णन रहता है। मूलरूप से वे कहानियाँ रात्रि के घनांधकार रूपी निशाचर-समूह को अपने तेज और पराक्रम से छिन्न-भिन्न कर डालनेवाले महातेजस्वी सूर्य के लिए कही गई होती हैं। वे ही कहानियाँ आगे चलकर 'जुपिटर' या 'मार्स' 'हरकुलिस' जैसे महापराक्रमी योद्धाओं के साथ जुड़ जाया करती हैं।

30. मेरा विश्वास है कि यत्र-तत्र-सर्वत्र प्रचलित जल-प्लावन सम्बन्धी उपाख्यान वस्तुतः स्थानीय भाटों द्वारा वर्णित अपने-अपने क्षेत्र में प्रतिवर्ष अथवा यदा-कदा आने वाली भीषणतम बाढ़ों के ही अत्युक्तिपूर्ण चित्रण हैं। इसी प्रकार धरती और आकाशरूपी दम्पती का एक-दूसरे से बिछुड़कर आँसू बहाना भी ओस की बूंदों से धरती के प्रतिदिन सिक्त हो जाने के सिवा और कुछ नहीं। अँधेरी रात में ऐसा लगता है कि आकाश मानो

the yearly battle between winter and spring, are represented almost like historical events, and some of the episodes and touches belonging originally to these constant battles of nature, have certainly been transferred into and mixed up with battles that took place at a certain time, such as, for instance, the siege of Troy. When historical recollections failed, legendary accounts of the ancient battles between Night and Morning, Winter and Spring, were always at hand ; and, as in modern times we constantly hear 'good stories', which we have known from our childhood, told again and again of any man whom they seem to fit, in the same manner, in ancient times, any act of powers, or daring, or mischief, originally told of the sun, the 'orient Conqueror of gloomy Night', was readily transferred to and believed of any local hero who might seem to be a second Jupiter, or Mars, or Hercules.

30. I have little doubt therefore that as the accounts of a deluge, for instance, which we find almost everywhere, are originally recollections of the annual torrents of rain or snow that covered the little worlds within the ken of the ancient village-bards, this tearing asunder of heaven and earth too was originally no more than a description of what might be seen every morning. During a dark night the sky seemed to cover the earth ; the two seemed to be one, and could not be distinguished one from the other Then came the Dawn, which with its bright rays lifted the covering of the dark night to a certain point, till at last Maui appeared, small in stature, a more child, that is, the sun of the morning—thrown up suddenly, as it were when his first rays shot through the sky from beneath the horizon, then falling back to the earth, like a bird, and rising in gigantic form on the morning sky. The dawn now was hurled away, and the sky was seen lifted high above the earth ; and Maui, the sun, marched on well pleased with having raised the sky to its present height.

31. Why pumice-stone should be called the bones of Ru, we cannot tell, without knowing a great deal more of the language of Mangaia than we do at present. It is most likely an independent saying, and was afterwards united with the story of Ru and Maui.

32. Now I must quote at least a few extracts from a Maori legend as written down by Judge Manning :

"This is the Genesis of the New Zealanders :

'The Heavens which are above us, and the Earth which lies beneath us, are the progenitors of men, and the origin of all things.

'Formerly the Heaven lay upon the Earth, and all was darkness...........

धरती से लिपट गया है। उस घनांधकार में पृथिवी और आकाश की अलग-अलग पहचान भी तो नहीं हो पाती। उसके पश्चात् आती है उषा। वह अपनी किरणों से रात्रि के अन्धकार के आच्छादन को कुछ दूर हटाने का प्रयत्न करती है और तब प्रकट होता है— एक छोटा-सा दुर्बल शिशु, यह है प्रातःकालीन सूर्य। क्षितिज से उगता हुआ सूर्य और उसकी प्रथम किरणें धरती पर सचमुच उड़कर आते हुए पक्षी के समान प्रतीत होती हैं। इसके पश्चात् प्रकट होता है प्रातःकालीन आकाश में क्रमशः परिवर्धमान सूर्य का विशाल एवं विकराल रूप। अब बेचारी उषा का कहीं नाम भी दिखाई नहीं देता और धरती पर आकाश अपनी पूरी ऊँचाई के साथ दिखाई देने लगता है। तब सूर्यरूपी माऊ इस खुशी में भरकर कि मैंने आकाश को विश्व के समक्ष उसके परिपूर्ण उच्च रूप में व्यक्त कर दिखाया आनन्द-विभोर होकर ठुमकते हुए इधर-से-उधर घूमने लगता है।

31. लावा के छिद्रमय पाषाणों या चट्टानों को 'रू' की हड्डियाँ क्यों बताया गया है, इसका कारण कुछ समझ में नहीं आता। हो सकता है मेनगिया लोगों की भाषा का सम्यक् अध्ययन हो जाने पर इस समस्या का कुछ समाधान निकल आए। ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भ में यह किसी अन्य उपाख्यान या रूपक से सम्बद्ध घटना रही हो, जो बाद में 'रू' के साथ जुड़ गई।

32. अब मैं आपके समक्ष माओरी लोगों में प्रचलित एक दन्त-कथा प्रस्तुत करना चाहूँगा, न्यायाधीश श्री मैनिन्ज ने यह दन्त-कथा प्रकाशित करवाई थी।

यह न्यूजीलैण्ड के निवासियों के पुरखों अथवा वंश-परम्परा की उत्पत्ति का इतिहास है। उपाख्यान इस प्रकार है—

यह आकाश जो हम सबके ऊपर है, तथा यह धरती जो हमारे नीचे विद्यमान है, सम्पूर्ण मानव जाति तथा दूसरे सभी प्रकार के पदार्थों के भी जनक हैं।

पहले आकाश धरती पर एकदम झुका हुआ था और सब-कुछ तमसावृत था।

आकाश और धरती के बेटों ने चाहा कि प्रकाश और अन्धकार तथा दिन और रात में अन्तर कर दिया जाए। वे इसी प्रयत्न में जुट गए कि आओ हम सब मिलकर इन दोनों को अलग-अलग कर ही डालें।

तब रांगी (आकाश) और पप्पा (पृथिवी) के पुत्रों ने आपस में मिलकर विचार किया और कहा कि हम कोई ऐसा उपाय ढूँढ निकालें जिससे या तो इन धरती और आकाश को नष्ट कर दिया जाए अथवा इन दोनों को एक-दूसरे से अलग-अलग कर डालें।

युद्ध का देवता 'तमतऊऐंगा' बोला, 'ठीक है, हम इन दोनों का नष्ट कर डालें।

वन-देवता तनेमहूता कहने लगा, 'नहीं, यह ठीक नहीं। हमें धरती और आकाश इन दोनों को अलग-अलग कर देना चाहिए। इन दोनों में से एक (आकाश) को ऊपर उठने दिया जाए, ताकि उसकी हम तक पहुँच ही न हो सके। और, दूसरी (धरती) को अपने नीचे बना रहने दिया जाए, ताकि यह हमारी उत्पादक, पालक और संरक्षक बनी रहे।

'And the children of Heaven and Earth sought to discover the difference between light and darkness, between day and night.........

'So the sons of Rangi (Heaven) and of Papa (Earth) consulted together, and said : "Let us seek means whereby to destroy Heaven and Earth, or to separate them from each other."

'Then said Tumatauenga (the God of War), "Let us destory them both."

"Then said Tane-Mahuta (the Forest God), "Not so ; let them be separated. Let one of them go upwards and become a stranger to us ; let the other remain below and be a parent for us."

33. 'Then four of the gods tried to separate Heaven and Earth, but did not succeed, while the fifth, Tane, succeeded.

34. 'After Heaven and Earth had been separated, great stroms arose, or, as the poet expresses it, one of their sons, Tawhiri-Matea, the god of the winds, tried to revenge the outrage committed on his parents by his brothers. Then follow dismal dusky days, and dripping chilly skies, and arid scorching blasts. All the gods fight, till at last Tu only remains, the god of war, who had devoured all his brothers, except the Starm. More fights follow, in which the greater part of the earth was overwhelmed by the waters, and but a small portion remained dry. After that, light continued to increase, and as the light increased, so also the people who had been hidden between Heaven and Earth increased...........And so generation was added to generation down to the time of Maui-Potiki, he who brought death into the world.

35. 'Now in these latter days Heaven remains far removed from his wife, the Earth ; but the love of the wife rises upward in sighs towards her husband. These are the mists which fly upwards from the mountain-tops ; and the tears of Heaven fall downwards on his wife ; behold the dewdrops !'

So far the Maori Genesis.

36. Let us now return to the Veda, and compare these crude and somewhat grotesque legends with the language of the ancient Aryan poets. In the hymns of the Rig-veda the separating and keeping apart of Heaven and Earth is several times alluded to, and here too it is represented as the work of the most valiant gods. In i. 67, 3 it is Agni, fire, who holds the earth and supports the heaven ; in x. 89, 4 it is Indra who keeps them apart ; in ix. 101, 15 Soma is celebrated for the same deed, and in iii, 31, 12 other gods to share the same honour.

37. In the Aitareya Brahmana we read : 'These two worlds

33-35. इसके बाद उनमें से चार देवताओं ने धरती और आकाश को अलग-अलग कर देने की भरसक चेष्टा की, पर वे उन्हें अलग नहीं कर पाए। तब पाचवाँ देवता तेन उठा और उसने इन्हें अलग-अलग कर दिया।

इस प्रकार धरती और आकाश के पृथक्-पृथक् हो जाने पश्चात् भयंकर झंझावात या तूफ़ान चलने लगा। कवि का कथन है कि उनके पुत्रों में से अन्यतम तवीरी-मतिया नामक वायु-देवता को अपने भाइयों के द्वारा, अपने माता-पिता धरती और आकाश को इस प्रकार अलग-अलग कर दिए जाने पर बहुत क्रोध आया। उसने अपने इन भाइयों से बदला लेने के लिए झंझावात या तूफान चला दिया। उसने ऐसा संघर्षमय अन्धड़ उठाया कि चारों ओर धूल-धक्कड़ तथा अन्धकार और आँधियों से भरा प्रलय दृश्य उपस्थित हो गया। इस संघर्ष युद्ध में देवता 'तू' के सिवा दूसरे सब देवता मर-खप गए। धरती का अधिकांश भाग जल-मग्न हो गया। पृथिवी का थोड़ा-सा अंश ही पानी से बाहर सूखा बचा रह गया। इसके पश्चात् धीर-धीरे प्रकाश बढ़ने लगा। ज्यों-ज्यों प्रकाश बढ़ता जा रहा था, त्यों-त्यों धरती और आकाश के मध्य छिपे हुए लोगों की संख्या भी बढ़ने लगी। ...इस प्रकार लोगों की जनसंख्या पीढ़ी-दर-पीढ़ी तब तक बढ़ती ही गई जब तक कि मृत्यु-देवता मोई पोतिकी इस धराधाम पर मृत्यु को नहीं ले आया। अब बेचारा आकाश अपनी पत्नी पृथिवी से दूर जा पड़ा, किन्तु पत्नी आज भी अपने बिछड़े हुए पति आकाश के विरह में नित्य उसाँसें भरती रहती है और उधर आकाश भी अपनी प्रेयसी के वियोग में नित्य आँसू बहाता रहता है। उसके ये आँसू ही ओसकणों के रूप में धरती पर बिखरे दिखाई देते हैं।

यह है माउरी लोगों की आनुवंशिकी का उपाख्यान।

36. आइए, अब हम फिर से वेदों की ओर लौट चलें और इन अनगढ़ तथा किसी अंश से अज्ञतापूर्ण उपाख्यानों की तुलना प्राचीन आर्यकवियों (ऋषियों) की भाषा के साथ करने का प्रयत्न करें। ऋग्वेद के सूक्तों में भी पृथिवी और आकाश को पृथक्-पृथक् करने का अनेकत्र उल्लेख हुआ है। यहाँ भी इस कार्य के लिए कई बड़े-बड़े देवताओं के नाम लिए गए हैं। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के सड़सठवें सूक्त की तीसरी ऋचा में कहा गया है कि यह अग्नि ही है जिसने इस पृथिवी को धारण किया हुआ है और अग्नि ने ही अन्तरिक्ष तथा द्युलोक को भी अपने ऊपर उठाया हुआ है।

इसी प्रकार दसवें मण्डल के नवासीवें सूक्त के चौथी ऋचा में कहा गया है कि इन्द्र ने इस पृथिवी और द्यु-लोक को धारण किया हुआ है।

इसी प्रकार नवें मण्डल के एक-सौ-एक सूक्त की पन्द्रहवीं ऋचा में सोम के लिए कहा गया है कि उसने पृथिवी और आकाश को धारण किया हुआ है।

तृतीय मण्डल के इकतीसवें सूक्त की बारहवीं ऋचा में अनेक आंगीरसगणों को पृथिवी और आकाश का धारक बताया गया है।

37. ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि—'यह पृथिवी और आकाश पहले मिले हुए थे। बाद में कुछ समय तक ये दोनों एक-दूसरे से बहुत दूर अलग-अलग रहने लगे।

(Heaven and Earth) were once joined together. They went asunder. Then it did not rain, nor did the sun shine. And the five tribes did not agree with one another. The gods then brought the two (Heaven and Earth) together, and when they came together, they performed a wedding of the gods.'

38. Here we have in a shorter form the same fundamental ideas; first that formerly Heaven and Earth were together; that afterwards they were separated; that when they were thus separated there was war throughout nature, and neither rain nor sunshine; that, lastly, Heaven and Earth were conciliated, and that then a great wedding took place.

39. Now I need hardly remind those who are acquainted with Greek and Roman literature, how familiar these and similar conceptions about a marriage between Heaven and Earth were in Greece and Italy. They seem to possess there a more special reference to the annual reconciliation between Heaven and Earth, which takes place in spring, and to their former estrangement during winter. But the first cosmological separation of the two always points to the want of light and the impossibility of distinction during the night, and the gradual lifting up of the blue sky through the rising of the sun.

40. In the Homeric hymns the Earth is addressed as

'Mother of gods, the wife of the starry Heaven';

and the Heaven or Ether is often called the father. Their marriage too is described, as, for instance, by Euripides, when he says:

'There is the mighty Earth, Jove's Ether:
He (the Ether) is the creator of men and gods;
The earth receiving the moist drops or rain,
Bears mortals,
Bears food, and the tribes of animals.
Hence she is not unjustly regarded
As the mother of all.'

41. And what is more curious still is that we have evidence that Euripides received this doctrine from his teacher, the philosopher Anaxagoras. For Dionysius of Halicarnassus tells us that Euripides frequented the lectures of Anaxagoras. Now, it was the theory of that philosopher that originally all things were in all things, but that afterwards they became separated. Euripides later in life associated with Socrates, and became doubtful regarding that theory. He

उन दिनों न तो धरती पर वर्षा ही होती थी और न इस पृथिवी के वासी पंचजन भी एक दूसरे से सहमत ही हो पाते थे। वे मिलकर कोई काम भी कभी नहीं करते थे। तब देवगण इन दोनों (पृथिवी और आकाश) को पास-पास ले आए। जब ये दोनों साथ-साथ आ गये तो उन्होंने इन दोनों के दिव्य-विवाह का आयोजन कर दिया।

38. ऐतरेय ब्राह्मण के इस उपाख्यान में भी हमें वही बात मिलती है कि आरम्भ में पृथिवी और आकाश एक-दूसरे से जुड़े हुए थे, किन्तु बाद में जब उन्हें एक-दूसरे से अलग किया गया तो प्रकृति में भयंकर उपद्रव होने लगे। न तो वर्षा ही होती थी, न धूप ही चमकती थी, अन्ततोगत्वा धरती और आकाश में समझौता हो गया और उन दोनों का दिव्य-विवाह सम्पन्न हुआ।

39. इस प्रसंग में यूनानी और रोमन साहित्य के ज्ञाताओं को यह याद दिलाने की कोई आवश्यकता नहीं कि यूनान और इटली के उपाख्यानों में भी धरती और आकाश के ऐसे ही दिव्य-विवाह के अनेक प्रसंग मिलते हैं। वहाँ प्रचलित ऐसे प्रसंगों में एक विशेष बात यह दिखाई देती है कि यूनान और रोम के निवासी केवल धरती और आकाश के विवाह की बात ही नहीं करते, अपितु आज भी वहाँ उनके विवाह की वर्षगाँठ प्रतिवर्ष मनाई जाती है। यह विवाहोत्सव वसन्त ऋतु में आयोजित होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सूर्य के दक्षिणायन में चले जाने पर उत्तरी यूरोपवासियों को जब लम्बी, घनी अँधेरी रात्रियों का सामना करना पड़ता है तो ऐसा लगता है मानो धरती और आकाश की पृथक् सत्ता ही समाप्त हो गई। उसके पश्चात् वसन्त ऋतु में जब फिर से सूर्य चमकने लगता है और धरती का रंग-रूप निखर आता है तो प्रतीत होता है मानो धरती और आकाश का पुनः दिव्य विवाह-मिलन सम्पन्न हो रहा है।

40. होमर के काव्य में भी पृथिवी को देवताओं की माता तथा आकाश की दिव्य पत्नी बताया गया है। और, आकाश या ईथर को वहाँ प्रायः पिता के नाम से सम्बोधित किया गया है। पृथिवी और आकाश के विवाह के वर्णन भी अनेकत्र मिलते हैं। यूरेपीडेस लिखता है—"ईथर (आकाश) की पत्नी यह धरती सब प्रकार से समर्थ है। वह (ईथर या आकाश) ही सब मानवों और देवगणों का उत्पादक है। यह धरती वर्षा की बूंदों और ओसकणों से तर होकर सब प्राणियों को अपने गर्भ में धारण करती है। यह धरती ही सब प्रकार के अन्न आदि भोज्य पदार्थ तथा समग्र मानव-जाति एवं पशु-पक्षी आदि को भी उत्पन्न करती है। इसलिए इस पृथिवी को सबकी माता या धरती माता ठीक ही कहा जाता है।"

41. यहाँ एक विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि 'यूरपीडेस' यह कोई नई बात नहीं कह रहा है। उसे पृथिवी और आकाश को दम्पती तथा धरती को माता मानने का यह सिद्धान्त अपने गुरु एनाक्सेगोरस नामक दार्शनिक से ज्ञात हुआ था। यह उसी दार्शनिक का विचार था कि 'सबमें सभी-कुछ समाया हुआ है। वस्तुओं या जीवों की यह पृथकता तो बाद में प्रकट हुई।' आगे चलकर यूरेपीडेस सुकरात के विचारों से प्रभावित हो गया और उसे अपने इस अद्वैत-सिद्धान्त में शंका होने लगी।

accordingly propounds the ancient doctrine by the mouth of another, namely Melanippe, who says :

42. 'This saying (myth) is not mine, but came from my mother, that formerly Heaven and Earth were one shape ; but when they were separated from each other, they gave birth and brought all things into the light, trees, birds, beasts, and the fishes whom the sea feeds, and the race of mortals.'

43. Thus we have met with the same idea of the orginal union, of a separation, and of a subsequent reunion of Heaven and Earth in Greece, in India, and in the Polynesian islands.

44. Let us now see how the poets of the Veda address thesei two beings, Heaven and Earth.

45. They are mostly addressed in the dual, as two beings forming but one concept. We meet, however, with verses which are addressed to the Earth by herself, and which speak of her as 'kind, without thorns, and pleasant to dwell on, while there are clear traces in some of the hymns that at one time Dyaus, the sky, was the supreme deity. When invoked together they are called Dyavaprithivyau, from dyu, the sky, and prithivi, the broad earth.

46. If we examine their epithets, we find 'that many of them reflect simply the physical aspects of Heaven and Earth. Thus they are called uru, wide, uruvyachas, widely expanded, dure-ante, with limits far apart, gabhira, deep, ghritavat, giving fat, madhudugha, yielding honey or dew, payasvat, full of milk, bhuri-retas, rich in seed.

47. Another class of epithets represents them already as endowed with certain human and superhuman qualities, such as asaschat, never tiring, ajara, not decaying, which brings us very near to immortal ; adruh, not injuring, or not deceiving, prachetas, provident, and then pita-mata, father and mother, devaputra; having the gods for their sons, ritavridh and ritavat, protectors of the Rita, of what is right, guardians of eternal laws.

48. Here you see what is so interesting in the Veda, the gradual advance from the material to the spiritual, from the sensuous to the supersensuous, from the human to the superhuman and the divine. Heaven and Earth were seen, and, according to our notions, they might simply be classed as visible and finite beings. But the ancient poets were more honest to themselves. They could see Heaven and Earth, but they never saw them in their entirety. They felt that there was something beyond the purely finite aspect of these beings, and therefore they thought of them, not as they would

42. मैलानीपे नामक एक अन्य दार्शनिक कहता है—यह रहस्य या तत्त्व कोई मेरा अपना नहीं है, प्रत्युत मुझे तो यह ज्ञान अपनी माता से प्राप्त हुआ है कि आरम्भ में पृथिवी और आकाश एकाकार थे। बाद में जब वे एक-दूसरे से पृथक् हो गए, तभी यह सृष्टि-चक्र चला और सम्पूर्ण जीव और पदार्थ प्रकट होने लगे। ये उद्भिज्ज (पेड़-पौधे या वृक्षलताएँ) अंडज (पक्षी), योनिज (द्विपाद एवं चतुष्पाद मानव एवं पशु आदि), जलज (मत्स्य, कूर्म आदि) तथा अन्य सभी प्रकार के मर्त्य प्राणी उत्पन्न होने लगे।

43. इस प्रकार हमने देखा कि आरम्भ में पृथिवी और आकाश के एकाकार होने, फिर उनके पृथक् होने, तदनन्तर उनके जोड़े के रूप में प्रकट होने की बात भारत, यूनान और पोलीनेशियन द्वीप-समूहों में समान रूप से कही गई है।

44. अब हमें यह देखना है कि वेदों में पृथिवी और द्यौ का किस रूप में वर्णन मिलता है।

45. सामान्यतया वेदों में पृथिवी और द्यौ की चर्चा द्विवचन में एक संयुक्त जोड़े के रूप में मिलती है, किन्तु हमें ऐसे भी मंत्र मिलते हैं जिनमें केवल पृथिवी को अत्यन्त दयालु और कंटकरहित सर्वाश्रयभूत जननी के रूप में चित्रित किया गया है। इसके विपरीत ऐसी ऋचाएँ भी मिलती हैं जिनमें द्यौः ही सर्वोच्च देवता है। जिन मंत्रों में पृथिवी और आकाश दोनों का एक साथ उल्लेख हुआ है, वहाँ उन्हें 'द्यावापृथिव्यौ' कहा गया है।

46. यदि हम संस्कृत के पृथिवी और आकाश के विशिष्टता द्योतक नामों पर विचार करें तो हमें ज्ञात होगा कि इन नामों से इन दोनों की भौतिक विशेषताएँ स्पष्टतः प्रकट होती हैं। जैसे कि धरती को वेद में उरु और लौकिक संस्कृत में उर्वी (खूब, फैली हुई, लम्बी-चौड़ी और विस्तृत है) कहा गया है। पृथिवी को कहीं 'उरुव्यचस' (खूब विस्तृत), कहीं गभीरा (बहुत गहरी), कहीं दुरे अन्ता (जिसका ओर-छोर बहुत दूर है), कहीं घृतवती (घृतादि स्निग्ध पदार्थ प्रदान करनेवाली), मधुधुग् (मधुर पदार्थों को दोहन या प्रदान करनेवाली या शहद देनेवाली), पयस्वती (दुग्ध से परिपूर्ण) और भूरिरेतस् (सब प्रकार के बीजों से भरी हुई) कहा गया है। द्यौः या आकाश के लिए भी यही विशेषण प्रयुक्त हुए हैं।

47. विशेषणों का एक ऐसा अन्य वर्ग भी मिलता है, जिनमें इन दोनों को कहीं किन्हीं विशिष्ट मानव-गुणों से युक्त बताया गया है तो कहीं उनमें अतिमानवीय या दिव्य गुणों का आरोप किया गया है, जैसे कि—असश्चत (कभी न थकनेवाले), अजर (कभी जीर्ण न होनेवाले) अद्रुह् (किसी से द्रोह न करनेवाले अथवा किसी को हानि न पहुँचानेवाले), प्रचेता (प्रकृष्ट ज्ञानवान् या सर्वज्ञ) और कहीं उन्हें पिता-माता भी कहा गया है। वे देवपुत्र ऋतावृध तथा ऋतवत् (ऋत अर्थात् प्रकृति के नियमों का ठीक से पालन या संचालन करनेवाले) भी कहे गए हैं।

48-49. यहाँ हम स्पष्टतया इस रोचक तथ्य से भली-भाँति परिचित हो जाते हैं कि वेदों में मंत्रद्रष्टा ऋषि किस प्रकार क्रमशः भौतिकता से आध्यात्मिकता, ऐन्द्रिक से अतीन्द्रियता की तथा मानवता से अतिमानवीयता अथवा दिव्य भावना की ओर अग्रसर

think of a stone, or a tree, or a dog, but as something not-finite, not altogether visible or knowable, yet as something important to themselves, powerful, strong to bless, but also strong to hurt. Whatever was between Heaven and Earth seemed to be theirs, their property, their realm, their dominion. They held and embraced all; they seemed to have produced all. The Devas or bright beings, the sun, the dawn, the fire, the wind, the rain, were all theirs and were called therefore the offspring of Heaven and Earth. Thus Heaven and Earth became the Universal Father and Mother.

49. Then we ask at once, 'Were then these Heaven and Earth gods ? But gods in what sense ? In our sense of God ? Why in our sense, God is altogether incapable of a plural. Then in the Greek sense of the word ? No, certainly not, for what the Greeks called gods was the result of an intellectual growth totally independent of the Veda or of India. We must never forget that what we call gods in ancient mythologies are not substantial, living, individual beings, of whom we can predicate this or that. Deva, which w translate by god, was originally nothing but an adjective, expressivee of a quality shared by heaven and earth, by the sun and the stars and the dawn and the sea, namely *brightness*; and the idea of god, at that early time, contains neither more nor less than what is shared in common by all these bright beings.

50. That is to say, the idea of God is not an idea ready-made, which could be applied in its abstract purity to heaven and earth and other such-like beings; but it is an idea, growing out of the concepts of heaven and earth and of the other bright beings, slowly separating itself from them, but never containing more than what was contained, thougb confusedly, in the objects to which it was suecessively applied.

51. Nor must it be supposed that heaven and earth, having once been raised to the rank of undecaying or immortal beings, of divine parents, of guardians of the laws, were thus permanently settled in the religious consciousness of the people. Far from it. When the ideas of other gods, and of more active and more distinctly personal gods had been elaborated, the Vedic Rishis asked without hesitation, Who then has made heaven and earth ? not exactly Heaven and Earth, as conceived before, but heaven and earth as seen every day, as a part of what began to be called Nature or the Universe.

52. Thus one poet says :

'He was indeed among the gods the cleverest workman who

हो रहे हैं। वेदों में पृथिवी और अन्तरिक्ष का भी अनेकत्र उल्लेख हुआ है। हमारी दृष्टि से तो ये दोनों मात्र प्रत्यक्ष भौतिक तथा आद्यन्तवत् पदार्थ हैं। किन्तु भारत के प्राचीन ऋषि अपने प्रति अधिक ईमानदार थे। वे पृथिवी और आकाश को देख सकते थे, देखते भी थे, किन्तु उन्हें उनका समग्र रूप कभी ज्ञात नहीं हो पाया। उन्होंने अनुभव किया कि ये पृथिवी और आकाश जितने प्रत्यक्ष या इन्द्रियगोचर हैं, वस्तुतः उससे कहीं अधिक गहन हैं। इसीलिए उन्होंने द्यावा-पृथिवी को उसी रूप में नहीं देखा जिस रूप में वे किसी पत्थर, पहाड़, वृक्ष, गाय-बैल या कुत्ते आदि को देखते हैं। उन्होंने इन्हें उस अनन्त के रूप में देखा, जिसका आद्यन्त अदृश्य और अज्ञेय होते हुए भी जो उनके लिए अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण तथा उपयोगी व शापानुग्रह में समर्थ है। पृथिवी और आकाश के मध्य में जो भी कुछ है, वह सब-कुछ उन्हीं की सम्पत्ति है, उन सब पर उन्हीं की प्रभुता है और उन पर उन्हीं का शासन तथा राज्य है। उनसे जो कुछ उत्पन्न या प्रकट होता है, उनमें वे आद्यन्त व्याप्त हो रहे हैं। ये सब देवगण अर्थात् द्युतिमान् या प्रकाशमान् तत्त्व एवं पदार्थ, यह सूर्य, यह उषा, यह अग्नि और यह वायु तथा वर्षा आदि सब-कुछ उन्हीं के हैं और इसी-लिए उन सबको द्यावा-पृथिवी से उत्पन्न कहा गया है। इसीलिए द्यावा-पृथिवी सम्पूर्ण विश्व के दिव्य माता-पिता माने गये हैं। अब प्रश्न उठता है कि ऐसी स्थिति में पृथिवी और आकाश के इन देवताओं को क्या कहा जाएगा? इसके उत्तर में मैं आपसे पूछना चाहूँगा कि आप अपनी भाषा में जिनके लिए गॉड्स शब्द का प्रयोग करते हैं, वह शब्द किस अर्थ में प्रयुक्त है, क्योंकि अँग्रेजी का गॉड तो एक ऐसा शब्द है जिसका बहुवचन बनता ही नहीं। ग्रीक भाषा का देववाचक शब्द भी जिस अर्थ का द्योतक है, वह भी भारत या वेदों में प्रयुक्त 'देव' या 'देवता' शब्द से सर्वथा भिन्न है, क्योंकि, ग्रीक भाषा के देवतावाचक शब्द का वहाँ के लोगों के बौद्धिक विकास के साथ क्रमशः विकास हुआ है और उसी क्रम से उसका अर्थ भी वहाँ विकसित होता गया। प्राचीन भारत के वैदिक वाङ्मय में जिसे देवता के नाम से अभिहित किया गया है, वह कोई मूर्त तत्त्व, या जीवित पदार्थ, अथवा ऐसा कोई व्यक्ति विशेष नहीं है जिसके साथ 'यह' अथवा 'वह' आदि विशेषण लगाया जा सके। वस्तुतः संस्कृत का देव, जिसे हम अंग्रेजी में गॉड के रूप में अनूदित किया करते हैं, मूलतः मात्र एक विशेषण था। यह देव शब्द ऐसी विशेषता को व्यक्त करता था जो पृथिवी, आकाश, सूर्य, चन्द्र और तारागण एवं उषा तथा समुद्र आदि अनेक पदार्थों के लिए प्रयुक्त हो सकती थी, अर्थात् जो भी पदार्थ द्युति-मान् हो सकते थे उन सबके लिए देव शब्द प्रयुक्त हो सकता था। देव शब्द का शाब्दिक अर्थ द्युतिमान् प्रकाशयुक्त या तेजोयुक्त ही है, इससे अधिक या कम और कुछ नहीं। कान्त्यर्थक 'दिव्' धातु से निष्पन्न 'देव' शब्द उन सब वस्तुओं, पदार्थों या व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त हो सकता था और होता था, जिनमें किसी भी प्रकार की कान्ति या चमक, या तेजस्विता दिखाई देती थी।

50. इसे यूँ भी कह सकते हैं कि गॉड का विचार सहसा प्रादुर्भूत नहीं हुआ। इसे विशुद्ध भाववाचक रूप में पृथिवी, आकाश तथा ऐसे ही दूसरे पदार्थों के लिए प्रयुक्त

produced the two brilliant ones (heaven and earth), that gladden all things; he who measured out the two bright ones (heaven and earth) by his wisdom, and established them on everlasting supports.'

53. And again : 'He was a good workman who produced heaven and earth; the wise, who by his might brought together thes two (heaven and earth), the wide, the deep, the well-fashioned in the bottomless space.'

54. Very soon this great work of making heaven and earth was ascribed, like other mighty works, to the mightiest of their gods, to Indra. At first we read that Indra, originally only a kind of *Jupiter pluvius*, or god of rain, stretched out heaven and earth, like a hide; that he held them in his hand, that he upholds heaven and earth, and that he grants heaven and earth to his worshippers. But very soon Indra is praised for having made Heaven and Earth; and then, when the poet remembers that Heaven and Earth had been praised elsewhere as the parents of the gods, and more especially as the parents of Indra, he does not hesitate for a moment, but says : 'What poets living before us have reached the end of all thy greatness ? for thou hast indeed begotten thy father and thy mother together from thy own body !'

55. That is a strong measure, and a god who once could do that, was no doubt capable of anything afterwards. The same idea, namely that Indra is greater than heaven and earth, is expressed in a less outrageous way by another poet, who says that Indra is greater than heaven and earth, and that both together are only a half of Indra. Or again : 'The divine Dyaus bowed before Indra, before Indra the great Earth bowed with her wide spaces.' 'At the birth of thy splendour Dyaus trembled, the Earth trembled for fear of thy anger.'

56. Thus, from one point of view, Heaven and Earth were the greatest gods, they were the parents of everything, and therefore of the gods also, such as Indra and others.

57. But, from another point of view, every god that was considered as supreme at one time or other, must necessarily have made heaven and earth, must at all events be greater than heaven and earth, and thus the child became greater than the father, aye, became the father of his father.

58. Indra was not the only god that created heaven and earth. In one hymn that creation is ascribed to Soma and Pushan, by no means very prominent characters; in another to Hiranyagarbha (the golden germ); in another again, to a god who is simply called

नहीं किया जा सकता, अपितु धरती, आकाश आदि के पृथक् किन्तु उन सबमें व्याप्त होते हुए भी, उनसे महान् किसी तत्त्वविशेष के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा।

51. हमें यह भी नहीं मान लेना चाहिए कि द्यावा-पृथिवी को एक बार अमरत्त्व-पद प्रदान कर देने के पश्चात्, या उन्हें अमर और इस विश्व के दिव्य माता-पिता तथा विधि-नियम के संरक्षक स्वीकार कर लेने के बाद भी उन्हें ही सर्वोच्च सत्ता के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। वास्तविकता इसके सर्वथा विपरीत है। जब देवताओं की कल्पना कर ली गई तथा एक-से-एक विशिष्ट व्यक्तित्त्व वाले देवता अपने-अपने एक पृथक् व्यक्तित्त्व में भी प्रकट हो गए, तो वैदिक ऋषि बिना किसी हिचकिचाहट के पूछने लगा—फिर भला इन द्यावा-पृथिवी को भी किसने बनाया था ? अब द्यावा-पृथिवी को पूर्व-निर्धारित कल्पना के अनुसार विश्व के माता-पिता के रूप में नहीं अपितु स्वयं उन्हें भी प्रकृति या विश्व के एक अंश के रूप में देखा जाने लगा था।

52. एक मन्त्र में कहा गया है—"वह वास्तव में सब देवताओं में अत्यधिक कार्यकुशल देवाधिदेव था, जिसने इन दोनों द्युतिमान् या देवत्वगुणयुक्त (पृथिवी और आकाश) आदि पदार्थों का भी सृजन किया था। वही विश्व के प्रत्येक पदार्थ में देदीप्यमान हो रहा है। उसने अपनी प्रज्ञा से इन दोनों (द्यावा-पृथिवी) का ओर-छोर देख लिया है और उसी ने इन दोनों को अपने-अपने स्थानों पर स्थिर किया हुआ है।

54. फिर कहा गया है—"वह वास्तव में अत्यन्त कुशल शिल्पी था जिसने इन द्यावा-पृथिवी दोनों को प्रकट किया है। यह उसी का अनुपम अद्भुत कार्य है कि उसने सुनिर्मित अत्यन्त गहन एवं विशाल, विस्तृत इन दोनों तत्त्वों—द्यावा-पृथिवी को बिना किसी आधार के अन्तरिक्ष में स्थापित किया हुआ है।

54. वेदों में इन्द्र को द्यावा-पृथिवी का भी निर्माता बताया गया है। इन्द्र ने जैसे अन्य अनेक अद्भुत कार्य किये हैं, वैसे ही उसने द्यावा-पृथिवी को भी प्रकट किया है। आरम्भ में इन्द्र भी हमारे यहाँ वर्षा के देवता ज्युपिटर प्लुवियस के जैसा ही था। इन्द्र ने द्यावा-पृथिवी को चमड़े के चन्दोवे की भाँति सब पर ताना हुआ है और वही अपने स्तोताओं को स्वर्गादि प्रदान करता है; किन्तु, दूसरे ही क्षण इन्द्र की स्तुति में यह भी कह दिया गया है कि इन्द्र ने ही द्यावा-पृथिवी का निर्माण किया है। इसके विपरीत, जब कवि को यह ध्यान आया कि अन्यत्र द्यावा-पृथिवी को सभी देवताओं और विशेषतः इन्द्र का भी आविर्भावक मान लिया गया है, वह तत्क्षण बिना किसी हिचकिचाहट के बोल उठा—"क्या कोई भी पूर्ववर्ती कवि या ऋषि आज तक आपकी महिमा के एक अंश को भी पहचान पाया है ? वास्तव में आपने स्वयं अपने से ही अपने माता और पिता को भी उत्पन्न किया है !"

55. वास्तव में यह एक बड़ा कदम है। जिस देव या देवाधिदेव ने स्वयं अपने-आप में से अपने माता-पिता को भी उत्पन्न किया हो, उसके लिए भला दूसरा कोई भी कार्य कर डालना क्या कठिन होगा ? एक अन्य ऋषि ने भी यही विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि इन्द्र इन दोनों (द्यावा-पृथिवी) से कहीं बड़ा है। ये दोनों मिलकर इन्द्र का

Dhatri, the Creator, or Visvakarman, the maker of all things. Other gods, such as Mitra and Savitri, names of the sun, are praised for upholding Heaven and Earth, and the same task is sometimes performed by the old god Varuna also.

59. What I wish you to observe in all this is the perfect freedom with which these so-called gods or Devas are handled, and particularly the ease and naturalness with which now the one, now the other emerges as supreme out of this chaotic theogony. This is the peculiar character of the ancient Vedic religion, totally different both from the Polytheism and from the Monotheism as we see it in the Greek and the Jewish religions; and if the Veda had taught us nothing else but this *henotheistic* phase, which must everywhere have preceded the more highly organised phase of Polytheism which we see in Greece, in Rome, and elsewhere, the study of the Veda would not have been in vain.

60. It may be quite true that the poetry of the Veda is neither beautiful, in our sense of the word, nor very profound; but it is instructive. When we see those two giant spectres of Heaven and Earth on the background of the Vedic religion, exerting their influence for a time, and then vanishing before the light of younger and more active gods, we learn a lesson which it is well to learn, and which we can hardly learn anywhere else—the lesson *how gods were made and unmade*—how the Beyond or the Infinite was named by different names in order to bring it near to mind of man, to make it for a time comprehensive, until, when name after name had proved no avail, a nameless God was felt to answer best the restless cravings of the human heart.

61. I shall next translate to you the hymn to which I referred before as addressed to the Rivers. If the Rivers are to be called deities at all, they belong to the class of terrestrial deities. But the reason why I single out this hymn is not so much because it throws new light on the theogonic process, but because it may help to impart some reality to the vague conceptions which we form to ourselves of the ancient Vedic poets and their surroundings. The rivers invoked are, as we shall see, the real rivers of the Punjab, and the poem shows a much wider geographical horizon than we should expect from a mere village bard.

62. 1. 'Let the poet declare, O Waters, your exceeding greatness, here in the seat of Vivasvat, By seven and seven they have come forth in three courses, but the Sindhu (the Indus) exceeds all the other wandering rivers by her strength.

अर्धांश भी नहीं बन पाते। इसी प्रकार अन्यत्र कहा गया है—'यह दिव्य द्यौः इन्द्र के आगे सदा प्रणत रहता है और इसी प्रकार यह विशाल-विस्तृत पृथिवी भी उस इन्द्र के आगे झुकी रहती है। आपका आविर्भाव होने पर यह विभु द्यौस् कम्पायमान हो उठा और यह धरती आपके भय से काँप उठी।

56. इस प्रकार एक दृष्टि से देखने पर यह लगता है कि ये द्यावा पृथिवी ही देवाधिदेव थे। अतएव इन्द्र आदि सभी देवताओं के भी उत्पादक द्यावा पृथिवी ही हैं।

57-58. किन्तु दूसरी दृष्टि से विचार करने पर अन्य अवसर पर कोई दूसरा सर्वोच्च देव द्यौ और पृथिवी का जनक और इन दोनों से भी कहीं महान् है। इस प्रकार बेटा बाप से भी बड़ा ही क्यों, अपने बाप का भी बाप बन गया। अकेला इन्द्रही ऐसा देवता नहीं है जिसने द्यावा-पृथिवी को उत्पन्न किया हो। एक सूक्त में द्यावा-पृथिवी को धारण करने का श्रेय सोम और पूषा को दिया गया है जो कोई बहुत बड़े देवता नहीं हैं, एक अन्य मन्त्र में हिरण्यगर्भ तो दूसरे में उसे धाता के नाम से अभिहित किया गया है। अन्यत्र उसे विश्वकर्मा कहा गया है। मित्र और सविता की भी द्यावा-पृथिवी के रूप में स्तुति की गई है। इसी प्रकार यदा-कदा पुराने देवता वरुण को भी द्यावा-पृथिवी का धारक स्वीकार किया गया है।

59. वैदिक देवताओं के बारे में इस चर्चा के द्वारा मैं यही समझाना चाहता हूँ कि ऋषियों ने किस प्रकार उन्मुक्त भाव से इन तथाकथित देवों का चित्रण किया है और विशेषतः कितनी स्वाभाविकता और सहजता के साथ देवोत्पत्ति के इस संकुल या गड्ड-मड्ड में से कभी एक को तो कभी दूसरे को सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। प्राचीन वैदिक धर्म का यह वैशिष्टय, यूनानियों और यहूदियों के बहुदेववाद और एकेश्वरवाद इन दोनों से सर्वथा भिन्न है। इसे एकदेववाद का युग कह सकते हैं। यूनान और रोम में तथा अन्यत्र भी भली-भाँति व्यवस्थित बहुदेववाद दिखाई देता है, उसके पूर्ववर्ती इस 'एकदेव-वाद' की अवस्था के सिवा वेद से हमें अन्य किसी बात का पता न भी लगता तो भी हमारा वेद का अध्ययन निरर्थक न जाता।

60. (हमारे अपने दृष्टिकोण से) वेद के मन्त्र कोई बहुत सरस, सुन्दर, निगूढ़ ज्ञान के भण्डार न भी हों, तथापि वे शिक्षाप्रद हैं। जब हम देखते हैं कि आरम्भ में दो महानतम तत्त्व द्यावा और पृथिवी किस प्रकार वेदों में अपनी सर्वातिशयता या सर्वोच्चता प्रतिपादित करने में लगे हैं, वैदिक धर्म की इसी पृष्ठभूमि में हम पाते हैं कि देखते ही देखते नवीन देवता प्रकट हो जाते हैं और बेचारे द्यावा पृथिवी पृष्ठभूमि में चले जाते हैं। वेदों से और वैदिक धर्म से ही हम यह भली-भाँति समझ सकते हैं और यह बात प्रत्येक जिज्ञासु के लिए सम्यक्तया समझ लेने की है कि किस प्रकार एक के बाद दूसरे देवताओं का अस्तित्व बनता बिगड़ता रहा तथा किस प्रकार उस परात्पर अनन्त को नानाविध नाम-रूपों के द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रयत्न किया जाता रहा, ताकि वह बोधगम्य हो जाए। किन्तु, जब एक के बाद एक दूसरे नानाविध नामरूपों से ही वस्तु-तत्त्व पकड़ में नहीं आ पाया, तो उस परात्पर की जिज्ञासा में आतुर अन्तर को अन्ततोगत्वा उस

2. 'Varuna dug out paths for thee to walk on, when thou rannest to the race. Thou proceedest on a precipitous ridge of the earth, when thou art lord in the van of all the moving streams.

3. 'The sound rises up to heaven above the earth; she stirs up with splendour her endless power. As from a cloud, the showers thunder forth, when the Sindhu comes, roaring like a bull.

4. 'To thee O Sindhu, they (the other rivers) come as lowing mother-cows (run) to their young with their milk. Like a king in battle thou leadest the two wings, when thou reachest the front of these down-rushing rivers.

5. 'Accept, O Ganga (Ganges), Yamuna (Jumna), Sarasvati (Sursuti), Sutudri (Sutlej), Parushni (Iravati, Ravi), my praise! With the Asikni (Akesines) listen, O Marudvridha, and with the Vitasta (Hydaspes, Behat); O Arjikiya, listen with the Sushoma.

6. 'First thou goest united with the Trishtama on the journey, with the Susartu, the Rasa (Ramha, Araxes ?), and the Sveti,—O Sindhu, with the Kubha (Kophen, Cabul river) to the Gomati (Gomal), with the Mehatnu to the Krumu (Kurrum)—with whom thou proceedest together.

7 'Sparkling, bright, with mighty splendour she carries the waters across the plains—the unconquered Sindhu, the quickest of the quick, like a beautiful mare— a sight to see.

8. 'Rich in horses, in chariots, in garments, in gold, in wool, and in straw, the Sindhu, handsome and young, clothes herself in sweet flowers.

9. 'The Sindhu has yoked her easy chariot with horses; may she conquer prizes for us in the race. The greatness of her chariot is praised as truly great—the chariot which is irresistible, which has its own glory, and abundant strength.' (10—75)

63. This hymn does not sound perhaps very poetical, in our sense of the word; yet if you will try to realise thoughts of the poet who composed it, you will perceive that it is not without some bold and powerful conceptions.

64. Take the modern peasants, living in their villages by the side of the Thames, and you must admit that he would be a remarkable man who could bring himself to look on the Thames as a kind of general, riding at the head of many English rivers, and leading them on to a race or a battle. Yet it is easier to travel in England, and to gain a commanding view of the river-system of the country, than it was three thousand years ago to travel over India, even over that part of India which the poet of our hymn commands.

नामरूपहीन परात्पर परमेश्वर गॉड की अनुमति में ही विश्रान्ति मिल सकी। यह ज्ञान हमें वेदों के सिवा अन्यत्र कदापि नहीं मिल सकता।

61. अब मैं आपके समक्ष ऋग्वेद के नदी सूक्त का अनुवाद प्रस्तुत करना चाहूँगा जिसका उल्लेख मैंने पहले किया है। जैसाकि नदियों को देवता माना जाता है, उस अवस्था में उनकी गणना पृथिवी-सम्बन्धी देवताओं में की जाएगी। किन्तु, मैं ऋग्वेद के दूसरे सब सूक्तों को छोड़कर पहले इस नदी सूक्त का ही अनुवाद इसलिए प्रस्तुत करना चाहता हूँ कि इससे वैदिक दैवतवाद के विकास की प्रक्रिया पर प्रकाश तो पड़ता ही है, साथ ही इससे हम यूरोपियन लोगों के मन में प्राचीन वैदिक ऋषियों और उनके चारों ओर विद्यमान प्राकृतिक वातावरण आदि के बारे में वस्तुस्थिति के ज्ञान के अभाव के कारण जो अज्ञता भरे विचार घर किए हुए हैं, उनका कुछ निराकरण किया जा सके। जैसाकि हम देखेंगे, इस सूक्त में जिन नदियों की स्तुति-प्रार्थना की गई है, वे पंजाब की वास्तविक नदियाँ हैं। इस सूक्त में जितना विशाल और विस्तृत भौगोलिक क्षितिज दर्शाया गया है, भला कोई ग्रामीण कवि उसका वैसा सजीव वर्णन कर सकता है?

62-1. कविगण भले ही विवस्वत प्रदेश में प्रवाहित होने वाले जलप्रवाहों की अपार महिमा का स्तुतिगान करते हुए बताते रहे कि इस प्रदेश में तीन नदी-प्रणालियाँ हैं, और उनमें से प्रत्येक में सात-सात नदियाँ सम्मिलित हैं, किन्तु अपनी अद्भुत शक्ति, सामर्थ्य और विशालता के कारण उन सब प्रवाहमान नदियों में सिन्धु सर्वातिशायी है।1।

2. हे सिन्धु! जब तुम दूसरी नदियों के साथ प्रवाह-प्रतिस्पर्धा में अग्रसर होती हो तो स्वयं वरुण तुम्हारे लिए मार्ग बनाते चलते हैं। जब तुम अत्यन्त उन्नत दुर्गम पर्वत-शृंखलाओं और दर्रों में से होती हुई मैदानों में तीव्र प्रवाह के साथ अग्रसर होती हो तो प्रतीत होता है कि मानो तुम किसी विशालवाहिनी या किसी वीर नायक के समान नेतृत्व कर रही हो।2।

3. सिन्धु-नदी के वेगमय प्रवाह की तीव्र कलकल ध्वनि पृथिवी से उठकर आकाश तक पहुँच जाती है। बड़ी शान के साथ वह अपनी शक्ति और सामर्थ्य का प्रदर्शन करती हुई आगे बढ़ रही है। पर्वतों से नीचे गिरते हुए सिन्धु के प्रपात से उठनेवाली फुहारें चारों ओर ऐसे फैल रही हैं, मानो कोई गर्जता हुआ बादल फुहारें बरसा रहा हो। इस सिन्धु के प्रवाह की तीव्र-गम्भीर ध्वनि ऐसी प्रतीत होती है मानो कोई बलवान् सांड गरंज रहा हो।3।

4. जैसे बछड़े दूध पीने के लिए ललकते हुए अपनी गौ माता के पास चले जाते हैं, वैसे ही हे सिन्धु! ये (पंजाब और अफ़गानिस्तान की तुम्हारी सहायक) दूसरी नदियाँ ललकती हुई तुम तक आ पहुँचती हैं। निचले प्रदेशों में अपने तीव्र प्रवाह के साथ प्रवाहित होती हुई ये नदियाँ जब दायें-बायें दोनों ओर से तुममें आ-आकर मिलती जाती हैं, उस समय तुम्हारी शोभा ऐसी दर्शनीय हो उठती है मानो कोई वीर सेनानायक अपनी सेना के दोनों पक्षों का नेतृत्व करते हुए युद्धक्षेत्र में आगे बढ़ रहा हो।4।

5. हे गंगे, हे यमुने, हे सरस्वती, हे शुतुद्री (शतलुज), हे परुष्णी (इरावती या

65. He takes in at one swoop three great river-systems, or, as he calls them three great armies of rivers—those flowing from the North-West into the Indus, those joining it from the North-East, and, in the distance, the Ganges and the Jumna with their tributaries. Look on the map and you will see how well these three armies are determined ; but our poet had no map—he had nothing but high mountains and sharp eyes to carry out his trigonometrical survey. Now I call a man, who for the first time could *see* those three marching armies of rivers, a poet.

66. The next thing that strikes on in that hymn—if hymn we must call it—is the fact that all these rivers, large and small, have their own proper names. That shows a considerable advance in civilized life, and it proves no small degree of coherence, or what the French call *solidarity*, between the tribes who had taken possession of Northern India. Most settlers call the river on whose banks they settle '*the river*'. Of course there are many names for river. It may be called the runner, the fertiliser, the roarer—or, with a little poetical metaphor, the arrow, the horse, the cow, the father, the mother, the watchman, the child of the mountains. Many rivers had many names in different parts of their course, and it was only when communication between different settlements became more frequent, and a fixed terminology was felt to be a matter of necessity, that the rivers of a country were properly leaptised and registered. All this had been gone through in India before our hymn became possible.

67. And now we have to consider another, to my mind the most startling fact. We here have a number of names of the rivers of India, as they were known to one single poet, say about 1000 B.C. We then hear nothing of India till we come to the days of Alexander, and when we look at the names of the Indian rivers, represented as well as they could be by Alexander's companions, mere strangers in India, and by means of a strange language and a strange alphabet, we recognise, without much difficulty, nearly all of the old Vedic names.

68. In this respect the names of rivers have a great advantage over the names of towns in India. What we now call *Dilli* or *Delhi* was in ancient times called Indraprastha, in later times *Shahjahanabad*. *Oude* is Ayodhya, but the old name of Saketa is forgotten. The town of Pataliputra, known to the Greeks as *Palimbothra*, is now called *Patna*.

69. Now I can assure you this persistency of the Vedic river

रावी) ! तुम सब मेरे स्तवन (स्तुतिगान) को सुनो। हे असिक्नी (कृष्ण वर्णवाली चिनाब), हे मरुद्वृद्धा तथा हे वितस्ता (जेहलम) ! तुम आर्जीकिया और सुशोमा के साथ मेरे इस स्तुतिगान को सुनो।5।

6. हे सिन्धु ! तुम त्रिस्तमा, ससर्तु, कुभा (काबुल के पास बहनेवाली काबुल नदी), गोमती (गोमल), मेहत्नू तथा क्रमु (खुर्रम नदी) आदि अपने दाएँ बहनेवाली नदियों को साथ लेकर अपने यात्रा-पथ पर अग्रसर हो रही हो।6।

7. यह सिन्धु नदी अपनी चमचमाती हुई शानदार जलधाराओं को इस विशाल भूभाग में ऐसे आगे बढ़ाती चलती है, मानो कोई वीर पुरुष अपने सैन्य-समूह को लिए हुए आगे बढ़ रहा हो। किसी श्रेष्ठ और तीव्रगामी घोड़ी या अश्वतरी (खच्चर) के समान शानदार यह सिन्धु नदी सर्वाधिक तीव्रतम वेग के साथ प्रवाहित हो रही है।7।

8. अश्व, रथ, दिव्यवस्त्राभरण, ऊन और दूसरों पदार्थों से बने नानाविध कालीन और सस्य एवं सुवर्ण-रत्न आदि से अलंकृत यह सुन्दर युवती सिन्धु नदी अपने-आपको नानाविध सुरभित पुष्प-पत्रादि से अलंकृत कर बहती चली जा रही है।8।

9. सिन्धु नदी ने अपने रथ में घोड़े जोत लिए हैं। वह अपनी इस प्रतिस्पर्धा की दौड़ में हमारे लिए विजयश्री वरण कर लाए। उसके रथ की महिमा वस्तुतः अवर्णनीय है। उस अत्यन्त शक्तिशाली, वैभवपूर्ण, दैदीप्यमान सिन्धु का रथ वास्तव में महान् है।9।

63. हम यूरोपियन लोगों को भले ही यह सूक्त रमणीय काव्यमय प्रतीत न हो, तथापि इस सूक्त के संकलयिता ऋषि के विचारों और भावनाओं को आप समझने का प्रयत्न कर सकें तो पायेंगे कि यह सूक्त कुछ अत्यन्त समृद्ध एवं सशक्त साहसिक भावों तथा मौलिक चिन्तन से सर्वथा परिपूर्ण है।

64. आप अपनी इस टेम्स नदी के आस-पास रहनेवाले ग्रामवासी किन्हीं आधुनिक किसानों को ले लें और उनमें से यदि कोई यह सोचे कि, यह टेम्स नदी ऐसे बह रही है मानो इंग्लैण्ड की बहुत-सी नदियों का नेतृत्व करनेवाला कोई जनरल हो और उन्हें अपने साथ किसी रेस के मैदान या युद्ध-क्षेत्र की ओर लिए चल रहा हो, तो क्या आप उसकी प्रशंसा किए बिना रह सकेंगे और यह नहीं सोचेंगे कि यह व्यक्ति वास्तव में प्रतिभाशाली है तथा इसमें कुछ आकर्षक गुण विद्यमान हैं ? इस प्रसंग में आपको यह भी स्मरण रखना होगा कि आज तो अपने इस छोटे-से देश इंग्लैण्ड के चप्पे-चप्पे में घूम आना और इसकी नदियों के प्रवाह-क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति को अनायास ही ठीक से समझ लेना बड़ा सरल है, किन्तु आज से तीन-चार हजार वर्ष पहले के भारतवर्ष के उस विशाल क्षेत्र में यात्रा करना कितना कठिन रहा होगा।

65. सारे भारतवर्ष के विशाल क्षेत्र की बात जाने दें, काबुल और सरस्वती—हरेह्वती जैसी अफगानिस्तान की नदियों से लेकर उत्तर प्रदेश की गंगा-यमुना तक के जिस क्षेत्र के भौगोलिक स्वरूप का इन ऋचाओं के द्वारा ऋषि के अद्भुत ज्ञान का परिचय मिलता है, क्या वह अनुपम नहीं? वह इस प्रदेश में बहनेवाली नदियों की

names was to my mind something so startling that I often said to myself, this cannot be—there must be something wrong here. I do not wonder so much at the names of the *Indus* and the *Ganges* being the same. The Indus was known to early traders, whether by sea or by land. Skylax sailed from the country of the Paktyes, i.e. the Pushtus, as the Afghans still call themselves, down to the mouth of the Indus. That was under Darius Hystaspes (521-486 B.C.). Even before that time India and the Indians were known by their name, which was derived from *Sindhu*, the name of their frontier river. The neighbouring tribes who spoke Iranic languages all pronounced, like the Persian, the *s* as an *h*. Thus Sindhu became Hindhu (Hindu), and, as h's were dropped even at that early time, Hindhu became Indu. Thus the river was called *Indos*, the people *Indoi* by the Greeks, who first heard of India through the Persians.

70. *Sindhu* probably meant originally the divider, keeper, and defender, from sidh, to keep off. It was a masculine, before it became a feminine. No more telling name could have been given to a broad river, which guarded peaceful settlers both against the inroads of hostile tribes and the attacks of wild animals. A common name for the ancient settlements of the Aryans in India was 'the Seven Rivers'. But though sindhu was used as an appellative noun for river in general, it remained throughout the whole history of India the name of its powerful guardian river, the Indus.

71. In some passages of the Rig-veda it has been pointed out that sindhu might better be translated by 'sea', a change of meaning, if so it can be called, fully explained by the geographical conditions of the country. There are places where people could swim across the Indus, there are others where no eye could tell whether the boundless expanse of water should be called river or sea. The two run into each other, as every sailor knows, and naturally the meaning of sindhu, river, runs into the meaning of sindhu, sea.

72. But besides the two great rivers, the Indus and the Ganges,—in Sanskrit the Ganga, literally the Go-go,—we have the smaller rivers, and many of their names also agree with the names preserved to us by the companions of Alexander.

The Yamuna, the Jumna, was known to Ptolemy as *Diamouna*, to Pliny as Jomanes, to Arrian, somewhat corrupted, as Jobares.

The Sutudri, or, as it was afterwards called, Satadru, meaning 'running in a hundred streams,' was known to Ptolemy as *Zadardes* or *Zaradros* ; Pliny called it Sydrus ; and Megasthenes, too, was probably acquainted with it as *Zadardes*. In the Veda it formed with

तीन विभिन्न प्रणालियों की चर्चा कितने स्वाभाविक रूप से कर रहा है, जरा देखिए तो सही! इन तीन प्रणालियों में से पहली में पश्चिमोत्तर या सिन्धु के दाईं ओर से बहकर आनेवाली कुभा (काबुल) आदि आधुनिक अफगानिस्तान की नदी-प्रणाली है, दूसरी प्रणाली में सिन्धु के बाईं ओर से बहकर आनेवाली जेहलम, चिनाब, रावी, व्यास और सतलुज, पंजाब की ये पाँच नदियाँ सम्मिलित हैं, तथा तीसरी प्रणाली में गंगा, यमुना तथा उनकी सहायक नदियों की गणना की जाती है। अब आप लोग जरा उत्तर भारत के मानचित्र को उठाकर देखिए। उसमें आप पायेंगे कि किस प्रकार नदियों की इन तीनों प्रणालियों की योजनाबद्ध रूप से आगे बढ़ती हुई सैन्य-दल की टुकड़ियाँ अपनी विजय-यात्रा के पथ पर सुनियमित रूप से अग्रसर हो रही हैं, किन्तु उस युग में हमारे ऋषि के पास कोई मानचित्र या नक्शा तो था नहीं। उसके चारों ओर समुन्नत पर्वत-शृंखलाएँ थीं और थी अपनी दिव्यदृष्टि! जिसने इन तीन विभिन्न मार्गों से प्रवाहित होनेवाली तीन पृथक्-पृथक् नदी-प्रणाणियों को, तीन विभिन्न सैन्य दलों के समान अपने यात्रापथ पर व्यवस्थित रूप से अग्रसर होते हुए सर्वप्रथम देखा और उसका काव्यमय चित्रण भी कर दिया, उसे सच्चा कवि मानने का अब मुझे पूरा अधिकार है।

66. इस सूक्त (यदि हम इसे मात्र एक सूक्त ही मान लें, तो भी) की एक अन्य विशेषता, जो किसी भी उद्बुद्ध पाठक को अनायास ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेती, यह है कि इस सूक्त तथा नदियों से सम्बद्ध अन्य अनेक ऋचाओं में चर्चित सभी नदियों के—चाहे वे छोटी हों या बड़ी—अलग-अलग व्यक्तिवाचक नाम दिए गए हैं। इससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि तब तक भारतवासी सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ चुके थे। इससे यह प्रमाणित होता है कि उत्तर भारत के उस विशाल क्षेत्र में एक-दूसरे से अत्यन्त दूर रहनेवाले आर्यजनों में जितनी एकरूपता और एकात्मता स्थापित हो चुकी थी, वह कुछ कम नहीं थी। आमतौर पर यह देखा गया है कि नदियों के तटों पर आ बसनेवाले अधिकतर कबीले युगों तक उन नदियों को किसी विशेष संज्ञा से अभिहित ही नहीं कर पाते और वे उसे एक नदी ही कहते हैं। इसीलिए यदा-कदा वे लोग कई नदियों के सामान्य गुणवाचक नाम भी रख दिया करते हैं, जैसे कि—स्रवन्ती उर्वरा, घोषा या घोषवती। इसके अतिरिक्त नदियों के इषु अथवा बाण, अश्वा, गौ अथवा माता, पिता, प्रहरी या संरक्षिका अथवा पार्वती आदि कवित्वहीन नाम भी यत्र-तत्र सुनाई दे जाते हैं। प्रायः ऐसा भी होता है कि यदि किसी नदी का यात्रा-पथ बहुत लम्बा है तो जिन विभिन्न क्षेत्रों से होकर वह प्रवाहित होती है, उनमें से अनेक क्षेत्रों में उस एक ही नदी के अलग-अलग नाम रख दिए जाते हैं, अथवा भिन्न-भिन्न प्रदेशों के निवासी एक ही नदी को पृथक्-पृथक् नामों से अभिहित करने लगते हैं। लम्बे यात्रा-पथ वाली किसी नदीविशेष को आरम्भ से अन्त तक किसी एक ही नाम से सम्बोधित कर पाना तभी सम्भव है, जबकि उस विशाल भू-भाग में रहनेवाले लोगों में पूर्ण एकात्मता स्थापित हो चुकी हो, साथ ही उनमें आवागमन के साधन भी सम्यक्तया विकसित हो जायें, तथा उस नदी-प्रवाह के सुदीर्घ यात्रा-पथ में आनेवाले सभी प्रदेशों के निवासी यह अनुभव कर लें

the Vipas the frontier of the Punjab and we hear of fierce battles fought at that time, it may be on the same spot where in 1846 the battle of the Sutledge was fought by Sir Hugh Gough and Sir Henry Hardinge. It was probably on the Vipas (later Vipasa), a north-western tributary of the Sutledge, that Alexander's army turned back. The river was then called Hyphasis; Pliny calls it Hypasis, a very fair approximation to the Vedic Vipas, which means 'unfettered'. Its modern name is Bias or Bejah.

73. The next river on the west is the Vedic Parushni, better known as Iravati, which Strabo calls Hyarotis, while Arrian gives it a more Greek appearance by calling it Hydraotes. It is the modern Ravi. It was this river which the Ten Kings when attacking the Tritsus under Sudas tried to cross from the west by cutting off its water. But their stratagem failed, and they perished in the river (Rig-Veda vii. 18. 8-9).

74. We then come to the Asikni, which means 'black'. That river had another name also, Chandrabhaga, which means 'streak of the moon'. The Greeks, however, pronounced that name *Sandarophagos*, and this had the unlucky meaning of 'the devourer of Alexander'. Hesychius tells us that in order to avert the bad omen Alexander changed the name of that river into *Akesines*, which would mean 'the Healer'; but he does not tell, what the Veda tells us, that this name *Akesines*, was a Greek adaptation of another name of the same river, namely Asikni, which had evidently supplied to Alexander the idea of calling the Asikni *Akesines*. It is the modern Chinab.

75. Next to the Akesines we have the Vedic Vitasta, the last of the rivers of the Punjab, changed in Greek into Hydaspes It was to this river that Alexander retired, before sending his fleet down the Indus and leading his army back to Babylon. It is the modern Behat or Jhelam.

76. I could identify still more of these Vedic rivers, such as, for instance, the Kubha, the Greek Cophen, the modern Kabul river; but the names which I have traced from the Veda to Alexander, and in many cases from Alexander again to our own time, seem to me sufficient to impress upon us the real and historical character of the Veda. Suppose the Veda were a forgery—suppose at least that it had been put together after the time of Alexander—how could we explain these names? They are names that have mostly a meaning in Sanskrit, they are names corresponding very closely to their Greek corruptions, as pronounced and written down

कि अपने उद्गम-स्रोत से लेकर अन्त तक इस नदी का कोई एक नामकरण किया जाना चाहिए। निश्चित ही ऋग्वेद के सूक्तों की रचना से कहीं पहले ही भारत में इन नदियों के नामकरण की प्रक्रिया परिपूर्णतया सम्पन्न हो चुकी थी।

67. अब हमें इसी से सम्बद्ध एक ऐसे तथ्य पर विचार करना होगा, जिससे मेरा मस्तिष्क अत्यन्त अभिभूत है। वह तथ्य यह है कि ई० पू० प्रथम सहस्राब्द या उससे भी प्राचीन युग का कवि (ऋषि) इनमें से अधिकांश नदियों के नाम हमें बताता है। उसके बाद सिकन्दर के आक्रमण तक के काल में हमें भारत के बारे में कहीं से कुछ सुनने या जानने को नहीं मिलता। तत्पश्चात् सिकन्दर तथा उसके सहयोगी सेनापति आदि भारत और भारतीय भाषाओं से परिचित होते हुए भी अपनी सर्वथा भिन्न भाषा एवं लिपि में इन नदियों के जो नाम बताते हैं, प्राचीन वैदिक नामों के रूप में आज भी हम विना किसी विशेष कठिनाई के उनकी पहचान कर लेते हैं।

68. इस दृष्टि से भारत के नगरों के नामों की अपेक्षा नदियों के नामों का कहीं अधिक महत्त्व है और वे नाम हमारे लिए अत्यधिक उपयोगी भी हैं। आज जिसे दिल्ली या देहली कहा जाता है, उसे प्राचीन युग में इन्द्रप्रस्थ कहते थे। बाद में कुछ समय के लिए इसका नाम शाहजहानाबाद भी रहा। आज का अवध पुरानी अयोध्या है। किन्तु इसके एक दूसरे प्राचीन नाम 'साकेत' को लोग भूल गए हैं। पाटलिपुत्र नगर को यूनानियों ने (पालीबोथ्र) के नाम से अभिहित किया है, किन्तु आज इसे पटना कहते हैं।

69. वैदिक नदियों के नामों के स्थायित्व को देखकर मैं आश्चर्याभिभूत हो उठता था। मैं अपने मन में सोचने लगता कि यह भला कैसे हो सकता है कि आज से साढ़े तीन हजार वर्ष पहले ही भारतीय आर्य इतने सुशिक्षित, सभ्य और समुन्नत हो चुके थे कि उन्होंने इतनी लम्बी-लम्बी नदियों के नाम रख लिए थे और प्रत्येक व्यक्ति उन्हें उन्हीं नामों से अभिहित करने लगा था। निश्चित ही इस-(हमारी कालगणना)-में कहीं कोई त्रुटि है। आज से हजारों वर्ष पूर्व भी सिन्धु और गंगा इन्हीं नामों से अभिहित थीं, इसमें मुझे रत्तीभर भी सन्देह नहीं है। प्राचीन युग के व्यापारी लोग चाहे वे पोत-वणिक् या सामुद्रिक व्यापारी रहे हों अथवा स्थल मार्ग के व्यापारी, दोनों ही प्रकार के ये व्यापारी लोग इस नदी के 'सिन्धु' नाम से भलीभाँति परिचित थे। अफगान लोग आज भी अपने-आपको पख्तून और अपनी भाषा को पश्तो कहते हैं। 521 से 486 ई० पू० के मध्य होनेवाले ईरान के सम्राट् डेरियस हैस्टियस (दारा) के समय में स्काइलाक्श किसी (पैक्टियस, पख्तून, वैदिक 'पक्थ') देशों से सिन्धु नदी के मार्ग से चलकर उसके मुहाने तक पहुँचा था। इससे भी बहुत पहले से प्रचलित 'इण्डिया' शब्द भारत के सीमान्त प्रदेश की नदी 'सिन्धु' नाम से विकसित हुआ है। भारत के पश्चिमोत्तर में बसनेवाले ईरानियन भाषा-भाषी लोग फारसी की भाँति प्रायः 'स' का उच्चारण 'ह' करते थे। इस प्रकार सिन्धु का उच्चारण वे लोग हिन्धु किया करते थे। क्योंकि, संस्कृत की सघोष महाप्राण ध्वनियों का महाप्राणांश केवल संस्कृत में ही सुरक्षित था, अन्यत्र कहीं भी उसका उच्चारण नहीं होता; संस्कृत के सिन्धु—'हिन्धु' के स्थान पर

by people who did not know Sanskrit. How is a forgery possible here ?

77. I selected this hymn for two reasons. First, because it shows us the widest geographical horizon of the Vedic poets, confined by the snowy mountains in the North, the Indus and the range of the Suleiman mountains in the West, the Indus or the sea in the South, and the valley of the Jumna and Ganges in the East. Beyond that, the world, though open, was unknown to the Vedic poets. Secondly, because the same hymn gives us also a kind of historical background to the Vedic age.

78. These rivers, as we may see them to-day, as they were seen by Alexander and his Macedonians, were seen also by the Vedic poets. Here we have an historical continuity—almost living witnesses, to tell us that the people whose songs have been so strangely, aye, you may almost say, so miraculously preserved to us, were real people, lairds with their clans, priests, or rather, servants of their gods, shepherds with their flocks, dotted about on the hills and valleys, with enclosures or palisades here and there, with a few strongholds, too, in case of need—living their short life on earth, as at that time life might be lived by men, without much pushing and crowding and trampling on each other--spring, summer, and winter leading them on from year to year, and the sun in his rising and setting lifting up their thoughts from their meadows and groves which they loved, to a world in the East, from which they had come, or to a world in the West, to which they were gladly hastening on. They had what I call religion, though it was very simple, and hardly reduced as yet to the form of a creed. 'There is a Beyond', that was all they felt and knew, though they tried, as well as they could, to give names to that Beyond, and thus to change religion into a religion. They had not as yet a name for God—certainly not in our sense of the word—or even a general name for the gods ; but they invented name after name to enable them to grasp and comprehend by some outward and visible tokens powers whose presence they felt in nature, though their true and full essence was to them, as it is to us, invisible and incomprehensible.

'हिन्दु' उच्चरित होता था। वही 'हिन्दु' नदी आगे चलकर 'इन्दु' बन गई। यूनानियों ने जब पहले पहल ईरानियों से उस 'हिन्दु' नदी और देश के बारे में सुना तो वे उस नदी को इन्दोस तथा वहाँ के निवासियों को इन्दोई कहने लगे। इस प्रकार सिन्धु > हिन्दु > इन्दु का क्रमिक विकास हो गया।

70. 'सिन्धु' शब्द सम्भवत: सिध् धातु से निष्पन्न हुआ है और इस प्रकार मूल-रूप से इसका अर्थ विभाजक, संरक्षण या सुरक्षित रखने वाला नद रहा होगा। यह शब्द पहले पुंल्लिग में प्रयुक्त होता था। स्त्रीलिंग में इसका प्रयोग बाद में होने लगा। जो नदी एक ओर तो अपने प्रदेश से शान्तिमय जीवन-यापन करने वाले निवासियों को स्थल-मार्ग से बार-बार आक्रमणकारी प्रतिद्वन्द्वी कबीलों, तथा दूसरी ओर हिंस्र जन्तुओं से भी भली-भाँति सुरक्षित रखती हो, उस अत्यन्त विस्तृत वेगवान् और बहुत चौड़े प्रवाह वाली नदी के लिए इससे अधिक उपयुक्त और क्या नाम हो सकता था! प्राचीन भारतीय आर्यों के प्रदेश का एक सामान्य नाम 'सप्त सिन्धव:' था। सामान्यतया 'सिन्धु' शब्द नदी-सामान्य का वाचक है, तथापि भारत के सम्पूर्ण इतिहास में यह शब्द एक अत्यन्त शक्तिशाली संरक्षक नदी-विशेष सिन्धु नदी के लिए ही प्रयुक्त हुआ है।

71. ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों में सिन्धु शब्द का अर्थ समुद्र अधिक समीचीन प्रतीत होता है, ऐसा कहा गया है। ऐसे स्थानों में यदि सचमुच सिन्धु शब्द से समुद्र ही अभिप्रेत हो, तो इसका समाधान भारत की तात्कालिक भौगोलिक स्थिति के आधार पर किया जा सकता है।

कहीं तो सिन्धु नदी का पाट इतना छोटा है कि तैरकर भी पार किया जा सकता है। इसके विपरीत जहाँ यह नदी समुद्र में मिलती है, अपने उस स्थल के पास उसका पाट इतना विस्तृत हो जाता है कि कहीं ओर-छोर ही नहीं दिखाई देता। सम्भवत: ऐसे ही पाटवाली नदी के लिए प्रयुक्त नदीवाचक सिन्धु शब्द समुद्र के अर्थ में लाक्षणिक रूप से प्रयुक्त हुआ हो। आगे चलकर सिन्धु के ये दोनों अर्थ प्रसिद्ध हो गए।

72. सिन्धु और गंगा, इन दोनों विख्यात नदियों के अतिरिक्त अन्य ऐसी अनेक छोटी-मोटी नदियाँ भी हैं, जिनके यूनानियों ने ठीक वही नाम बताए हैं जो वेदों में उपलब्ध हैं तथा आज भी उनके वे ही नाम प्रचलित हैं। गंगा शब्द संस्कृत के गम् धातु से बना है। इसका अर्थ है निरन्तर गतिशील या प्रवाहित होने वाली नदी (जंगम्यते—पौन: पुन्येन गच्छति-प्रवाहति इति गंगा)। मैक्समूलर ने इस अर्थ को व्यक्त करने के लिए गो-गो शब्द दिया है।

यमुना के टोलमी ने जैमुना, प्लीनि ने जोमेनेस तथा एरियन ने इसे विकृत रूप में अभिहित किया है।

वेद में जिसे 'शुतुद्री' नाम से अभिहित किया गया है, परवर्ती साहित्य में उसे 'शतद्रु' कहा गया है और इसका अर्थ बताया गया है कि यह सैकड़ों धाराओं में प्रवाहित होती है (शतधा द्रवति इति शतद्रु:)। टोलमी ने इसे जद्रदस प्लीनि ने साइड्रस तथा मैगस्थनीज ने भी इसे सम्भवत: उसी जद्रदस नाम से अभिहित किया है। वेदों में यह

LECTURE VI

Vedic Deities

1. THE next important phenomenon of nature which was represented in the Veda as a terrestrial deity is Fire, in Sanskrit Agni, in Latin *ignis*. In the worship which is paid to the Fire and in the high praises bestowed on Agni we can clearly perceive the traces of a period in the history of man in which not only the most essential comforts of life, but life itself, depended on the knowledge of producing fire. To us fire has become so familiar that we can hardly form an idea of what life would be without it. But how did the ancient dwellers on earth get command and possession of fire ? The Vedic poets tell us that fire first came to them from the sky, in the form of lightning, but that it disappeared again, and that then Matarisvan, a being to a certain extent like Prometheus, brought it back and confided it to the safe keeping of the clan of the Bhrigus (Phlegyas). In other poems we hear of the mystery of producing fire by rubbing pieces of wood ; and here it is a curious fact that the name of the wood thus used for rubbing is in Sanskrit Pramantha, a word which, as Kuhn has shown, would in Greek come very near to the name of Prometheus. The possession of fire, whether by preserving it as sacred on the hearth, or by producing it at pleasure with the fire-drill, represents an enormous step in early civilization. It enabled people to cook their meat instead of eating it raw ; it gave them the power of carrying on their work by night ; and in colder climates it really preserved them from being frozen to death. No wonder, therefore, that the fire should have been praised and worshipped as the best and kindest of gods, the only god who had come down from heaven to live on earth, the friend of man, the messenger of the gods, the mediator between gods and men, the immortal among mortals. He, it is said, protects the settlements of the Aryans, and frightens away the black-skinned enemies.

2. Soon, however, fire was conceived by the Vedic poets under the more general character of light and warmth, and then the presence of Agni was perceived, not only on the hearth and the altar, but in the Dawn, in the Sun, and in the world beyond the Sun, while

विपाष् के साथ मिलकर पंजाब की सीमा निर्धारित करती है और विपाष् और शतुद्री के संगम पर ही भयंकर लड़ाइयाँ हुई थीं, यह भी वेदों से ही ज्ञात होता है। सम्भवतः सन् 1846 में ह्युगाफ और ? की अंग्रेजी सेनाओं का सिक्ख वीरों ने यहीं पर सामना किया था। आगे चलकर विपाशा के नाम से प्रसिद्ध सतलुज की पश्चिमोत्तरी सहायक नदी विपाष् के तट से ही सिकन्दर अपनी सेनाओं के साथ लौटा था। यूनानियों ने विपाष् को ? नाम से अभिहित किया है। प्लीनि इसे ? के नाम से सम्बोधित करता है, जो वैदिक 'विपाष्' ही है (ग्रीक भाषा में पदादि का V सं० व H में परिवर्तित हो जाता है। अतः वैदिक विपाष् स्वभावतः विपाष् > ग्रीक ही है। विपाष् शब्द का अर्थ है, जो पाष् या बन्धनरहित हो (भारत की स्वाधीनता के पूर्व तक सचमुच इस पर कोई बन्धन या बांध नहीं बनाया जा सका था। इस प्रकार इसका यह नाम सर्वथा अन्वर्थक है।—अनु०)। आजकल इसे व्यास कहते हैं (मैक्समूलर ने इसका दूसरा आधुनिक नाम बेजाह भी दिया है)।

73. इसके थोड़ा पश्चिम में हमें वैदिक परुष्णी नदी मिलती है। यह अपने दूसरे पर्यायवाचक 'इरावती' नाम से अधिक जानी जाती है। स्ट्रैबो ने इसे हैरोटिस और एरियन ने इसे हाइद्राओतस के रूप में ग्रीक नाम दे दिया है। आधुनिक रावी यही है। यह वही नदी है जिसके तट पर ऋग्वेद में वर्णित दाशराज्ञ युद्ध हुआ था, जिसमें दस राजाओं ने मिलकर सुदास पर आक्रमण किया था (ऋग्वेद 7-18-8-9)।

74. कुछ और पश्चिम की ओर बढ़ने पर हम असिक्नी नदी पर पहुँच जाते हैं। इसका अर्थ काले या साँवले जल वाली है। चन्द्रभागा इसी का नाम है। यूनानियों ने इसे इसी नाम से अभिहित किया है। दुर्भाग्यवश ग्रीक भाषा में इसका अर्थ 'सिकन्दर का हत्यारा' होता है। एसिकियस हमें बताता है कि सिकन्दर ने इस नदी के अपशकुन-द्योतक नाम को अपना लिया। यह आजकल की चिनाब नदी है।

75. असिक्नी से आगे कुछ और पश्चिम में बढ़ने पर हम वैदिक वितस्ता पर जा पहुँचते हैं। यह पंजाब की अन्तिम सीमा बनाने वाली नदी है। यूनानियों ने इसे ? के नाम से अभिहित किया है, जहाँ से सिकन्दर अपनी सेना की एक टुकड़ी सिन्धु-मार्ग से भेजकर अपनी विशाल वाहिनी के साथ बेबीलोन की ओर लौट गया था। यह वितस्ता ही आधुनिक जेहलम या वेहत नदी है (काश्मीर में आज भी यह वितस्ता के नाम से ही प्रसिद्ध है)।

76. इनके अतिरिक्त कुछ अन्य वैदिक नदियों की पहचान भी मैंने कर ली है जैसे कि वैनिक 'कुभा' नदी ही यूनानियों की और आधुनिक कावुल नदी है। इस प्रकार वेदों से लेकर सिकन्दर और अनेक अंशों में सिकन्दर से लेकर आधुनिक काल तक मैंने जिन नदियों की पहचान की है, उन्हीं के आधार पर वेदों का वास्तविक एवं ऐतिहासिक वैशिष्ट्य भली-भाँति सिद्ध हो जाता है। (जैसाकि यूरोप के कुछ स्वार्थी एवं चतुर लोगों ने यह प्रचारित करने का प्रयत्न किया है कि संस्कृत ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं के अनुकरण पर ब्राह्मणों द्वारा गढ़ी गई एक भाषा है, तथा वेद किसी भी अवस्था में सिकन्दर के पूर्ववर्ती तो हो ही नहीं सकते। (ऐसे लोगों के आक्षेपों का उत्तर देते हुए मैक्समूलर कहते

at the same time his power was recognised as ripening, or as they called it, as cooking, the fruits of the earth, and as supporting also the warmth and the life of the human body. From that point of view Agni, like other powers, rose to the rank of a Supreme God. He is said to have stretched out heaven and earth—naturally, because without his light heaven and earth would have been invisible and undistinguishable. The next poet says that Agni held heaven aloft by his light, that he kept the two worlds asunder; and in the end Agni is said to be the progenitor and father of heaven and earth, and the maker of all that flies, or walks, or stands, or moves on earth.

3. Here we have once more the same process before our eyes. The human mind begins with being startled by a single or repeated event, such as the lightning striking at tree and devouring a whole forest, or a spark of fire breaking forth from wood being rubbed against wood, whether in a forest, or in the wheel of a carriage, or at last in a fire-drill, devised on purpose. Man then begins to wonder at what to him is a miracle, none the less so because it is a fact, a simple, natural fact. He sees the effects of a power, but he can only guess at its cause, and if he is to speak of it, he can only do so by speaking of it as an agent, or as something like a human agent, and, if in some respects not quite human, in others more than human or super-man. Thus the concept of Fire grew, and while it became more and more generalised, it also became more sublime, more incomprehensible, more divine. Without Agni, without fire, light, and warmth, life would have been impossible. Hence he became the author and giver of life, of the life of plants and animals and of men ; and his favour having once been implored for 'light and life and all things', what wonder that in the minds of some poets, and in the traditions of this or that village community, he should have been raised to the rank of a supreme ruler, a god above all gods, their own true god !

4. We now proceed to consider the powers which the ancient poets might have discovered in the air, in the clouds, and, more particularly, in those meteoric conflicts which by thunder, lightning, darkness, storms, and showers of rain must have taught man that very important lesson that he was not alone in this world. Many philosophers, as you know, believe that all religion arose from fear or terror, and that without thunder and lightning to teach us, we should never have believed in any gods or god. This is a one-sided and exaggerated view. Thunderstorms, no doubt, had a large share

हैं कि) वेद यदि सचमुच या एक प्रकार का छलावा होते अथवा यह मान लिया जाए कि वेदों का वर्तमान रूप में संकलन सिकन्दर के आक्रमण के बाद हुआ है तो हम नदियों के नामों को कैसे समझ पाएँगे ? नदियों के ये ऐसे नाम हैं, संस्कृत में जिनके वास्तविक अर्थ विद्यमान हैं और उन यूनानियों ने, जो संस्कृत से सर्वथा अपरिचित थे, इन्हीं नामों का प्रयोग किया है। फिर यह कैसे कह सकते हैं कि यह सब ब्राह्मणों का वाग्जालमात्र है ?

77-78. मैंने आपके समक्ष यह नदीसूक्त और नदियों-सम्बन्धी मन्त्र दो उद्देश्यों से प्रस्तुत किए हैं। प्रथम यह कि इस नदीसूक्त से वैदिक ऋषियों द्वारा वर्णित उस विशाल भू-भाग के भौगोलिक क्षितिजों का पता चलता है, जिसके उत्तर में हिमाच्छादित पर्वत-शृंखलाएँ पश्चिम में सिन्धु नदी तथा सुलेमान पर्वतशृंखला, दक्षिण में सिन्धु या समुद्र और पूर्व में गंगा-यमुना का विशाल मैदान है। यद्यपि उससे आगे भी बहुत दूर तक का क्षेत्र यातायात के लिए खुला था, तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक ऋषियों का शायद उनके आगे के क्षेत्रों से परिचय न रहा हो। दूसरा उद्देश्य यह है कि इसी एक सूक्त के द्वारा ही एक प्रकार से वैदिक युग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का भी परिचय मिल जाता है। आज इन नदियों को हम जिस रूप में देखते हैं, सिकन्दर तथा मेसीडोनिया के उसके अन्य साथियों ने भी उन्हें उसी रूप में देखा तथा उससे भी पूर्व वैदिक ऋषि भी उन्हें उसी रूप में जानते-पहचानते थे। इस प्रकार हमें एक अविच्छिन्न ऐतिहासिक परम्परा का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। एक ऐसा जीवन्त साक्ष्य भी प्रस्तुत होता है, जो यह बताता है कि जिन लोगों के स्तुतिगान आज तक इस प्रकार आश्चर्यमय रूप से अपने मूल रूप में सर्वथा सुरक्षित रहकर हम तक पहुँच गए हैं, वे वास्तव में इस धरती के मानव थे। उनके अपने अलग-अलग गोत्र थे और गोष्ठ व पुरोहित भी थे। उनके ग्वाले और चरवाहे भी थे, पर्वतों की अधित्यका, उपत्यका एवं नदी-तटवर्ती मैदानों में उनकी बस्तियाँ बसी हुई थीं। जहाँ-तहाँ उनके पशुओं के लिए बड़े-बड़े बाड़े भी बने हुए थे। उनके कुछ सुदृढ़ दुर्ग भी थे। उस युग का मानव-जीवन सीमित और शान्त था। उन लोगों को दूसरों को धकेलकर आगे बढ़ने की आवश्यकता नहीं थी। क्रम-क्रम से आनेवाले बसन्त, ग्रीष्म और शरत् आदि वार्षिक ऋतुएँ उनको चिन्तन आगे भी सोचने-समझने के लिए प्रेरित करती थीं।

उनका धर्म भी था और उन्होंने यह भी भली-भाँति अनुभव कर लिया था कि इस सृष्टि-प्रपंच से परे भी कोई सत्ता है। जहाँ तक बन पड़ा, वे उस परात्पर सत्ता को किसी नामविशेष से अभिहित करने का प्रयत्न करने लगे और इस प्रकार 'धर्म' एक 'धर्म विशेष' के रूप में परिवर्तित हो गया।

in arousing feelings of awe and terror, and in making man conscious of his weakness and dependence. Even in the Veda Indra is introduced as saying : 'Yes, when I send thunder and lightning, then you believe in me.' But what we call religion would never have sprung from fear and terror alone. *Religion is trust*, and that trust arose in the beginning from the impressions made on the mind and heart of man by the order and wisdom of nature, and more particularly, by those regularly recurring events, the return of the sun, the revival of the moon, the order of the seasons, the law of cause and effect, gradually discovered in all things, and traced back in the end to a cause of all causes, by whatever name we choose to call it.

5. Still, the meteoric phenomena had, no doubt, their important share in the production of ancient deities ; and in the poems of the Vedic Rishis they naturally occupy a very prominent place. If we were asked who was the principal god of the Vedic period, we should probably, judging from the remains of that poetry which we possess, say it was Indra, the god of the blue sky, the Indian Zeus, the gatherer of the clouds, the giver of rain, the wielder of the thunder-bolt, the conqueror of darkness and of all the powers of darkness, the bringer of light, the source of freshness, vigour, and life, the ruler and lord of the whole world. Indra is this, and much more in the Veda. He is supreme in the hymns of many poets, and may have been so in the prayers addressed to him by many of the ancient septs or village communities in India. Compared with him the other gods are said to be decrepit old men. Heaven, the old Heaven or Dyaus, formerly the father of all the gods, nay the father of Indra himself, bows before him, and the Earth trembles at his approach. Yet Indra never commanded the permanent allegiance of all the other gods, like Zeus and Jupiter ; nay, we know from the Veda itself that there were sceptics, even at that early time, who denied that there was any such thing as Indra.

6. By the side of Indra, and associated with him in his battles, and sometimes hardly distinguishable from him, we find the representatives of the wind, called Vata or Vayu, and the more terrible storm-gods, the Maruts, literally the Smashers.

7. When speaking of the Wind, a poet says : 'Where was he born ? Whence did he spring ? The life of the gods, the germ of the world ! That god moves about where he listeth, his voices are heard, but he is not to be seen.'

8. The Maruts are more terrible than Vata, the wind. They are clearly the representatives of such storms as are known in India,

षष्ठ व्याख्यान

वैदिक देवता

1. दूसरी महत्वपूर्ण प्राकृतिक घटना या शक्ति जो वेदों में पृथ्वी की प्रतिनिधि बताई गई है, वह है अग्नि। संस्कृत अग्निः व लेटिन इग्नि एक ही है। वेदों में अग्नि की जैसी स्तुति-उपासना की गई है, उससे हम अनायास ही उस आरम्भिक ऐतिहासिक युग की कुछ पहचान कर लेते हैं, जब जीवन की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सुख-सुविधाएँ ही नहीं, अपितु स्वयं जीवन भी अग्नि को प्रकट कर सकने के ज्ञान पर निर्भर था। आज तो अग्नि हमारी इतनी जानी-पहचानी है कि उसके बिना जीवन की क्या दशा हो सकती है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। किन्तु, पुरातनकाल के पृथिवी-पुत्रों ने इस अग्नि पर काबू कैसे पाया होगा और उसे अपने नियन्त्रण में रखने का ज्ञान कैसे प्राप्त किया होगा ? वैदिक ऋषि का कथन है कि हमें अग्नि विद्युत् के रूप में अन्तरिक्ष से प्राप्त हुई थी। किन्तु, वह तत्क्षण ही विलीन हो गई। यूनानियों के प्रोमीथियस से मिलते-जुलते मातरिश्वा उसे फिर से धरती पर ले आए और सुरक्षित रखने के लिए उसे भृगु (फेलगु) गोत्र के ऋषियों को सौंप दिया। अन्यत्र दो काष्ठों की रगड़ से अग्नि के प्रकट होने की चर्चा है। यह विस्मयजनक तथ्य है कि जिन दो अरणियों के घर्षण से अग्नि को प्रकट करने का विधान है, संस्कृत में उनका नाम प्रमन्थ है। कुह्न ने बताया है कि यह प्रमन्थ और ग्रीक प्रोमीथियस मिलते-जुलते हैं। अग्नि चाहे यज्ञ-कुण्डों में सुरक्षित हो अथवा अरणी-मन्थन से प्रकट की गई हो, प्रारम्भिक सभ्यता का एक बहुत आगे बढ़ा हुआ कदम है। इससे मनुष्य कच्चा मांस खाने की अपेक्षा उसे पकाकर खाना सीख गए। अब वे रात्रि में भी कार्य करने लगे। सर्दियों में ठण्ड से ठिठुर जाने से भी वे बच गए। अतएव यदि ऋषियों ने अग्नि का एक श्रेष्ठ एवं अत्यन्त कृपालु देवता के रूप में अपनी ऋचाओं में स्तवन एवं यजन किया तो आश्चर्य क्या है ? ऋषियों ने स्वर्ग से उनके मध्य निवास करने के लिए धरती पर अवतरित मनुष्य के सच्चे हितैषी, मित्र और देवताओं के संदेशवाहक दूत और इसी प्रकार मानव द्वारा समर्पित हवि को देवताओं तक पहुँचाने के माध्यम मर्त्य जीवों में एकमात्र अमर देवता के रूप में ऋषियों ने यदि अग्नि का स्तवन भजन किया तो इसमें आश्चर्य क्या है। अग्नि ही आर्यों की बस्तियों की रक्षा करता है तथा उनके श्यामवर्ण शत्रुओं को वह उनसे दूर रखता है।

2. उसी समय वैदिक ऋषियों ने उष्णता और प्रकाश के रूप में भी अग्नि को पहचान लिया था। तब अग्नि को चूल्हे या यज्ञकुण्ड आदि तक ही सीमित नहीं, अपितु उषा और सूर्य तथा उससे भी आगे तक व्यापक रूप में अनुभव किया जाने लगा। उसी समय यह अनुभव कर लिया गया कि अग्नि के प्रभाव से ही पृथिवी पर सस्य तथा फल आदि पकाते हैं तथा मानव, या मानव ही क्यों, प्राणिमात्र के शरीर मे विद्यमान अग्नि से

when the air is darkened by dust and clouds, when in a moment the trees are stripped of their foliage, their branches shivered, their stems snapped, when the earth seems to reel and the mountains to shake, and the rivers are lashed into foam and fury. Then the poet sees the Maruts approaching with golden helmets, with spotted skins on their shoulders, brandishing golden spears, whirling their axes, shooting fiery arrows, and cracking their whips amidst thunder and lightning. They are the comrades of Indra, sometimes, like Indra, the sons of Dyaus or the sky, but also the sons of another terrible god, called Rudra, or the Howler, a fighting god, to whom many hymns are addressed. In him a new character is evolved, that of a healer and saviour,—a very natural transition in India, where nothing is so powerful for dispelling miasmas, restoring health, and imparting fresh vigour to man and beast, as a thunderstorm, following after weeks of heart and drought.

9. All these and several others, such as Parjanya and the Ribhus, are the gods of mid-air, the most active and dramatic gods, ever present to the fancy of the ancient poets, and in several cases, the prototypes of later heroes, celebrated in the epic poems of India. In battles, more particularly, these fighting gods of the sky were constantly invoked. Indra is the leader in battles, the protector of the bright Aryans, the destroyer of the black aboriginal inhabitants of India. 'He has thrown down fifty thousand black fellows,' the poet says, 'and their strongholds crumbled away like an old rag.' Strange to say, Indra is praised for having saved his people from their enemies, much as Jehovah was praised by the Jewish prophets. Thus we read in one hymn that when Sudas, the pious king of the Tritsus, was pressed hard in his battle with the ten kings, Indra changed the flood into an easy ford, and thus saved Sudas.

10. In another hymn we read : "Thou hast restrained the great river for the sake of Turviti Vavya : the flood moved in obedience to thee, and thou madest the rivers easy to cross.' This is not very different from the Psalmist (lxxviii. 13) : 'He divided the sea, and caused them to pass through ; and he made the waters to stand as an heap.'

11. And there are other passages which have reminded some students of the Veda of Joshua's battle, when the sun stood still and the moon stayed, until the people had avenged themselves upon their enemies. For we read in the Veda also that 'Indra lengthened the days into the night,' and that 'the Sun unharnessed his chariot in the middle of the day.'

ही उनके शरीर गर्म रहते हैं, और वे जीवित रहते हैं। इसीलिए अग्नि को दूसरी सभी दैविक शक्तियों से परमोच्च देवाधिदेव के रूप मे स्वीकार किया गया। कहा गया है कि अग्नि ने ही इस धरती और आकाश को विस्तृत या व्याप्त किया हुआ है। क्योंकि अग्नि के बिना न तो धरती और आकाश दिखाई ही दे सकते थे और न उन्हें पृथक्-पृथक् रूप में पहचाना ही जा सकता था। एक अन्य ऋषि का कथन है कि अग्नि ने ही इस आकाश को अपने प्रकाश में थामा हुआ है और उसी के कारण धरती और आकाश ये दोनों पृथक्-पृथक् हैं। अन्त में कहा गया है कि अग्नि से ही पृथिवी और आकश उत्पन्न हुए हैं तथा वही इन दोनों का पिता है। इस पृथिवी और आकाश के बीच उड़ने वाले या चलने-फिरनेवाले, स्थावर और जंगम सबका निर्माता और पिता भी अग्नि ही है।

3. यहाँ फिर वही प्रक्रिया हमारी आँखों के सामने घूम जाती है। यदा-कदा अथवा नियमित रूप से घटित होनेवाली प्राकृतिक घटनाओं से मानव-मस्तिष्क आश्चर्याभिभूत हो उठता था, जैसेकि कभी कड़कती हुई बिजली किसी वृक्ष पर गिरकर उसे ध्वस्त कर देती, या पूरे-के-पूरे किसी वन को जलाकर भस्म कर डालती। आकाश से गिरनेवाली बिजली ही क्यों, जंगलों में वृक्षों की आपसी रगड़ से उत्पन्न आग की एक चिंगारी भी यह सब-कुछ कर सकती थी। वही अग्नि यदा-कदा रथ के पहियों की धुरी और नेमी की रगड़ से भी प्रकट हो जाया करती थी। अन्ततोगत्वा मानव ने उसे यज्ञादि के लिए अरणीमन्थन के द्वारा भी प्रकट कर लिया। तब मानव यह सोचने लगा कि भले ही किसी भी रूप में अग्नि का प्रकट होना मात्र एक साधारण-सी प्राकृतिक घटना ही क्यों न हो, तथापि यह किसी भी बड़े-से-बड़े आश्चर्य से कम नहीं है। इस प्रकार वह किसी भी शक्ति को प्रत्यक्ष देखता और अनुभव तो करता था, किन्तु, उसका वास्तविक कारण क्या है, इसकी तो वह कल्पना ही नहीं कर पाया, न अनुमाम ही लगा पाया। इसलिए उसने इन सब शक्तियों की स्वतन्त्र सत्ता न मानकर एक ऐसा माध्यम मानना ठीक समझा जिसके द्वारा वह दिव्य शक्ति व्यक्त हो रही है। अधिक-से-अधिक उसने इन्हें उस शक्ति का प्रतिनिधि मात्र मान लिया। किसी अंश में ये शक्तियाँ उस दिव्य शक्ति की ठीक वैसी ही प्रतिनिधि नहीं थीं, जैसाकि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति का प्रतिनिधि होता है। किन्तु दूसरी ओर वे मानवीय अथवा अतिमानवीय शक्तियों से भी कहीं बढ़कर थे। इस प्रकार अग्नितत्त्व की व्यापकता बढ़ने लगी। जैसे-जैसे इसकी व्यापकता का विस्तार होता गया, वैसे-वैसे अग्नि एक पदार्थवाचक तत्त्व न रहकर ऐसी भाववाचक संज्ञा के रूप मे गृहीत होने लगी, जो कहीं अधिक अज्ञेय और दिव्य है। अग्नि के बिना प्रकाश और उष्णता असम्भव थे और इन दोनों प्रकाश और उष्णता के अभाव में भला जीवन भी कैसे रह पाता! ऐसी स्थिति में अग्नि को जीवनदाता और प्राणिमात्र का त्राता मान लेना स्वाभाविक ही था। केवल प्राणी ही क्यों, वृक्ष आदि उद्भिज्जों में भी उसी के द्वारा तो जीवन-संचार होता था। इस प्रकार प्रकाश एवं जीवन तथा सम्पूर्ण पदार्थों के प्रदाता के रूप में अग्नि का स्तवन एवं उसके लिए यज्ञ-याग आदि किए जाने लगे। तब यदि यह कामना की गई कि अग्नि की कृपा हमपर सदा बनी रहे और वह सदा हमारे अनुकूल रहे,

12. In some of the hymns addressed to Indra his original connection with the sky and the thunderstorm seems quite forgotten. He has become a spiritual god, the only king of all worlds and all people, who sees and hears everything, nay, who inspires men with their best thoughts. No one is equal to him, no one excels him.

13. The name of Indra is peculiar to India, and must have been formed after the separation of the great Aryan family had taken place, for we find it neither in Greek, nor in Latin, nor in German. There are Vedic gods, as I mentioned before, whose names must have been framed before that separation, and which occur therefore, though greatly modified in character, sometimes in Greek, sometimes in Latin, sometimes in the Celtic, Teutonic, and Slavonic dialects. Dyaus, for instance, is the same word as Zeus or Jupiter, Ushas is Eos, Nakta is Nyx, Surya is Helios, Agni is ignis, Bhaga is Baga in Old Persian, Bogu in Old Slavonic, Varuna is Uranos, Vak is vox, and in the name of the *Maruts*, or the storm-gods, the germs of the Italic god of war, Mars, have been discovered. Besides these direct coincidences, some indirect relations have been established between Hermes and Sarameya, Dionysos and Dyunisya, Prometheus and Pramantha, Orpheus and Ribhu, Erinnys and Saranyu, Pan and Pavana.

14. But while the name of Indra as the god of the sky, also as the god of the thunderstorm, and the giver of rain, is unknown among the North-western members of the Aryan family, the name of another god who sometimes acts the part of Indra, but is much less prominent in the Veda, I mean Parjanya, must have existed before that of Indra, because two at least of the Aryan languages have carried it, as we shall see, to Germany, and to the very shores of the Baltic.

15. Sometimes this Parjanya stands in the place of Dyaus, the sky. Thus we read in the Atharva-veda : 'The Earth is the mother, and I am the son of the Earth. Parjanya is the father ; may he help us !'

In another place the Earth, instead of being the wife of Heaven or Dyaus, is called the wife of Parjanya.

16. Now who or what is this Parjanya ? There have been long controversies about him, as to whether he is the same as Dyaus, Heaven, or the same as Indra, the successor of Dyaus, whether he is the god of the sky, of the cloud, or of the rain.

17. To me it seems that this very expression, god of the sky, god of the cloud, is so entire an anachronism that we could not even

तो इसमें आश्चर्य कैसा ? कुछ कवियों ने अपने मन में तथा अनेक ग्राम-समुदायों की लोक-परम्परा में अनायास ही अग्नि को सर्वोच्च देवता के रूप में स्वीकार कर लिया। वही उनका एकमात्र सच्चा देवता बन गया।

4. थोड़ा आगे बढ़कर प्राचीन ऋषियों ने वायु, मेघ तथा तड़ित, बिजली की चमक और कड़क, आँधी-तूफान, झंझावत और मूसलाधार वर्षा आदि के रूप में जिन शक्तियों का साक्षात्कार किया था, अब हमें उनके बारे में कुछ विचार करना है। इन नानाविध प्राकृतिक शक्तियों को देखकर मनुष्य ने सोचा होगा कि इस विश्व में वह एकाकी नहीं है। आप जानते हैं कि कई दार्शनिक मानते हैं कि 'भय या सन्त्रास के कारण ही सब धर्म उपजे हैं। यदि बिजली की कड़क और चमक हमें नहीं सिखाती तो हम कदापि किसी देवी-देवता को न मानने लगते।' मेरी समझ में यह धारणा सर्वथा अतिशयोक्तिपूर्ण और एकांगी है। माना कि बिजली की कड़क-चमक मानव के मन में सन्त्रास और भय उत्पन्न करने का एक कारण हो सकती है, और यह भी कि उससे मनुष्य को अपनी दुर्बलता तथा पराश्रितता का भी कदाचित् कुछ अनुभव अवश्य हुआ होगा, यहाँ तक कि वेद में भी इन्द्र को हम यह कहते हुए पाते हैं—'मेरी बिजली की कड़क, चमक और तड़क जब धरती तक पहुँचती है तभी तुम मुझमें विश्वास करने लगते हो।' किन्तु, जिसे हम धर्म कहते हैं, उसका विकास तो मात्र भय की भावना से कदापि सम्भव नहीं। धर्म का अर्थ है विश्वास। प्रकृति में नियमित रूप से घटित होनेवाले सूर्योदय, चन्द्रमा की नियमित क्षय-वृद्धि, ऋतु-चक्र का यथानियम व यथासमय प्रादुर्भाव जैसी सामान्य प्राकृतिक घटनाओं के निश्चित क्रम के अवबोध के फलस्वरूप मानव के मन-मस्तिष्क में निश्चित ही विश्वास की वह भावना जागृत हुई होगी। इसी क्रम से आगे बढ़ते-बढ़ते मनुष्य इस निष्कर्ष पर पहुँचा होगा कि धरती पर सूर्य, चन्द्र, वायु, वर्षा आदि जितने भी जीवन के कारण दिखाई देते हैं, निश्चित ही उन सब कारणों का भी कोई कारण है, हम उस आदिकारण को चाहे कोई भी नाम क्यों न दें।

5. तथापि, यह तो मानना ही होगा कि नानाविध देवगणों के प्रादुर्भाव में इन विविध प्राकृतिक घटनाओं का बहुत बड़ा हाथ रहा है। यही कारण है कि वैदिक ऋषियों की रचनाओं में स्वभावतः उक्त प्राकृतिक घटनाओं का स्थान भी काफी महत्त्वपूर्ण है। यदि हमसे पूछा जाए कि वैदिक युग में प्रमुख देवता कौन था तो ऋग्वेद के जितने मन्त्र आज तक हमारे पास सुरक्षित हैं, उनके आधार पर इसी निर्णय पर पहुँचा जा सकता है कि इन्द्र को ही वैदिक युग में प्रमुख देवता माना जाता था। भारत का यह ज्यूपिटर इस नीले आकाश का देवता है। वही मेघ संघातों को घनीभूत करता है। वर्षा और वज्रपात भी वही करता है। अन्धकार को छिन्न-भिन्न कर सर्वत्र प्रकाश भी वही फैलता है। शक्ति, स्फूर्ति एवं जीवन-तत्त्व का कारण भी वही है। वह सम्पूर्ण विश्व का शासक एवं स्वामी है। ऐसा है इन्द्र। वस्तुतः वैदिक इन्द्र इससे भी कहीं बढ़-चढ़कर है। ऋषियों के अनेक सूक्तों में इन्द्र को ही सर्वातिशायी देवता के रूप में चित्रित किया गया है। प्राचीन वैदिक परम्परा एवं मान्यताओं में इन्द्र की महिमा अपार है, अकथनीय है। आकाश या द्यौः

translate it into Vedic Sanskrit without committing a solecism. It is true, no doubt, we must use our modern ways of speaking when we wish to represent the thoughts of the ancient world; but we cannot be too much on our guard against accepting the dictionary representative of an ancient word for its real counterpart. Deva, no doubt, means 'gods' and 'god', and Parjanya means 'cloud', but no one could say in Sanskrit parjanyasya devah, 'the god of the cloud'. The god, or the divine or transcendental element, does not come from without, to be added to the cloud or to the sky or to the earth, but it springs from the cloud and the sky and the earth, and is slowly elaborated into an independent concept. As many words in ancient languages have an undefined meaning, and lend themselves to various purposes according to the various intentions of the speakers, the names of the gods also share in this elastic and plastic character of ancient speech. There are passages where Parjanya means cloud, there are passages where it means rain.

18. There are passages where Parjanya takes the place which elsewhere is filled by Dyaus, the sky, or by Indra, the active god of the atmosphere. This may seem very wrong and very unscientific to the scientific mythologist. But it cannot be helped. It is the nature of ancient thought and ancient language to be unscientific, and we must learn to master it as well as we can, instead of finding fault with it, and complaining that our forefathers did not reason exactly as we do.

19. There are passages in the Vedic hymns where Parjanya appears as a supreme god. He is called father, like Dyaus, the sky. He is called asura, the living or life-giving god, a name peculiar to the oldest and the greatest gods. One poet says, 'He rules as god over the whole world ; all creatures rest in him ; he is the life (atma) of all that moves and rests.'

20. Surely it is difficult to say more of a supreme god than what is here said of Parjanya. Yet in other hymns he is represented as performing his office, namely that of sending rain upon the earth, under the control of Mitra and Varuna, who are then considered as the highest lords, the mightiest rulers of heaven and earth.

21. There are other verses, again, where Parjanya occurs with hardly any traces of personality, but simply as a name of cloud or rain.

Thus we read : 'Even by day the Maruts (the storm-gods) produce darkness with the cloud that carries water, when they moisten the earth.' Here cloud is Parjanya, and it is evidently used as an

जिसे पहले सब देवताओं का पिता माना जाता था, यहाँ तक कि द्यौः स्वयं इन्द्र का भी पिता है, वही अब इन्द्र के आगे नतमस्तक होता है। बेचारी धरती इन्द्र के भय से काँपती रहती है। इतना सब-कुछ होते हुए भी जैसे यूनानियों का ज्यूस् और जुपितर सदा के लिए सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित हो गए, वैसे इन्द्र कभी सर्वदा के लिए सर्वोच्च स्थान न पा सका। यहाँ तक कि वेदों से ही हमें ज्ञात होता है कि उसी युग में ऐसी मान्यता या मत का भी प्रचलन था जिसमें इन्द्र नामक किसी देवता के अस्तित्व को ही नहीं स्वीकारा गया।

6-7. इन्द्र के साथ-ही-साथ, युद्धों में उसके सहयोगी के रूप में हम वायु देवता को भी पाते हैं। कहीं-कहीं तो इन्द्र और वायु में अन्तर करना भी कठिन हो जाता है। वात या वायु देवता के साथ इनका एक अधिक उग्ररूप है 'मरुद्गण'। मरुत् शब्द का अर्थ है मारक या संहारक वायु देवता की चर्चा करते हुए एक ऋषि का कथन है कि यह वायु भला कहाँ से उत्पन्न होता है? वह कहाँ से और कैसे प्रवाहित होता है? यह जो वायु सारे विश्व और देवगणों का जीवनाधार एवं उत्पादक है, जो सब देवताओं का संचालक है, वह वायु कहाँ से प्रादुर्भूत होता है? उसकी ध्वनियाँ सुनायी देती हैं, किन्तु वह कभी दिखाई नहीं देता।

8. 'मरुद्गण' वात या वायुदेवता से अधिक उग्र हैं। ये ऐसे प्रभंजन के प्रतिनिधि हैं, जिनका भारतवासियों को प्रतिवर्ष अनुभव होता है। भारत में जब ये आंधियाँ चलती हैं, तो इतनी धूल उड़ती है कि धरती और आकाश अन्धकाराच्छादित हो जाते हैं। साथ ही यदि कभी मूसलाधार वर्षा भी होने लगे तो इसकी उग्रता अवर्णनीय हो उठती है। बड़े-बड़े वृक्ष देखते-ही-देखते चटचट करते हुए धराशायी हो जाते हैं। सभी प्रकार के छोटे-बड़े पादप एवं लताओं आदि के पत्ते झड़-झड़कर गिरने लगते हैं। बड़े-बड़े जंगलों में वृक्ष-समूहों की डालियाँ ऐसे जोर से हिलने लगती हैं, मानो वे इन मरुद्गणों से भयभीत होकर थर-थर काँप उठी हों। भारी-भरकम पुराने-से-पुराने वृक्ष भी जड़ से उखड़ जाते हैं। लगता है कि धरती किसी चक्रवात में पड़कर घूम गई हो। पहाड़ भी हिल उठते हैं। तब नदियाँ भी आवेग में भरकर झाग से उफनती हुई तीव्र वेग से प्रवाहित होने लगती हैं। ऐसे ही दृश्य को देखकर कवि को लगा कि मानो सुनहरी शिरस्त्राण और कन्धों पर व्याघ्र-चर्म धारण किए, तथा अपने हाथों में पकड़े हुए सुनहरी भालों और फरसों को चमकाते हुए स्वयं मरुद्गण इन प्रभंजनों के रूप में प्रकट हो रहे हैं। बादलों के गर्जन-तर्जन और बिजली की कड़कभरी कौंध ही मानो उनके लहराते हुए दिव्य चाबुक की चमक है। वे इन्द्र के सहायक हैं। यदा-कदा उन्हें भी इन्द्र की भाँति द्यौः का पुत्र बताया गया है, किन्तु वे रुद्र के पुत्र भी कहे गए हैं। रुद्र का स्तवन ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में किया गया है। कष्टनिवारक एवं रक्षक के रूप में भी रुद्र का वैशिष्ट्य व्यक्त हुआ है। रुद्र के संहारक और संरक्षक, दोनों ही रूप भारत जैसे देश के लिए सर्वथा स्वाभाविक हैं। ग्रीष्म ऋतु में सप्ताहों तक पड़नेवाली गर्मी, सूखे और दूषित वाष्प के प्रभाव का अन्त कर फिर से मानव व अन्य सभी जीवों में नवचेतना, जागृति, स्वास्थ्यप्रद एवं शक्तिप्रदायक, सुखदायक

appellative, and not as a proper name. The same word occurs in the plural also, and we read of many parjanyas or clouds vivifying the earth.

22. When Devapi prays for rain in favour of his brother, he says : 'O lord of my prayer (Brihaspati) whether thou be Mitra or Varuna or Pushan, come to my sacrifice ! Whether thou be together with the Adityas, the Vasus or the Maruts, let the cloud (parjanya) rain for Santanu.'

And again : 'Stir up the rainy cloud' (parjanya).

23. In several places it makes no difference whether we translate parjanya by cloud or by rain, for those who pray for rain, pray for the cloud, and whatever may be the benefits of the rain, they may nearly all be called the benefits of the cloud. There is a curious hymn, for instance, addressed to the frogs who, at the beginning of the rains, come forth from the dry ponds, and embrace each other and chatter together, and whom the poet compares to priests singing at a sacrifice, a not very complimentary remark from a poet who is himself supposed to have been a priest. Their voice is said to have been revived by parjanya, which we shall naturally translate 'by rain, though, no doubt, the poet may have meant, for all we know, either a cloud, or even the god Parjanya himself.

24. I shall try to translate one of the hymns addressed to Parjanya, when conceived as a god, or at least as so much of a god as it was possible to be at that stage in the intellectual growth of the human race.

1. 'Invoke the strong god with these songs ! praise Parjanya, worship him with veneration ! for he, the roaring bull, scattering drops, gives seed-fruit to plants.

2. 'He cuts the trees asunder, he kills evil spirits; the whole world trembles before his mighty weapon. Even the guiltless flees before the powerful, when Parjanya thundering strikes down the evil-doers.

3. 'Like a charioteer, striking his horses with a whip, he puts forth his messengers of rain. From afar arise the roarings of the lion, when Parjanya makes the sky full of rain.

4. 'The winds blow, the lightnings fly, plants spring up, the sky pours. Food is produced for the whole world, when Parjanya blesses the earth with his seed.

5. 'O Parjanya, thou at whose work the earth bows down, thou at whose work hoofed animals are scattered, thou at whose

सुहावनी स्फूर्ति का संचार करने के लिए भंयकर आँधी-तूफानों के बाद आनेवाली इस मूसलाधार वर्षा से बढ़कर भला और क्या हो सकता है ! बस, यही हैं रुद्र के उग्र एवं सौम्य-सुखद दोनों प्राकृतिक स्वरूप ।

9. इन सबके साथ पर्जन्य और ऋभु आदि अन्य अनेक देवगण भी मध्यम लोक (अन्तरिक्ष) के हैं । प्राचीन वैदिक ऋषियों ने जितने भी देवताओं की कल्पना की होगी, उनमें ये दोनों अत्यन्त सक्रिय, गतिशील और विविध रूपधारी हैं। आगे चलकर रामायण, महाभारत आदि महाकाव्यों में वर्णित महापराक्रमी वीरों का इन्हें किसी अंश में पूर्वरूप कहा जा सकता है । इन अन्तरिक्षीय या मध्यम लोक के युद्ध-देवताओं का लड़ाई-भिड़ाई या युद्ध के प्रसंगों में ही स्तवन किया जाता था । इन्द्र वस्तुतः युद्ध में देवसेना का नेतृत्व करते हैं । वे भारत के कृष्णवर्ण आदिवासियों को युद्ध में पराजित कर गौरवर्ण आर्यों की रक्षा किया करते थे । ऋषि ने एक ऋचा में कहा है कि 'इन्द्र ने अपने पचास हजार कृष्ण-वर्ण शत्रुओं को पराजित कर दिया तथा उनके अत्यन्त दृढ़ दुर्गों को एक पुराने गले-सड़े चिथड़े की भाँति ध्वस्त कर डाला । यह देखकर आश्चर्य होता है कि अपने लोगों की रक्षा करनेवाले इन्द्र का स्तवन वेद में वैसे ही किया गया है जैसेकि यहूदी पैगम्बरों ने यहोवा की प्रशंसा की है । इसी प्रकार एक सूक्त में यह बताया गया है कि दाशराज्ञ युद्ध में जब तृत्सुओं के राजा सुदास पर उनके दस शत्रुओं की सेनाएँ टूट पड़ीं तो इन्द्र ने नदी-प्रवाह को इतना उथला कर दिया कि वह ससैन्य उसके पार जा पहुँचा । इस प्रकार इन्द्र ने सुदास की रक्षा की ।'

10. एक अन्य सूक्त में भी कहा गया है कि, तुर्विति वैय्य की रक्षा के लिए हे इन्द्र, आपने नदी के विस्तृत प्रवाह को रोक दिया था । नदियों की बाढ़ें आपकी आज्ञा में रहती हैं । ताकि लोग उन्हें अनायास ही पार कर जाएँ ।' ऋग्वेद का यह वर्णन भी प्सा-मिस्ट (78.13) के इस कथन से बहुत भिन्न नहीं है 'उसने समुद्र को विभाजित कर दिया और इस प्रकार उसे पारगम्य बना दिया । साथ ही उसने जलौध को स्तम्भ की भाँति स्थिर कर दिया ।'

11. इसी प्रकार वेद में कुछ प्रसंग ऐसे भी हैं जिन्हें पढ़कर योशुआ के उस युद्ध का स्मरण हो आता है जहाँ कहा गया है कि 'जब तक वहाँ के लोगों ने अपने शत्रुओं पर विजय नहीं प्राप्त कर ली, तब तक सूर्य अपने एक ही स्थान पर स्थिर खड़ा रहा और चन्द्रमा भी अपने स्थान से हिला-डुला नहीं ।' वेद में भी कहा गया है कि 'इन्द्र ने दिन को इतना लम्बा कर दिया कि रात नहीं होने पायी ।' यह भी कि—'सूर्य ने अपने रथ को मध्याह्न में जहाँ-का-तहाँ स्थिर कर दिया ।'

12. कुछ सूक्तों में इन्द्र अन्तरिक्ष एवं से स्तनयित्नु मेघ आदि के सम्बन्ध को भुला दिया गया है । यहाँ इन्द्र एक आध्यात्मिक देवता के रूप में प्रतिष्ठित है । इन्द्र ही सारे विश्व और सब लोगों का एकमात्र ऐसा सम्राट् है, जो सब कुछ देखता-सुनता है, यहाँ तक कि वह लोगों को सत्कर्म करने के लिए उनकी सद्बुद्धियों को भी प्रेरित करता है । उसके समान अन्य कोई नहीं है, उससे बढ़कर भी दूसरा कोई नहीं है ।

work the plants assume all forms, grant thou to us thy great protection !

6. 'O Maruts, give us the rain of heaven, make the streams of the strong horse run down ! And come thou hither with thy thunder, pouring out water, for thou (O Parjanya) art the living god, thou art our father.

7. 'Do thou roar, and thunder, and give fruitfulness ! Fly around us with thy chariot full of water ! Draw forth thy water-skin, when it has been opened and turned downward, and let the high and the low places become level !

8. 'Draw up the large bucket, and pour it out ; let the streams pour forth freely ! Soak heaven and earth with fatness ! and let there be a good draught for the cows !

9. 'O Parjanya, when roaring and thundering thou killest the evil-doers, then everything rejoices, whatever lives on earth.

10. 'Thou hast sent rain, stop now ! Thou hast made the deserts passable, thou hast made plants grow for food, and thou hast obtained praise from men.'

25. This is a Vedic hymn, and a very fair specimen of what these ancient hymns are. There is nothing very grand and poetical about them, and yet, I say, take thousands and thousands of people living in our villages, and depending on rain for their very life, and not many of them will be able to compose such a prayer for rain, even though three thousand years have passed over our heads since Parjanya was first invoked in India. Nor are these verses entirely without poetical conceptions and descriptions. Whoever has watched a real thunderstorm in a hot climate, will recognise the truth of those quick sentences, 'the winds blow, the lightnings fly, plants spring up, the hoofed cattle are scattered.' Nor is the idea without a certain drastic reality, that Parjanya draws a bucket of water from his well in heaven, and pours out skin after skin (in which water was then carried) down upon the earth.

26. There is even a moral sentiment perceptible in this hymn. 'When the storms roar and the lightnings flash and the rain pours down, even the guiltless trembles, and evildoers are struck down.' Here we clearly see that the poet did not look upon the storm simply as an outbreak of the violence of nature, but that he had a presentiment of a higher will and power which even the guiltless fear; for who, he seems to say, is entirely free from guilt ?

27. If now we ask again, Who is Parjanya ? or What is Parjanya ? we can answer that Parjanya was meant originally for the

13. इन्द्र का नाम केवल भारत में ही प्रचचित है। इससे अनायास ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आर्यों के अपने मूल-स्थान से विभिन्न दिशाओं में अग्रसर हो जाने के बाद ही इन्द्र अस्तित्व में आया, क्योंकि, हमें यूनान, इटली अथवा जर्मन आदि में इन्द्र के कहीं दर्शन नहीं होते। जैसाकि मैं पहले भी बता चुका हूँ बहुत से वैदिक देवता ऐसे हैं, जिनके नाम आर्यों के उक्त महाविभाजन से पूर्व ही सुप्रचलित हो चुके थे। इसीलिए उन देवताओं के नाम कभी ग्रीक में, कभी लेटिन में, कभी केल्टिक में अथवा ट्यूटानिक एवं स्लावेनिक वर्ग की विभाषाओं में मिलते रहते हैं, भले ही उन भाषाओं में वे नाम किंचिद् रूपान्तरित ही क्यों न हो गए हों। उदाहरण के लिए वेद का द्यौः ही ग्रीक ज्यूस और लेटिन का जुपिटर है। वैदिक उषा वहाँ इओस है। नक्त ग्रीक निख। संस्कृत सूर्य ग्रीक भाषा का हेलीओस है, अग्नि,⋯इग्नि है। भगः ही पुरानी फारसी में बग तथा पुरानी स्लावोनिक में बोग है। वरुण यूरेनस है। वाक् वोक्स है, इटली का युद्ध देवता मार्स मरुत ही है ऐसे प्रत्यक्ष रूपों के साथ—

सारमेय और हेरमेस प्रमन्थ और अंग्रेजी प्रीमेथिस भी यही है—सरण्यु तथा एरेन्यु, पवन तथा पान ऋभु तथा ओरफियस आदि में भी समानता है।

14-15. किन्तु अन्तरिक्ष के मेघ आदि के देवता तथा वृष्टिकारक इन्द्र से भले ही आर्यों की पश्चिमोत्तरीय शाखा के सदस्य अपरिचित हों, तथापि एक अन्य देवता जो यदा-कदा इन्द्र के कार्य सम्पन्न करता हुआ भी वेदों में कुछ अधिक महत्व प्राप्त नहीं कर पाया, 'पर्जन्य' इन्द्र से बहुत पहले ही से विद्यमान रहा होगा। क्योंकि, जैसाकि हम आगे देखेंगे, जर्मनी तथा बाल्टिक सागर के तटवर्ती प्रदेशों के निवासी आज भी इस पर्जन्य से भली-भाँति परिचित हैं। वेदों में भी एकाध स्थान पर इस पर्जन्य को द्यौः का स्थानीय माना गया है। अथर्ववेद में कहा गया है कि 'भूमि मेरी माता है और मैं पृथिवी का पुत्र हूँ। पर्जन्य पिता है। वह हमारी सर्वविध सहायता करे।' एक अन्य स्थान पर पृथिवी को द्यौः की पत्नी न कहकर पर्जन्य की पत्नी बताया गया है।

16. यह पर्जन्य क्या है या कौन है? इस विषय में अत्यधिक मतभेद हैं। क्या यह वही द्यौः है, या वह वैसा ही है जैसाकि द्यौः का उत्तराधिकारी इन्द्र है? वह क्या आकाश का, या मेघों का अथवा वृष्टि का देवता है?

17. मुझे लगता है कि आकाश का देवता अथवा मेघ का देवता आदि शब्दों में कालगणना ऐसी गड्डमड्ड हो गई है कि व्याकरण की अशुद्धि को ठीक किए बिना हम इन शब्दों का वैदिक संस्कृत में भी अनुवाद नहीं कर सकते। यह ठीक है कि प्राचीन युग की भावनाओं को व्यक्त करने के लिए भी हमें आधुनिक शब्दावली का ही सहारा लेना होगा; किन्तु किसी प्राचीन शब्द से सम्बद्ध या समकक्ष किसी दूसरे शब्द का ठीक से प्रतिनिधित्व करनेवाला कोई शब्द हम आधुनिक शब्दकोशों के सहारे कदापि नहीं ढूँढ पाएँगे। निस्सन्देह अंग्रेजी में देव शब्द का अर्थ गॉड या गॉड्स किया जाता है। इसी प्रकार पर्जन्य शब्द का अर्थ मेघ है। किन्तु संस्कृत में 'पर्जन्यस्य देवः' जैसे शब्द का प्रयोग कदापि नहीं किया जाता। देव अथवा दैव अथवा कोई भी द्युतिमान् तत्त्व यूँ कहें कि कोई भी

cloud, so far as it gives rain; but as soon as the idea of a giver arose, the visible cloud became the outward appearance only, or the body of that giver, and the giver himself was somewhere else, we know not where. In some verses Parjanya seems to step into the place of Dyaus, the sky, and Prithivi, the earth, is his wife. In other places, however, he is the son of Dyaus or the sky, though no thought is given in that early stage to the fact that thus Parjanya might seem to be the husband of his mother. We saw that even the idea of Indra being the father of his own father did not startle the ancient poets beyond an exclamation that it was a very wonderful thing indeed.

28. Sometimes Parjanya does the work of Indra, the Jupiter Pluvius of the Veda ; sometimes of Vayu, the wind, sometimes of Soma, the giver of rain. Yet with all this he is not Dyaus, nor Indra, nor the Maruts, nor Vayu, nor Soma. He stands by himself, a separate person, a separate god, as we should say—nay, one of the oldest of all the Aryan gods.

If derived from parj, to sprinkle, Parjanya would have meant originally 'he who irrigates or gives rain '

29. When the different members of the Aryan family dispersed, they might all of them, the ancestors of Hindus as well as of Greeks and Celts, and Teutons and Slavs, have carried that name for cloud with them. But you know that it happened very often that out of the common wealth of their ancient language, one and the same word was preserved, as the case might be, not by all, but by only six, or five, or four, or three, or two, or even by one only of the seven principal heirs ; and yet, as we know that there was no historical contact between them, after they had once parted from each other, long before the beginning of what we call history, the fact that two of the Aryan languages have preserved the same finished word with the same finished meaning, is proof sufficient that it belonged to the most ancient treasure of Aryan thought.

30. Now there is no trace, at least no very clear trace, of Parjanya, in Greek or Latin or Celtic, or even in Teutonic. In Slavonic, too, we look in vain, till we come to that almost forgotten side-branch called the *Lettic*, comprising the spoken *Lituanian* and *Lettish*, and the now extinct *Old Prussian*. The Lituanian language, even as it is now spoken by the common people, contains some extremely primitive grammatical forms—in some cases almost identical with Sanskrit. These forms are all the more curious,

मेघ, अन्तरिक्ष या पृथिवी के साथ संयुक्त हुए बिना कही बाहर से व्यक्त नहीं होता। ये मेघ अन्तरिक्ष और पृथिवी से ही प्रादुर्भूत होने हैं और धीरे-धीरे प्रत्येक देव का स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रकट होने लगता है।

18. पुरानी भाषाओं में बहुत-से ऐसे शब्द हैं, जिनका कोई एक ही सुनिश्चित अर्थ नहीं है और वे यथावसर विभिन्न प्रयोजनों के लिए वक्ता की अलग-अलग भावनाओं के अनुसार तत्तद् अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। प्राचीन भाषा की इस लचीली और संयोजक प्रकृति में यह देव शब्द भी समविष्ट है। मन्त्रों में ऐसे पद देखने को मिलते हैं, जहाँ एक स्थान पर 'पर्जन्य' से मेघ अभिप्रेत है, तो दूसरे स्थान पर यही शब्द वर्षावाचक तथा अन्यत्र यह द्यौः अथवा अन्तरिक्ष या इन्द्र का पर्याय है। यह पृथिवी के वायु-मण्डल का वस्तुतः एक अत्यन्त सक्रिय देवता है। दैवतवाद का वैज्ञानिक ढंग से विवेचन करनेवाले को, यह अव्यवस्था बिल्कुल अवैज्ञानिक लगेगी। वह इसे सही नहीं मानेगा। किन्तु, दूसरी ओर इसे स्वीकार किए बिना कोई और चारा भी तो नहीं है। यह अवैज्ञानिकता प्राचीन चिन्तन एवं भाषा की प्रकृति है। इसलिए बजाय इसके कि हम इसकी त्रुटियाँ ढूँढ़ते रहें और यह शिकायत करते रहें कि हमारे पूर्वज तथा उनके कार्य-व्यवहार हमारे समान युक्तियुक्त नहीं हुआ करते थे, हमें चाहिए कि भाषा और चिन्तन-पद्धति की उस प्रक्रिया को भली-भाँति इस प्रकार हृदयंगम कर लें कि उस पर हमारा अधिकार हो जाए।

19. वैदिक ऋचाओं में ऐसे पद भी मिलते हैं जहाँ 'पर्जन्य' सर्वोच्च देवता के रूप में प्रकट होता है। द्यौः और अन्तरिक्ष की भाँति उसे भी पिता कहा गया है। उसे 'असुर'—प्राणप्रद या जीवनदाता के नाम से भी अभिहित किया गया है। 'असुर' शब्द प्राचीनतम तथा महानतम देवताओं के लिए ही विशेष रूप से प्रयुक्त हुआ है। एक ऋषि की उक्ति है—'वह देवता के समान इस सम्पूर्ण विश्व पर शासन करता है। वह सब प्राणियों का आश्रय है। सभी स्थावर-जंगम पदार्थों का वह आत्मा है।'

20. निश्चित ही उस देवाधिदेव के लिए इससे अधिक कहना कठिन है। तथापि एक अन्य सूक्त में पर्जन्य को मित्र और वरुण की अधीनता में पृथिवी पर वृष्टि करने का अपना कार्य करनेवाला बताया गया है। यहाँ मित्र और वरुण को पृथिवी और अन्तरिक्ष का सर्वोच्च एवं सर्वातिशायी शक्तिशाली देवता बताया गया है।

21. कुछ ऐसी ऋचाएँ भी मिलती हैं, जहाँ पर्जन्य के व्यक्तित्व या वैशिष्ट्य का चिह्न भी नहीं मिलता। वह मात्र मेघ या वर्षा के ही एक पर्यायवाचक के रूप में गृहीत है। एक मन्त्र में कहा गया है कि 'मरुद्गण दिन में भी धरती को तर कर देनेवाले जलवाहक पर्जन्यों से अन्धेरा कर देते हैं।' यहाँ पर्जन्य शब्द का प्रयोग व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में न होकर सामान्य रूप से हुआ है। पर्जन्य शब्द बहुवचन में भी प्रयुक्त है और कहा गया है कि ये बहुत-से पर्जन्य पृथिवी को जीवन प्रदान करते हैं।

22. देवापि अपने भाई शन्तनु के लिए वर्षा की प्रार्थना करता हुआ कहता है—'हे बृहस्पति (मेरे स्तव के अधिपति)! आप भले ही मित्र हों, या वरुण, अथवा पूषा, मेरे

because they are but few in number, and the rest of the language has suffered much from the wear and tear of centuries.

31. Now in that remote Lituanian language we find that our old friend Parjanya has taken refuge. There he lives to the present-day, while even in India he is almost forgotten, at least in the spoken languages ; and there, in Lituania, not many centuries back might be heard among a Christianised or nearly Christianised people, prayers for rain, not very different from that which I translated to you from the Rig-veda. In Lituanian the god of thunder was called *Perkunas*, and the same word is still used in the sense of thunder. In Old Prussian, thunder was *percunos*, and in Lettish to the present-day *perkons* is thunder, god of thunder.

32. It was, I believe, Grimm who for the first time identified the Vedic Parjanya with the Old Slavonic Perun, the Polish Piorun, the Bohemian Peraun. These words had formerly been derived by Dobrowsky and others from the root peru, I strike. Grimm showed that the fuller forms Perkunas, Pehrkons, and Perkunos existed in Lituanian, Lettish, Old Prussian, and that even the Mordvinians had adopted the name Porguini as that of their thunder-god.

33. Among the neighbours of the Lets, the Esthonians, who, though un-Aryan in language, have evidently learnt much from their Aryan neighbours, the following prayer was heard, addressed by an old peasant to their god *Picker* or *Picken*, the god of thunder and rain, as late as the seventeenth century :

34. 'Dear Thunder (woda Picker), we offer to thee an ox that has two horns and four cloven hoofs ; we would pray thee for our ploughing and sowing, that our straw be copper-red, our grain golden-yellow. Push elsewhere all the thick black clouds, over great fens, high forests, and wildernesses. But unto us, ploughers and sowers, give a fruitful season and sweet rain. Holy Thunder (poha Picken), guard our seed-field, that it bear good straw below, good ears above, and good grain within.'

35. Now, I say again, I do not wish you to admire this primitive poetry, primitive, whether it is repeated in the Esthonian fens in the seventeenth century of our era, or sung in the valley of the Indus in the seventeenth century before our era. Let aesthetic critics say what they like about these uncouth poems. I only ask you, Is it not worth a great many poems, to have established this fact, that the same god Parjanya, the god of clouds and thunder and lightning and rain, who was invoked in India a thousand years before India was discovered by Alexander, should have been remembered and believed in by Litu-

इस यज्ञ में पधारिये। आप चाहें तो आदित्य, वसु या मरुद्गणों के साथ पधारकर पर्जन्यों को मेरे भाई शन्तनु के लिए वर्षा करने दें।'

23. इसी प्रकार अन्यत्र कहा गया है कि 'इन वर्षा-पर्जन्यों को झकझोर डालिए।

अनेक प्रसंगों में 'पर्जन्य' शब्द का अर्थ मेघ या वर्षा कुछ भी करें, कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि, जो वर्षा के लिए प्रार्थना करते हैं, वे मेघ के लिए भी प्रार्थना करेंगे ही। वर्षा के जो भी लाभ होते हैं, वे सब पर्जन्यों के भी बताए जाते हैं। ऋग्वेद का एक बड़ा ही विचित्र सूक्त है—'मण्डूक सूक्त'। मेंढक वर्षा की बूँद पड़ते ही (अपनी सुदीर्घ छह मास की निद्रा के बाद) धरती के ऊपर आकर टर्राने लगते हैं। इन्ही मेंढकों का वर्णन इस सूक्त में किया गया है। इस सूक्त की यह ऋचा बड़ी मनोरंजक है। यहाँ ध्यान देने योग्य रोचक बात यह है कि ऋषि स्वयं भी तो वेदपाठी है, तथापि वह कहता है कि ये मेंढक ऐसे टर्रा रहे हैं, जैसे वेदपाठी मन्त्र-पाठ कर रहे हों। कितनी स्वाभाविक और तटस्थ दृष्टि तथा कल्पना है ऋषि की यह! यहाँ कहा गया है कि पर्जन्य के कारण ही इन मेंढकों को फिर से टर्राने की क्षमता प्राप्त हुई है। निश्चित ही यहाँ 'पर्जन्य' का अर्थ 'वर्षा' ही है, यद्यपि ऋषि को सम्भवतः इस शब्द से मेघ या पर्जन्यदेव भी अभिप्रेत हो सकते हैं।

24. मैं आप लोगों के ज्ञान के लिए ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल के 83वें सूक्त की ऋचाओं का अनुवाद यहाँ दे रहा हूँ—

हे स्तोतागणो! उस बलवान् पर्जन्यदेव के लिए अच्छे-अच्छे स्तवगान करें और हवि प्रदान करें। वह साँड की तरह गर्जता हुआ, तथा खूब वर्षा करता हुआ सब वृक्ष-लता आदि औषधियों में बीजों के उत्पादन की शक्ति भरता है और प्रसन्न होकर तत्काल दान देनेवाला है ॥1॥

यह पर्जन्य बड़े-बड़े वृक्षों को तोड़कर गिरा देता है, वह सब राक्षसों को मार गिराता है। यह सम्पूर्ण भुवन उसके महान् वध-शस्त्र से भयभीत हो जाता है। जब यह पर्जन्य दुष्कृत—दुष्कर्म करनेवाले लोगों—को गर्जता-कड़कता हुआ मार गिराता है तो बेचारे निर्दोष लोग भी भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगते हैं ॥2॥

जैसे कोई रथी अपने चाबुक से घोड़ों को हाँकता है, वैसे ही यह पर्जन्य अपने वर्षा-दूतों को धरती की ओर भेजता है। जब पर्जन्य आकाश को वर्षा से आच्छादित कर देता है तो सिंह की भाँति उसकी गर्जना बहुत दूर से ही सुनाई देने लगती है ॥3॥

जब पर्जन्य इस धरती की ओर अग्रसर होता है, तब जल-पूरित पुरवा पवनें चलने लगती हैं और आकाश में चारों ओर बिजलियों की चमक और कड़क भर जाती है। पर्जन्यदेव के प्रकट होते ही धरती पर औषधियाँ उगने लगती हैं। यह पृथिवी सम्पूर्ण भुवन के लिए हितकारक व मनोहर बन जाती है ॥4॥

जिस पर्जन्यदेव के व्रत (वृष्टि-कर्म) के समक्ष यह पृथिवी नत हो जाती है और खुरोंवाले सभी चतुष्पाद पशु इधर-उधर भागने लगते हैं अथवा परितृप्त हो जाते हैं और

anian peasants on the frontier between East Prussia and Russia, not more than two hundred years ago, and should have retained its old name Parjanya, which in Sanskrit meant 'showering', under the form of *Perkuna*, which in Lituanian is a name and a name only, without any etymological meaning at all ; nay, should live on, as some scholars assure us, in an abbreviated form in most Slavonic dialects, namely, in Old Slavonic as *Perun*, in Polish as *Piorun*, in Bohemian as *Peraun*, all meaning thunder or thunderstorm ?

36. Such facts strike me as if we saw the blood suddenly beginning to flow again through the veins of old mummies ; or as if the Egyptian statues of black granite were suddenly to begin to speak to us. Touched by the rays of modern science the old words—call them mummies or statues—begin indeed to live again, the old names of gods and heroes begin indeed to speak again. All that is old becomes new, all that is new becomes old, and that one word, Parjanya, seems, like a charm, to open before our eyes the cave or cottage in which the fathers of the Aryan race, our own fathers,—whether we live on the Baltic or on the Indian Ocean,—are seen gathered together, taking refuge from the buckets of Parjanya, and saying : 'Stop now, Parjanya ; thou hast sent rain : thou hast made the deserts passable, and hast made the plants to grow ; and thou hast obtained praise from man.'

37. We have still to consider the third class of gods, in addition to the gods of the earth and the sky, namely the gods of the highest heaven, more serene in their character than the active and fighting gods of the air and the clouds, and more remote from the eyes of man, and therefore more mysterious in the exercise of their power than the gods of the earth or the air.

38. The principal deity is here no doubt the bright sky itself, the old *Dyaus*, worshipped as we know by the Aryas before they broke up into separate people and languages, and surviving in Greece as Zeus, in Italy as Jupiter, Heaven-father, and among the Teutonic tribes as *Tyr* and *Tiu*. In the Veda we saw him chiefly invoked in connection with the earth, as Dyavaprithivi, Heaven and Earth. He is invoked by himself also, but he is a vanishing god, and his place is taken in most of the Vedic poems by the younger and more active god, *Indra*.

39. Another representative of the highest heaven, as covering, embracing, and shielding all things, is Varuna, a name derived from the root var, to cover, and identical with the Greek *Ouranos*. This god is one of the most interesting creations of the Hindu mind, be-

औषधियाँ नाना रूप धारण कर लेती हैं, ऐसे हे पर्जन्यदेव, आप हमारे लिए कल्याणकारी बनें ।।5।।

हे मरुद्गणों ! आप हमारे लिए अन्तरिक्ष से वर्षा कीजिए। चारों ओर व्याप्त होनेवाली वर्षा की धाराएँ बहा दीजिए। पर्जन्यदेव ! आप इस गर्जते हुए मेघ के साथ हमारे समक्ष पधारिये । आप वास्तव में असुर और हमारे पिता हैं ।। 6 ।।

हे पर्जन्यदेव ! आप इस धरती पर खूब जोर से गर्जिये और अपनी कड़क-तड़क से इन औषधियों को गर्भ-धारण के योग्य बना दीजिये। हे पर्जन्य ! आप अपने जलपूर्ण रथ से इस धरती पर चारों ओर फैल जाइये । आप अपनी मेघाडम्बररूपी बँधी हुई जल-पूरित मशकों का मुँह खोल उन्हें औंधा करके धरती पर उँडेल दीजिये। आपके ऐसा करने से जल-थल एक हो जाएगा और ऊँचे-नीचे सब प्रदेश भी बराबर हो जाएँगे, अर्थात् प्रत्येक स्थान में खूब पानी भर जाएगा ।।7।।

हे पर्जन्य ! आप अपने जल के विशाल भण्डार—मेघसमूह—को धरती पर उँडेल दीजिए। आपके ऐसा करने से ये नदियाँ जल-पूरित होकर दौड़ती हुई पूर्व की की ओर बहने लगेंगी । आप अपनी जलराशि से द्यावापृथिवी को जलपूरित कर दीजिए। इससे गौ आदि पशुओं एवं अन्य जीवों को पानी पीने के लिए प्रपाएँ (पौएँ) तथा सभी छोटे-मोटे जलाशय आदि भर जाएँगे ।।8।।

हे पर्जन्य ! आप जब गर्जते और कड़कते हुए दुष्कर्म करनेवालों को नष्ट कर डालते हैं, तब इस पृथिवी के सभी प्राणी आनन्दमग्न हो जाते हैं ।।9।।

हे पर्जन्य ! आपने खूब बर्षा कर दी, अब आप अपनी इस वृष्टि को थाम लीजिए आपने धन्वन् (मरुभूमियों) को भी इस प्रकार जल प्लावित कर दिया कि अब उन विशाल रेगिस्तानों में भी लोग आ जा सकते हैं। आपकी कृपा से खाने-पीने के लिए खेतियाँ लहलहाने लगी हैं और ये सब औषधियाँ फलों के भार से झुक गई हैं । इसीलिए आज हम सब स्तोतागण आपके स्तवगान कर रहे हैं ।।10।।

(हमने मन्त्रों के ये अर्थ सायण के अनुसार दिए हैं अनुवादक)।

25. यह एक वैदिक सूक्त है, और ऋग्वेद के प्राचीन सूक्तों का एक अच्छा नमूना भी। आप कहेंगे कि इसमें कोई महान् बात या कोई विशिष्ट काव्य-सौंदर्य ही दिखता है। इसके उत्तर में मैं कहना चाहूँगा कि आप अपने इंग्लैंड के उन हजारों-लाखों किसानों को जरा देखिये जिनका सम्पूर्ण जीवन सर्वथा वर्षा पर ही निर्भर करता है। अब आप बताएँ कि इस सूक्त को बने आज साढ़े तीन हजार वर्ष से भी अधिक समय बीत चुका है, तथापि आज तक हमारे यहाँ का कोई कृषि-जीवी वर्षा और मेघों के सम्बन्ध में क्या एकाध भी ऐसी रचना कर पाया है ? यह भी तो नहीं कहा जा सकता कि यह सूक्त काव्य-सौन्दर्यहीन है, या वर्षा के सजीव चल-चित्र उपस्थित करनेवाला नहीं है। जिस किसी ने उष्णकटिबन्ध के क्षेत्रों में उठनेवाले झंझावातों को कभी देखा होगा, उसकी आँखों के सामने ऋचा में वर्णित यह द्रुतगतिमय चित्र अनायास ही उपस्थित हो जाएगा। 'पवन के तीव्र झकझोरे आ रहे हैं। बिजलियाँ कौंध रही हैं। नवोद्गत अंकुर तथा सभी

cause though we can still perceive the physical background from which he rises, the vast, starry, brilliant expanse above, his features, more than those of any of the Vedic gods, have become completely transfigured, and he stands before us as a god who watches over the world, punishes the evil-doer, and even forgives the sins of those who implore his pardon.

40. I shall read you one of the hymns addressed to him :

'Let us be blessed in thy service, O Varuna, for we always think of thee and praise thee, greeting thee day by day, like the fires lighted on the altar, at the approach of the rich dawns.' 2.

'O Varuna, our guide, let us stand in thy keeping, thou who art rich in heroes and praised far and wide ! And you, unconquered son of Aditi, design to accept us as your friends, O god !' 3.

'Aditya, the ruler, sent forth these rivers ; they follow the law of Varuna. They tire not, they cease not ; like birds they fly quickly everywhere.' 4.

'Take from me my sin, like a fetter, and we shall increase. O Varuna, the spring of thy law. Let not the thread be cut while I weave my song ! Let not the form of the workman break before the time !' 5.

'Take far away from me this terror, O Varuna ! Thou, O righteous king, have mercy on me ! Like as a rope from a calf, remove from me my sin ; far away from thee, I am not master even of the twinkling of an eye.' 6.

'Do not strike us, Varuna, with weapons which at thy will hurt the evil-doer. Let us not go where the light has vanished ! Scatter our enemies, that we may live.' 7.

'We did formerly, O Varuna, and do now, and shall in future also, sing praises to thee. O mighty one ! For on thee, unconquerable hero, rest all statues, immovable, as if established on a rock.' 8.

'Move far away from me all self-committed guilt, and may I not, O king, suffer for what others have committed ! Many dawns have not yet dawned ; grant us to live in them, O Varuna.' 9.

41. You may have observed that in this hymn Varuna was called Aditya, or son of Aditi. Now Aditi means *infinitude*, from *dita*, bound, and *a*, not, that is, not bound, not limited, absolute, infinite. Aditi itself is now and then invoked in the Veda, as the Beyond, as what is beyond the earth and the sky, and the sun and the dawn—a most surprising conception in that early period of religious thought. More frequently, however, than Aditi, we meet with the Adityas, literally the sons of Aditi, or the gods beyond the visible

वृक्ष-लताएँ, पेड़-पौधे त्वरित गति से बढ़ रहे हैं और भयंकर प्रभंजन के वेग को न सहते हुए सभी मृग-पशु आदि चतुष्पाद प्राणियों के झुण्ड इधर-उधर भाग रहे हैं।' यह कल्पना भी किसी तथ्यविहीन कवि की उड़ानमात्र नहीं है कि 'पर्जन्य अन्तरिक्ष के कूप में से डोल भर-भरकर उँडेल रहा है और अपनी मशकों को धरती पर फटाफट खाली करता जा रहा है।'

26. इस सूक्त में ग्रहण करने योग्य नैतिकता की भावना भी विद्यमान है। जब झंझावत की साँय-साँय की तीव्र कर्ण-भेदी ध्वनि चारों ओर सुनाई देने लगती है, वज्र-पात की कड़क के साथ धरती और आकाश में बिजलियाँ कौंधने लगती हैं तथा मूसला-धार वर्षा होने लगती है तो अपराधी और पापी तो मारे ही जाते हैं, बेचारे निरपराध प्राणी भी भय से काँप उठते हैं। यहाँ हम स्पष्टतया अनुभव करते हैं कि ऋचा में ऋषि मात्र प्रकृति के उत्पातों की ही चर्चा नहीं कर रहा, अपितु उसे यहाँ उस सर्वोच्च शक्ति का मानो पूर्वाभास हो रहा है, जिसके आगे निरपराध प्राणी भी भयभीत हो उठते हैं। इस प्रकार वह बताना चाहता है कि ऐसा भला कौन है, जो अपने-आपको सर्वथा निर्दोष कह सके ?

27. यदि हम फिर से पूछें कि यह पर्जन्य कौन है, या क्या है तो हम उत्तर दे सकते हैं कि जहाँ तक यह वृष्टि-प्रदाता है, 'पर्जन्य' शब्द का आशय मेघ था। पर ज्यों ही 'वृष्टि-प्रदाता' की भावना मन में आई कि प्रत्यक्ष दृश्यमान मेघ मात्र एक बाह्य पदार्थ बनकर रह गया। इसे यूँ भी कह सकते हैं कि मेघ उस वृष्टि-प्रदाता का शरीर बन गया; वह 'प्रदाता' कहीं अन्यत्र था, किन्तु हम नहीं जान पाए कि वह कहाँ था या कहाँ है। कहीं 'पर्जन्य' 'द्यौः' के पद तक पहुँचा हुआ प्रतीत होता है और पृथिवी उसकी पत्नी है। अन्यत्र पर्जन्य को द्यौः का पुत्र बताया गया है, यद्यपि उस आरम्भिकतम स्थिति में यह नहीं सोचा जा सका कि इस प्रकार पर्जन्य अपनी माता का ही पति बन जाएगा। हम पहले ही देख चुके हैं कि इन्द्र के अपने पिता के भी पिता होने के विचार से ऋषि को कोई आश्चर्य नहीं हुआ। उसने मात्र इतना ही कहा कि यह एक विलक्षण बात है।

28. पर्जन्य कभी इन्द्र का, कभी वायु का और कभी वृष्टिप्रदाता सोम का भी कार्य तो अवश्य करता है, किन्तु इतना होने पर भी वह न तो द्यौः है, न इन्द्र, न मरुत्, न वायु न सोम ही है। उसका अपना पृथक् व्यक्तित्व है। पर्जन्यदेव इन सबसे भिन्न है। इतना ही क्यों, वस्तुतः 'पर्जन्य' का स्थान आर्यों के प्राचीनतम देवताओं में है। 'पर्जन्य' शब्द पृचि-पर्च् या पर्ज् धातु से बना है, इसका मूल अर्थ कृषि अथवा वर्षा रहा होगा।

29. आर्य परिवार के सदस्य आरम्भ में जब एक-दूसरे से अलग हुए—चाहे वे हिन्दुओं के पुरखा रहे हों, या यूनानियों के अथवा केल्ट, ट्यूटन अथवा स्लाव लोगों के पूर्वज ही क्यों न रहे हों, वे मेघ के लिए यह 'पर्जन्य' नाम अपने साथ लेते गए।

किन्तु जैसाकि आप जानते ही हैं, उन लोगों की सामान्य प्राचीन शब्द-सम्पत्ति के भण्डार में से कोई एक या वही शब्द आर्य-परिवार की उक्त सभी शाखाओं में समान

earth and sky,—in one sense, the infinite gods. One of them is Varuna, others Mitra and Aryaman (Bhaga, Daksha, Amsa), most of them abstract names, though pointing to heaven and the solar light of heaven as their first, though almost forgotten source.

42. When Mitra and Varuna are invoked together, we can still perceive dimly that they were meant originally for day and night, light and darkness. But in their more personal and so to say dramatic aspect, day and night appear in the Vedic mythology as the two Asvins, the two horsemen.

43. Aditi, too, the infinite, still shows a few traces of her being originally connected with the boundless Dawn ; but again, in her more personal and dramatic character, the Dawn is praised by the Vedic poets as Ushas, the Greek Eos, the beautiful maid of the morning, loved by the Asvins loved by the sun, but vanishing before him at the very moment when he tries to embrace her with his golden rays. The sun himself, whom we saw reflected several times before in some of the divine personifications of the air and the sky and even of the earth, appears once more in his full personality, as the sun of the sky, under the names of Surya (Helios), Savitri, Pushan, and Vishnu, and many more.

44. You see from all this how great a mistake it would be to attempt to reduce the whole of Aryan mythology to solar concepts, and to solar concepts only. We have seen how largely the earth, the air, and the sky have each contributed their share to the earliest religious and mythological treasury of the Vedic Aryas. Nevertheless, the Sun occupied in that ancient collection of Aryan thought, which we call Mythology, the same central and commanding position which, under different names, it still holds in our own thoughts.

45. What we call the morning, the ancient Aryas called the Sun or the Dawn ; 'and there is no solemnity so deep to a rightly thinking creature as that of the Dawn.' (These are not my words, but the words of one of our greatest poets, one of the truest worshippers of Nature—John Ruskin.) What we call Noon, and Evening, and Night, what we call Spring and Winter, what we call Year, and Time, and Life, and Eternity—all this the ancient Aryas called *Sun*. And yet wise people wonder and say, how curious that the ancient Aryas should have had so many solar myths. Why, every time we say 'Good Morning', we commit a solar myth. Every poet who sings about 'the May driving the Winter from the field again' commits a solar myth. Every 'Christmas Number' of

रूप से सुरक्षित नहीं रह पाया। परिस्थिति-विशेष के अनुसार आर्यों के उक्त सात प्राचीन प्रमुख परिवारों या शाखाओं में से कोई शब्द-विशेष छः में, तो कोई पाँच, चार, तीन या दो शाखाओं में या कभी-कभी केवल किसी एक में ही प्रचलित रह गया। वे शब्द उस अवस्था में भी आर्यों की विभिन्न शाखाओं में प्रयुक्त होते रहे। जिसे हम इतिहास कहते हैं उससे हजारों वर्ष पहले आर्यों के वे दल जब एक-दूसरे से बिछुड़े तो ऐसे बिछुड़े, ऐसे बिछुड़े कि फिर कभी मिल पाना तो दूर रहा, वे अपनी यह पहचान भी भुला बैठे कि हम सब किसी एक ही आर्य-जाति के सदस्य हैं।

सच तो यह है कि यदि किन्हीं दो आर्य-भाषाओं में भी कोई एक शब्द ऐसा मिल जाता है, जिसकी प्रकृति तथा अर्थ एक ही हों तो यह मान लेने के लिए पर्याप्त पुष्ट प्रमाण हैं कि वह शब्द अत्यन्त प्राचीन आर्यों के चिन्तन-कोष से सम्बद्ध है।

30. इधर हम देखते हैं कि ग्रीक, लेटिन या केल्टिक, यहां तक कि टयूटानिक (जर्मन) वर्ग की भी किसी भाषा में 'पर्जन्य' शब्द का कोई चिह्न, कम-से-कम कोई स्पष्ट चिह्न नहीं मिलता। इस शब्द को स्लाववर्ग की भाषाओं में ढूंढ़ने का भी हमारा प्रयत्न तब तक निष्फल हो जाता प्रतीत होता है, जब तक कि उस भाषा-वर्ग की एक भूली-बिसरी अवान्तर शाखा 'लेटिक' से हम परिचित नहीं हो जाते। इस लेटिक शाखा में लिथ्वानियन तथा लेटिश, एवं आजकल सर्वथा अप्रयुक्त होने के कारण लुप्तप्राय पुरानी प्रशियन भाषा, ये तीनों भाषाएँ सम्मिलित हैं। लिथ्वानियन भाषा—इन दिनों वहाँ के जनसाधारण के द्वारा बोलचाल की लिथ्वानियन भाषा भी व्याकरण के प्राचीनतम रूपों से अत्यधिक समृद्ध है। कुछ मामलों में तो वह संस्कृत से बहुत मिलती-जुलती है। लिथ्वानियन भाषा में प्रयुक्त व्याकरण के ये प्राचीन रूप वास्तव में विस्मयजनक हैं, भले ही वे बहुत कम ही हैं, शेष सब रूप सदियों पहले ही घिसपिट गये।

31. एक मजे की बात यह है कि इस बिल्कुल अलग पड़ी हुई लिथ्वानियन भाषा में हम अपने उस पुराने मित्र 'पर्जन्य' को सर्वथा सुरक्षित पाते हैं। वहाँ वह आज तक भी बचा रह गया, जबकि स्वयं भारत में भी—कम-से-कम आधुनिक बोल-चाल की भाषाओं में तो वहाँ—उसे सर्वथा भुला ही दिया गया है। अभी कुछ सदियों पहले तक लिथ्वानिया के ईसाई-धर्मान्तरित अथवा आंशिक रूप से ईसाई बने हुए लोग वर्षा के लिए जो प्रार्थनाएँ किया करते थे, वे ऋग्वेद के 'पर्जन्यसूक्त' की कुछ ऋचाओं से बहुत भिन्न नहीं हैं। लिथ्वानियन भाषा में मेघ के देवता को पर्क्युनस कहते थे। आज भी मेघ के लिए वहाँ यही शब्द प्रयुक्त होता है। पुरानी प्रशियन भाषा में भी पर्क्यूनस मेघ को कहते थे। लेटिश भाषा में आज भी मेघ या मेघ देवता को पेरकोन्स कहते हैं।

32. मैं समझता हूँ कि विख्यात भाषा-वैज्ञानिक ग्रिम ने ही प्राचीन स्लाव-वर्गीय भाषा के तथा पोलिश भाषा के एवं बोहेमियन भाषा के शब्दों की वैदिक 'पर्जन्य' के साथ पहचान कर दिखायी थी। जहाँ ग्रिम ने ही सबसे पहले बताया था कि लिथ्वानियन, लेटिश एवं पुरानी प्रशियन भाषाओं में यह शब्द परकुनस पेहर्कोन्स तथा पर्क्युनोस अपने इन पूरे रूपों में विद्यमान हैं। यहाँ तक कि मोर्डविनिया लोगों ने भी अपने मेघ देवता के

our newspapers—ringing out the old year and ringing in the new—is brimful of solar myths. Be not afraid of solar myths, but whenever in ancient mythology you meet with a name that, according to the strictest phonetic rules (for this is a *sine qua non*), can be traced back to a word meaning sun, or dawn, or morning, or night, or spring, or winter, accept it for what it was meant to be, and do not be greatly surprised, if a story told of a solar eponymos was originally a solar myth.

46. No one has more strongly protested against the extravagances of Comparative Mythologists in changing everything into solar legends, than I have ; but if I read some of the arguments brought forward against this new science, I confess they remind me of nothing so much as of the arguments brought forward, centuries ago, against the existence of Antipodes ! People then appealed to what is called Common sense, which ought to teach everybody that Antipodes could not possibly exist, because they would tumble off. The best answer that astronomers could give, was, 'Go and see.' And I can give no better answer to those learned sceptics who try to ridicule the Science of Comparative Mythology – 'Go and see !' that is, go and read the Veda, and before you have finished the first Mandala, I can promise you, you will no longer shake your wise heads at solar myths, whether in India, or in Greece, or in Italy, or even in England, where we see so little of the sun, and talk all the more about the weather—that is, about a solar myth.

47. We have thus seen from the hymns and prayers preserved to us in the Rig-veda, how a large number of so-called Devas, bright and sunny beings, or gods, were called into existence, how the whole world was peopled with them, and every act of nature, whether on the earth or in the air or in the highest heaven, ascribed to their agency. When we say, *it* thunders, they said Indra thunders; when we say, *it* rains, they said Parjanya pours out his buckets; when we say, *it* dawns, they said the beautiful Ushas appears like a dancer, displaying her splendour; when we say, *it* grows dark, they said Surya unharnesses his steeds. The whole of nature was alive to the poets of the Veda, the presence of the gods was felt everywhere, and in that sentiment of the presence of the gods there was a germ of religious morality, sufficiently strong, it would seem, the restrain people from committing as it were before the eyes of their gods what they were ashamed to commit before the eyes of men. When speaking of Varuna, the old god of the sky. one poet says :

48. 'Varuna, the great lord of these worlds, sees as if he

लिए परग्विनी शब्द अपना लिया था।

33. लेटिश लोगों के पड़ोसियों में से इस्थोनियन लोगों की भाषा यद्यपि आर्य-भाषा-परिवार की नहीं है, तथापि उन्होंने अपने आर्य पड़ोसियों से बहुत-कुछ सीखा था। हम देखते हैं कि वहाँ के पुराने किसान सत्रहवीं सदी तक अपने मेघ देवता पेकर का निम्नलिखित स्तवगान गाया करते थे—

34. 'हे प्रिय पिकर (मेघदेव)! हम तुम्हारे लिए दो सींगों तथा फटे हुए चार खुरोंवाले एक बैल की बलि देते हैं। हम अपने खेतों को जोतने और बीज बोने के लिए आपका स्तुतिगान कर रहे हैं, जिसके फलस्वरूप हमारे पशुओं के खाने के लिए ताम्बे जैसी रंगवाली घास और सोने जैसी सुनहरी हमारी फसलें पक कर तैयार हो जाएँ। भयंकर प्रभंजनयुक्त वर्षा की मूसलाधार झड़ियों को आप यहाँ से बहुत दूर दलदलों या घने जंगलों की ओर भेज दीजिए। किन्तु, हम किसानों के लिए तो सदा रिमझिम-रिमझिम वर्षा करते रहें, जिससे वर्षा ऋतु में होनेवाली हमारी फसलें लहलहा उठें। हे पवित्र पिकेन (पर्जन्य)! आप हमारे खेतों की इस प्रकार भली-भाँति रक्षा करें कि उनकी फसलों के नीचे के डण्ठलों से हमें चारा मिल जाए। उनके ऊपर धान की बालियाँ लहलहा उठें तथा वे बालियाँ सुन्दर अनाज के दानों से भर जाएँ।

35. मैं यहाँ फिर से दुहराना चाहूँगा कि पुरातन या आदिम युग की यह प्रार्थनागीति चाहे इस्थोनिया के दलदली भूभागों में 17वीं सदी ई० में पढ़ी-सुनी जाती रही हो, या ईसा से 1700 वर्ष पहले सिन्धु नदी की घाटी में गायी जाती रही हो, मैं यह नहीं चाहता कि आप इसकी प्रशंसा ही करें। भले ही काव्यशास्त्र की दृष्टि से समीक्षा करनेवाले आलोचक यह कहते रहें कि मेघ के लिए प्रयुक्त यह स्तुति किसी साधारण-सी कविता का नमूना ही हो सकती है, किन्तु, मैं तो मात्र इतना ही कहना चाहता हूँ कि इस तथ्य का निर्धारण हो जाना ही क्या एक बड़ी-से-बड़ी कविता नहीं है कि सिकन्दर के द्वारा भारत की खोज कर लेने के हजारों वर्ष पहले भी मेघ, बिजली की चमक-दमक और कड़क तथा वर्षा के जिस पर्जन्यदेव का स्तवगान भारत में किया जाता था, उसी स्तवगान को पूर्वी प्रशिया तथा रूस की सीमाओं के बीच में अवस्थित लिथ्वानिया के किसान अभी केवल दो सौ वर्ष पहले तक गाते रहे हैं? संस्कृत का 'पर्जन्य' शब्द तो आज भी वहाँ मेघ के लिए व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होता है। इतना ही क्यों, जैसा कि कुछ विद्वान् हमें आश्वस्त करते हैं कि पुरानी स्लाव भाषा में पैरूँ पोलिश भाषा में प्योरूँ और बोहेमियन भाषा में प्रयुक्त पेरोन आदि मेघ के वाचक शब्द वस्तुतः संस्कृत 'पर्जन्य' के ही घिसे हुए रूप हैं।

36. ये तथ्य मुझे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो मिस्र की किसी पुरानी ममी में फिर से रक्त-संचार हो उठा हो हो, अथवा वहाँ की स्फिक्स की विशाल मूर्ति सहसा हमारे साथ फिर से बातचीत करने लग पड़ी हो। आधुनिक भाषा विज्ञान की प्रकाश-किरणों का स्पर्श पाकर पुराने शब्द—उन्हें हम चाहें तो ममी अथवा कोई विशाल मूर्ति कह लें—सचमुच फिर जीवित हो उठते हैं और देवताओं तथा वीरों के पुराने नाम मानो सचमुच

were near. If a man stands or walks or hides, if he goes to lie down or to get up, what two people sitting together whisper to each other, King Varuna knows it, he is there as the third. This earth, too,belongs to Varuna, the King and this wide sky with its ends far apart. The two seas (the sky and the ocean) are Varuna's loins ; he is also contained in this small drop of water. He who should flee far beyond the sky, even he would not be rid of Varuna, the King. His spies proceed from heaven towards this world; with thousand eyes they overlook this earth. King Varuna sees all this, what is between heaven and earth, and what is beyond. He has counted twinklings of the eyes of men. As a player throws down the dice, he settles all things (irrevocably). May all the fatal snares which stand spread out seven by seven and threefold, catch the man who tells a lie, may they pass by him who speaks the truth.'

49. You see this is as beautiful, and in some respects as true, as anything in the Psalms. And yet we know that there never was such a Deva, or god, or such a thing as Varuna. We know it is a mere name, meaning originally 'covering or all-embracing', which was applied to the visible starry sky, and afterwards, by a process perfectly intelligible, developed into the name of a Being behind the starry sky, endowed with human and superhuman qualities.

50. And what applies to Varuna applies to all the other gods of the Veda and the Vedic religion, whether three in number, or thirty-three, or, as one poet said, 'three thousand three hundred and thirty-nine gods'. They are all but names, quite as much as Jupiter and Apollo and Minerva ; in fact, quite as much as all the gods of every religion who are called by such appellative titles.

51. Possibly, if any one had said this during the Vedic age in India, or even during the Periclean age in Greece, he would have been called, like Socrates, a blasphemer or an atheist. And yet nothing can be clearer or truer, and we shall see that some of the poets of the Veda too, and, still more, the latter Vedantic philosopher, had a clear insight that it was so.

52. Only let us be careful in the use of that phrase 'It is a mere name.' No name is a mere name. Every name was originally meant for something ; only it often failed to express what it was meant to express, and than became a week or an empty name, or what we then call 'a mere name'. So it was with these names of the Vedic gods. They were all meant to express the *Beyond*, the Invisible behind the Visible, the Infinite within the Finite, the Supernatural above the Natural, the Divine, omnipresent, and omnipotent. They failed in

हमें अपनी कहानियाँ सुनाने लगते हैं। जो कुछ भी प्राचीन है, वह एकदम नया बन जाता है। इसके विपरीत नया सर्वथा पुराना प्रतीत होने लगता है। 'पर्जन्य' यह एक अकेला शब्द ही ऐसा जादू कर देता है जिससे वे पर्वत-कन्दराएँ, गुफाएँ, आश्रमवासियों की कुटियाएँ तथा ग्रामजनों की झोंपड़ियाँ एक-साथ ही हमारी आँखों के सामने घूम जाती हैं, जहाँ हजारों वर्ष पूर्व आर्य जाति के पुरखा, हमारे अपने पूर्वज—चाहे वे बाल्टिक सागर अथवा उससे बहुत दूर हिन्द महासागर के तटवर्ती प्रदेशों के निवासी ही क्यों न रहे हों—वर्षा से त्राण पाने के लिए एकत्रित दिखायी देते हैं और कह रहे हैं—

हे पर्जन्यदेव ! अब बस करो। आपने इतनी वर्षा कर दी कि जलपूर्ण हो जाने के कारण शुष्क मरुस्थल भी आवागमन के योग्य हो गए हैं। अब चारों ओर फसलें खूब लहलहा रही हैं, इसीलिए सब लोग आपका स्तवगान कर रहे हैं।

37. पृथिवी-स्थानीय तथा अन्तरिक्ष-स्थानीय उक्त अनेक देवताओं के विषय में कुछ विचार कर लेने के पश्चात् अब हमें तृतीय वर्ग के द्युलोक-स्थानीय देवताओं के विषय में विचार करना है। ये द्युलोक-स्थानीय देवता पृथिवी और अन्तरिक्ष-स्थानीय वायु और मेघ आदि उग्र, सक्रिय, वीर एवं युद्ध-प्रिय देवताओं की अपेक्षा कहीं अधिक निर्मल एवं वैशिष्ट्य-सम्पन्न हैं। इसके विपरीत सुदूरवर्ती स्थानों के निवासी ये देवगण जहाँ मानव के लिए अगोचर अतएव रहस्यमय तथा पृथिवी और अन्तरिक्ष के देवताओं की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली भी ये हैं।

38. इन देवताओं में प्रमुख स्वयं द्यौः (देदीप्यमान आकाश) ही है। जैसा कि हम पहले देख ही चुके हैं, आर्यजनों के विभिन्न शाखाओं में बँटकर अपने मूल-स्थान से विभिन्न दिशाओं तथा प्रदेशों में चले जाने एवं आद्य आर्य भाषा के संस्कृत, ग्रीक, लातीनी आदि नाना भाषाओं के रूप में विकसित हो जाने से पहले भी (जबकि आर्यजन अभी अपने मूल-स्थान में ही निवास कर रहे थे) सभी आर्य लोग 'द्यौस्' को मानते और पूजते थे। यूनान का देवता जूस इटली और उससे सम्बद्ध क्षेत्रों का देवता जुपितर—द्यौस्-पितर तथा ट्यूटानिक जनों का टूर तथा टियु वैदिक 'द्यौस्' ही है। वेदों में द्यौः का 'द्यावा पृथिवी' के साथ संयुक्त रूप में अनेकत्र उल्लेख हुआ है। कहीं-कहीं अकेले द्यौस् का उल्लेख भी मिलता है। किन्तु, वैदिक साहित्य में वह क्रमशः विलुप्त होता गया और उसके स्थान पर अधिक शक्तिशाली तथा सक्रिय देवता 'इन्द्र' प्रतिष्ठित हो गये।

39. द्यौस् के अतिरिक्त इस उच्चतम 'द्यु लोक' का एक अन्य प्रतिनिधि देवता है वरुण। यह चराचर मात्र को आच्छादित किए हुए, सर्वत्र व्याप्त तथा सबका परित्राण करनेवाला है। वरुण शब्द वृ, वर् धातु से निष्पन्न हुआ है। ग्रीक भाषा का यूरेनस और सं० वरुण एक ही हैं। हिंदुओं के चिन्तन के फलस्वरूप विकसित होनेवाले अत्यंत कौतूहल-जनक मनो-मुग्धकारी देवताओं में से वरुण भी अन्यतम है। यद्यपि अत्यन्त दूर आकाशस्थ तारकमय जिस भौतिक पृष्ठभूमि से उसका विकास हुआ है, हम उसे आज भी जानते और पहचानते हैं, तथापि उसकी देदीप्यमान व्यापकता अन्य सभी वैदिक देवताओं की अपेक्षा अपने मूल रूप से कहीं अधिक नव्य रूप ग्रहण कर चुकी है। वैदिक वरुण हमारे

expressing what, by its very nature, must always remain inexpressible. But that Inexpressible itself remained, and in spite of all these failures, it never succumbed, or vanished from the mind of the ancient thinkers and poets, but always called for new and better names, nay calls for them even now, and will call for them to the very end of man's existence upon earth.

समक्ष एक ऐसे देव के रूप में विराजमान है, जो सारे विश्व का द्रष्टा है। वह दुराचारियों और दुष्कर्म करनेवालों को दण्ड देता है तथा अपने स्तोताओं के पापों को क्षमा भी कर देता है।

40. मैं ऋग्वेद के वरुण से सम्बद्ध सूक्तों में से अन्यतम एक सूक्त का अनुवाद आपके समक्ष यहाँ प्रस्तुत करना चाहूँगा—

'हे वरुणदेव ! हमें आशीर्वाद दीजिए कि जैसे हम प्रतिदिन उषःकाल होते ही अपनी यज्ञ-वेदियों में यज्ञाग्नि प्रज्वलित करते हैं, वैसे ही हे वरुणदेव, प्रतिदिन आपको नमस्कार करते हुए हम सदा आपका चिन्तन और स्तवन करते रहें ।।1-2।।

हे वरुणदेव ! आप हमारे नेता हैं। आप हमें अपनी सुरक्षा में ले लीजिए। आप सब वीरों में समृद्ध एवं सशक्त वीरवत्तम हैं। यत्र-तत्र-सर्वत्र आपका स्तवगान होता रहता है। आप सभी अदितिपुत्र-देवताओं में अविजेय हैं। हे देव ! आप हमें अपना बन्धु और सखा बना लेने की कृपा कीजिए ।।3।।

शासक आदित्य ने इन नदियों को धरती पर प्रवाहित किया है। हे वरुण ! वे आपकी आज्ञा में रहती हुई निरन्तर प्रवाहित होती रहती हैं, वे कभी थकती तक नहीं और न अपने प्रवाह को ही रोकती हैं। पक्षी की भाँति वे सर्वत्र सदा बड़ी तीव्र गति से प्रवाहित होती हैं।

हे वरुणदेव ! जैसे कोई किसी अपराधी की बेड़ियाँ काटकर उसे बन्धनमुक्त कर देता है, वैसे ही आप मुझे मेरे पापों से मुक्त कर दें। इस प्रकार हम खूब फूले-फलेंगे, बढ़ेंगे और समृद्ध होंगे। यह वसन्त आपके ही नियमों में रह रही है। जब तक मैं आपका स्तवगान कर रहा हूँ, मेरे स्तवगान के सूत्र को बीच में न टूटने दें और कारीगरों के निर्माण में कोई विघ्न न होने दें ।।5।।

हे वरुणदेव ! मेरा यह संकट दूर कर दीजिए। हे न्यायकारी राजाधिराज सम्राट् वरुण, मुझ पर कृपा कीजिए। जैसे बछड़ा बन्धन-मुक्त हो जाता है, वैसे ही आप मुझे मेरे पापों से मुक्त कर दीजिए। आपसे दूर रहकर मैं पलक भी नहीं झपक सकता ।।6।।

हे वरुणदेव ! आप अपने जिस शस्त्र से दुष्कर्मियों को प्रताड़ित करते हैं, वह शस्त्र हम पर न उठाइए। हम ऐसे लोकों में न जाएँ जो प्रकाशहीन हैं। आप हमारे शत्रुओं को छिन्न-भिन्न कर दीजिए ताकि हम सकुशल रहें ।।7।।

हे वरुणदेव ! हम आपका स्तवगान करते रहे हैं, कर रहे हैं और करते रहेंगे। हे शक्तिशाली देव ! ये सब स्थिर पदार्थ और विविध आकार-प्रकारवाली मूर्तियाँ आदि आप पर ऐसे टिकी हुई हैं मानो किसी दृढ़ चट्टान पर प्रतिष्ठित हों। हे देव ! आप वस्तुतः अपराजेय वीर हैं ।।8।।

हे राजन् ! मेरे सब पापों और अपराधों को आप मुझसे दूर कर दीजिए। दूसरों के किए दुष्कर्मों के कुफल मुझे न भोगने पड़ें। हे वरुणदेव ! अभी अनेक उषाएँ आनेवाली हैं। आप हमें उन अनेक उषाओं तक जीवित रहने का आशीर्वाद दीजिए ।।9।।

41. आपने देखा कि इस सूक्त में वरुण को आदित्य अर्थात् अदिति का पुत्र कहा

LECTURE VII

Veda and Vedanta

1. I do not wonder that I should have been asked by some of my hearers to devote part of my last lecture to answering the question, how the Vedic literature could have been composed and preserved, if writing was unknown in India before 500 B.C., while the hymns of the Rig-veda are said to date from 1500 B.C. Classical scholars natuarally ask what is the date of our oldest MSS. of the Rig-veda, and what is the evidence on which so high an antiquity is assigned to its contents ? I shall try to answer this question as well as I can, and I shall begin with a humble confession that the oldest MSS. of the Rig-veda, known to us at present, dates not from 1500 B.C. but from about 1500 A.D.

2. We have therefore a gap of three thousand years, which it will require a strong arch of argument to bridge over.

But that is not all.

3. You may know how, in the beginning of this century, when the age of the Homeric poems was discussed, a German scholar, Frederick August Wolf, asked two momentous questions :—

1. At what time did the Greeks first become acquainted with the alphabet and use it for inscriptions on public monuments, coins, shields, and for contracts, both public and private ?

2. At what time did the Greeks first think of using writing for literary purposes, and what materials did they employ for that purpose ?

4. These two questions and the answers they elicited threw quite a new light on the nebulous periods of Greek literature. A fact more firmly established than any other in the ancient history of Greece is that the Ionians learnt the alphabet from the Phoenicians. The Ionians always called their letters Phoenician letters, and the very name of Alphabet was a Phoenician word. We can well understand that the Phoenicians should have taught the Ionians in Asia Minor a knowledge of the alphabet, partly for commercial purposes, i.e. for making contracts, partly for enabling them to use those useful little sheets, called *Periplus*, or *Circumnavigations*, which at that time

गया है। 'अदिति' शब्द का अर्थ है जो कभी खण्डित या नष्ट न हो, तथा जो बन्धनहीन एवं अनन्त हो। दित शब्द का अर्थ है बन्धन, या खंड-खंड, अथवा नष्ट होना। दित के पूर्व निषेधार्थक 'अ' के योग से निष्पन्न 'अदिति' शब्द का अर्थ यही है कि जो निर्बंध या सीमाहीन, परिपूर्ण और अनन्त हो। स्वयं वेद में भी यदा-कदा अदिति की प्रार्थना—परा—कहकर की गयी है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि अदिति वस्तुतः पृथिवी, आकाश तथा सूर्य और उषा आदि सबसे परे है। धार्मिक चिन्तन के उस आदिम युग मे किसी दिव्य शक्ति की इस रूप में मान्यता वस्तुतः विस्मयजनक है। अदिति की अपेक्षा भी कहीं अधिक वेदों में हमें 'आदित्यों' का वर्णन मिलता है। 'आदित्य' शब्द का अर्थ है—अदिति-पुत्र। अतएव 'आदित्य शब्द से यही अभिप्रेत है कि वह अज्ञेय, अदृश्य, इन्द्रियगोचर तथा पृथिवी और अन्तरिक्ष आदि किसी भी स्थान में अप्रकट एवं अननुभूयमान है। एक अर्थ में वे देव अनन्त हैं। उनकी कोई सीमा नहीं, अतः सर्वव्यापक हैं। ऐसे अनादि-अनन्त देवों में से वरुण भी अन्यतम है। मित्र और अर्यमा (भग, दक्ष और अंश) आदि देवता भी ऐसे ही अनादि-अनन्त वैशिष्ट्य से सम्पन्न हैं। इनमें से अधिकांश केवल भाववाचक संज्ञाएँ ही हैं। यद्यपि द्युलोक का दिव्य प्रकाश अथवा आकाशस्थ सूर्य की प्रभा उनके प्रथम किन्तु विस्मृतप्राय स्रोत की ओर संकेत करती प्रतीत होती है।

42. जहाँ किसी ऋचा में 'मित्र' और 'वरुण' इन दोनों की एक-साथ स्तुति की गई है, वहाँ कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि 'मित्र' से दिन या प्रकाश और 'वरुण' से रात्रि या अन्धकार अभिप्रेत हैं। किन्तु, इससे भी बढ़कर इन दिन और रात्रि का और अधिक वैयक्तिक तथा सुरूप-सम्पन्न व्यक्तित्व, दो अश्विनीकुमारों (घुड़सवारों) के रूप में व्यक्त होता है।

43. अन्तहीन या कभी नष्ट न होने वाली अदिति के भी कुछ ऐसे चिह्न दिखाई देते हैं कि यह मूलतः अन्तहीन उषा से ही सम्बद्ध रही होगी। किन्तु दूसरी ओर वैदिक ऋषि प्रतिक्षण परिवर्तनशील इस सुन्दरी उषा का स्वतन्त्र रूप से स्तवन करता है। ग्रीक भाषा की इयोस और सं० उषस् एक ही हैं। यह उषा प्रभातकाल की एक अत्यन्त रूपवती कुमारी कन्या है। अश्विनीकुमारों का इसके साथ अनुराग है और सूर्य भी इस पर अनुरक्त है, किन्तु ज्यों ही वह अपनी सुनहरी किरणों से इसके आलिंगन के लिए आगे बढ़ता है, यह तत्क्षण अदृश्य हो जाती है। सूर्य को हम वायु, अन्तरिक्ष, द्युलोक और पृथिवीलोक के दिव्य व्यक्तित्व-सम्पन्न रूप में देख चुके हैं। वह सूर्य, सविता, पूषा और विष्णु आदि अनेक नामों से अभिहित होकर एक बार पुनः आकाशस्थ इस सूर्य के रूप में व्यक्त होता है।

44. अब आप भली-भाँति समझ गए होंगे कि आर्यों के सम्पूर्ण दैवतवाद को सूर्य तक, अथवा केवल सूर्य तक ही सीमित कर देने का कोई भी प्रयत्न कितना निर्मूल और भ्रामक है। हम यह देख ही चुके हैं कि वैदिक आर्यों के प्रारम्भिक धार्मिक एवं आधिदैविक महान् शब्दकोश के निर्माण और विकास में पृथिवी, वायु और अन्तरिक्ष आदि ने कितना बड़ा हाथ बँटाया है। तथापि आर्यों की इस प्राचीन चिन्तनधारा—जिसे हम लोग

were as precious to sailors as maps were to the adventurous seamen of the middle ages. But from that to a written literature, in our sense of the word, there is still a wide step. It is well known that the Germans, particularly in the North, had their Runes for inscriptions on tombs, goblets, public monuments, but not for literary purposes. Even if a few Ionians at Miletus and other centres of political and commercial life acquired the art of writing, where could they find writing materials ? and, still more important, where could they find readers ? The Ionians, when they began to write, had to be satisfied with a hide or pieces of leather, which they called *diphthera*, and until that was brought to the perfection of vellum or parchment, the occupation of an author cannot have been very agreeable.

5. So far as we know at present the Ionians began to write about the middle of the sixth century B.C. ; and, whatever may have been said to the contrary, Wolf's *dictum* still holds good that with them the beginning of a written literature was the same as the beginning of prose writing.

6. Writing at that time was an effort, and such an effort was made for some great purpose only. Hence the first written skins were what we should call Murray's Handbooks, called *Periegesis* or *Periodos*, or, if treating of sea-voyages, *Periplus*, that is, guide books, books to lead travellers round a country or round a town. Connected with these itineraries were the accounts of the foundations of cities, the *Ktisis*. Such books existed in Asia Minor during the sixth and fifth centuries, and their writers were called by a general term, *Logographi*, or *logioi* or *logopoioi*, as opposed to *aoidoi*, the poets. They were the forerunners of the Greek historians, and Herodotus (443 B.C.), the so-called father of history, made frequent use of their works.

7. The whole of this incipient literary activity belonged to Asia Minor. From 'Guides through towns and countries', literature seems to have spread at an early time to Guides through life, or philosophical dicta, such as are ascribed to Anaximander the Ionian (610-547 B C.), and Pherekydes the Syrian (540 B.C.). These names carry us into the broad daylight of history, for Anaximander was the teacher of Anaximenes, Anaximenes of Anaxagoras, and Anaxagoras of Pericles. At that time writing was a recognised art, and its cultivation had been rendered possible chiefly through trade with Egypt and the importation of *papyros*. In the time of Aeschylos. (500 B.C.) the idea of writing had become so familiar that he could use it again and again in poetical metaphors, and there seems little reason why we should doubt that both Peisistratos (528 B.C.) and Polykrates of

माइथोलोजी कहते हैं—में सूर्य उसी केन्द्रीय एवं अपने सुनिश्चित स्थान पर अवस्थित था, जिस स्थान पर आज भी हम लोग अपनी चिन्तन प्रक्रिया में उसे नाना नामों से उपस्थित मानते हैं।

45. जिसे आज हम 'प्रभात' मोर्निंग कहते हैं, प्राचीन आर्य उसे सूर्य या उषा कहते थे। और, 'सही ढंग से चिन्तन करनेवाले किसी भी व्यक्ति का इससे अधिक गहन गम्भीर चिन्तन नहीं हो सकता जितना कि 'उषस्' इस एक ही शब्द में वह निहित है।' (ये मेरे अपने शब्द नहीं हैं ; यह तो हमारे अपने महाकवियों में से एक सुप्रसिद्ध कवि एवं प्रकृति के सच्चे उपासक जॉन रस्किन का कथन है)। जिसे हम मध्याह्न और सन्ध्या अथवा रात्रि कहते हैं, और वसन्त तथा शरत् अथवा वर्ष या समय एवं जीवन व नित्यता आदि नामों से अभिहित करते हैं, उन सबको प्राचीन आर्य 'सूर्य' कहते थे। यह सब कुछ स्पष्ट रहने पर भी समझदार लोग विस्मित होते हैं और कहते हैं कि यह कैसी विचित्र बात है कि प्राचीन आर्य लोगों के यहाँ इतने प्रकार के 'सौर-तत्त्व' थे। वे लोग इतने रूपों में सूर्य की उपासना क्यों करते थे? मैं आपसे पूछना चाहूँगा कि क्या प्रतिसमय गुडमॉर्निंग कहकर हम 'सौर दैवत-तत्त्व' को ही स्वीकार नहीं करते? प्रत्येक ऐसा कवि जो यह गाता है कि 'यह थर-थर कँपा देनेवाली शीतऋतु दूर चली जाए और खेतों व मैदानों में फिर से वसन्त का विकास हो जाए', वह भी प्रकारान्तर से क्या सूर्यदैवत तत्त्व को ही स्वीकार नहीं करता? हमारी-पत्र-पत्रिकाओं के क्रिसमिस विशेषांक, जो पुराने वर्ष के चले जाने एवं नववर्ष के शुभागमन की घोषणाएँ करते हैं, सूर्य-सम्बन्धी दैवत-तत्त्व से ही लबालब भरी रहती हैं। इस 'सौर दैवतवाद' की व्यापकता से घबराइये मत, किन्तु सूर्यवाचक अंग्रेजी का सन और संस्कृत का सूनु शब्द जिस सूञ् धातु से विकसित हुआ है, उसके अनुसार भाषाविज्ञान के कठोरतम नियमों का पालन करते हुए हम सूर्य, सूनु या सन शब्दों के यौगिक अर्थ के अनुसन्धान में इस निष्कर्ष तक पहुँच जाएँगे कि सूर्य या सूनु शब्द से सूर्य या उषा अथवा प्रभात या रात्रि या वसन्त और शीतर्तु आदि अनेक अर्थ द्योतित होते हैं। आप यह समझ लें कि जो भी कुछ है, वह सब सूर्य शब्द से अभिप्रेत है। इसमें कोई विस्मय की आवश्यकता नहीं कि सूर्य के उपनाम से कही गई कथा मूलरूप में सौर दैवत-तत्त्व से ही सम्बद्ध है।

46. प्राचीन भारतीय आर्यों या वेदों के तथा इटली और यूनान आदि के प्रत्येक प्राचीन देवी-देवता की तुलना कर, उनमें साम्य स्थापित कर दिखाने की निर्मूल प्रवृत्ति का विरोध करनेवाला मुझसे बड़ा शायद ही दूसरा कोई हो। क्योंकि इस प्रवृत्ति के फल-स्वरूप प्रत्येक दैवत उपाख्यान को सूर्य से सम्बद्ध भी दर्शा दिया जाता है। तथापि मैंने तुलनात्मक दैवतवाद का विरोध करनेवालों के कुछ ऐसे तर्क और युक्तियाँ पढ़ी हैं जिनमें निरर्थक और थोथे तत्त्वों के सिवा कुछ भी दिखाई नहीं दिया। उन लोगों की ये युक्तियाँ तो ठीक वैसी ही हैं जैसे कि आज से सदियों पहले इस भूमंडल के दूसरी ओर के (दक्षिणी) गोलार्ध की विद्यमानता के विरोध में दी जाया करती थीं। उन दिनों लोग अपने सामान्य ज्ञान के आधार पर यह कहा करते और अध्यापकों को अपने छात्रों को यह समझाने की

Samos (523 B.C.) were among the first collectors of Greek manuscripts.

8. In this manner the simple questions asked by Wolf helped to reduce the history of ancient Greek literature to some kind of order, particularly with reference to its first beginnings.

9. It would therefore seem but reasonable that the two first questions to be asked by the students of Sanskrit literature should have been :—

1. At what time did the people of India became acquainted with an alphabet ?

2. At what time did they first use such alphabet for literary purposes ?

Curiously enough, however, these questions remained in abeyance for a long time, and, as a consequence, it was impossible to introduce even the first elements of order into the chaos of ancient Sanskrit literature.

I can here state a few facts only. There are no inscriptions to be found anywhere in India before the middle of the third century B.C. These inscriptions are Buddhist, put up during the reign of Asoka, the grandson of Chandragupta, who was the contemporary of Seleucus, and at whose court in, Pataliputra Megasthenes lived as ambassador of Seleucus. Here, as you see, we are on historical ground. In fact, there is little doubt that Asoka, the king who put up these inscriptions in several parts of his vast kingdom, reigned from 274-237 B C.

10. These inscriptions are written in two alphabets—one written from right to left, and clearly derived from an Aramaean, that is, a Semitic alphabet; the other written from left to right, and likewise an adaptation, and an artificial or systematic adaptation, of a Semitic alphabet to the requirements of an Indian language. That second alphabet became the source of all Indian alphabets, and of many alphabets carried chiefly by Buddhist teachers far beyond the limits of India, though it is possible that the earliest Tamil alphabet may have been directly derived from the same Semitic source which supplied both the *dixtrorsum* and *sinistrorsum* alphabets of India.

11. Here then we have the first fact, viz. that writing, even for monumental purposes, was unknown in India before the third century B C.

12. But writing for commercial purposes was known in India before that time. Megasthenes was no doubt quite right when he said that the Indians did not know letters, that their laws were not written;

प्रेरणा दिया करते थे कि इस भूमण्डल के नीचे की ओर (दक्षिणी गोलार्ध) यदि कोई भूमण्डल है तो वहाँ लोग रह ही कैसे सकते हैं ! क्या नीचे रहने वाले वे लोग उससे नीचे नहीं गिर पड़ेंगे ? इस भूमण्डल के दक्षिणी गोलार्ध तथा वहाँ लोगों के निवास आदि को प्रतिपादित करनेवाले खगोल शास्त्रियों का ऐसे लोगों को यही सही उत्तर हो सकता था कि 'जाओ और स्वयं अपनी आँखों से देख लो।' इसी प्रकार उन समझदार धार्मिक जनों (ईसाई प्रचारकों) को, जो तुलनात्मक दैवत-विज्ञान की खिल्ली उड़ाया करते हैं, भी मैं यह कहना चाहूँगा—"जाओ और स्वयं अपनी आँखों से देख लो !" अर्थात् (भारत) जाइए और वहाँ वेदों का स्वाध्याय कीजिए । मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, ऋग्वेद के प्रथम मण्डल का अध्ययन करते-करते ही आप सौर दैवतवाद के विरोध में अपनी आवाज उठाना बन्द कर देंगे और मान जाएँगे कि भारत में हो या यूनान में, इटली में हो अथवा इंगलैंड में—(याद रहे कि यहाँ यूरोप में हमें सूर्य के दर्शन बहुत कम हो पाते हैं, इसलिए यहाँ सूर्य की अपेक्षा ऋतुओं का वर्णन ही अधिक मिलता है) सर्वत्र सूर्य-सम्बन्धी देवतोपाख्यान नाना रूपों में प्रचलित हैं।

47. इस प्रकार हमने देखा कि ऋग्वेद के सूक्तों और मन्त्रों में कितनी बड़ी संख्या में तथाकथित देवगण सुरक्षित हैं। ये देव वस्तुतः (दिव्यति प्रकाशते इति देवः) देदीप्यमान और सूर्य-सदृश प्रभावान् व्यक्तित्व-सम्पन्न हैं। इन देवों की यज्ञादि में उपस्थिति की भी प्रार्थनाएँ की गई हैं। यह सम्पूर्ण विश्व ही उनकी प्रजा है। पृथिवी का हो या वायुमण्डल का, अथवा उससे भी ऊपर द्युलोक का, प्रकृति-सम्बन्धी प्रत्येक कार्य और घटना-व्यापार उन्हीं के द्वारा सम्पन्न होता हुआ दिखाया गया है। जब हम कहते हैं कि यह (बादल) गर्ज रहा है, तो ऋषियों ने कहा इन्द्र देव गर्ज रहे हैं, हम कहते हैं कि वर्षा हो रही है, ऋषियों ने बताया कि पर्जन्यदेव अपनी जलपूर्ण निधि या डोल को धरती पर उंड़ेल रहे हैं। हम जिसे डॉन (पौ फटना) कहते हैं, ऋषियों ने कहा है कि उषा सुन्दरी किसी नृत्यांगना के समान अपनी कला का वैभव बिखेरती हुई क्षितिज-मंच पर धीरे-धीरे प्रकट हो रही है। हम कहते हैं अब अँधेरा हो गया, ऋषियों ने बताया कि सूर्य भगवान् ने अपने रथ के घोड़े खोल दिए। वैदिक ऋषि के लिए यह समग्र प्रकृति ही सजीव थी। उसे प्रत्येक कण-कण में देवता की उपस्थिति की अनुभूति हुआ करती थी। देवताओं की सर्वत्र व्यापकता की इस भावना में धार्मिक एवं नैतिकता के बीज भी विद्यमान थे। यह धार्मिक भावनाजन्य नैतिकता अत्यन्त दृढ़ थी। देवता की प्रत्येक स्थान में उपस्थिति के कारण मानव किसी भी प्रकार का कोई दुष्कर्म करने से ऐसे हिचकिचाता था, मानो वह किसी व्यक्ति के सामने पापकर्म कर रहा हो। द्युलोक के पुरातन देवता 'वरुण देव' का वर्णन करते हुए एक ऋषि कहते हैं—

48. 'इन सम्पूर्ण विश्वों के स्वामी वरुण इस विश्व-प्रपंच को सदा ऐसे देखते रहते हैं मानो वे उनके पास ही में हों। कोई भी व्यक्ति, भले ही वह खड़ा हो या चल-फिर रहा हो, छिपा हुआ हो या लेट रहा हो, अथवा कोई भी दो व्यक्ति आपस में काना-फूसी कर रहे हों, राजा वरुण सब-कुछ जानते हैं। वह दोनों के मध्य तीसरे होते हैं। यह

and that they administered justice from memory. But Nearchus, the admiral of Alexander the Great, who sailed down the Indus (325 B C), and was therefore brought in contact with the merchants frequenting the maritime stations of India, was probably equally right in declaring that 'the Indians wrote letters on cotton that had been well beaten together.' These were no doubt commercial documents, contracts, it may be, with Phoenician or Egyptian captains, and they would prove nothing as to the existence in India at that time of what we mean by a written literature. In fact, Nearchus himself affirms what Megasthenes said after him, namely that 'the laws of the sophists in India were not written.' If, at the same time, the Greek travellers in India speak of mile-stones, and of cattle marked by the Indians with various signs and also with numbers, all this would perfectly agree with what we know from other sources, that though the art of writing may have reached India before the time of Alexander's conquest, its employment for literary purposes cannot date from a much earlier time.

13. Here then we are brought face to face with a most startling fact. Writing was unknown in India before the fourth century before Christ, and yet we are asked to believe that the Vedic literature in its three well-defined periods, the Mantra, Brahmana, and Sutra periods, goes back to at least a thousand years before our era.

14 Now the Rig-veda alone, which contains a collection of ten books of hymns addressed to various deities, consists of 1017 (1028) poems, 10,580 verses, and about 153,826 words. How were these poems composed—for they are composed in very perfect metre—and how, after having being composed, were they handed down from 1500 before Christ to 1500 after Christ, the time to which most of our best Sanskrit MSS. belong ?

15. *Entirely by memory*. This may sound startling, but—what will sound still more startling, and yet is a fact that can easily be ascertained by anybody who doubts it—at the present moment, if every MS. of the Rig-veda were lost, we should be able to recover the whole of it—from the memory of the Srotriyas in India. These native students learn the Veda by heart, and they learn it from the mouth of their Guru, never from a MS., still less from my printed edition,—and after a time they teach it again to their pupils.

16. I have had such students in my room at Oxford, who not only could repeat these hymns, but who repeated them with the proper accents (for the Vedic Sanskrit has accents like Greek), nay

पृथिवी तथा आकाश भी वरुण के आधिपत्य में है। अन्तरिक्ष और सूर्यरूपी दोनों समुद्र उसके दोनों कटिबन्ध हैं। एक सूक्ष्मतम जलबिन्दु में भी वह विद्यमान है। कोई भले ही कितनी ही दूर उड़कर क्यों न चला जाए, वरुण की पकड़ के बाहर नहीं जा सकता। उसके दूत अपने हजारों नेत्रों से इस पृथिवी का सदैव निरीक्षण किया करते हैं। यहाँ तक कि वे मनुष्य की एक-एक निमिष (पलक की झपक) की भी गणना करते रहते हैं। 'सात के त्रिगुणित आपके सर्वत्र व्याप्त घातक पाश असत्य बोलनेवालों को अपने बन्धन में जकड़ लें तथा जो सत्य बोलते हैं उनसे वे दूर रहें।'

49-50. यह एक सुन्दर रचना है इसके विपरीत हम यह भी जानते हैं कि वरुण नामक कोई देवता सचमुच नहीं था और न ऐसा कोई पदार्थ और वस्तु ही, जिसे वरुण के नाम से सम्बोधित किया जा सके। यह मात्र एक नाम ही है। वृञ् धातु से निष्पन्न वरुण शब्द का यौगिक अर्थ 'सबको आवृत कर लेने वाला या अपने में समेट लेनेवाला' है। आरम्भ में सम्भवतः यह इस दृश्यमान तारकमय आकाश के लिए प्रयुक्त होता रहा हो, बाद में सर्वथा बोधगम्य प्रक्रिया के द्वारा इस वरुण शब्द का विकास मानवीय और अतिमानवीय वैशिष्ट्ययुक्त इस तारकमय आकाश के पीछे छिपे हुए सर्वशक्तिमान तत्त्व के रूप में हो गया। ऋग्वेद में वरुण के बारे में जो कुछ कहा गया है, वेद के अथवा वैदिक धर्म के अन्य सब प्रमुख देवताओं के बारे में भी वही सब-कुछ कहा जा सकता है, भले ही इन देवताओं की संख्या तैंतीस रही हो या एक ऋषि के कथनानुसार वे तीन हजार तीन सौ उनतालीस ही क्यों न हों। तथापि इतालवियों और यूनानियों के जुपितर तथा अपोलो एवं मिनर्वा की भाँति ये वैदिक देवगण भी कोई व्यक्तिविशेष न होकर नामविशेष ही हैं।

51. सम्भवतः वैदिक युग के भारत में अथवा पैरीक्लीज-कालीन यूनान में किसी ने यह कहा होता तो सुकरात की भाँति उसे नास्तिक कह दिया जाता। इतना सब-कुछ होते हुए भी इससे अधिक स्पष्ट और सत्य और कुछ भी नहीं हो सकता। यहाँ तक कि वेद के कुछ ऋषियों तथा परवर्ती वेदान्तदर्शन के माननेवाले तत्त्व-चिन्तकों ने भी स्पष्ट रूप से यह समझ लिया था कि तथ्य यही है।

52. यहाँ हमें 'यह केवल एक नामविशेष मात्र है' जैसे वाक्यों का प्रयोग सावधानी के साथ करना होगा। क्योंकि कोई भी नाम केवल नाम तो हो नहीं सकता। आरम्भ में प्रत्येक नाम किसी नामी के लिए ही प्रयुक्त हुआ होगा। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक था कि यह मात्र एक नाम ही है। इन वैदिक देवताओं के साथ भी यही कुछ हुआ है। प्रत्येक देवता मूलतः प्राकृतिक जगत् में अतिमानवीय, दिव्य तथा सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक था। ऋषियों ने उसका वर्णन करने में अपने-आपको असमर्थ पाया। भले ही उसके निरूपण में ऋषियों को पूर्ण सफलता न भी मिली हो, तथापि वे अपने प्रयत्न में कदापि हताश नहीं हुए और इसीलिए उस परम तत्त्व के लिए नए-से-नए और एक-से-एक श्रेष्ठ एवं समीचीन नाम दिए जाते रहे। आज भी तो हम उसको नित्य-नए नामों से अभिहित करते हैं। जब तक इस धराधाम पर मानव की सत्ता बनी रहेगी, तब-तक उसके लिए नूतन नाम प्रयुक्त होते रहेंगे। (अभिनव रमणीयता ही उसका सर्वातिशायी गुण जो है—अनु०)।

who, when looking through my printed edition of the Rig-veda, could point out a misprint without the slightest hesitation.

17. I can tell you more. There are hardly any various readings in our MSS. of the Rig-veda, but various schools in India have their own readings of certain passages, and they hand down those readings with great care. So, instead of collating MSS., as we do in Greek and Latin, I have asked some friends of mine to collate those Vedic students, who carry their own Rig-veda in their memory, and to let me have the various readings from these living authorities.

18. Here then we are not dealing with theories, but with facts, which anybody may verify. The whole of the Rig-veda, and a great deal more, still exists at the present moment in oral tradition of a number of scholars who, if they liked, could write down every letter, and every accent, exactly as we find them in our old MSS.

19. Of course, this learning by heart is carrid on under a strict discipline ; it is, in fact, considered as a sacred duty. A native friend of mine, himself a very distinguished Vedic scholar, tells me that a boy, who is to be brought us as a student of the Rig-veda, has to spend about eight years in the house of his teacher. He has to learn ten books : first, the hymns of the Rig-veda : then a prose treatise on sacrifices, called the Brahmana ; then the so-called Forest-book or Aranyaka ; then the rules on domestic ceremonies ; and lastly, six treatises on pronunciation, grammar, etymology, metre, astronomy, and ceremonial.

20. These ten books, it has been calculated, contain nearly 30,000 lines, each line reckoned as thirty-two syllables.

21. A pupil studies every day, during the eight years of his theological apprenticeship, except on the holidays, which are called 'non-reading days'. There being 360 days in a lunar year, the eight years would give him 2,880 days. Deduct from this 384 holidays, and you get 2,496 working days during the eight years. If you divide the number of lines, 30,000, by the number of working days, you get about twelve lines to be learnt each day, though much time is taken up, in addition, for practising and rehearsing what has been learnt before.

22. Now this is the state of things at present, though I doubt whether it will last much longer, and I always impress on my friends in India, and therefore impress on those also who will soon be settled as Civil Servants in India, the duty of trying to learn all that

सप्तम व्याख्यान

वेद-वेदान्त

1. यदि 500 ई० पू० से पूर्व भारत में लेखन अज्ञात था तो वेदों का संकलन और संरक्षण ई० पू० 1500 में कैसे हुआ, क्योंकि वेदों का संकलन-काल यही बताया गया है। इसलिए मेरे श्रोताओं में से कुछ ने यदि मुझे अपने इस अन्तिम व्याख्यान के कुछ समय में इस प्रश्न का उत्तर देने को कहा है तो मेरे लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। क्लासिकल विद्वान् स्वभावत: पूछा करते हैं कि ऋग्वेद की प्राचीनतम पाण्डुलिपि की तिथि क्या है ? और वह कौन-सी साक्षी या प्रमाण है, जिसके आधार पर वेद के संकलन का इतना पुराना समय निर्धारित किया गया है ? मैं यथाशक्ति इन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न करूँगा। मैं अपनी इस विनम्र स्वीकृति के साथ इस व्याख्यान का आरम्भ कर रहा हूँ कि ऋग्वेद की हमें ज्ञात प्राचीनतम पाण्डुलिपि जो उपलब्ध है, वह ई० पू० 1500 की नहीं अपितु 1500 ई० की है।

2. इस प्रकार इन दोनों में 3000 वर्ष का जो अन्तराल है, इसके समाधान के लिए कुछ ठोस तर्कों व प्रमाणों की आवश्यकता होगी। इतना ही नहीं···।

3. आपको ज्ञात होगा कि इस शताब्दी के आरम्भ में जब होमर के काव्य के रचनाकाल का निर्धारण हो रहा था, तब विख्यात जर्मन विद्वान् फ्रेड्रिख आगस्ट वॉल्फ ने ये दो प्रश्न उठाए थे—

1. यूनानी लोग वर्णमाला से कब परिचित हुए और उन्होंने अपने शिलालेखों, सिक्कों, धातु के पत्रों व संविदा-लेखन में इसका प्रयोग निजी व सामाजिक जीवन में कब प्रारम्भ किया ?

2. यूनानियों ने साहित्य-रचना के लिए लिपि का प्रयोग कब आरम्भ किया और लेखन के लिए उन्होंने कौन-सी सामग्री का उपयोग किया ?

4. इन दोनों प्रश्नों तथा इनके जो उत्तर मिले हैं, उनसे यूनानी साहित्य के धुंधले युग पर बिल्कुल नया प्रकाश पड़ा है। अन्य सभी बातों की अपेक्षा यूनान के इतिहास में यह तथ्य दृढ़तापूर्वक स्थापित हो गया कि आयोनियन लोगों ने अल्फाबेट (वर्णमाला) फिनीशिया (सीरिया के तटवर्ती) के लोगों से सीखा था। आयोनियन लोग अपने वर्णों को भी फिनीशियन अक्षर ही कहते थे और यह 'अल्फाबेट' भी फिनीशिया का शब्द ही है। हम यह भली-भाँति समझ सकते हैं कि फिनीशियन लोगों ने आयोनियन लोगों को कुछ तो उनके साथ व्यापारिक सम्बन्धों में अपने अनुबन्ध पत्र लिखने-लिखवाने और कुछ मध्य युग के सायांत्रिकों के लिए अत्युपयोगी मानचित्रों के जैसे अपने बहुमूल्य छोटे-छोटे धातु पत्रों के व्यापार विनियम के उद्देश्य से अपनी वर्णमाला सिखाई होगी। तथापि, इसके

can still be learnt from those living libraries. Much ancient Sanskrit lore will be lost for ever when that race of Srotriyas becomes extinct.

23. But now let us look back. About a thousand years ago a Chinese, of the name of I-tsing, a Buddhist, went to India to learn Sanskrit, in order to be able to translate some of the sacred books of his own religion, which were orginally written in Sanskrit, into Chinese. He left China in 671, twenty-five years after Hiuen-tsang's return, arrived at Tamralipti in India in 673, and went to the great College and Monastery of Nalanda ; where he studied Sanskrit. He returned to China in 695, and died in 713.

24. In one of his works which we still possess in Chinese, he gives an account of what he saw in India, not only among his own co-religionists, the Buddhists, but likewise among the Brahmans.

25. Of the Buddhist priests he says that after they have learnt to recite the five and the ten precepts, they are taught the 400 hymns of Matricheta, and afterward the 150 hymns of the same poet. When they are able to recite these, they begin the study of the Sutras of their Sacred Canon. They also learn by heart the Jatakamala, which gives an account of Buddha in former states of existence. Speaking of what he calls the islands of the Southern Sea, which he visited after leaving India, I-tsing says : 'There are more than ten islands in the South Sea. There both priests and laymen recite the Jatakamala, as they recite the hymns mentioned before ; but it has not yet been translated into Chinese.'

26. One of these stories, he proceeds to say, was versified by a king and set to music, and was performed before the public with a band and dancing—evidently a Buddhist mystery play.

27. I-tsing then gives a short account of the system of education. Children, he says, learn the forty-nine letters and the 10,000 compound letters when they are six years old, and generally finish them in half a year. This corresponds to about 300 verses, each sloka of thirty-two syllables. It was originally taught by Mahesvara. At eight years, children begin to learn the grammar of Panini, and know it after about eight months. It consists of 1,000 slokas, called Sutras.

Then follows the list of roots and the three appendices, consisting again of 1,000 slokas. Boys begin the three appendices when they are ten years old and finish them in three years.

When they have reached the age of fifteen, they begin to study a commentary on the grammar (Sutra) and spend five years in

बाद भी हम जिसे लिखित साहित्य समझते हैं, उसका निर्माण आरम्भ होने तक काफी समय लगा होगा। यह सुविदित है कि जर्मन लोग कब्रों या सार्वजनिक स्मारकों पर अभिलेख अंकित करने के लिए तो वर्णमाला का उपयोग करते थे, किन्तु साहित्य के लिए नहीं। यदि इने-गिने आयोनियन लोगों ने मिलेतस या ऐसे ही किन्हीं अन्य राजनैतिक और व्यापारिक केन्द्रों में लेखन कला का ज्ञान प्राप्त कर भी लिया हो फिर भी उन्हें लेखन-सामग्री कहाँ से मिल सकती थी ? और इससे भी अधिक ध्यान देने योग्य बात यह है कि उन्हें पाठक कहाँ मिल पाते। आयोनियन लोगों ने जब लिखना शुरू किया तो 'डिपथेर' (चमड़े के टुकड़े) से ही तब तक सन्तुष्ट रहे और जब तक कि पार्चमेंट (चमड़े की झिल्ली-नुमा हल्का चर्म पत्र) पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो गया, तब तक लेखन का व्यवसाय कठिन ही बना रहा।

5. जहाँ तक हमें ज्ञात है आयोनियन लोगों ने ई० पू० छठी सदी के मध्य लिखना शुरू किया था। और वोल्फ के सिद्धान्त के विरुद्ध कुछ भी कहा जाता रहे यह मान्यता स्वीकार कर ली गई है कि उन लोगों ने साहित्य और गद्य के लेखन का आरम्भ साथ ही साथ किया था।

6. उस समय लेखन एक प्रकार का प्रयत्न था। और ऐसा प्रयत्न किसी बड़े उद्देश्य से ही किया जाता था। फलतः नगर या किसी देश का भ्रमण करने वाले यात्रियों की मार्गदर्शक पुस्तिकाओं के रूप में ही पहली पुस्तकें लिखी जाने लगीं थी। ऐसी पुस्तकें एशिया माइनर में पाँचवी-छठी सदी तक विद्यमान थीं। तथा उनके लेखकों को आइडोई (कवि) के विपरीत लोगियोई इस सामान्य नाम से अभिहित किया जाता था। वे यूनानी इतिहास लेखकों के पूर्ववर्ती थे और ग्रीक इतिहास लेखक हेरोदोतस (443 ई० पू०), जिसे इतिहास का पिता माना जाता है, ने इनकी सामग्री का खुलकर उपयोग किया है।

7. यह सम्पूर्ण आरम्भिक साहित्यिक गतिविधि एशिया माइनर से सम्बद्ध है। आरम्भ में नगरों और देशों के मार्गदर्शन के लिए निर्मित साहित्य ही ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन के मार्गदर्शक दार्शनिक साहित्य के रूप में परिणत हो गया। आयोनियन ऐनक्सीमेंडर (610 से 547 ई० पू०) तथा सीरिया का फेरेकिडस (540 ई० पू०) ऐसे ही दार्शनिक थे। ये ऐसे नाम हैं जो हमें इतिहास के प्रकाश में ले आते हैं। क्योंकि ऐनक्सी-मेंडर, ऐनक्सीगोरस का गुरु था और ऐनक्सीगोरस था पैरीक्लेस का गुरु। इस समय तक लेखन एक सर्वस्वीकृत कला बन चुकी थी और मिश्र के साथ व्यापार-व्यवसाय तथा पैपी-रस के आयात से लेखन-कला वहाँ विकसित होने लगी। ऐस्किलोस (500 ई० पू०) के समय में लेखन कला इतनी जानी-पहचानी हो गई थी कि पीसिस्ट्रेटोस (528 ई० पू०) और पोलीक्रेटस (523 ई० पू०) यूनानी पाण्डुलिपियों के संकलनकर्ताओं में से थे, इस तथ्य में किसी प्रकार के सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं है।

8. इस प्रकार वोल्फ का साधारण सा प्रश्न प्राचीन यूनानी साहित्य के इतिहास को और विशेषतः उसके प्रारम्भ को संक्षिप्त करने में बड़ा सहायक बना।

9. इसी प्रकार संस्कृत साहित्य के अध्येताओं के द्वारा भी उन्हीं पहले दो प्रश्नों

learning it. And here I-tsing gives the following advice to his countrymen, many of whom came to India to learn Sanskrit, but seem to have learnt it very imperfectly 'If men of China,' he writes, 'go to India, wishing to study there, they should first of all learn these grammatical works, and then only other subjects ; if not, they will merely waste their labour. These works should be learnt by heart. But this is suited for men of high quality only.... They should study hard day and night, without letting a moment pass for idle repose. They should be like Confucius, through whose hard study the binding of his Yih-king was three times cut asunder, being worn away ; and like Sui-shih, who used to read a book repeatedly one hundred times.' Then follows a remark, more intelligible in Chinese than in English : 'The hairs of a bull are counted by thousands, the horn of a unicorn is only one.'

I-tsing then speaks of the high degree of perfection to which the memory of these students attained, both among Buddhists and heretics. 'Such men,' he says, 'could commit to memory the contents of two volumes, learning them only once.'

28. And then turning to the *heretics*, or what we should call the orthodox Brahmans, he says : 'The Brahmans are regarded throughout the five divisions of India as the most respectable. They do not walk with the other three castes, and other mixed classes of people are still further dissociated from them. They revere their Scriptures, the four Vedas, containing about 100,000 verses............The Vedas are handed down from mouth to mouth, not written on paper. There are in every generation some intelligent Brahmans who can recite those 100,000 verses............I myself saw such men.'

29. Here then we have an eye-witness who, in the seventn century after Christ, visited India, learnt Sanskrit, and spent about twenty years in difierent monasteries—a man who had no theories of his own about oral tradition, but who, on the contrary, as coming from China, was quite familiar with the idea of a written, nay, of a printed literature :—and yet what does he say ? 'The Vedas are not written on paper, but handed down from mouth to mouth.'

30 Now, I do not quite agree here with I-tsing. At all events, we must not conclude from what he says that there existed no Sanskrit MSS. at all at his time. We know they existed. We know that in the first century of our era Sanskrit MSS. were carried from India to China and translated there. Most likely therefore there were MSS. of the Veda also in existence. But I-tsing, for all that, was right in supposing that these MSS. were not allowed to be used by students, and

का पूछा जाना युक्तिसंगत लगता है :—

(क) भारत के लोग वर्णमाला से कब परिचित हुए ?

(ख) और उन्होंने साहित्य के लिए उस वर्णमाला का प्रयोग कब शुरू किया ?

यह बड़ी विचित्र बात है कि काफी समय तक ये प्रश्न उपेक्षित रहे। फलस्वरूप प्राचीन साहित्य के घपले में प्राथमिक तत्त्वों का क्रम बैठाना भी कठिन था।

यहाँ मैं कुछ तथ्य ही उपस्थित कर रहा हूं ई० पू० तीसरी सदी से पहले का भारत में कहीं भी कोई अभिलेख नहीं मिला। ये बौद्ध धर्म सम्बन्धी अभिलेख सेल्युकस के समकालीन चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक के समय में खुदवाए गए थे। मैंगस्थनीज चन्द्रगुप्त के दरबार में ही सैल्युकस का राजदूत था।

10-11. अशोक के तीसरी शताब्दी ई० पू० में खुदवाए हुए शिलालेख सारे भारत में प्राप्त हुए हैं। ये शिलालेख बाएं से दाएं चलने वाली (ब्राह्मी) लिपि में हैं, किन्तु कुछ शिलालेख दाएं से बाएं चलने वाली खरोष्ठी लिपि में हैं। निश्चित ही खरोष्ठी लिपि (सैमेटिक लिपियों में से एक) आर्मेनियन से विकसित है। न केवल उत्तर भारत की वर्तमान में प्रचलित शारदा, बंगला, नागरी आदि लिपियाँ ही, अपितु दक्षिण भारत की तमिल, तेलुगु आदि के लिए प्रयुक्त तथा सुदूर इण्डोनेशिया तक की लिपियाँ इसी ब्राह्मी लिपि से विकसित हुई हैं।

12. यद्यपि मैंगस्थनीज ने लिखा है कि भारत में विधि शास्त्र का लिखित नहीं, अपितु मौखिक रूप ही प्रचलित है, साथ ही वह यह भी लिखता है कि वहाँ सड़कों के किनारे लगे मील के पत्थरों पर और दागे गए पशुओं पर संख्याएं अंकित रहती हैं। उधर उसी के समकालीन सिकन्दर महान् के दूसरे सेनापति निथरकस, (जो ई० पू० 325 में हुआ) का कथन है कि भारत के लोग एक विशेष प्रकार से जमायी गई रुई (के बने कागजों) पर लिखा करते हैं। इस प्रकार मैंगस्थनीज व नियरकस दोनों के कथनों में वस्तुतः कोई विरोध नहीं है, क्योंकि मैंगस्थनीज शास्त्रों की बात कहता है, जो कण्ठस्थ ही किए जाते थे और दूसरी ओर नियरकस व्यवहार-पत्रों और इकरारनामों आदि के लिखित रूप में होने की चर्चा कर रहा है।

13. इस प्रकार हम एक ओर तो कहते हैं कि भारत में लिपि का प्रयोग ई० पू० चौथी सदी में आरम्भ हुआ और दूसरी ओर यह भी कि मन्त्र, ब्राह्मण और सूत्र, इन तीन प्रमुख रूपों में विभक्त सम्पूर्ण वैदिक साहित्य कम से कम ईसा से 1000 वर्ष पहले अपने वर्तमान रूप में विकसित हो चुका था।

14. ऋग्वेद जिसमें अनेक देवताओं की स्तुतियों से सम्बद्ध दस मण्डल, 1017 सूक्त, 10500 मंत्र और 1,53,826 के लगभग मत्र हैं भला कैसे संकलित हुए। इस ऋग्वेद का छन्दोविधान भी सर्वांग शुद्ध है। अब भला अपने संकलन काल ई० पू० 1500 से लेकर इसकी पाण्डुलिपि के लेखन काल पन्द्रह सौ ईस्वी तक यह परंपरा में कैसे सुरक्षित रहा ?

15. सम्पूर्णतया स्मरणशक्ति से। यह बड़ा आश्चर्यजनक लग सकता है, किन्तु

that they had always to learn the Veda by heart and from the mouth of a properly qualified teacher. The very fact that in the later law-books severe punishments are threatened against persons who copy the Veda or learn it from a MS., shows that MSS. existed, and that their existence interfered seriously with the ancient privileges of the Brahmans, as the only legitimate teachers of their sacred scriptures.

31. If now, after having heard this account of I-tsing, we go back for about another thousand years, we shall feel less sceptical in accepting the evidence which we find in the so-called Pratisakhyas, that is, collections of rules which, so far as we know at present, go back to the fifth century before our era, and which tell us almost exactly the same as what we can see in India at the present moment, namely that the education of children of the three twice-born castes, the Brahmans, Kshatriyas, and Vaisyas, consisted in their passing at least eight years in the house of a Guru, and learning by heart the ancient Vedic hymns.

32. The art of teaching had even at that early time been reduced to a perfect system, and at that time certainly there is not the slightest trace of anything, such as a book, or skin, or parchment, a sheet of paper, pen or ink, being known even by name to the people of India ; while every expression connected with what we should call literature, points to a literature (we cannot help using that word) existing in memory only, and being handed down with the most scrupulous care by means of oral tradition.

33. I had to enter into these details because I know that, with our ideas of literature, it requires an effort to imagine the bare possibility of a large amount of poetry, and still more of prose, existing in any but a written form. And yet here too we only see what we see elsewhere, namely that man, before the great discoveries of civilization were made, was able by greater individual efforts to achieve what to us, accustomed to easier contrivances, seems almost impossible. So-called savages were able to chip flints, to get fire by rubbing sticks of wood, which baffles our handiest workmen. Are we to suppose that, if they wished to preserve some songs which, as they believed, had once secured them the favour of their gods, had brought rain from heaven, or led them on to victory, they would have found no means of doing so ? We have only to read such acconts as, for instance, Mr. William Wyatt Gill has given us in his 'Historical Sketches of Savage Life in Polynesia', to see how anxious even savages are to preserve the records of their ancient heroes, kings, and gods, particularly when the dignity or nobility of certain

इससे भी अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि जिस किसी को इस तथ्य में कुछ सन्देह हो, वह आज भी इसे प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है कि यदि ऋग्वेद की सभी पाण्डुलिपियाँ नष्ट भी हो गई होतीं तो भी मात्र भारत के श्रोत्रियों की स्मृति से ही उसे पुनः प्राप्त किया जा सकता था। भारत के ये विद्यार्थी गुरुमुख से ही वेद पढ़ते हैं न कि किसी पाण्डुलिपि से, और मेरे द्वारा सम्पादित व प्रकाशित ऋग्वेद से तो और भी कम विद्यार्थी उसे पढ़ते हैं।

16. मुझे ऑक्सफोर्ड में ही अपने निवास स्थान पर ऐसे अध्येता मिले हैं, जो ऋग्वेद के सूक्तों को सस्वर कण्ठस्थ सुना देते थे, इतना ही नहीं मेरे ऋग्वेद के मुद्रित संस्करण को देखकर मुद्रण की छोटी सी भी अशुद्धि को विना किसी हिचकिचाहट के बतला भी देते थे।

17. मैं आपको एक बात और बताऊँ हमारे ऋग्वेद (की शाकल शाखा) की प्रतिलिपियों में कहीं कोई पाठ भेद नहीं है। किन्तु भारत में विभिन्न शाखाओं के अपने-अपने पाठ हैं और वे उन परम्पराओं में बड़ी शुद्धता और सावधानी के साथ सुरक्षित हैं। इसलिए जैसे हम ग्रीक और लेटिन की पाण्डुलिपियों का दूसरी प्रतिलिपियों से मिलान कर सम्पादित करते हैं, मैंने भारत के अपने कुछ मित्रों को कहा है कि वे ऋग्वेद को कण्ठस्थ रखने वाले वैदिक विद्वानों के यहाँ विद्यमान पाण्डुलिपियों का मिलान कर के इन जीवंत प्रमाणों से विभिन्न शाखाओं के पाठान्तर मुझे भिजवाएँ।

18. यहाँ हम सिद्धान्तों की चर्चा नहीं अपितु ऐसे तथ्यों की चर्चा कर रहे हैं, जिनका समर्थन कोई भी व्यक्ति कर सकता है। सम्पूर्ण ऋग्वेद और उससे भी अधिक वाङ्मय ऐसे विद्वानों की मुख परम्परा में आज भी सुरक्षित है, जो यदि चाहें तो वेद का प्रत्येक पद ठीक वैसे ही लिख सकते हैं, जैसे हमारे यहाँ की प्राचीन पाण्डुलिपियों में विद्यमान है।

19. यहाँ सिद्धान्त की नहीं, अपितु ऐसे तथ्यों की बात कर रहे है ! भारत के मेरे एक मित्र ने, जो स्वयं वेदों के प्रामाणिक विद्वान् हैं, मुझे बताया हैं कि ऋग्वेद पढ़नेवाले प्रत्येक विद्यार्थी को आठ वर्ष तक गुरु-गृह में अध्ययन करना होता है। वहां उसे संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्, इस चतुर्विध वैदिक साहित्य को कण्ठस्थ करने के बाद शिक्षा, व्याकरण, कल्प, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, वेद के इन षडंगों को कण्ठस्थ करना पड़ता है।

20. बत्तीस अक्षरों के (परम्परा-प्रचलित एक श्लोक) पाठ के हिसाब से इस चतुर्विध वैदिक साहित्य और षडंगों की पाठ-संख्या तीस हजार बनती है।

21. आठ वर्षों में (प्रतिपदा, अष्टमी तथा अमावास्या और पूर्णिमा-शास्त्रों में इन दिनों में पढ़ने-पढ़ाने का निषेध है) इन साप्ताहिक अनध्याय-दिवसों के सिवा; प्रतिदिन वेद-वेदांग कण्ठस्थ करने होते थे। इस प्रकार एक चान्द्र वर्ष में 360 दिनों के

families depends on these songs, or when they contain what might be called the title-deeds to large estates. And that the Vedic Indians were not the only savages of antiquity who discovered the means of preserving a large literature by means of oral tradition, we may learn from Caesar, not a very credulous witness, who tells us that the 'Druids were said to know a large number of verses by heart ; that some of them spent twenty years in learning them, and that they considered it wrong to commit them to writing'—exactly the same story which we hear in India.

34. We must return once more to the question of dates. We have traced the existence of the Veda, as handed down by oral tradition, from our days to the days of I-tsing in the seventh century after Christ, and again to the period of the Pratisakhyas, in the fifth century before Christ.

35. In that fifth century B.C. took place the rise of Buddhism, a religion built up on the ruins of the Vedic religion, and founded, so to say, on the denial of the divine authority ascribed to the Veda by all orthodox Brahmans.

36. Whatever exists therefore of Vedic literature must be accommodated within the centuries preceding the rise of Buddhism, and if I tell you that there are three periods of Vedic literature to be accommodated, the third presupposing the second, and the second the first, and that even that first period presents us with a collection, and a systematic collection of Vedic hymns, I think you will agree with me that it is from no desire for an extreme antiquity, but simply from a respect for facts, that students of the Veda have come to the conclusion that these hymns, of which the MSS. do not carry us back beyond the fifteenth century after Christ, took their origin in the fifteenth century before Christ.

37. One fact I must mention once more, because I think it may carry conviction even against the stoutest scepticism.

38. I mentioned that the earliest inscriptions discovered in India belong to the reign of King Asoka, the grandson of Chandragupta, who reigned from 274-237 before Christ. What is the language of those inscriptions ? Is it the Sanskrit of the Vedic hymns ? Certainly not. Is it the later Sanskrit of the Brahmans and Sutras ? Certainly not. These inscriptions are written in the local dialects as then spoken in India, and these local dialects differ from the grammatical Sanskrit about as much as Italian does from Latin.

39. What follows from this ? First, that the archaic Sanskrit of the Veda had ceased to be spoken before the third century B.C.

हिसाब से उसे आठ वर्षों में 2880 दिन मिलते थे। इनमें से 384 अनध्याय-दिवसों को निकाल देने पर उसे 2496 अध्ययन-दिवस मिलते हैं।

अब यदि आप उक्त 30,000 श्लोकों को 2496 स्वाध्याय-दिवसों से भाग दें तो आपको एक दिन में केवल 12 श्लोक याद करने हैं। हाँ, यह बात अवश्य है कि इसके साथ ही पूर्वपठित ग्रन्थों की आवृत्ति भी करनी होती थी।

22. वेद-वेदांगों के अध्ययनाध्यापन की यह परम्परा आज तक विद्यमान है। किन्तु, अब मुझे सन्देह होने लगा है कि क्या यह परम्परा आगे भी सुरक्षित रह पाएगी ? इसलिए मैं अपने भारत-स्थित मित्रों तथा आई०सी०एस० के पद पर नियुक्त होकर जाने वाले अपने शिष्यों से सदा यह आग्रह करता रहता हूँ कि यह उनका परम पुनीत कर्त्तव्य है कि वे इन चलते-फिरते पुस्तकालयों से जो कुछ सीख सकते हैं, अवश्य सीख लें, क्योंकि यदि कदाचित् यह श्रोत्रिय-समुदाय नामशेष रह गया, तो इस प्राचीन साहित्य का बहुत बड़ा अंश उन्हीं के साथ समाप्त हो जाएगा।

23. यहाँ हमें कुछ पीछे मुड़कर देखना होगा लगभग 1000 वर्ष पहले एक बौद्ध चीनी यात्री संस्कृत में लिखित बौद्ध धर्म ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद करने के उद्देश्य से संस्कृत पढ़ने के लिए भारत आया था। वह ह्यूनसांग के लौटने के 25 वर्ष बाद सन् 671 में चीन से चलकर 673 में भारत में ताम्रलिप्ति पहुँचा था और नालन्दा जैसे विश्वविद्यालयों और बौद्ध संघारामों में रह कर उसने संस्कृत पढ़ी और 695 में चीन लौट गया, जहाँ सन् 713 में उसकी मृत्यु हो गयी।

24. उसने अपनी एक रचना में जो अब तक सुरक्षित है, चीनी भाषा में अपने सहधर्मी बौद्धों का ही नही अपितु भारत के ब्राह्मणों का भी आँखों देखा वर्णन किया है।

25. बौद्ध भिक्षुओं के बारे में उसने लिखा है कि वे पंचशील और दस सिद्धांतों को याद करने के बाद मातृचेट की 400 सूत्र पढ़ते हैं। तत्पश्चात् उसी कवि के 150 सूक्त पढ़ते हैं। इसके बाद वे अपने धर्म ग्रन्थ (त्रिपिटिक) के सूत्रों का अध्ययन करने लगते हैं। वे जातक-मालाएँ भी कण्ठस्थ करते हैं जिनमें बुद्ध के पूर्व जन्मों का वृतान्त है।

भारत छोड़ने के बाद दक्षिण समुद्र के दस से भी अधिक द्वीपों की चर्चा करते हुए वह कहता है कि बौद्ध भिक्षु और वहाँ के लोग जातकमालाओं का पाठ करते हैं। किन्तु अभी तक उनका चीनी भाषा में अनुवाद नहीं हुआ है।

26. जातक माला की एक कथा को किसी राजा ने नाट्य रूपक के रूप में अभिनीत करवाया था।

27. इसके पश्चात् इत्सिंग बच्चों की शिक्षा पद्धति के बारे में बताता है कि 49 वर्ण तथा 10,000 संयुक्त अक्षर सीख लेने के बाद वे 32 अक्षरात्मक 300 श्लोक पढते हैं। आठ वर्ष की अवस्था में वे माहेश्वर प्रोक्त 14 सूत्रों के साथ पाणिनीय व्याकरण

Secondly, that even the later literary and grammatical Sanskrit was no longer spoken and understood by the people at large; that Sanskrit therefore had ceased, nay, we may say, had long ceased to be the spoken language of the country when Buddhism arose, and that therefore the youth and manhood of the ancient Vedic language lie far beyond the period that gave birth to the teaching of Buddha, who, though he may have known Sanskrit, and even Vedic Sanskrit, insisted again and again on the duty that his disciples should preach his doctrines in the language of the people whom they wished to benefit.

40. And now, when the time allotted to me is nearly at an end, I find, as it always happens, that I have not been able to say one half of what I hoped to say as to the lessons to be learnt by us in India, even with regard to this one branch of human knowledge only, the study of the origin of religion. I hope, however, I may have succeeded in showing you the entirely new aspect which the old problem of the *theogony*, or the origin and growth of the Devas or god, assumes from the light thrown upon it by the Veda. Instead of positive theories, we now have positive facts, such as you look for in vain anywhere else; and though there is still a considerable interval between the Devas of the Veda, even in their highest form and such concepts as Zeus, Apollon, and Athene, yet the chief riddle is solved, and we know now at last what stuff the gods of the ancient world were made of.

41. But this theogonic process is but one side of the ancient Vedic religion, and there are two other sides of at least the same importance and of even a deeper interest to us.

42. There are in fact three religions in the Veda, or, if I may say so, three naves in one great temple, reared, as it were, before our eyes by poets, prophets, and philosophers. Here, too, we can watch the work and the workmen. We have not to deal with hard formulas only, with unintelligible ceremonies, or petrified fetishes. We can see how the human mind arrives by a perfectly rational process at all its later irrationalities. This is what distinguishes the Veda from all other Sacred Books. Much, no doubt, in the Veda also, and, in the Vedic ceremonial, is already old and unintelligible, hard and petrified. But in many cases the development of names and concepts, their transition from the natural to the supernatural, from the individual to the general, is still going on, and it is for that very reason that we find it so difficult, nay almost impossible,

के 1000 सूत्र कण्ठस्थ करते हैं। तत्पश्चात् 1000 श्लोकात्मक धातुपाठ, गणपाठ आदि पढ़ते हैं।

पन्द्रह वर्ष की आयु में वे सूत्रों की वृत्ति पढ़ने लगते हैं, जिसमें उन्हें 5 वर्ष लग जाते हैं। यहाँ वह अपने देशवासियों को चेतावनी देता है कि उसके देशवासी जो लोग संस्कृत पढ़ने के लिए भारत आते हैं उन्हें सर्वप्रथम संस्कृत व्याकरण पढ़ना चाहिए और उसके बाद कोई अन्य विषय। इसके बिना उनका समय व्यर्थ ही नष्ट हो जाएगा। उन्हें यह व्याकरण कण्ठस्थ करना चाहिए, किन्तु यह उच्च योग्यता-सम्पन्न व्यक्ति के ही अनुकूल है। ऐसे लोगों को दिन रात बिना विश्राम किए कठोर श्रम करना होता है। उन्हें कन्फ्यूसस और सुई शिह के समान कठोर परिश्रमशील बनना होता है। इसके बाद वह जो टिप्पणी करता है वह चीनी भाषा में ही बोधगम्य है। उसका अनुवाद यह हो सकता है। 'किसी बैल के बाल तो हजारों में गिने जा सकते हैं, किन्तु गैण्डे का सींग एक ही होता है।

इसके बाद इत्सिग बौद्ध और परम्परावादी ब्राह्मण दोनों की स्मरण-शक्ति की प्रशंसा करते हुए कहता है कि इन विद्यार्थियों में ऐसे भी थे जो किसी पुस्तक को एक बार पढ़कर ही उसका विषय याद रख लेते थे।

28. इसके बाद परम्परावादी ब्राह्मणों के लिए वह कहता है कि पाँचों वर्णों में ब्राह्मणों का बहुत आदर है। वे दूसरों के साथ मिलते-जुलते नहीं। वे अपने धर्म ग्रन्थ, चारों वेदों का जिनमें एक लाख मन्त्र हैं, बहुत आदर करते हैं। वेद मुख-परम्परा में ही सुरक्षित हैं, लिखित रूप में नहीं। प्रत्येक पीढ़ी में ऐसे ब्राह्मण हैं जो इन एक लाख मन्त्रों को कण्ठस्थ सुना सकते हैं। मैंने स्वयं ऐसे विद्वान देखे हैं।

29. और यहाँ हमें एक ऐसा प्रत्यक्ष द्रष्टा साक्षी मिला, जो ईसा की सातवीं सदी में भारत आया, संस्कृत पढ़ा और लगभग 20 वर्ष तक विभिन्न बौद्ध मठों में रहा, जो कण्ठस्थ करने की परम्परा से अपरिचित था, इसके विपरीत चीन का निवासी होने के कारण लिखित ही नहीं मुद्रित साहित्य से भी भली-भाँति परिचित था, तथापि, वह क्या कहता है, 'वेद पुस्तकों के रूप में लिखित नहीं हैं, किन्तु पीढ़ी दर पीढ़ी मुख परम्परा से ही सुरक्षित हैं।'

30. यहाँ मैं इत्सिग से कतई सहमत नहीं हूँ। उसके इस कथन से हमें यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि उसके समय में संस्कृत ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ बिलकुल थी ही नहीं। हमें ज्ञात है कि पहली सदी में भारत से संस्कृत पाण्डुलिपियाँ चीन ले जाई गयीं और वहाँ अनूदित हुईं। बहुत स्वाभाविक है कि उस समय वेदों की पाण्डुलिपियाँ भी रही हों। किन्तु इत्सिग अपनी इस मान्यता में सही है कि विद्यार्थियों के लिए पुस्तकों का उपयोग वर्जित था और उन्हें सुयोग्य विद्वान गुरुओं से ही वेद कण्ठस्थ ही करने होते थे। यह आवश्यक था यह तथ्य ही कि वेदों की प्रतिलिपि करने या उन्हें पुस्तक से पढ़ने के लिए परवर्ती धर्मशास्त्रों में कठोर दण्ड का विधान है, प्रमाणित

to translate the growing thoughts of the Veda into the full-grown and more than full-grown language of our time.

43. Let us take one of the oldest words for god in the Veda, such as deva, the Latin *deus*. The dictionaries tell you that deva means god, and gods, and so, no doubt, it does. But if we always translated deva in the Vedic hymns by god, we should not be translating, but completely tronsforming the thoughts of the Vedic poets. I do not mean only that *our* idea of God is totally different from the idea that was intended to be expressed by deva ; but even the Greek and Roman concept of gods would be totally inadequate to convey the thoughts imbedded in the Vedic deva. Deva meant originally bright, and nothing else. Meaning bright, it was constantly used of the sky, the stars, the sun, the dawn, the day, the spring, the rivers, the earth ; and when a poet wished to speak of all of these by one and the same word—by what we should call a general term—he called them all Devas. When that had been done, Deva did not longer mean 'the Bright ones', but the name comprehended all the qualities which the sky and the sun and the dawn shared in common, excluding only those that were peculiar to each.

44. Here you see how, by the simplest process, the Devas, the bright ones, might become and did become the Devas, heavenly, the kind, the powerful, the invisible, the immortal—and, in the end, something very like *Theoi* of the Greeks and the Dii of the Romans.

45. In this way one Beyond, the Beyond of Nature, was built up in the ancient religion of the Veda, and people with Devas, and Asuras, and Vasus, and Adityas, all names for the bright solar, celestial, diurnal, and vernal powers of nature, without altogether excluding, however, even the dark and unfriendly powers, those of the night, of the dark clouds, or of winter, capable of mischief, but always destined in the end to succumb to the valour and strength of their bright antagonists.

46. We now come to the second nave of the Vedic temple, the second *Beyond* that was dimly perceived and grasped and named by the ancient Rishis, namely the world of the Departed Spirits.

47. There was in India, as elsewhere, another very early faith, springing up naturally in the hearts of the people, that their fathers and mothers, when they departed this life, departed to a Beyond, wherever it might be, either in the East from whence all the bright Devas seemed to come, or more commonly in the West, the land to which they seemed to go, called in the Veda the realm of

करता है कि उस समय संस्कृत ग्रन्थों और वेदों की पाण्डुलिपियाँ विद्यमान थीं। किन्तु केवल ब्राह्मणों के ही अपने धर्म ग्रन्थों (वेदों) के वैध अध्यापक हो सकने के कारण उनकी विद्यमानता व्यवहित थीं।

31. इत्सिंग का यह वर्णन पढ़ने के बाद यदि और एक हजार वर्ष पीछे पहुँच जायें तो हमें प्रातिशाख्यों में उपलब्ध साक्ष्य को स्वीकार करने में वैसी हिचक नहीं रहेगी। अभी तक हमें यही ज्ञात है कि ये प्रातिशाख्य ई० पू० पाँचवीं शताब्दी के हैं और ठीक वे ही बातें बताते हैं, जो आज के भारत में भी दिखाई देती हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों बालकों की शिक्षा में आठ वर्ष तक गुरुगृह में रह कर वेद कण्ठस्थ करना सम्मिलित था।

32. उस प्राचीन युग में भी अध्यापन कला की प्रक्रिया सर्वांगपूर्ण थी। तथापि उस युग में पुस्तक, कागज, स्याही या लेखिनी आदि का कहीं नाम तक नहीं है। जबकि हमारा साहित्य स्मृति परम्परा में ही बड़ी सावधानी के साथ सुरक्षित था।

33. यहाँ मुझे इस विषय की चर्चा कुछ विस्तार के साथ इसलिए करनी पड़ी कि मैं जानता हूँ कि हमारी समझ में पद्य और गद्य का इतना विशाल साहित्य लिखित रूप में ही रचा जाना संभव है। फिर भी हमें यहाँ जो देखने को मिलता है, वह अन्यत्र भी दिखाये जाता है। जैसे कि बड़ी-बड़ी सभ्यताओं को विकसित होने से पहले ही मानव को अपने वैयक्तिक प्रयत्न से ही इतनी उपलब्धियाँ संजो ली थी, जो सरल से आविष्कारों के आदी हम लोगों को असम्भव सी दिखाई देती हैं। जैसे कि तथाकथित जंगली लोग 'चक-मक' बनाना जानते थे और लकड़ी के डण्डों को रगड़कर आग पैदा कर लिया करते थे, इससे हमारे आज के कुशल कारीगरों को बड़ी व्यग्रता होती है। क्या हम यह मान लें कि यदि वे अपने उन गीतों को जिनसे उनके अपने विश्वास के अनुसार वे अपने देवताओं के कृपापात्र बने थे, अथवा आकाश में बादल बरसे थे, या वे विजयी हुए थे, सुरक्षित रखना चाहते तो इसके लिए उनके पास कोई साधन नहीं था। श्री विलियम चेत गिल अपने 'पोलिनेशिया' की जंगली जातियों के ऐतिहासिक आलेख में बताते हैं कि वहाँ के निवासी अपने पूर्वज वीरों आदि के चरित्रों को सुरक्षित बनाए रखने के लिए कितने प्रयत्नशील रहते थे। और केवल भारतवासी ही कण्ठस्थ करके अपने विशाल साहित्य को सुरक्षित रख रहे हों, सो बात भी तो नहीं है। क्योंकि सीजर—कोई ज्यादा विश्वस्त साक्षी नहीं—से हमें ज्ञात होता है कि आयरलैण्ड के प्राचीन पुरोहित ड्यूड लोगों की बहुत-सी कविताएँ कण्ठस्थ थीं और उनमें से कुछ लोगों को उन्हें याद करने में बीस वर्ष लग जाया करते थे, तथा उन्हें लिख लेना बुरा समझा जाता था, ठीक वैसे ही जैसे भारत में। केवल भारत में ही नहीं, अन्यत्र भी प्राचीन युग में साहित्य को कण्ठस्थ करने की परम्परा रही है।

34. अब हमें फिर से (वेदों के) काल के प्रश्न पर विचार करना है। हमने आज से लेकर सातवीं सदी के इत्सिंग तक और उसके पहले ई० पू० पाँचवीं शती के प्रातिशाख्य युग तक तो वेदों की विद्यमानता का पता लगा लिया।

Yama or the setting sun. The idea that beings which once had been, could never cease to be, had not yet entered their minds ; and from the belief that their fathers existed somewhere, though they could see them no more, there arose the belief in another Beyond, and the germs of another religion.

48. Nor was the actual power of the fathers quite imperceptible or extinct even after their death. Their presence continued to be felt in the ancient laws and customs of the family, most of which rested on their will and their authority. While their fathers were alive and strong, their will was law ; and when, after their death, doubts or disputes arose on points of law or custom, it was but natural that the memory and the authority of the fathers should be appealed to settle such points—that the law should still be their will.

49. Thus Manu says : 'On the path on which his fathers and grandfathers have walked, on that path of good men let him walk, and he will not go wrong.'

50. In the same manner then in which, out of the bright powers of nature, the Devas or gods had arisen, there arose out of predicates shared in common by the departed, such as pitris, fathers, preta, gone away, another general concept, what we should call *Manes*, the kind ones, *Ancestors*, *Shades*, *Spirits* or *Ghosts*, whose worship was nowhere more fully developed than in India. That common name, Pitris or *Fathers*, gradually attracted towards itself all that the fathers shared in common. It came to mean not only fathers, but invisible, kind, powerful, immortal, heavenly beings, and we can watch in the Veda, better perhaps than anywhere else, the inevitable, yet most touching metamorphosis of ancient thought,—the love of the child for father and mother becoming transfigured into an instinctive belief in the immortality of the soul.

51. It is strange, and really more than strange, that not only should this important and prominent side of the ancient religion of the Hindus have been ignored ; but that of late its very existence should have been doubted. I feel obliged, therefore, to add a few words in support of what I have said just now of the supreme importance of this belief in and this worship of ancestral spirits in India from the most ancient to the most modern times. Mr. Herbert Spencer, who has done so much in calling attention to ancestor-worship as a natural ingredient of religion among all savage nations, declares in the most emphatic manner, 'that he has seen it implied, that he has heard it in conversation, and that he now has it before

35. प्रातिशाख्यों के समय में ही ई० पू० 5वीं शती में वैदिक धर्म के अवशेषों पर ही बौद्ध धर्म का उदय हुआ। इन दोनों धर्मों में मुख्य अन्तर यह है कि ब्राह्मण वेदों को ईश्वरीय अथ च आप्तवाक्य मानते हैं, जबकि बुद्ध ने उन्हें ऐसा नहीं माना।

36. बुद्ध या प्रातिशाख्यों के लिए निर्धारित समय ई० पू० 5वीं शती से पहले ही वैदिक साहित्य की एक-दूसरे से पूर्ववर्ती तीन विभिन्न प्रकार की श्रेणियाँ—ब्राह्मण, मन्त्र और छन्द—विकसित हो चुकी थीं। प्रत्येक के लिए न्यूनतम दो सौ वर्षों का समय मान लेने पर भी हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि ऋग्वेद-संहिता की लिखित पाण्डु-लिपि भले ही ईस्वी 15वीं सदी से पहले की न मिली हो, किन्तु यह संहिता ई० पू० 15वीं सदी में अवश्य अपने वर्तमान रूप में संकलित हो चुकी थी और मैं समझता हूं कि अब आप इस विषय में मुझसे सहमत हो गये होंगे कि इस कथन में कोई अत्युक्ति की भावना निहित नहीं है, अपितु यह वेद के प्रत्येक अध्येता के द्वारा सुनिर्धारित कालगणना की प्राचीनता पर आधृत है।

37. यहाँ एक तथ्य मुझे फिर से प्रतिपादित करना है, क्योंकि इससे बड़े से बड़े सन्देहों का भी निराकरण हो सकेगा।

38. मैंने अभी बताया था कि ई० पू० 274-237 में चन्द्रगुप्त मौर्य के पुत्र अशोक के द्वारा लिखवाए गए अभिलेख सारे भारत में मिले हैं। क्या इन अभिलेखों की भाषा वैदिक संस्कृत है या ब्राह्मण ग्रन्थों और सूत्रग्रन्थों की भाषा है? निश्चित ही ये अभिलेख संस्कृत में न होकर भारत की स्थानीय बोलियों (प्राकृत के विविध रूपों) में हैं, जो संस्कृत से उतनी ही भिन्न थीं जितनी की लेटिन से आज की इटालियन भाषा है।

39. इससे क्या अर्थ निकलता है, प्रथम तो यह कि ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दी से पहले ही वैदिक संस्कृत बोल-चाल में अप्रयुक्त हो चुकी थी। दूसरे, यह कि बुद्धधर्म के उदय के समय तक संस्कृत जन-सामान्य के बोलचाल और समझने की भाषा नहीं रह गई थी। इसीलिए संस्कृत और वैदिक संस्कृत के ज्ञाता होने पर भी बुद्ध ने अपने शिष्यों को स्थानीय बोलियों में ही उनके प्रचार का आदेश दिया।

40. अब मुझे अपने इन व्याख्यानों के लिए दिया गया समय जब समाप्त होने जा रहा है, तो मैं देख रहा हूँ कि हमें भारत से जो कुछ सीखना चाहिए, विशेषतः मानव के ज्ञान की इस एक शाखा धर्म के उद्‌भव के बारे में, मैं अपनी बात आधी भी तो नहीं कह पाया हूँ। तथापि मुझे आशा है कि प्राचीन वैदिक तत्त्व से सम्बद्ध समस्याओं पर वेद के द्वारा जो प्रकाश पड़ा है उसे आपको समझाने में मैं अवश्य सफल हुआ हूँ। सिद्धान्तों की बजाए हमने उन रचनात्मक तथ्यों पर ही विचार किया है। जिनकी खोज में आप लोग अब तक अन्यत्र व्यर्थ ही भटकते रहे हैं। यद्यपि वेदों के देव और ज्यूस, अपोलो तथा ऐथेन आदि ग्रीक देवताओं में अब भी पर्याप्त विभेद विद्यमान है, तथापि असली गाँठ सुलझ गई है और अन्ततोगत्वा हम जान गए हैं कि प्राचीन युग के देवताओं का निर्माण किस तथ्य से हुआ था।

41. किन्तु प्राचीन हिन्दू धर्म के देव तत्त्व का यह एक पक्ष है। इसके अतिरिक्त

him in print, that no Indo-European or Semitic nation, so far as we know, seems to have made a religion of the worship of the dead.' I do not doubt his words, but I think that on so important a point, Mr. Herbert Spencer ought to have named his authorities. It seems to me almost impossible that anybody who has ever opened a book on India should have made such a statement. There are hymns in the Rig-veda addressed to the Fathers. There are full descriptions of the worship due to the Fathers in the Brahmanas and Sutras. The epic poems, the law books, the Puranas, all are brimful of allusions to ancestral offerings. The whole social fabric of India, with its laws of inheritance and marriage, rests on a belief in the Manes,—and yet we are told no Indo-European nation seems to have made a religion of the worship of the dead.

52. The Persians had their Fravashis, the Greeks their *theoi patrooi* and their *daimones*, while among the Romans the *Lares familiares* and the *Divi Mines* were worshipped more zealously than any other gods. Manu goes so far as to tell us in one place : 'An oblation by Brahmans to their ancestors transcends an oblation to the deities ;' and yet we are told that no Indo-European nation seems to have made a religion of the worship of the dead.

53. Such things ought really not to be, if there is to be any progress in historical research, and I cannot help thinking that what Mr. Herbert Spencer meant was probably no more than that some scholars did not admit that the worship of the dead formed the whole of the religion of any of the Indo-European nations. That, no doubt, is perfectly true, but it would be equally true, I believe, of almost any other religion. And on this point again the students of anthr opology will learn more, I believe, from the Veda than from any other book.

54. In the Veda the Pitris, or fathers, are invoked together with the Devas, or gods, but they are not confounded with them. The Devas never become Pitris, and though such adjectives as deva are sometimes applied to the Pitris, and they are raised to the rank of the older classes of Devas, it is easy to see that the Pitris and Devas had each their independent origin, and that they represent two totally distinct phases of the human mind in the creation of its objects of worship. This is a lesson which ought never to be forgotten.

55. We read in the Rig-veda : 'May the rising Dawns protect me, may the flowing Rivers protect me, may the firm Mountains protect me, may the Fathers protect me at this invocation of the gods.' Here nothing can be clearer than the separate existence of the

कम से कम दो वैसे ही अन्य पक्ष और भी हैं जो किसी अंश में हमारे लिए इससे भी अधिक गम्भीर और महत्त्वपूर्ण हैं।

42. वास्तव में जैसा कि हमें स्पष्ट दिखाई देता है, वैदिक ऋषियों, पुरोहितों और दार्शनिकों ने विशाल वैदिक साहित्य रूपी भव्य मन्दिर में तीन विभिन्न वेदियाँ प्रतिष्ठित की थीं। यद्यपि वेदों और विशेषतः वैदिक यज्ञ-यागों के विधान की बहुत-सी प्रक्रियाओं को ठीक से समझ पाना बहुत कठिन है, तथापि बहुत-से नामों और धारणाओं को समझ पाने की दिशा में अब तक बहुत काम हुआ है और हो भी रहा है, किन्तु हमारी परिपूर्ण रूप से विकसित अँग्रेजी भाषा में भी वेदों के अभिनव रमणीय अर्थों को ठीक से समझ पाना कठिन ही है।

43. उदाहरण के लिए देव शब्द को ही ले लीजिए। यह लैटिन के ड्यूस का प्रतिरूप प्रतीत होता है और कोशों में इसका अंग्रेजी पर्याय गॉड दिया गया है। किन्तु हमारा गॉड तो क्या ग्रीक और लेटिन भाषा के देवतार्थक सभी पर्यायवाचक शब्द भी वैदिक 'देव' शब्द के आशय को व्यक्त करने में सवथा असमर्थ हैं। 'दिव्' धातु से निष्पन्न देव शब्द का अर्थ है, 'प्रकाशमान', और यह मूल रूप से आकाश, तारकगण, सूर्यादि ग्रह-नक्षत्र, उषा, दिन, वसन्त आदि ऋतु चक्र, पृथिवी और नदी और प्रत्येक वर्ण्य वस्तु के लिए प्रयुक्त होता है। जब ऋषि इन सबको एक ही और उसी एक शब्द से जिसे हम 'सामान्य नाम' कहते हैं, से अभिहित करना चाहता था तो वह उन्हें 'देव' कहता था। जब यह सब हो गया तो अब 'देव' का अर्थ द्योतनशील प्रकाशमान नहीं रह गया, अपितु आकाश, सूर्य और उषा आदि सभी में जो इनकी अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं, उन्हें छोड़-कर जो सामान्य गुण हैं, उनसे युक्त सभी पदार्थों का एक सामान्य नाम बन गया।

44. यहाँ आप देख रहे हैं कि एक साधारण-सी प्रक्रिया से देव-द्योतनशील — देवता स्वर्ग के प्राणी, कृपालु, सर्वशक्तिमान् आदृश्य और अमर्त्य और अन्त में यूनानियों के थियोई रोमन लोगों 'का' भगवान या ईश्वर बन गये।

45. इस प्रकार प्राचीन वैदिक धर्म में इन प्राकृतिक तत्त्वों की पहुँच से परे एक 'परा' शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ, और देव, असुर, वसु आदि अन्तरिक्ष व द्युलोक को सदा-बहार, वासन्तिक स्थायी सभी प्रकाशमान तत्त्व या देवता उसकी प्रजा बन गये।

46. अब हम वेद-मन्दिर की उस वेदी के दर्शन करने चलते हैं। जिस पर वैदिक ऋषियों द्वारा चित्रित दूसरा 'पर' तत्त्व प्रतिष्ठित है जिसे 'परलोकगत' तत्त्व के नाम से अभिहित किया गया है

47. भारत तथा अन्यत्र भी लोगों के हृदयों में प्रारम्भ से ही एक अन्य विश्वास यह रहा है कि उनके माता-पिता अपने इस जीवन का अन्त हो जाने के बाद कहीं अन्यत्र चले गए हैं, भले ही वे पूर्व में देवलोक को सिधारे हों या पश्चिम में स्थित यमलोक गए हों। 'नाभावो विद्यते सतः' का सिद्धान्त उस युग में भले ही स्पष्टतया न भी समझा गया हो, तथापि जो जीव उत्पन्न हुए हैं वे नष्ट नहीं हो सकते और कहीं न कहीं विद्यमान हैं, इस भावना से परलोक और धर्म के प्रति एक विश्वास जगा।

Fathers, apart from the Dawns, the Rivers, and the Mountains, though they are included in one common invocation of the gods.

56. We must distinguish, however, from the very first, between two classes, or rather between two concepts of Fathers, the one comprising the distant, half-forgotten, and almost mythical ancestors of certain families or of what would have been to the poets of the Veda, the whole human race, the other consisting of the fathers who had but lately departed, and who were still, as it were, personally remembered and revered.

57. The old ancestors in general approach more nearly to the gods. They are often represented as having gone to the abode of Yama, the ruler of the departed, and to live there in company with some of the Devas.

58. Yama himself is sometimes invoked as if he were one of the Fathers, the first of mortals that died or that trod the path of the Fathers leading to the common sunset in the West. Still his real Deva-like nature is never completely lost, and, as the god of the setting sun, he is indeed the leader of the Fathers, but not one of the Fathers himself.

59. Many of the benefits which men enjoyed on earth were referred to the Fathers, as having first been procured and first enjoyed by them. They performed the first sacrifices, and secured the benefits arising from them. Even the great events in nature, such as the rising of the sun, the light of the day and the darkness of the night, were sometimes referred to them, and they were praised for having broken open the dark stable of the morning and having brought out the cows, that is, the days. They were even praised for having adorned the night with stars, while in later writings the stars are said to be the lights of the good people who have entered into heaven. Similar ideas, we know, prevailed among the ancient Persians, Greeks, and Romans. The Fathers are called in the Veda truthful (satya), wise (suvidatra), righteous (ritavat), poets (kavi), leaders (pathikrit), and one of their most frequent epithets is somya, delighting in Soma, Soma being the ancient intoxicating beverage of the Vedic Rishis, which was believed to bestow immortality, but which had been lost, or at all events had become difficult to obtain by the Aryas, after their migration into the Punjab.

60. The families of the Bhrigus, the Angiras, the Atharvans all have their Pitris or Fathers, who are invoked to sit down on the grass and to accept the offerings placed there for them. Even the

48. मृत्यु के बाद भी पितरों की शक्ति क्षीण नहीं होती है। परिवार की परं-पराओं तथा प्राचीन धर्म ग्रन्थों में उनकी उपस्थिति का अनुभव किया जाता रहता है। हमारे पितर जब तक जीवित और सशक्त रहे, उनकी इच्छा ही हमारे लिए कानून थी और उनकी मृत्यु के बाद जब विधि विधान या परम्पराओं को लेकर कोई विवाद उत्पन्न हो जाता तो यह स्वाभाविक था कि पितरों की स्मृति और प्रामाणिकता के नाम पर वे विवाद सुलझा लिए जाते और इस प्रकार अब भी उनकी इच्छा ही कानून बनी रहती।

49. इस प्रकार मनु कहते हैं—

येन ते पितरो याता, येन याता पितामहा।
तदेवास्ति सतां वर्त्म तेन गच्छन्न सीदति ।।

50. अर्थात् पिता और पितामह आदि जिस पथ का अनुसरण करते रहे हैं, भले लोगों के लिए सही रास्ता वही है। उस मार्ग पर चलते हुए कहीं कोई खतरा नहीं रहता। जिस प्रकार द्योतनार्थक द्यु धातु से निष्पन्न प्रकृति की प्रकाशमान शक्तियाँ ही देवताओं के रूप में प्रकट हुईं, उसी प्रकार परलोक सिधारी हुई आत्माएँ भी पितर या प्रेत(प्र + इत = यहाँ) से गया हुआ) के रूप में देवगणों के रूप में प्रतिष्ठित हो गयीं। भारत के सिवा अन्यत्र कहीं भी पितृ पूजा अपने पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित नहीं हो पाई। पितृ (पिता) शब्द धीरे-धीरे सभी पूर्वजों के लिए प्रयुक्त होने लगा। अब क्रमशः यह शब्द पितरों के लिए ही नहीं अपितु अदृश्य, कृपालु, शक्तिशाली, समर्थ और स्वर्गीय प्राणियों के लिए भी प्रयुक्त होने लगा। और हमें वेद में इस विषय का अपरिहार्य और हृदय को छूने वाला जैसा वर्णन मिलता है, वैसा प्राचीन साहित्य में अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं होता—बच्चे का अपने माता पिता के लिए जो प्रेम होता है वह स्वाभाविक रूप से ही आत्मा की अमरता के प्रति विश्वास में रूपान्तरित हो जाता है।

51. यह बड़ी हैरानी की बात है और उससे भी अधिक परेशानी की बात है कि आजकल प्राचीन हिंदू धर्म में इस महत्त्वपूर्ण और प्रमुखतम पक्ष की उपेक्षा ही नहीं की जा रही है, किन्तु पिछले कुछ समय से इसके अस्तित्व को भी नकारा जाने लगा है। इसलिए मैं यहां इस विश्वास के प्रति उच्चतम महत्त्व और आदिकाल से लेकर आज तक पितृ-गणों की पूजा के बारे में मैंने अभी जो कुछ कहा है, कुछ और कहना चाहूँगा। श्री हरबर्ट स्पेन्सर, जिन्होंने सभी जंगली जातियों के धर्म के स्वाभाविक अंग पितृ पूजा की ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए इतना कुछ किया है, दृढ़तापूर्वक घोषित करते हैं कि 'उसने व्यय-हारिक रूप से देखा, वार्तालापों में सुना और अब पुस्तकों में पढ़ा है कि किसी भारोपीय (आर्य) या सैमेटिक जाति ने पितृ-पूजा को अपने धर्म का अंग बनाया हो। आज तक ऐसा कहीं कोई प्रमाण नहीं मिला।' मैं उनकी इस बात पर सन्देह नहीं प्रकट कर रहा हूँ, किन्तु मैं समझता हूँ कि ऐसे महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर श्री हरबर्ट स्पेन्सर को अपने कथन के समर्थन में प्रमाण प्रस्तुत करने चाहिए थे। मुझे यह बड़ी असम्भव-सी बात लगती है कि भारतीय ग्रन्थों का अवलोकन कर लेने वाला कोई भी व्यक्ति ऐसा वक्तव्य दे! ऋग्वेद में पितृगणों से सम्बद्ध सूक्त हैं। ब्राह्मणों और सूत्र ग्रन्थों में पितृ-पूजा का पूरा विधान है। रामायण,

name of Pitriyagna, sacrifice of the Fathers, occurs already in the hymns of the Rig-veda.

61. The following is one of the hymns of the Rig-veda by which those ancient Fathers were invited to come to their sacrifice :—

1. 'May the Soma-loving Fathers, the lowest, the highest, and the middle, arise. May the gentle and righteous Fathers who have come to life (again), protect us in these invocations !

2. 'May this salutation be for the Fathers to-day, for those who have departed before or after ; whether they now dwell in the sky above the earth, or among the blessed people.

3. 'I invited the wise Fathers......may they come hither quickly, and sitting on the grass readily partake of the poured-out draught !

4. 'Come hither to us with your help, you Fathers who sit on the grass ! We have prepared these libations for you, accept them ! Come hither with your most blessed protection, and give us health and wealth without fail !

5. 'The Soma-loving Fathers have been called hither to their dear viands which are placed on the grass. Let them approach, let them listen, let them bless, let them protect us !

6. 'Bending your knee and sitting on my right, accept all this sacrifice. Do not hurt us, O Fathers, for any wrong that, we may have committed against you, men as we are.

7. 'When you sit down on the lap of the red dawns, grant wealth to the generous mortal ! O Fathers, give of your treasure to the sons of this man here, and bestow vigour here on us !

8. 'May Yama, as a friend with friends, consume the offerings according to his wish, united with those old Soma-loving Fathers of ours, the Vasishthas, who arranged the Soma draught.

9. 'Come hither, O Agni, with those wise and truthful Fathers who like to sit down near the hearth, who thirsted when yearning for the gods, who knew the sacrifice, and who were strong in praise with their songs.

10. 'Come, O Agni, with those ancient fathers who like to sit down near the hearth, who for ever praise the gods, the truthful, who eat and drink our oblations, making company with Indra and the gods.

11. 'O Fathers, you who have been consumed by Agni, come here, sit down on your seats, you kind guides ! Eat of the offerings which we have placed on the turf, and then grant us wealth and strong offspring !

महाभारत, धर्मशास्त्र और पुराण आद्यन्त पितृ-पूजा से ओत-प्रोत हैं। भारत का सम्पूर्ण सामाजिक ताना-बाना अपने विवाह और उत्तराधिकार आदि महत्त्वपूर्ण कार्यों के साथ पितरों पर ही आश्रित है। इतना सब कुछ होने पर भी हमें बताया गया है कि कोई भारोपीय जाति ऐसी दिखाई नहीं दी, जिसने पितृ-पूजा को अपने धर्म का अंग बनाया हो।

52. पारसी लोगों के अपने 'फ्रावेशिस,' यूनानियों के 'थियोइपैत्रुइ' और 'दाइमानेस' हैं। बॉह्मन लोग भी किसी अन्य देवता की अपेक्षा अपने पितरों की बड़ी स्पर्धा से पूजा करते थे। मनु यहाँ तक कहते हैं कि ब्राह्मण के द्वारा सम्पन्न पितृ-पूजा, देवपूजा ही है। फिर भी हमें कहा गया है कि किसी भारोपीय जाति ने पितृ-पूजा को अपने धर्म का अंग नहीं बनाया।

53. यदि इतिहास की शोध में कुछ प्रगति हुई होती तो ऐसी बातें नहीं होतीं। मैं समझता हूँ कि श्री हरबर्ट स्पेन्सर का मन्तव्य शायद यही रहा हो कि कुछ विद्वान् यह नहीं मानते कि किसी भी भारोपीय जाति ने पितृ-पूजा को अपने धर्म का अंग बनाया हो। निस्सन्देह यह सत्य है, किन्तु यह तो दूसरे धर्मों के लिए भी उतना ही सत्य है और मेरा विश्वास है कि कोई भी नृतत्त्व विद्या का जिज्ञासु अन्य किसी भी पुस्तक की अपेक्षा इस विषय में भी वेद से बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

54. वेद में देवताओं के साथ पितरों की भी स्तुतियाँ हैं और वे एक-दूसरे से सर्वथा पृथक् हैं। देवता कभी पितर नहीं बनते भले ही उन्हें पितृदेव ही क्यों न कहा गया हो और पुराने देवों की श्रेणी में भी क्यों न प्रतिष्ठित कर दिया गया हो। तथापि देवता और पितरों की दो पृथक् श्रेणियाँ सदा से विद्यमान रही हैं। यह एक ऐसा ध्यान देने योग्य तत्त्व है जिसे कभी भुलाया नहीं जाना चाहिए।

55. ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है—'उदित होती हुई उषा, बहती हुई नदियाँ, सुस्थिर पर्वत और पितर इस देव यज्ञ में मेरे रक्षक हों।' यद्यपि यहाँ देवताओं के साथ ही उषा, नदी और पर्वतों को भी सम्बोधित किया गया है, किन्तु देवता और पितरों को जितनी स्पष्टता से एक दूसरे से पृथक् बताया गया है, उससे अधिक और स्पष्ट किन्हीं शब्दों में नहीं बताया जा सकता।

56. पितरों की आरम्भ से ही दो श्रेणियाँ रही हैं—

(i) बहुत पुराने यमलोक के निवासी, जिनको सबका सामान्य पितर कहा जा सकता है और किसी अंश तक देव श्रेणी में उनकी गणना होती है।

(ii) अपने निकटवर्ती (तीन पीढ़ी के) पितर जिनका व्यक्तिगत रूप में श्राद्ध और स्मरण किया जाता है।

57-58. विवस्वान् यम को भी सर्वप्रथम मर्त्य और परवर्ती पितरों को पश्चिम (यमलोक) की ओर ले जाने वाला प्रथम पितर भी बताया गया है। तथापि उसकी देवोपम प्रकृति कभी लुप्त नहीं हुई। अस्त होते हुए सूर्य के समान वह वास्तव में हमारे पूर्वजों का पथिकृत या उन्हें यमलोक पहुँचाने वाला तो है, पर स्वयं पितर नहीं।

59. मानव इस धरती पर जो कुछ सुख-सौभाग्य पाता है वे, सब पितृगणों की

12. 'O Agni, O Jatavedas, at our request thou hast carried the offerings, having first rendered them sweet. Thou gavest them to the Fathers and they fed on their share. Eat also, O god, the proffered oblations !

13. 'The Fathers who are here, and the Fathers who are not here, those whome we know, and those whome we know not, thou, Jatavedas, knowest how many they are, accept the well-made sacrifice with the sacrificial portions !

14. 'To those who, whether burnt by fire or not burnt by fire, rejoice in their share in the midst of heaven, grant thou, O King, that their body may take that life which they wish for !'

62. Distinct from the worship offered to these primitive ancestors, is the reverence which from an early time was felt to be due by children to their departed father, soon also to their grandfather, and great-grandfather. The ceremoneies in which these more personal feelings found expression were of a more domestic character, and allowed therefore of greater local variety.

63. It would be quite impossible to give here even an abstract only of the minute regulations which have been preserved to us in the Brahmanas, the Srauta, Grihya, and Samayacharika Sutras, the Law-books, and a mass of later manuals on the performance of endless rites, all intended to honour the Departed. Such are the minute prescriptions as to times and seasons, as to altars and offerings, as to the number and shape of the sacrificial vessels, as to the proper postures of the sacrificers, and the different arrangements of the vessels, that it is extremely difficult to catch hold of what we really care for, namely, the thoughts and intentions of those who first devised all these intricacies. Much has been written on this class of sacrifices by European scholars also, beginning with Colebrooke's excellent essays on 'The Religious Caremonies of the Hindus', first published in 1978. But when we ask the simple question, What was the thought from whence all this outward ceremonial sprang, and what was the natural craving of the human heart which it seemed to satisfy, we hardly get an intelligible answer anywhere. It is true that Sraddhas continue to be performed all over India to the present day, but we know how widely the modern ceremonial has diverged from the rules laid down in the old Sastras, and it is quite clear from the descriptions given to us by recent travellers that no one can understand the purport even of these survivals of the old ceremonial, unless he understands Sanskrit and can read the old Sutras. We are indeed told in full detail how the cakes were made which the Spirits were supposed to eat,

कृपा के ही फल हैं। उन्होंने सर्वप्रथम यज्ञ किए तथा उनके फल प्राप्त किए। यहाँ तक कि सूर्य का उदय, दिन का प्रकाश और रात्रि का अन्धकार जैसी प्राकृतिक घटनाएँ भी उन्हीं के कारण बताई गई हैं और एक स्तुति में कहा कि पितरों ने अन्धकार का बाड़ा या तबेला खोल दिया और गौओं (अर्थात् दिन) को उससे बाहर ले आए। रात्रि को तारों से चमकाने वाले के रूप में भी पितरों का स्तवन किया गया है, जब, कि परवर्ती मन्त्र में कहा गया है कि जो पुण्यात्मा स्वर्ग में पहुँचे, ये तारे उन्हीं का प्रकाश हैं। पुराने पारसियों, यूनानियों और रोमन लोगों में भी कुछ ऐसे ही विचार पाए जाते हैं। पितरों को सत्य सुविदितर, बुद्धिमान, ऋतावत्, कवि और पथिकृत कहा गया है। उन्हें सौम्य (जिन्हें सोमरस प्रिय है) भी अनेकत्र कहा गया है (इस सोमरस को अमृत्व प्रदान करने वाला बताया गया है, जो बाद में आर्यों के पंजाब में पहुँच जाने पर उन्हें अनुपलब्ध हो गया था या बड़ी कठिनाई से मिलने लगा था)।

60. भृगु, अंगिरा और अथर्वा के पारिवारिक जनों के अपने-अपने पितर थे, जिनकी स्तुति करके वे उनके लिए बिछाई गई बर्हि पर प्रतिष्ठित होकर कव्य ग्रहण करने के लिए प्रार्थना करते हैं। ऋग्वेद के एक सूक्त में भी पितृ यज्ञ का उल्लेख है।

61. यहाँ ऋग्वेद के एक सूक्त का अनुवाद दिया जा रहा है, जिसमें पितृगणों को यज्ञ में उनका भाग ग्रहण करने के लिए स्तुति की गई है—

(i) निम्न (पृथ्वी) मध्यम तथा सर्वोच्च लोकों के निवासी पितृगण इस यज्ञ में अपना भाग ग्रहण करने के लिए पधारें। तथा इस स्तवन में हमारी रक्षा करें।

(ii) हमारे पितृगण चाहे वे स्वर्ग के निवासी हों या पृथ्वी के, जो पहले स्वर्ग सिधार गए या बाद में, वे सब आज मेरे इस यज्ञ में पधार कर अपना भाग ग्रहण करें।

(iii) मेरे आमन्त्रण पर पितृगण शीघ्र यहाँ पधारें तथा वे बर्हिषद (कुशासन) पर बैठें। सोमरस पान करें।

(iv) हे पितृगण आप यहाँ पधारें और आपके लिए प्रस्तुत यज्ञ भाग ग्रहण करें। आप हमें अपना सहाय्य तथा आशीर्वाद एवं सुख सम्पत्ति आदि प्रदान करें।

(v) सौम्य पितर यहाँ पधारकर उनके लिए बिछाई गई इस बर्हि पर यहाँ विराजमान हों, वे हमारा स्तवगान सुनें, हमें आशीर्वाद दें और हमारी रक्षा करें।

(vi) हे पितरों! आप मेरे बायीं ओर घुटनों के बल बैठ कर अपना यज्ञ भाग ग्रहण करें और मनुष्य होने के नाते हमसे कोई भूलचूक या कोई अपराध हो गया हो तो उसके लिए हमें क्षमा करें।

(vii) हे पितरों! कुशा की गोद में बैठे हुए आप लोग हवि प्रदान करने वाले मुझ यजमान के पुत्रों को धन और पुत्र आदि प्रदान कीजिए। आप इस यजमान के पुत्रों को भी अपना कोष और बल प्रदान करते रहें।

(viii) सौम्य पितृगणों के साथ यम इस यज्ञ में पधार कर हम वसिष्ठ के पारिवारिक जनों का यज्ञ भाग वैसे ही ग्रहण करें, जैसे कोई मित्र अपने मित्र के यहाँ आता है।

how many stalks of grass were to be used on which they had to be offered, how long each stalk ought to be, and in what direction it should be held. All the things which teach us nothing are explained to us in abundance, but the few things which the true scholar really cares for are passed over, as if they had no interest to us at all, and have to be discovered under heaps of rubbish.

64. In order to gain a little light, I think we ought to distinguish between :—

1. The daily ancestral sacrifice, the Pitriyagna, as one of the five Great Sacrifices (Mahayagnas) ;

2. The monthly ancestral sacrifice, the Pindapitriyagna, as part of the New and Full-Moon sacrifice ;

3. The funeral ceremonies on the death of a householder ;

4. The Agapes, or feasts of love and charity, commonly called Sraddhas, at which food and other charitable gifts were bestowed on deserving persons in memory of the deceased ancestors. The name of Sraddha belongs properly to this last class only, but it has been transferred to the second and third class of sacrifices also, because Sraddha formed an important part in them.

65. The daily Pitriyagna or Ancestor-worship is one of the five sacrifices, sometimes called the Great Sacrifices, which every married man ought to perform day by day. They are mentioned in the Grihyasutras, as Devayagna, for the Devas, Bhutayagna, for animals etc., Pitriyagna, for the Fathers, Brahmayagna, for Brahman, i.e. study of the Veda, and Manushyayagna, for men, i.e. hospitality, etc.

Manu (iii. 70) tells us the same.

66. The performance of this daily Pitriyagna seems to have been extremely simple. The householder had to put his sacred cord on the right shoulder, to say 'Svadha to the Fathers', and to throw the remains of certain offerings towards the South.

67. The human impulse to this sacrifice, if sacrifice it can be called, is clear enough. The five 'great sacrifices' comprehended in early times the whole duty of man from day to day. They were connected with his daily meal. When this meal was preparing, and before he could touch it himself, he was to offer something to the Gods, a Vaisvadeva offering, in which the chief deities were Agni, Soma, the Visve Devas, Dhanvantari, a kind of Aesculapius, Kuhu and Anumati (phases of the moon), Prajapati, lord of creatures, Dyava-prithivi, Heaven and Earth, and Svishtakrit, the fire on the hearth.

(ix) हे अग्नि ! आप उन सत्य तथा ज्ञानवान् पितरों के साथ इस यज्ञ में पधारिए। वे यज्ञवेदी के पास देवताओं के लिए समुत्सुक होकर विराजमान हों। वे पितर हमारी स्तुतियों से शक्ति सम्पन्न बने रहें।

(x) हे अग्नि ! उन पितरों के साथ इस यज्ञ में पधारें, जो सत्य हैं और इन्द्र तथा अन्य देवताओं के साथ हमारे यज्ञभाग को ग्रहण करें।

(xi) अग्नि के द्वारा भस्म किए गए, हे पितरों ! आप इस यज्ञ में बिछायी गई बर्हि पर बिराजें और दर्भ पर आपके लिए समर्पित यज्ञभाग ग्रहण करें और तब हमें धन सम्पत्ति तथा शक्तिशाली सन्तति प्रदान करें।

(xii) हे अग्नि, आप हमारी प्रार्थना पर यहाँ पधारें क्योंकि आपने ही देवगणों तक हमारी हवि पहुँचायी। आपने पितरों को भी उनका यज्ञभाग प्रदान किया। हे देव, आप भी हव्य ग्रहण कीजिए।

(xiii) जो पितर यहाँ उपस्थित हैं और जो नहीं हैं, जिनका हमें ज्ञान है और जिनका ज्ञान नहीं है, हे जातवेदा अग्नि ! आप जानते हैं कि वे कितने हैं। आप हमारे यज्ञभाग को ग्रहण कीजिये।

(xiv) जो अग्नि-दग्ध हैं और जो अनग्निदग्ध हैं और जो द्युलोक के मध्य में स्वधा से प्रसन्न रहते हैं। स्वर्ग के देवता (यम) उन्हें उनकी इच्छानुसार शरीर दे देते हैं।

62. इन आदि पितरों का जिनका स्तवगान आरम्भ से किया जाता रहा है, मानव सन्तान अपने पिता, पितामह और प्रपितामह के प्रति सदा से कृतज्ञ रही है। जिन क्रिया-कलापों में इन वैयक्तिक पितरों के लिए मनुष्य की अपनी हार्दिक भावनाएँ व्यक्त हुई हैं, उनमें गृह्य भावनाएँ कहीं अधिक हैं और इसीलिए उनमें स्थानीय विविधता भी अत्यधिक दिखाई पड़ती है।

63. ब्राह्मण ग्रन्थों तथा श्रौत व गृह्य सूत्रों और समयाचारिक सूत्रों एवं धर्मशास्त्रों के साथ ही साथ अपेक्षाकृत ढेरों नवीन ग्रन्थों में पितरों के लिए विहित अनन्त विधि-विधानों से सम्बद्ध कर्मकाण्ड और सूक्ष्म नियमों का सारांश बता देना भी सर्वथा असम्भव है। समय, ऋतु और नानाविध यज्ञ-याग आदि के अवसर पर संपन्न किए जाने वाले पितृ-श्राद्धों में प्रयुक्त नानाविध पात्रों, आसनों (बैठने की स्थिति) तथा पात्रासादन आदि से सम्बद्ध क्रिया-कलाप इतने सूक्ष्म हैं कि जिन प्राचीन ऋषिओं ने ऐसी दुर्बोध विधि-विधानों की व्यवस्था की होगी उनकी भावनाओं और चिन्तन प्रक्रिया को समझ पाना भी बड़ा कठिन है। कोलब्रुक के सन् 1789 में सर्वप्रथम प्रकाशित 'हिन्दुओं के धार्मिक विधि-विधान' शीर्षक प्रबन्ध से लेकर इस पितृ यज्ञ के बारे में यूरोपियन विद्वानों ने बहुत कुछ लिखा है। किन्तु जब हम यह सीधा सा प्रश्न करते हैं कि वह भावना और विचारधारा क्या थी जिससे यह सब बाह्य विधि-विधान प्रादुर्भूत हुए और मानव हृदय की वह स्वाभाविक कामना क्या थी, जिसे इन विधि-विधानों से तृप्ति मिलती। इन प्रश्नों का बोधगम्य उत्तर हमें शायद ही कहीं मिल पाए। यह सत्य है कि भारत में श्राद्ध की प्रथा

68. After having thus satisfied the Gods in the four quarters, the householder had to throw some oblations into the open air, which were intended for animals, and in some cases for invisible beings, ghosts, and such like. Then he was to remember the Departed, the Pitris, with some offerings; but even after having done this he was not yet to begin his own repast, unless he had also given something to strangers (atithis).

69. When all this had been fulfilled, and when, besides, the householder, as we should say, had said his daily prayers, or repeated what he had learnt of the Veda, then and then only was he in harmony with the world that surrounded him, the five Great Sacrifices had been performed by him, and he was free from all the sins arising from a thoughtless and selfish life.

70. This Pitriyagna, as one of the five daily sacrifices, is described in the Brahmanas, the Grihya and Samayacharika Sutras, and, of course, in the legal Samhitas. Rajendralal Mitra informs us that 'orthodox Brahmans to this day profess to observe all these five ceremonies, but that in reality only the offerings to the gods and manes are strictly observed, while the reading is completed by the repetition of the Gayatri only, and charity and feeding of animals are casual and uncertain.'

71. Quite different from this simple daily ancestral offering is the Pitriyagna or Pinda-pitriyagna, which forms part of many of the statutable sacrifices, and, first of all, of the New Moon sacrifice. Here again the human motive is intelligible enough. It was the contemplation of the regular course of nature, the discovery of order in the coming and going of the heavenly bodies, the growing confidence in some ruling power of the world which lifted man's thoughts from his daily work to higher regions, and filled his heart with a desire to approach these higher powers with praise, thanksgiving, and offerings. And it was at such moments as the waning of the moon that his thoughts would most naturally turn to those whose life had waned, whose bright faces were no longer visible on earth, his fathers or ancestors. Therefore at the very beginning of the New-Moon sacrifice, we are told in the Brahmanas and in the Srauta-sutras, that a Pitriyagna, a sacrifice to the Fathers, has to be performed. A Caru or pie had to be prepared in the Dakshinagni, the southern fire, and the offerings, consisting of water and round cakes (pindas), were specially dedicated to father, grandfather, and great-grandfather, while the wife of the sacrificer, if she wished for a son, was allowed to eat one of the cakes.

निरन्तर चल रही है। किन्तु, प्राचीन शास्त्रों में विहित विधि-विधानों से आज की श्राद्ध प्रक्रिया बहुत कुछ परिवर्तित हो गई है, जैसा कि आधुनिक भारत की यात्रा करने वाले आजकल के यात्रियों के वर्णन से ज्ञात होता है। यहाँ यह बात ध्यान में रहे कि संस्कृत तथा प्राचीन सूत्र ग्रन्थों को समझे बिना इन विधि-विधानों के आज तक बचे रहने की बात समझ में नहीं आ सकती। शास्त्रों में यह विस्तार से बताया गया है कि पितरों के लिए समर्पित किए जाने वाले पिण्ड कैसे बनाए जाएँ और पितरों के लिए बिछाई जाने वाली कुशाएँ कितनी हों, वे कितनी लम्बी हों और वे किस दिशा में बिछाई जाएँ। ऐसी बहुत सी बातें जिनसे हमें कोई शिक्षा नहीं मिलती बड़े विस्तार से समझाई जाती हैं। इसके विपरीत एक सच्चे जिज्ञासु विद्वान् के ध्यान देने योग्य कुछ बातों की ऐसे उपेक्षा कर दी जाती है, जैसे वे हमारे लिए किसी काम की नहीं हैं। और उनकी चर्चा करना कूड़े के ढेर (रोड़ी) में से कोई चीज ढूँढ निकालना है।

64. इस विषय में कुछ प्रकाश प्राप्त करने के लिए मैं समझता हूँ कि हमें निम्न तत्वों को अलग-अलग रूप में ठीक से समझना होगा और इनमें विभेद का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए—

(i) दैनिक पंच महायज्ञों में से एक पितृयज्ञ

(ii) दार्श और पौर्णमास इष्टि में पितृपिण्ड का विधान।

(iii) अपने परिवार के प्राणी के लिए किया जाने वाल अन्त्येष्टि कर्म।

(iv) अपने पूर्वजों की स्मृति में कराए जाने वाला भोजन और दानादि—श्राद्ध यद्धपि श्राद्ध इसी का नाम है, तथापि दूसरे और तीसरे प्रकार के पितृ कर्म के लिए भी यह प्रयुक्त होता है, क्योंकि वहाँ भी श्राद्ध ही मुख्य है।

65. प्रत्येक गृहस्थ के लिए प्रतिदिन किए जाने योग्य पंच-यज्ञ, जिन्हें कभी महायज्ञ भी कहा जाता है, में से एक पितृयज्ञ है। गृह्य-सूत्रों में देवयज्ञ, भूतयज्ञ (सब प्राणियों के लिए) पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ (वेदाध्ययन) और मनुष्ययज्ञ (अतिथियों का भोजन आदि से सत्कार), ये पंच यज्ञ बताए गए हैं। मनुस्मृति के तीसरे अध्याय के 7वें श्लोक में भी इनका प्रतिपादन है।

66. इनका विधि-विधान बहुत सरल है। गृहस्थ को दक्षिणावर्त (यज्ञोपवीत को दाएँ कन्धे पर रख कर पितरों के लिए कव्य समर्पित करते हुए 'स्वधा' का उच्चारण करना होता है।

67. इन यज्ञों के लिए, यदि इन्हें यज्ञ कहा जाए तो, मानव की भावना बिल्कुल स्पष्ट है। आदि युग में प्रारम्भ किए गए ये पंच महायज्ञ मानव के लिए प्रतिदिन कर्त्तव्य कार्यों का विधान करते हैं। ये मनुष्य के दैनिक भोजन से सम्बद्ध हैं। जब भोजन तैयार हो जाता है, तब गृहस्थ के द्वारा उस भोजन की देवता, अग्नि, सोम, विश्वदेव, धन्वन्तरि (हमारे स्वास्थ्य की रक्षा करने वाला चिकित्सक वैद्य), कुहू (कृष्ण पक्ष), अनुमति (शुक्ल पक्ष), सब जीवों का स्वामी प्रजापति, द्यावापृथ्वी, तथा स्विष्टकृत (यज्ञाग्नि) इन देवताओं के लिए हवि प्रदान की जाती है।

72. Similar ancestral offerings took place during other sacrifices too, of which the New and Full-Moon sacrifices form the general type.

73. It may be quite true that these two kinds of ancestral sacrifices have the same object and share the same name, but their character is different ; and if, as has often been the case, they are mixed up together, we lose the most important lessons which a study of the ancient ceremonial should teach us. I cannot describe the difference between these two Pitriyagnas more decisively then by pointing out that the former was performed by the father of a family, or, if we may say so, by a layman, the latter by a regular priest, or a class of priests, selected by the sacrificer to act in his behalf. As the Hindus themselves would put it, the former is a grihya, a domestic, the latter a srauta, a priestly ceremony.

74. We now come to a third class of ceremonies which are likewise domestic and personal, but which differ from the two preceding ceremonies by their occasional character, I mean the funeral, as distinct from the ancestral ceremonies. In one respect these funeral ceremonies may represent an earlier phase of worship than the daily and monthly ancestral sacrifices. They lead up to them, and, as it were, prepare the departed for their future dignity as Pitris or Ancestors. On the other hand, the conception of Ancestors in general must have existed before any departed person could have been raised to that rank, and I therefore preferred to describe the ancestral sacrifices first.

75. Nor need I enter here very fully into the character of the special funeral ceremonies of India. Their spirit is the same as that of the funeral ceremonies of Greeks, Romans, Slavonic, and Teutonic nations, and the coincidences between them all are often most surprising.

76. In Vedic times the people in India both burnt and buried their dead, and they did this with a certain solemnity, and, after a time, according to fixed rules. Their ideas about the status of the departed, after their body had been burnt and their ashes buried, varied considerably, but in the main they seem to have believed in a life to come, not very different from our life on earth, and in the power of the departed to confer blessings on their descendants. It soon therefore became the interest of the survivors to secure the favour of their departed friends by observances and offerings which, at first, were the spontaneous manifestation of human feelings, but which soon became traditional, technical, in fact, ritual.

68. इस विधि से देव-तर्पण के पश्चात् जीव जन्तुओं अथवा अदृश्य प्राणियों (भूतादि) के लिए चारों दिशाओं में कुछ हव्य डाला जाता है। तत्पश्चात् पितरों के लिए कव्य प्रदान किया जाता है। किन्तु अभी उसका कर्त्तव्य यज्ञ समाप्त नहीं हुआ। उसे अपने यहाँ आने वाले अतिथि को भी पहले भोजन कराना होता है।

69. यह विधि सम्पन्न करने के पश्चात् उसे ब्रह्म यज्ञ कुछ वेद मन्त्रों का पाठ आदि (स्वाध्याय) करना होता है। इस प्रकार वह पंच सूना (पाँचों प्रकार के ज्ञाताज्ञात पापों) से मुक्त हो जाता है।

70. (जैसा कि पहले कहा गया है) ब्राह्मण ग्रन्थ आदि में इस पितृ यज्ञ का विधान है। राजेन्द्र लाल मित्र ने हमें सूचित किया है कि परम्परा का पालन करने वाले ब्राह्मण आज भी पंच महायज्ञ करते हैं, किन्तु ब्रह्मयज्ञ के नाम पर गायत्री जप ही कर लिया जाता है और भूत यज्ञ का सम्पदान श्राद्धादि विशेष अवसरों पर ही होता है, अन्यत्र अनिश्चित है।

71. इस दैनिक यज्ञ में सम्पादित सीधे से पितृयज्ञ से सर्वथा भिन्न पितृयज्ञ या पिण्ड पितृयज्ञ केवल दार्श इष्टि शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को की जाने वाली में ही सम्पन्न होता है। यहाँ भी मानव का उद्देश्य काफी कुछ समझ में आने योग्य है। स्वर्ग से आने वाले और स्वर्ग को जाने वाले तत्वों के सुनिश्चित क्रम को देखकर मानव का ध्यान अपने दैनिक क्रिया कलापों से ऊपर उठा। इस प्रकार उसके हृदय में स्तुतिगान, धन्यवाद-प्रदान और यज्ञ-यगादि के द्वारा उन उच्च शक्तियों तक अपनी पहुँच के लिए अभिलाषा जागृत हुई। ऐसे ही क्षणों में चन्द्रमा को क्षीण होते देख कर उन लोगों का ध्यान उन लोगों/पिता या अन्य पूर्वजों की ओर गया जिनका चमकता चेहरा उसे अब कभी दिखाई नहीं देगा। इसलिए हमारे लिए ब्राह्मण ग्रन्थों में नव चन्द्रोदय (शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के लगते और अमावस्या के समाप्त होते ही) पर पितृ यज्ञ का विधान किया गया है। दक्षिणाग्नि में पिण्ड, चरु पकाया जाता है और उसे पितरों को समर्पित किया जाता है। यदि यजमान पत्नी को पुत्र प्राप्ति की कामना हो तो उनमें से एक पिण्ड उसे खाने की अनुमति है।

72. दार्श पूर्णमास के सिवा अन्य इष्टियों में भी ऐसे ही पितृ-पिण्ड का विधान है।

73. इसमें पर्याप्त सच्चाई हो सकती है कि पूर्वजों के लिए किए जाने वाले ये दोनों प्रकार के यज्ञ एक ही प्रकार के हैं। और एक ही उद्देश्य से किए भी जाते हैं, किन्तु इनका स्वरूप भिन्न है। इसलिए यदि जैसा कि आम तौर पर होता है हम इन दोनों विधियों को एक में मिला देंगे तो प्राचीन विधि-विधानों के अध्ययन हमें जो कुछ सिखाते हैं, उस महत्त्वपूर्ण सीख से हम वंचित हो जाएँगे। मैं इन दोनों प्रकार के पितृयज्ञों में जो अन्तर है, उसे इसके सिवा और अधिक स्पष्ट नहीं कर पाऊँगा कि पहले प्रकार का पितृ यज्ञ प्रत्येक पिता या हर किसी के द्वारा किया जाता है, जबकि दूसरे प्रकार का (दार्श पूर्णमास इष्टि के अवसर पर किया जाने वाला) यज्ञ पुरोहित अथवा यजमान की ओर से

77. On the day on which the corpse had been burnt, the relatives bathed and poured out a handful of water to the deceased, pronouncing his name and that of his family. At sunset they returned home, and, as was but natural, they were told to cook nothing during the first night, and to observe certain rules during the next day up to ten days, according to the character of the deceased. These were days of mourning, or, as they were afterwards called, days of impurity, when the mourners withdrew from contact with the world, and shrank by a natural impulse from the ordinary occupations and pleasures of life.

78. Then followed the collecting of the ashes on the 11th, 13th or 15th day of the dark half of the moon. On returning from thence they bathed, and then offered what was called a Sraddha to the departed.

79. This word Sraddha, which meets us here for the first time, is full of interesting lessons, if only properly understood. First of all it should be noted that it is absent, not only from the hymns, but, so far as we know at present, even from the ancient Brahmanas. It seems therefore a word of a more modern origin. There is a passage in Apastamba's Dharmasutras which betrays, on the part of the author, a consciousness of the more modern origin of the Sraddhas :—

'Formerly men and gods lived together in this world. Then the gods in reward of their sacrifices went to heaven, but men were left behind. Those men who perform sacrifices in the same manner as the gods did, dwelt (after death) with the gods and Brahmans in heaven. Now (seeing man left behind) Manu revealed this ceremony which is designated by the word Sraddha.'

Sraddha has assumed many meanings, and Manu, for instance, uses it almost synonymously with pitriyagna. But its original meaning seems to have been 'that which is given with sraddha or faith,' i.e. charity bestowed on deserving persons, and more particularly, on Brahmans. The gift was called Sraddha, but the act itself also was called by the same name. The word is best explained by Narayana in his commentary on the Grihya-sutras of Asvalayana, 'Sraddha is that which is given in faith to Brahmans for the sake of the Fathers.'

80. Such charitable gifts flowed most naturally and abundantly at the time of a man's death, or whenever his memory was revived by happy or unhappy events in a family, and hence Sraddha has become the general name for ever so many sacred acts commemorative of the departed. We hear of Sraddhas not only at funerals, but at joyous events also, when presents were bestowed in

उसके द्वारा निर्धारित पुरोहित ही कर सकता है। क्योंकि, हिन्दू लोग उसे अपने घर में स्वयं प्रतिपादित कर सकते हैं, इसलिए पहले यज्ञ को गृह्ययज्ञ और दूसरे को श्रौत यज्ञ (श्रोत्रिय यज्ञकर्ता के द्वारा सम्पन्न) यज्ञ कहते हैं।

74. अब हम तीसरे प्रकार के पितृ यज्ञ का विवेचन करें। यह है अन्त्येष्टि कर्म। यह एक दृष्टि से यह पूर्वोक्त दोनों पितृयज्ञों से पहले के युग का प्रतिनिधित्व करता है। इसके द्वारा मृत व्यक्तियों को पितरों या पूर्वजों की श्रेणी में पहुँचाने की व्यवस्था है। दूसरी ओर कोई भी मृत व्यक्ति उस पितरों के वर्ग में पहुँचे सामान्यतया, सभी मृत व्यक्तियों को पूर्वज कहा जा सकता है। अतएव मैं पहले यहाँ प्रथम वर्ग की चर्चा करूँगा।

75. मुझे भारत के अन्त्येष्टि विधान की विशेष विस्तार से चर्चा नहीं करनी है, क्योंकि यूनानी, रोमन, स्लाव तथा ट्यूटन जातियों तथा हिन्दुओं के अन्त्येष्टि विधान की आत्मा एक ही है, और उन सब में समानता भी आश्चर्यजनक है।

76. वैदिक युग में भारत में लोग अपने मृतकों को जलाते भी थे और गाड़ते भी थे और यह विधि बड़ी पवित्रता और शान्ति से सम्पन्न की जाती थी। बाद में कुछ सुनिर्धारित विधि-विधानों के साथ अन्त्येष्टि कर्म सम्पन्न होने लगा। शरीरों के जला दिए जाने और उनकी भस्म को गाड़ दिए जाने के बाद उनकी पद प्रतिष्ठा के विषय में भले ही अलग-अलग विचार रहे हों, किन्तु उनके भावी जीवन और उनमें अपनी सन्तति को आशीर्वाद देने के प्रति विश्वास तो सबका समान रूप से रहा है। अतएव उसके बाद जीवित रहने वाले लोगों के लिए उनकी अनुकूलता प्राप्त करने की रुचि स्वाभाविक है। सर्वप्रथम अपने उन मित्रों, पूर्वजों और सम्बन्धियों के प्रति तात्कालिक भावनाएँ व्यक्त कर देना पर्याप्त था। किन्तु शीघ्र ही यह परम्परा और रीति-रिवाज बन गया।

77. दाह कर्म के दिन उसके पारिवारिक जन स्नान करते हैं और नाम गोत्रोच्चारण के साथ उसे जलांजलि देते हैं। सूर्यास्त के समय वे लोग घर आ जाते हैं और यह स्वाभाविक है कि उस दिन उन्हें अपने घर भोजन नहीं बनाने दिया जाता (दूसरे लोग ही उन्हें भोजन कराते हैं)। अब दूसरे दिन से लेकर दसवें दिन तक मृतक की मृत्यु की परिस्थितियों के अनुसार विविध क्रियाकर्म सम्पन्न किए जाते हैं। ये दस दिन अशौच या दुःख के होते हैं, जब दूसरे सब कर्म त्याज्य हो जाते हैं।

78. उसके बाद ग्यारहवें, तेरहवें अथवा पन्द्रहवें दिन अस्थि-संचय किया जाता है, तत्पश्चात् सब लोग स्नान करते हैं और मृतक का श्राद्ध किया जाता है।

79. यह श्राद्ध शब्द जिसका प्रयोग यहाँ पहली बार किया जा रहा है, यदि भली-भाँति इसका अर्थ समझ लिया जाए तो बहुत शिक्षाप्रद है। सर्वप्रथम तो यह कि केवल वेदों में ही नहीं अपितु ब्राह्मणों में भी यह शब्द नहीं है। आपस्तम्भ धर्म सूत्र श्राद्ध का अधिक आधुनिक रूप बताता है—

'पहले मनुष्य' और देवता साथ-साथ ही रहा करते थे। बाद में अपने यज्ञों के फलस्वरूप देवता स्वर्ग चले गए। किन्तु मनुष्य पीछे रह गए। जो लोग देवताओं के समान यज्ञ करते थे वे (मृत्यु के बाद) देवताओं और ब्रह्म के साथ स्वर्ग में निवास करने

the name of the family, and therefore in the name of the ancestors also, on all who had a right to that distinction.

81. It is a mistake therefore to look upon Sraddhas simply as offerings of water or cakes to the Fathers. An offering to the Fathers was, no doubt, a symbolic part of each Sraddha, but its more important character was charity bestowed in memory of the Fathers.

82. This, in time, gave rise to much abuse, like the alms bestowed on the Church during the Middle Ages. But in the beginning the motive was excellent. It was simply a wish to benefit others, arising from the conviction, felt more strongly in the presence of death than at any other time, that as we can carry nothing out of this world, we ought to do as much good as possible in the world with our worldly goods. At Sraddhas the Brahmans were said to represent the sacrificial fire into which the gifts should be thrown. If we translate here Brahmans by priests, we can easily understand why there should have been in later times so strong a feeling against Sraddhas. But priest is a very bad rendering of Brahmans. The Brahmans were, socially and intellectually, a class of men of high breeding. They were a recognised and, no doubt, a most essential element in the ancient society of India. As they lived for others, and were excluded from most of the lucrative pursuits of life, it was a social, and it soon became a religious duty that they should be supported by the community at large. Great care was taken that the recipients of such bounty as was bestowed at Sraddhas should be strangers, neither friends nor enemies, and in no way related to the family. Thus Apastamba says : 'The food eaten (at a Sraddha) by persons related to the giver is a gift offered to goblins. It reaches neither the Manes nor the Gods.' A man who tried to curry favour by bestowing Sraddhika gifts, was called by an opprobrious name, a Sraddha-mitra.

83. Without denying therefore that in later times the system of Sraddhas may have degenerated, I think we can perceive that it sprang from a pure source, and, what for our present purpose is even more important, from an intelligible source.

84. Let us now return to the passage in the Grihya-sutras of Asvalayana, where we met for the first time with the name of Sraddha. It was the Sraddha to be given for the sake of the Departed, after his ashes had been collected in an urn and buried. This Sraddha is called ekoddhishta, or, as we should say, personal. It was meant for one person only, not for the three ancestors, nor

लगे। अब (मनुष्यों को देवताओं से पीछे रह गया देखकर) मनु ने इस विधि का प्रतिपादन किया जिसे श्राद्ध कहते हैं।

श्राद्ध के कई अर्थ हो गए। मनु इसे पितृयज्ञ के पर्यायवाचक के रूप में प्रयोग करते हैं, पर इसका मूल अर्थ अधिकारी व्यक्तियों और विशेष रूप से ब्राह्मणों को दिया जाने वाला दान है। यह दान श्राद्ध कहलाता था। किन्तु, दान की विधि भी इसी नाम से अभिहित है। आश्वलायन गृह्यसूत्र के भाष्यकार नारायण ने इसकी सबसे अच्छी व्याख्या की है—

'पितरों के लिए ब्राह्मणों को श्रद्धा से जो दिया जाता है, वही श्राद्ध है।'

80. स्वाभाविक रूप से ऐसे दान किसी व्यक्ति की मृत्यु अथवा परिवार के किसी अच्छे या बुरे प्रसंग के अवसर पर उनकी स्मृति में ही अधिकतर दिए जाते हैं। अतएव परलोक गए हुए अपने सम्बन्धियों की स्मृति में सम्पन्न किए जाने वाले अनेक प्रकार के विधि विधानों की संज्ञा 'श्राद्ध' हो गई। हम सुनते हैं कि मृत्यु के समय ही नहीं अपितु (शादी-विवाह यज्ञोपवीत आदि ऐसे ही दूसरे) हर्ष के अवसरों पर भी श्राद्ध (जिसे नान्दी श्राद्ध कहते हैं) किया जाता है।

81. अतएव यह समझना कि पितरों को तिलांजलि और पिण्डदान ही श्राद्ध है, ठीक नहीं। पितरों को कव्य प्रदान करना तो श्राद्ध है ही, किन्तु पितरों के नाम पर दिया जाने वाला प्रत्येक प्रकार का दान भी श्राद्ध है।

82. मध्ययुग में जैसे गिरजाघरों में दान दिए जाने की बुराई की जाती थी वैसे ही श्राद्ध को भी आज बुरा समझा जाता है। किन्तु इसके आरम्भ में बहुत अच्छा और श्रेष्ठ उद्देश्य था। यह मात्र दूसरों को लाभ पहुँचाने की एक सर्वमान्य भावना है। जिसका अनुभव किसी व्यक्ति की मृत्यु के समय सबसे अधिक होता है, क्योंकि उस समय हम समझते हैं कि हम इस संसार से अपने साथ कुछ न ले जायेंगे। इसलिए हमें अपनी सांसारिक सुख-सुविधाओं के अनुसार जितना हो सके शुभकर्म करते रहना चाहिए। श्राद्ध में ब्राह्मण यज्ञाग्नि का प्रतिनिध माना जाता है, क्योंकि हमारे यहाँ ब्राह्मण शब्द का अनुवाद प्रीस्ट या पुरोहित किया जाता है, इसलिए श्राद्ध के विरुद्ध उग्र भावनाएँ क्यों जगीं, यह अनायास ही समझ में आ जाता है। किंतु, ब्राह्मण का अनुवाद प्रीस्ट या पुरोहित वास्तव में एक बहुत भद्दा या बुरा अनुवाद है। वास्तव में ब्राह्मण सामाजिक और बौद्धिक रूप से अत्युन्नत श्रेष्ठ, कुलीन लोग थे। वे प्राचीन भारत के समाज के अत्यावश्यक तत्त्व माने जाते थे और निस्सन्देह वे बहुत महत्त्वपूर्ण विधायक तत्त्व थे। क्योंकि वे दूसरों के लिए ही जीते थे और वे कभी अपने लिए किसी लाभदायक कार्य या पद की प्राप्ति के लिए कोई प्रयत्न नहीं करते थे, इसलिए यह सामाजिक, तथा आगे चलकर धार्मिक कर्त्तव्य माना जाता था कि ब्राह्मणों का भरपूर संरक्षण और समर्थन किया जाए। इस बात का पूरा ध्यान रखा जाता था कि श्राद्ध में जिन लोगों को खिलाया या दान दिया जाता है। वे श्राद्ध कर्ता के मिलने-जुलने वाले या सम्बन्धी न हों और आपस्तम्ब का कथन है कि श्राद्ध में उसके किसी सम्बन्धी का खाया हुआ अन्न पितरों को नहीं अपितु

for all the ancestors. Its objects was in fact to raise the departed to the rank of a Pitri, and this had to be achieved by Sraddha offerings continued during a whole year. This at least is the general, and, most likely, the original rule. Apastamba says that the Sraddha for a deceased relative should by performed every day during the year, and that after that a monthly Sraddha only should be performed or none at all, that is, no more personal Sraddha, because the departed shares henceforth in the regular Parvana-sraddhas.

85. When the Sraddha is offered on account of an auspicious event, such as a birth or a marriage, the fathers invoked are not the father, grandfather, and great-grandfather, who are sometimes called asrumukha, with tearful faces, but the ancestors before them, they are called anandimukha, or joyful.

86. Colebrooke, to whom, we owe an excellent description of what a Sraddha is in modern times, took evidently the same view. 'The first set of funeral ceremonies,' he writes, 'is adapted to effect, by means of oblations, the re-embodying of the soul of the deceased, after burning his corpse. The apparent scope of the second set is to raise his shade from this world, where it would else, according to the notions of the Hindus, continue to roam among demons and evil spirits, up to heaven, and then deify him, as it were, among the manes of departed ancestors. For this end, Sraddha should regularly be offered to the deceased on the day after the mourning expires ; twelve other Sraddhas *singly* to the deceased in twelve successive months ; similar obsequies at the end of the third fortnight, and also in the sixth month, and in the twelfth ; and the oblation called Sapindana on the first anniversary of his decease. At this Sapindana Sraddha, which is the last of the ekoddishta sraddhas, four funeral cakes are offered to the deceased and his three ancestors, that consecrated to the deceased being divided into three portions and mixed with the other three cakes. The portion retained is often offered to the deceased, and the act of union and fellowship becomes complete.'

87. When this system of Sraddhas had once been started, it seems to have spread very rapidly. We soon hear of the monthly Sraddha, not only in memory of one person lately deceased, but as part of the Pitriyagna, and as obligatory, not only on householders, but on other persons also, and, not only on the three upper castes, but even, without hymns, on Sudras, and as to be performed, not only on the day of New Moon, but on other days also, whenever there was an opportunity.

भूत-प्रेतों को मिलता है। जो किसी को श्राद्ध में जिमाकर उससे कुछ लाभ उठाना चाहत है, उसे 'श्राद्धमित्र' कहा गया है।

83. इस बात से इन्कार न करते हुए भी कि परवर्ती काल में श्राद्ध का स्वरूप विकृत हो गया, हमें यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि श्राद्ध का विकास पवित्र स्रोत से हुआ है। और हम लोगों के आज के इस व्याख्यान के उद्देश्य से तो यह और भी महत्त्वपूर्ण है कि हम इसके अधिक बोधगम्य स्रोत को पहचानें।

84. आइये अब हम फिर से आश्वलायन गृह्यसूत्र के उस अनुच्छेद को देखें जहाँ श्राद्ध शब्द पहली बार आया है। मृत्यु के बाद उसकी अस्थियों को किसी पात्र में इकट्ठा करके गाड़ देने के अवसर पर दिए जाने वाले दान को श्राद्ध कहा गया है। इसे एकोद्दिष्ट (एक व्यक्ति के लिए) कहते हैं। क्योंकि यह केवल उसी एक व्यक्ति के लिए किया जाता है न कि तीन पीढ़ियों के लिए और न सभी पूर्वजों के लिए ही। इसका उद्देश्य प्रेत या मृतक को पितरों की श्रेणी में पहुँचाना है, और ऐसा एक वर्ष तक प्रतिदिन श्राद्ध करने से ही हो सकता था। यह सामान्य और मौलिक नियम था। आपस्तम्ब कहता है कि मृतक सम्बन्धी के लिए एक वर्ष तक प्रतिदिन श्राद्ध किया जाना चाहिए और उसके बाद मासिक श्राद्ध किया जा सकता है। तत्पश्चात् एकोद्दिष्ट श्राद्ध की आवश्यकता नहीं, क्योंकि तदनन्तर मृतक पितरों की श्रेणी में आकर पार्वण श्राद्ध का भागी बन जाता है।

85. जब यह श्राद्ध किसी शुभ अवसर पर किया जाता है तो वहाँ पिता आदि को नहीं बुलाया जाता, क्योंकि उन्हें कभी 'अश्रुमुख' कहा गया है, अपितु तीन पीढ़ी से ऊपर के पितरों का आह्वान किया जाता है जिन्हें 'नान्दीमुख' कहा जाता है।

86. कोलब्रुक—जिससे हमें आजकल की श्राद्ध प्रथा का ज्ञान हुआ—भी यही विचार व्यक्त करते हैं। मृत्यु के बाद पहला क्रिया कर्म इस उद्देश्य से किया जाता है कि मृत्यु के बाद उसे नया शरीर मिल जाए। उसके बाद का क्रियाकर्म इस उद्देश्य से किया जाता है कि उसकी आतमा भूत-प्रेत बनकर इधर-उधर न भटकती रहे, अपितु उसके पूर्वज पितरों के साथ जा मिले। इसी उद्देश्य से एक वर्ष तक उसके लिए मासिक श्राद्ध किया जाता है। साथ ही षाण्मासिक और वार्षिक श्राद्ध भी सम्पन्न होते हैं। तत्पश्चात् वार्षिक श्राद्ध के समय सपिण्डीकरण या एकोद्दिष्ट श्राद्ध में चार पिण्ड बनाए जाते हैं जिनमें से मृतक के लिए बनाए गए एक पिण्ड के चार भाग करके उनमें से तीन को उसके पिता, पितामह और प्रपितामह के लिए बनाए गए पिण्डों के साथ मिला दिया जाता है और अवशिष्ट उसके अपने पिण्ड में। इस प्रकार उसके अपने पितरों के साथ संगति सम्पूर्णतया हो जाती है।

87. जब एक बार यह श्राद्ध प्रथा आरम्भ हो गई तो शीघ्र ही इसका सर्वत्र प्रचलन हो गया। हम सुनते हैं कि केवल उसी मृतक की स्मृति में ही मासिक श्राद्ध नहीं किया जाता था, अपितु केवल तीन पीढ़ियों के पूर्वजों के लिए ही नहीं किन्तु दूसरे लोगों के लिए भी मासिक श्राद्ध (दार्श इष्टि के समय) के अवसर पर ही नहीं, प्रसंग आने पर अन्य दिनों में भी किया जाने लगा।

88. The same difficulties which confront us when we try to form a clear conception of the character of the various ancestral ceremonies were felt by the Brahmans themselves, as may be seen from the long discussions in the commentary on the Sraddha-kalpa.

We may safely say, therefore, that not a day passed in the life of the ancient people of India on which they were not reminded of their ancestors, both near and distant, and showed their respect for them, partly by symbolic offerings to the Manes, partly by charitable gifts to deserving persons, chiefly Brahmans. These offertories varied from the simplest, such as milk and fruits, to the costliest, such as gold and jewels. The feasts given to those who were invited to officiate or assist at a Sraddha seem in some cases to have been very sumptuous, and what is very important, the eating of meat, which in later times was strictly forbidden in many sects, must, when the Sutras were written, have been fully recognised.

89. This shows that these Sraddhas, though possibly of later date than the Pitriyagnas, belong nevertheless to a very early phase of Indian life. And though much may have been changed in the outward form of these ancient sacrifices, their original solemn character has remained unchanged. Even at present, when the worship of the ancient Devas is ridiculed by many who still take part in it, the worship of the ancestors and the offering of Sraddhas have maintained much of their old sacred character. They have sometimes been compared to the 'communion' in the Christian Church, and it is certainly true that many natives speak of their funeral and ancestral ceremonies with a hushed voice and with real reverence. They alone seem still to impart to their life on earth a deeper significance and a higher prospect. I could go even a step further and express my belief, that the absence of such services for the dead and of ancestral commemorations is a real loss in our own religion. Almost every religion recognises them as tokens of a loving memory offered to a father, to a mother, or even to a child, and though in many countries they may have proved a source of superstition, there runs through them all a deep well of living human faith that ought never to be allowed to perish. The early Christian Church had to sanction the ancient prayers for the Souls of the Departed, and in more Southern countries the services on All Saints' and on All Souls' Day continue to satisfy a craving of the human heart which must be satisfied in every religion. We, in the North, shrink from these open

88. श्राद्धकल्प के विवेचन के अनुसार श्राद्ध के सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट धारणा बनाने के लिए स्वयं ब्राह्मणों को भी वैसी ही कठिनाई होती रही, जैसी आज हमें हो रही है। अतः हम निर्भ्रान्त होकर कह सकते हैं कि प्राचीन भारत के लोगों का एक दिन भी ऐसा नहीं जाता था जब वे अपने पूर्वजों का स्मरण न करते हों। फिर चाहे वह दैनिक पंचयज्ञ के रूप में हो अथवा श्राद्धादि किसी अन्य रूप में, जहाँ अधिकारी व्यक्तियों, मुख्यतः ब्राह्मणों को धन आदि दिया जाता है। श्राद्ध में खीर और फल आदि साधारण वस्तुओं से लेकर स्वर्ण और रत्नादि बहुमूल्य पदार्थ भी समर्पित किए जाते हैं। श्राद्ध के भोजन में कभी-कभी बड़े रुचिकर व्यंजन परोसे जाते हैं। यहाँ एक बड़े महत्त्व की बात यह है कि पहले माँस भी परोसा जाता था, किन्तु बाद में कुछ वर्गों में इसका निषेध हो गया, यह सूत्र काल में पूर्णतया स्वीकृत था।

89. इससे ज्ञात होता है कि भले ही श्राद्ध पितृयज्ञ से बाद में शुरू हुए हों। फिर भी भारतीय जीवन के आरम्भिक युग में भी ये प्रचलित थे। और भले ही इनके बाहरी रूप में कुछ परिवर्तन भी क्यों न हो गया हो, ये मूलतः अपने विशुद्ध रूप में ही हैं। आज के युग में भी जो लोग अपने पुराने देवताओं की मजाक उड़ाया करते हैं, वे भी श्राद्ध तो अपने प्राचीन रूप में ही किया करते हैं। कभी-कभी ईसाइयों के गिरजाघरों में कराए जाने वाले समूह भोज से हमारे श्राद्ध भोज की तुलना भी की जाती है, और यह भी सत्य है कि बहुत से भारतीय अपने पितृकर्म के प्रति चुप्पी साधे रहते हैं तथापि इसे बहुत अच्छा समझते हैं। पितृगण ही इस धरती पर अपना वैशिष्ट्य एवं उच्चतम लक्ष्य दिखाते प्रतीत होते हैं।

मैं तो एक कदम और आगे बढ़कर अपना यह विश्वास व्यक्त करता हूँ कि मृतकों के नाम पर इस प्रकार की सेवा और पूर्वजों के स्मरण की भावना का न रहना हमारे अपने धर्म के लिए बहुत हानिकारक है।

प्रायः प्रत्येक धर्म इन पूर्वजों को मानता है, क्योंकि सब लोग अपने माता पिता के लिए ही नहीं अपितु बच्चों के लिए भी उनकी मधुर स्मृति में कुछ न कुछ किया करते हैं, भले ही कई देशों में इसे अन्ध-विश्वास का कारण ही क्यों न माना जाता हो फिर भी सब लोगों में उनके प्रति एक सजीव विश्वास की भावना सदा से बनी हुई है। और मैं समझता हूँ कि इस विश्वास को कभी नष्ट नहीं होने दिया जाना चाहिए। पुराने ईसाई गिरजाघरों में परलोकगामी आत्माओं के लिए प्राचीन ढंग की प्रार्थना करने की अनुमति थी। इसी प्रकार दक्षिण के सुदूरवर्ती देशों में सब सन्तों और सब आत्माओं के लिए सर्विस (प्रार्थनाएँ आदि) अब भी होती हैं, ताकि आत्मा की आवाज को सन्तुष्ट किया जाए। और यह हृदय की आवाज प्रत्येक धर्म में अवश्य सुनी जानी चाहिए। हम उत्तर के लोग (किसी की मृत्यु आदि के अवसर पर) जाहिरा तौर पर अपना दुःख प्रकट करने में हिचकिचाते हैं। किन्तु हमारे हृदय को अनेक बार बड़ी गहरी कटुता का अनुभव होता है। इतना ही क्यों पुराने लोगों के इस विश्वास में कि जब तक प्रतिदिन प्रार्थनाओं के द्वारा उन्हें सन्तुष्ट न किया जाए, या उनकी स्मृति में प्रतिदिन कोई शुभ कार्य न किया

manifestations of grief but our hearts know often a deeper bitterness ; nay, there would seem to be a higher truth than we at first imagine in the belief of the ancients that the souls of our beloved ones leave us no rest, unless they are appeased by daily prayers, or, better still, by daily acts of goodness in remembrance of them.

90. But there is still another Beyond that found expression in the ancient religion of India. Besides the Devas or Gods, and besides the Pitris or Fathers there was a third world, without which the ancient religion of India could not have become what we see it in the Veda. That third Beyond was what the poets of the Veda call the Rita, and which I believe meant originally no more than 'the straight line'. It is applied to the straight line of the sun in its daily course, to the straight line followed by day and night, to the straight line that regulates the seasons, to the straight line which, in spite of many momentary deviations, was discovered to run through the whole realm of nature. We call that Rita, that straight, direct, or right line, when we apply it in a more general sense, *the Law of Nature* ; and when we apply it to the moral world, we try to express the same idea again by speaking of the *Moral Law*, the law on which our life is founded, the eternal Law of Right and Reason, or, it may be, 'that which makes for righteousness' both within us and without.

91. And thus, as a thoughtful look on nature led to the first perception of bright gods, and in the end of a God of light, as love of our parents was transfigured into piety and a belief in immortality, a recognition of the straight lines in the world without, and in the world within, was raised into the highest faith, a faith in a law that underlies everything, a law in which we may trust, whatever befall, a law which speaks within us with the divine voice of conscience, and tells us 'this is rita', 'this is right', 'this is true', whatever the statutes of our ancestors, or even the voices of our bright gods, may say to the contrary.

92. These three Beyonds are the three revelations of antiquity; and it is due almost entirely to the discovery of the Veda that we, in this nineteenth century of ours, have been allowed to watch again these early phases of thought and religion, which had passed away long before the first beginnings of other literatures. In the Veda an ancient city has been laid bare before our eyes which, in the history of all other religions, is filled up with rubbish, and built over by new architects. Some of the earliest and most instructive scenes of our distant childhood have risen once more above the horizon of our

जाए तब तक परलोक सिधारे हुए हमारे प्रियजनों की आत्माओं को शाँति नहीं मिलती ? (पुराने लोगों के इस विश्वास में) उससे भी कहीं बड़ा तथ्य प्रतीत होता है जैसा कि हम पहले समझते थे।

90. किन्तु भारत के प्राचीन धर्म में एक और भी 'पर' तत्व अभिव्यक्त है।

देवों और पितरों के अतिरिक्त एक तीसरा संसार भी है, जिसके बिना भारत का प्राचीन धर्म वैसा नहीं बन पाता जैसा हम उसे वेदों में पाते हैं। उस तीसरे 'पर' को वेदों में ऋत कहा गया है। इस ऋत शब्द का मूल अर्थ सीधी या सरल रेखा रहा होगा, कुछ ऐसा मुझे लगता है। यह 'ऋत' अब सूर्य की सरल रेखा के लिए प्रयुक्त हुआ है और दिन और रात्रि भी इसी ऋत का अनुसरण करते हैं।

इसका भी अनुसन्धान हो गया है कि प्रकृति का समस्त साम्राज्य इसी ऋत के द्वारा संचालित है। अधिक सामान्य अर्थ में इस ऋत को 'प्रकृति का नियम' कहा जा सकता है। जब हम इसका नैतिक विश्व के लिए प्रयोग करते हैं, तब उससे आन्तरिक और बाह्य उभयविध सत्य और मूलभूत कारण अभिप्रेत होता है, जिस पर हमारा जीवन आधृत है। वास्तव में यह सत्य और युक्ति संगतता का शाश्वत नियम है जिसे 'ऋत' कहा गया है।

91. और इस प्रकार प्रकृति का विवेकपूर्ण निरीक्षण पहले द्योतनशील देवों के चिन्तन और अन्त में प्रकाश के अधिपति ईश्वर के ज्ञान में ठीक वैसे ही परिणित हो गया, जैसे हमारे अपने पितरों का प्रेम, पुण्य और अविनश्वरता में रूपान्तरित हुआ। अपने अन्दर और बाहर के विश्व में इस 'ऋत' की यह स्वीकृति ऐसे प्राकृतिक नियम तक उन्नत हो गई जो प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है। हमारे हृदय के अन्दर विराजमान यह देव-आत्मा या ऋत हमें सदा बताता रहता है कि यही सत्य है, यही वास्तविक है, यही ऋत है, भले ही हमारे पूर्वजों की मान्यता और द्योतनशील देवों की वाणी भी इसके विरुद्ध ही क्यों न पड़े।

92. ये तीनों परतत्त्व (देव, पितर और आत्मा) ही प्राचीनतम ईश्वरीय प्रकाश हैं। इस 19 वीं शताब्दी में हमें इन तीनों अमर तत्त्वों का बोध वेदों के ज्ञान के द्वारा ही हो पाया है। वेदों के द्वारा ही हमें आरम्भिकतम युग के चिन्तन एवं धर्म के इन तीनों प्रकार के मर्मो का सम्यक् बोध हो सका है। स्मरण रहे कि विश्व के अन्य सभी साहित्य या ग्रन्थों की रचनाओं के आरम्भ से बहुत पहले ही वेदों की यह चिन्तन-प्रक्रिया अपना सर्वांगपूर्ण रूप ग्रहण कर चुकी थी। वेदों के द्वारा ही उस प्राचीनतम युग में निर्मित एक भव्य नगर हमारे सामने उपस्थित हो जाता है, जबकि विश्व के दूसरे धर्म अपने नए वास्तु-विदों के द्वारा अपनी नगरियाँ बसाने के लिए कूड़े-कचरे से गढ़ों आदि को भरकर जमीन को समतल बनाने में ही लगे हुए थे। अभी केवल 30-40 वर्ष पहले तक हम अपने जिस अत्यन्त प्राचीन बचपन को सर्वदा के लिए विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गया समझा करते थे, वह अब फिर से हमारी अपनी स्मृतियों के क्षितिज पर साकार हो उठा है।

93. भारत के इस धर्म में आरम्भ से ही दार्शनिकता के बीज सन्निहित थे, यह

memory which, until thirty or forty years ago, seemed to have vanished for ever.

93. Only a few words more to indicate at least how this religious growth in India contained at the same time the germs of Indian philosophy. Philosophy in India is, what it ought to be, not the denial, but the fulfilment of religion ; it is the highest religion, and the oldest name of the oldest system of philosophy in India is Vedanta, that is, the end, the goal, the highest object of the Veda.

94. Let us return once more to Yaska, that ancient theologian who lived in the fifth century B.C., and who told us that, even before his time, all the gods had been discovered to be but three gods, the gods of the *Earth*, the gods of the *Air*, and the gods of the *Sky*, invoked under various names. The same writer tells us that in reality there is but *one* God, but he does not call him the Lord, or the Highest God, the Creator, Ruler and Preserver of all things, but he calls him Atman, THE SELF. The one Atman or Self, he says, is praised in many ways owing to the greatness of the godhead. And he then goes on to say : 'The other gods are but so many members of the one Atman, Self, and thus it has been said that the poets compose their praises according to the multiplicity of the natures of the beings whom they praise.'

95. It is true, no doubt, that this is the language of a philosophical theologian, not of an ancient Poet. Yet these philosophical reflections belong to the fifth century before our era, if not to an earlier date ; and the first germs of such thoughts may be discovered in some of the Vedic hymns also. I have quoted already from the hymns such passages as—'They speak of Mitra, Varuna, Agni ; then he is the heavenly bird Garutmat ; *that which is and is one* the poets all in various ways ; they speak of Yama, Agni, Matarisvan.'

96. In another hymn, in which the sun is likened to the bird, we read : 'Wise poets represent by their words the bird who is one, in many ways.'

All this is still tinged with mythology ; but there are other passages from which a purer light beams upon us, as when one poet asks :

'Who saw him when he was first born, when he who has no bones bore him who has bones ? Where was the breath, the blood, the Self of the world ? Who went to ask this from any that knew it ?'

Here, too, the expression is still helpless, but though the flesh is weak, the spirit is very willing. The expression 'He who has bones'

समझाने के लिए मैं कुछ शब्द और कहना चाहूँगा। भारत का दर्शनशास्त्र निषेधात्मक न होकर धर्म का पूरक तत्त्व है। यही सर्वोत्कृष्ट धर्म है तथा भारत में प्राचीनतम दार्शनिक चिन्तन-प्रक्रिया का नाम है वेदान्त अर्थात् वेद का अन्त—चरम लक्ष्य—अथवा महानतम उद्देश्य।

94. यहाँ हमें एक बार फिर से ई० पू० 5वीं शती के प्राचीन दैवतविज्ञानवेत्ता यास्क की ओर मुड़कर देखना होगा। वे हमें बताते हैं कि यद्यपि उनके समय तक सब देवता प्रतिष्ठित हो चुके थे, तथापि पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक के तीन ही प्रमुख देवताओं की नाना नामरूपों से स्तुति की जाती है—

'तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिवीस्थानः, वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्ष-स्थानः, सूर्यो द्युस्थानः।'

यास्क ही हमें यह भी बताते हैं कि वास्तव में देव एक ही है। किन्तु वे उसे ईश्वर सर्वोच्च देव, सर्वनियन्ता शासक और सबके रक्षक या पालक आदि किसी नाम से अभिहित नहीं करते। वे कहते हैं—'वह है आत्मा'। एक ही आत्मा की अनेक रूपों में स्तुति की जाती है तथा अन्य सभी देव उसी आत्मा के प्रत्यंग हैं—

महाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते। एकस्यात्मनोऽन्ये देवा प्रत्यंगानि भवन्ति।

95. यह ठीक है कि यह एक दार्शनिक की भाषा है, किसी प्राचीन ऋषि की नहीं। तथापि ये दार्शनिक विचार और अधिक पहले के न भी हों तो भी ईस्वी पूर्व 5वीं सदी के तो अवश्य हैं ही और इसका मूल तत्त्व वेद के सूक्त में भी विद्यमान है। मैंने निम्न मन्त्र का भाव पहले भी बताया था—

'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्नि यमं मातरिश्वानमाहु'

96. संपूर्ण अन्तरिक्ष को व्याप्त कर लेने वाले सुपर्ण गुरुत्मान की चर्चा भी पहले हो चुकी है। इन सब बातों को आप माइथोलोजी भले ही कह लें, किन्तु दूसरे भी ऐसे अनेक मन्त्र हैं, जिनके प्रकाश की किरण हम पर पड़ रही है। एक ऋषि कहता है—

'अरे उसे किसने देखा है? कौन जानता है कि उसका अस्तित्व कब आरंभ हुआ है? इस विश्व के प्राण, रक्त और आत्मा कहाँ थे? अस्थिविहीन ने अस्थिमय का जनन किया, तो उसे किसने देखा? तब प्राण कहाँ थे? रक्त कहाँ था? तब संसार की आत्मा कहाँ थी? इन सब तत्त्वों का द्रष्टा या ज्ञाता कौन था, जिससे जिज्ञासुओं ने पूछा? यद्यपि यह वर्णन भी कुछ अस्पष्ट-सा लगता है, तथापि इसके वाह्य रूप के दुर्बल होने पर भी इसकी आन्तरिक आत्मा सर्वथा प्रभावपूर्ण और शक्तिशाली है। अस्थिविहीन से तात्पर्य है अरूप, अदृश्य और सूक्ष्म, अस्थिमय का तात्पर्य है यह स्थूल और दृश्यमान विश्व प्रपंच। वायु अथवा प्राण, रक्त तथा संसार की आत्मा इस पदावली के द्वारा अनाम, अरूप और अगोचर की ओर संकेत किया गया है तथा बताया गया है कि उसे नानाविध रूपों से अभिहित किया जा सकता है।

97. इस वैदिक वाङ्मय के द्वितीय युग के ब्राह्मणग्रंथों, विशेषतः उपनिषदों या

is meant for that which has assumed consistency and form, the Visible as opposed to that which has no bones, no body, no form, the Invisible, while 'breath, blood, and self of the world' are but so many attempts at finding names and concepts for what is by necessity inconceivable, and therefore unnameable.

97. In the second period of Vedic literature, in the so-called Brahmanas, and more particularly in what is called the Upanishads, or the Vedanta portion, these thoughts advance to perfect clearness and definiteness. Here the development of religious thought, which took its beginning in the hymns, attains to its fulfilment. The circle becomes complete. Instead of comprehending the One by many names, the many names are now comprehended to be the One. The old names are openly discarded ; even such titles as Prajapati, lord of creatures, Visvakarman, maker of all things, Dhatri, creator, are put aside as inadequate. The name now used is an expression of nothing but the purest and highest subjectiveness,—it is Atman, the Self, far more abstract than our Ego,—the Self of all things, the Self of all the old mythological gods—for they were not *mere* names, but names intended for something—lastly, it is the Self in which each individual self must find rest, must come to himself, must find his own true Self.

98. You may remember that I spoke to you in my second lecture of a boy who insisted on being sacrificed by his father, and who, when he came to Yama, the ruler of the departed, was granted three boons, and who then requested, as his third boon, that Yama should tell him what became of man after death. That dialogue forms part of one of the Upanishads, it belongs to the Vedanta, the end of the Veda, the highest aim of the Veda.

99. I shall read you a few extracts from it.

Yama, the King of the Departed, says :

'Men who are fools, dwelling in ignorance, though wise in their own sight, and puffed up with vain knowledge, go round and round, staggering to and fro, like blind led by the blind.

'The future never rises before the eyes of the careless child, deluded by the delusions of wealth. *This* is the world, he thinks ; there is no other ; thus he falls again and again under my sway (the sway of death).

'The wise ; who by means of meditating on his *Self*, recognises the Old (the old man within) who is difficult to see, who has entered into darkness, who is hidden in the cave, who dwells in the abyss, as God, he indeed leaves joy and sorrow far behind.

वेदान्त में ये विचार सर्वथा स्पष्ट एवं सुनिश्चित रूप में प्रतिपादित हुए हैं। यहाँ वैदिक सूक्तों से आरम्भ होनेवाले धार्मिक चिन्तन का विकास परिपूर्ण हो चुका था। अब परिधि पूरी हो चुकी थी। एक ही तत्त्व को अनेक नामों से अभिहित किए जाने के स्थान पर अब एक तत्त्व ही प्रमुख हो गया। अब प्रजापति, विश्वकर्मा और विधाता आदि नाम उसका बोध कराने में अपर्याप्त और असमर्थ हो गए थे। उस सर्वोच्च, परिपूर्ण, विशुद्ध मात्र भावात्मक तत्त्व को अभिव्यक्त करने के लिए अब जो शब्द प्रयुक्त होने लगा था वह है आत्मन् या आत्मा। यह हमारे ईगो (अहम्) की अपेक्षा कहीं अधिक विशुद्ध भावात्मक है। जिन देवताओं की कल्पना की गई थी, वे नाममात्र न होकर अर्थगर्भित थे। उन नामों से आत्म-तत्त्व ही अभिप्रेत था। प्रत्येक व्यक्ति का परम आश्रय आत्मा ही है, अतः प्रत्येक व्यक्ति को आत्म-तत्त्व को ही पहचानने का प्रयत्न करना चाहिए।

98. आपको याद होगा कि मैंने अपने दूसरे व्याख्यान में एक ऐसे बालक की चर्चा की थी, जो यम के पास पहुँचकर तीसरे वरदान में यह जनना चाहता है कि मृत्यु के पश्चात् मानव का क्या होता है। यम और नचिकेता का यह संवाद उपनिषदों में से एक अन्यतम उपनिषद् (कठोपनिषद्) में आया है और उपनिषद् ही वेदान्त अर्थात् वेद का चरम उद्देश्य और परम लक्ष्य है।

99. मैं कठोपनिषद् के कुछ मन्त्रों का आशय आपको सुनाना चाहता हूँ—

(i) अपने-आपको भले ही वे बुद्धिमान् समझा करें और अपने ज्ञान के घमण्ड में उड़ते रहें तथापि वास्तव में जो लोग अविद्या में ग्रस्त हैं, ऐसे पण्डितमन्य मूढ़जन उसी प्रकार अपने निरर्थक ज्ञान के द्वारा निरन्तर इधर-उधर भटकते रहते हैं, जैसे कोई अंधा ही दूसरे अंधे को अपने साथ लेकर वास्तविक दिशा न पाकर इधर-उधर भटकता रहता है।

(ii) प्रमाद युक्त तथा विषय वासनाओं में आसक्त, वित्त के मोह में मूढ़ बालक की आँखों के आगे परलोक या मुक्ति की भावना कभी नहीं आती और वह यही मान बैठता है कि जो कुछ है बस यही लोक है परलोक नाम वाली कोई वस्तु नहीं है, इसीलिए वह बार-बार मेरे (यम के) वश में आता रहता है। (वल्ली-2, मन्त्र 6)

(iii) उस दुर्दर्श निगुढ़ गुहा में अन्तर्हित हृदय के अन्तर्तम में विराजमान उस पुराणपुरुष परमात्मदेव का अध्यातम योग की प्राप्ति के द्वारा जो धीर मनन चिन्तन कर लेता है, वह हर्ष और शोक से मुक्त हो जाता है। (वल्ली-2, मन्त्र-12)

(iv) यह चेतन ज्ञानमय आत्मा न तो कभी उत्पन्न ही होता है और न मरता ही है। यह न कहीं से या किसी से बना है और न यह कभी कुछ बनने वाला ही है। यह पुराण पुरुष आत्मा, अजन्मा, नित्य और शाश्वत है तथा शरीर के हनन हो जाने या नष्ट हो जाने पर भी इसका हनन नहीं होता। (वल्ली-2, मन्त्र 18)

(v) यह आत्म तत्त्व जो इस देहधारी मानव के हृदयरूपी गुफा में निहित है वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म या अणु से भी अणु और महान् से भी महान् है। राग द्वेष से रहित सर्वविध कामनाओं या कर्मों का परित्याग कर देने वाला पुरुष उस विधाता की कृपा से आत्मा की इस महिमा का साक्षात्कार कर सकता है। (वल्ली-2, मन्त्र-20)

'That Self, the Knower, is not born, it dies not ; it came from nothing, it never became anything. The Old man is unborn, from everlasting to everlasting ; he is not killed, though the body be killed.

'That Self is smaller than small, greater than great ; hidden in the heart of the creature. A man who has no more desires and no more griefs, sees the majesty of the Self by the grace of the creator.

'Though sitting still, he walks far ; though lying down, he goes everywhere. Who save myself is able to know that God, who rejoices not ?

'That Self cannot be gained by the Veda ; nor by the understanding, nor by much learning. He whom the Self chooses, by him alone the Self can be gained. The Self chooses him as his own.

'But he who has not first turned away from his wickedness, who is not calm and subdued, or whose mind is not at rest, he can never obtain the Self, even by knowledge.

'No mortal lives by the breath that goes up and by the breath that goes down. We live by another, in whom both repose.

'Well then, I shall tell thee this mystery, the eternal word (Brahman), and what happens to the *Self*, after reaching death.

Some are born again, as living beings, others enter into stocks and stones, according to their work, and according to their knowledge.

'But he, the Highest Person, who wakes in us while we are asleep, shaping one lovely sight after another, he indeed is called the Light, he is called Brahman, he alone is called the immortal. All worlds are founded on it, and no one goes beyond. *This is that.*

'As the one fire, after it has entered the world, though one, becomes different according to what it burns, thus the One Self within all things, becomes different, according to whatever it enters, but it exists also apart.

'As the sun, the eye of the world, is not contaminated by the external impurities seen by the eye, thus the One Self within all things is never contaminated by the sufferings of the world, being himself apart.

'There is one eternal thinker, thinking non-eternal thoughts ; he, though one, fulfils the desires of many. The wise who perceive Him within their Self, to them belongs eternal life, eternal peace.

'Whatever there is, the whole world, when gone forth (from

(vi) वह आत्म तत्त्व एक स्थान पर रहता हुआ भी दूर से दूर पहुँच जाता है। और लेटा हुआ भी सर्वत्र चलता रहता है। जो आनन्दमग्न रहकर भी निरानन्द है, उस देव (आत्मा) को मेरे सिवा और कौन जान सकता है।

(vii) प्रवचन से अथवा मेधा से, अथवा शास्त्रादिकों को बहुत कुछ सुन लेने से अथवा उनका ज्ञान प्राप्त कर लेने से भी इस आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता। आत्म-तत्त्व स्वयं ही जिसे अपना लेता है वही इसे अपने स्वरूप का प्रत्यक्ष-दर्शन करा देता है। (वल्ली-2, मन्त्र 23)

(viii) किन्तु जो अपने दुश्चरितों से विरत नहीं हुआ, जो अशान्त है, जो असमाहित है या स्थिर बुद्धि नहीं है, ऐसा अशान्त मन वाला व्यक्ति केवल प्रज्ञान के द्वारा उस आत्म तत्त्व का कदापि साक्षात्कार नहीं कर सकता। (वल्ली-2, मन्त्र-24)

(ix) कोई भी प्राणी प्राण और अपान अथवा श्वास-प्रश्वास से जीवित नहीं रहता। किन्तु सब प्राणी उस आत्म तत्त्व से जीते हैं जिसमें ये दोनों प्राणापान आश्रित हैं।

(x) हे गौतम, (नचिकेता) अब मैं तुम्हें उस गुह्य सनातन ब्रह्म का रहस्य बताऊँगा और मरण के बाद आत्मा के बारे में भी बताऊँगा। (वल्ली 5 मन्त्र 5)

(xi) बहुत से देही (जो मुक्त नहीं होते वे) मृत्यु के बाद दूसरा शरीर प्राप्त कर लेते हैं। कई स्थावर या स्थाणु या स्थिर बने रहते हैं। वे सब लोग अपने-अपने कर्म व ज्ञान के अनुसार इन विविध गतियों को प्राप्त करते हैं। (वल्ली 5, मन्त्र 7)

(xii) वह सनातन ब्रह्म सोए हुए (अज्ञानियों) में भी जागता रहता है। और एक के बाद दूसरे कमनीय तत्त्वों का निर्माण करता रहता है। वह वास्तव में प्रकाशरूप तथा तेजोमय है। ब्रह्म है, उसे ही अमृत कहा जाता है। सब कुछ उसी में आश्रित है। उससे परे कोई नहीं जा सकता। यही वह (ब्रह्म) है। (वल्ली, 5 मन्त्र 8)

(xiii) जैसे इस विश्व में व्याप्त एक ही अग्नि प्रत्येक पदार्थ में तद्रूप हो रहा है, वैसे ही वह सर्वभूतान्तरात्मा भी एक ही है, फिर भी वह सबके अन्दर और बाहर विराजमान होकर प्रत्येक रूप का प्रतिरूप बना हुआ है। (वल्ली 5, मन्त्र 9)

(xiv) जैसे सारे लोकों का नेत्र-प्रकाशक-सूर्य बाहर के दोषों से दूषित नहीं होता, वैसे ही वह एक सर्वभूतान्तरात्मा लोक के बाह्य दुःखों से लिप्त नहीं होता।

(xv) वह सर्वभूतान्तरात्मा, सर्वनियन्ता आत्मातत्त्व या ब्रह्म एक होकर भी नानाविध रूप बनाता रहता है। और सब की कामनाओं को पूर्ण करता है। जो ज्ञानीजन अपने अन्दर उस आत्मतत्त्व का साक्षात्कार कर लेते हैं, उन धीर पुरुषों को ही शाश्वत सुख उपलब्ध होता है, दूसरों को नहीं। (वल्ली 5, मन्त्र 11, 12)

(xvi) जब मनुष्य के हृदय की सब कामनाएँ छूट जाती हैं, तब यह मर्त्य या मरणशील मनुष्य भी अमृत—अमरणधर्मा—बन जाता है, और ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। (वल्ली 6, मन्त्र 14)

(xvii) जब इसके हृदय की सब ग्रन्थियाँ या बेड़ियाँ खुल जाती हैं तब यह मर्त्य भी अमर्त्य हो जाता है। यही मेरे उपदेश का अन्त है। (वल्ली 6, मन्त्र 15)

Brahman), trembles in his breath. That Brahman is a great terror, like a drawn sword. Those who know it, become immortal.

'He (Brahman) cannot be reached by speech, by mind, or by the eye. He cannot be apprehended, except by him who says, *He is.*

'When all desires that dwell in the heart cease, then the mortal becomes immortal, and obtains Brahman.

'When all the fetters of the heart here on earth are broken, when all that binds us to this life is undone, then the mortal becomes immortal :—here my teaching ends.'

100. This is what is called Vedanta, the Veda-end, the end of the Veda, and this is the religion or the philosophy, whichever you like to call it, that has lived on from about 500 B C. to the present day. If the people of India can be said to have now any system of religion at all,—apart from their ancestral sacrifices and their Sraddhas, and apart from mere caste-observances,—it is to be found in the Vedanta philosophy, the leading tenets of which are known to some extent in every village. That great revival of religion, which was inaugurated some fifty years ago by Ram-Mohun Roy, and is now known as the Brahma-Samaj, under the leadership of my noble friend Keshub Chunder Sen, was chiefly founded on the Upanishads, and was Vedantic in spirit. There is, in fact, an unbroken continuity between the most modern and the most ancient phases of Hindu thought, extending over more than three thousand years.

101. To the present day India acknowledges no higher authority in matters of religion, ceremonial, customs, and law than the *Veda*, and so long as India is India, nothing will extinguish that ancient spirit of Vedantism which is breathed by every Hindu from his earliest youth, and pervades in various forms the prayers even of the idolater, the speculations of the philosopher, and the proverbs of the beggar.

102. For purely practical reasons therefore,—I mean for the very practical object of knowing something of the secret springs which determine the character, the thoughts and deeds, of the lowest as well as of the highest amongst the people in India,—an acquaintance with their religion, which is founded on the Veda, and with their philsophy, which is founded on the Vedanta, is highly desirable.

103. It is easy to make light of this, and to ask, as some statesmen have asked, even in Europe, What has religion, or what has philosophy, to do with politics ? In India, in spite of all appearances to the contrary, and notwithstanding the indifference on religious matters so often paraded before the world by the Indians

100. यह है जिसे कहते हैं वेदान्त—वेद का अन्त या चरम उद्देश्य। यही है वह धर्म या दर्शन, इसे आप जो चाहे कह लें, जो ईसा-पूर्व पाँचवीं शती से पहले से लेकर आज तक अपने इसी सजीव रूप में विद्यमान है। अपने पुरातनतम यज्ञ-यागों के विधान, श्राद्ध और वर्णाश्रम आदि के अतिरिक्त भारत के लोग आज जिस धर्म को मानते हैं, वह है 'वेदान्त दर्शन' का धर्म। इस धर्म का तत्त्व वहाँ के छोटे-से-छोटे गाँव तक में समाया हुआ है। आज से लगभग 50 वर्ष पहले राममोहन राय द्वारा प्रवर्तित और वर्तमान में मेरे श्रेष्ठ मित्र केशवचन्द्र सेन के नेतृत्व में आज जिस 'ब्रह्म समाज' में नवजागृति उत्पन्न हो रही है, उसकी नींव प्रमुखतया उपनिषदों अथवा वैदान्तिक तत्त्व पर ही स्थापित है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिकतम तथा प्राचीनतम हिन्दू धर्म में 3000 वर्ष से भी अधिक समय से परम्परा की एक अटूट कड़ी बारावर बनी रही है।

101. वर्तमान में भी भारत अपने धर्म, रीति-रिवाज, संस्कार एवं कानून आदि के मामलों में वेद को ही एकमात्र प्रमाण मानता है। बचपन से लेकर जवानी और बुढ़ापे तक प्रत्येक हिन्दू की साँस-साँस में रमा हुआ और स्तुतियों तथा प्रार्थनाओं आदि में सर्वत्र व्याप्त, यहाँ तक कि मूर्तिपूजा में भी नाना रूपों में समाया हुआ दार्शनिकों के चिन्तन का प्रमुख लक्ष्य, एवं भिक्षुकों तक की कहावतों में विद्यमान यह वेदान्तिक तत्त्व, भारत जबतक भारत रहेगा, तबतक बना रहेगा, यह कभी मिट नहीं सकता।

102. इसलिए विशुद्ध व्यावहारिक कारणों से मेरा आशय भारत के निम्नतम श्रेणी के लोगों से लेकर उच्चतम वर्ग के लोगों का चरित्र, चिन्तन और कार्य व्यापार जिससे निर्धारित होता है, उस रहस्यमय स्रोत के बारे में कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेने के रचनात्मक उद्देश्य से उनके उस धर्म से जो वेदों पर आधृत है तथा उस दर्शन से जो वेदान्त पर टिका हुआ है, परिचित होना अति आवश्यक है।

103. जैसाकि यूरोप के कुछ राजनीतिज्ञ लोग कहा करते हैं—यह कह देना बड़ा आसान है--कि धर्म और दर्शन का राजनीति से क्या लेना-देना। यद्यपि आजकल स्वयं भारत में भी धार्मिक मामलों के प्रति यत्र-तत्र उपेक्षा का भाव दिखाई देता है, तथापि वहाँ धर्म और दर्शन आज भी अत्यन्त शक्तिशाली हैं। वहाँ धर्म और दर्शन की शक्ति सदैव अदम्य रही है तथा आगे भी रहेगी। पिछले दिनों ही सौराष्ट्र के जूनागढ़ एवं भावनगर के प्रशासकीय पदों पर रह चुके गोकुल जी और गौरीशंकर नामक दो महापुरुषों के कार्य-कलाप प्रकाश में आए हैं। ऐसे सच्चे वेदान्ती लोगों के विचार पढ़कर आपको विश्वास हो जाएगा कि आज भी भारत में धर्म और दर्शन अपनी कितनी गहरी जड़ें जमाए हुए हैं।

104. मैं तो वेदान्त के लिए इससे भी बढ़कर दावा करता हूँ और केवल भारतीय प्रशासनिक अधिकारियों को ही नहीं अपितु दर्शन शास्त्र के प्रत्येक सच्चे अध्येता को इसे पढ़ने की प्रेरणा देता हूँ। इससे अब तक दर्शन शास्त्र के इतिहास के द्वारा जो धारणाएँ हमारे समक्ष उपस्थित होती रही हैं, जीवन के बारे में उनसे सर्वथा भिन्न मान्यताएँ यहाँ उपलब्ध होंगी आपने देखा कि उपनिषदों के ऋषियों ने सभी देवताओं का ज्ञान प्राप्त

themselves, religion, and philosophy too, are great powers still. Read the account that has lately been published of two native statesmen, the administrators of two first-class states in Saurashtra, Junagadh and Bhavnagar, Gokulaji and Gaurisankara, and you will see whether the Vedanta is still a moral and a political power in India or not.

104. But I claim even more for the Vedanta, and I recommend its study, not only to the candidates for the Indian Civil Service, but to all true students of philosophy. It will bring before them a view of life, different from all other views of life which are placed before us in the History of Philosophy. You saw how behind all the Devas or gods, the authors of the Upanishads discovered the Atman or Self. Of that Self they predicated three things only, that it is, that it perceives and that it enjoys eternal bliss. All other predicates were negative ; it is not this, it is not that—it is beyond anything that we can conceive or name.

105. But that Self, that Highest Self, the Paramatman, could be discovered after a severe moral and intellectual discipline only, and those who had not yet discovered it, were allowed to worship lower gods, and to employ more poetical names to satisfy their human wants. Those who knew the other gods to be but names or persons—*personae* or masks, in the true sense of the word—knew also that those who worshipped these names or persons, worshipped in truth the Highest Self, though ignorantly. This is a most characteristic feature in the religious history of India. Even in the Bhagavadgita, a rather popular and exoteric exposition of Vedantic doctrines, the Supreme Lord or Bhagavat himself is introduced as saying : 'Even those who worship idols, worship me.'

106. But that was not all. As behind the names of Agni, Indra, and Prajapati, and, behind all the mythology of nature, the ancient sages of India had discovered the Atman—let us call it the objective Self they perceived also behind the veil of the body, behind the senses, behind the mind, and behind our reason (in fact behind the mythology of the soul, which we often call psychology), another Atman, or the subjective Self. That Self, too, was to be discovered by a severe moral and intellectual discipline only, and those who wished to find it who wished to know, not themselves, but their Self, had to cut far deeper than the senses, or the mind, or the reason, or the ordinary Ego. All these, too were mere Devas, bright apparitions—mere names —yet names meant for something. Much that was most dear, that had seemed for a time their very self, had to be surrendered, before

कर लेने के बाद आत्मतत्त्व का कैसे साक्षात्कार किया। उन्होंने आत्म-तत्त्व के सत्-चित् और आनन्द स्वरूप को पहचान लिया और यह बताया कि यही सत्य है, इसके सिवा नाम रूपात्मक जो कुछ हम देख रहे हैं, वह कुछ नहीं है।

105. किन्तु वह आत्मा, वह परम आत्मा कठिन तपश्चर्या और आध्यात्मिक आत्म चिन्तन से ही प्राप्त हो सकता है। जो लोग उस आत्म-तत्त्व का साक्षात्कार नहीं कर पाये वे नाना नामरूपों से अभिहित अन्यान्य देवताओं की उपासना कर सकते हैं। तथापि आत्मज्ञानी पुरुष जानता है कि नानाविध नामरूपों की उपासना करने वाले ये लोग भी वस्तुतः उसी आत्मतत्त्व की उपासना कर रहे हैं। भले ही उन्हें इस बात का ज्ञान न हो। भारत के धार्मिक इतिहास का यह एक बहुत बड़ा और अत्यन्त महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य है। वेदान्त के तत्त्व को लोकप्रिय रूप में प्रतिपादित करने वाले विख्यात ग्रन्थ भगवद् गीता में भी भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से निकले हुए ये वचन हैं कि दूसरे देवताओं तथा मूर्ति आदि की पूजा करने वाले भी वस्तुतः मेरी ही पूजा करते हैं।

106. किन्तु बात इतनी ही नहीं है भारत के ऋषियों ने जैसे अग्नि, इन्द्र और प्रजापति आदि नामों में अन्तर्हित तथा सम्पूर्ण दैवत-विज्ञान में व्याप्त आत्म-तत्त्व का साक्षात्कार कर लिया था, वैसे ही उन्होंने शरीर तथा मन, बुद्धि, अहंकार व दसों इन्द्रियों तथा कारण, कार्य भाव आदि के पर्दे के पीछे छिपे हुए एक दूसरे आत्म-तत्व या परमात्म तत्त्व को भी प्रत्यक्ष कर लिया था। इस परम आत्मा का साक्षात्कार भी अत्यन्त कठोर यम-नियम, आसन, धारणा, ध्यान आदि के पूर्ण परिपालन तथा आत्म शुद्धि आदि सदाचार और पवित्राचरण के द्वारा ही हो सकता है। किन्तु जो अपने आपका नहीं, अपितु अपने आत्म-तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें ऐन्द्रिक ज्ञान तथा मन बुद्धि अहंकार आदि से कहीं परे निगूढ़ गुहा में प्रवेश करना होगा। ये सब भी केवल देव—द्योतनशील नाम-मात्र होकर भी जिस विशेष तत्त्व के अभिव्यंजक हैं, उस साक्षी-चेता, सर्वगामी, सर्वव्यापक, सब जीवों के जीवनाधार, पुराण पुरुष आत्म-तत्त्व का साक्षात्कार करने से पूर्व आपाततः आत्मरूप दिखाई देने वाले अपने इष्टतम तत्त्व का भी परित्याग कर देना होता है।

107. जब उस बिन्दु तक पहुँच हो जाती है तो उच्चतम ज्ञान प्रकाशित होने लगता है। तभी प्रत्यगात्मा परमात्मा की ओर आकृष्ट होता है। उसे अपने आत्मा के सत्य अथवा वास्तविक स्वरूप परम आत्मा की उपलब्धि हो जाती है तब दृश्य और दृष्टा, ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय आदि सब एक हो जाते हैं। वह आत्म-तत्त्व में सब सत्यों में अन्तर्निहित दिखाई देता है। धर्म का धुंधला-सा स्वप्नाकार स्वरूप तब दर्शन के विशुद्ध प्रकाश के रूप में भासित होता है।

108. बर्कले के दर्शन का अध्ययन करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्र एवं उनके शांकर एवं रामानुज के भाष्यों को पढ़कर यह अनुभूति हुए बिना नहीं रहेगी कि हम एक अत्यन्त उच्च एवं समृद्ध आत्मज्ञान के साम्राज्य में पहुँच गए हैं।

109. मैं मानता हूँ कि प्राच्य दर्शन की तमसाच्छन्न गुहाओं के अन्तर्निहित

they could find the Self of Selves, the Old Man, the Looker-on, a subject independent of all personality, an existence independent of all life.

107. When that point had been reached, the highest knowledge began to dawn, the Self within (the Pratyagatman) was drawn towards the Highest Self (the Paramatman), it found its true self in the Highest Self, and the oneness of the subjective with the objective Self was recognised as underlying all reality, as the dim dream of religion,—as the pure light of philosophy.

108. This fundamental idea is worked out with systematic completeness in the Vedanta philosophy, and no one who can appreciate the lessons contained in Berkeley's philosophy, will read the Upanishads and the Brahma-sutras and their commentaries without feeling a richer and a wiser man.

109. I admit that it requires patience, discrimination, and a certain amount of self-denial before we can discover the grains of solid gold in the dark mines of Eastern philosophy. It is far easier and far more amusing for shallow critics to point out what is absurd and ridiculous in the religion and philosophy of the ancient world than for the earnest student to discover truth and wisdom under strange disguises. Some progress, however, has been made, even during the short span of life that we can remember. The Sacred Books of the East are no longer a mere butt for the invectives of missionaries or the sarcasms of philosophers. They have at last been recognised as historical documents, aye, as the most ancient documents in the history of the human mind, and as palaeontological records of an evolution that begins to elicit wider and deeper sympathies than the nebular formation of the planet on which we dwell for a season, or the organic development of that chrysalis which we call man.

110. If you think that I exaggerate, let me read you in conclusion what one of the greatest philosophical critics—and certainly not a man given to admiring the thoughts of others—says of the Vedanta, and more particularly of the Upanishads. Schopenhauer writes :

111. 'In the whole world there is no study so beneficial and so elevating as that of the Upanishads. It has been the solace of my life—it will be the solace of my death.'

112. I have thus tried, so far as it was possible in one course of lectures, to give you some idea of ancient India, of its ancient literature, and, more particularly, of its ancient religion. My object was, not merely to place names and facts before you, these you can find in

सुवर्णकणों को प्राप्त करने के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। यह कह देना तो सरल है कि इस अस्पष्ट और दुर्बोध प्राचीन धर्म और दर्शन में क्या रखा है, किन्तु एक सच्चा जिज्ञासु इस अनोखे धर्म और दर्शन में सत्य तथा सर्वोत्कृष्ट ज्ञान का साक्षात्कार कर आनन्दविभोर हो जाता है। दि सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट' के प्रकाशन द्वारा आप लोगों के लिए भारत के इस महान् ज्ञान की एक झलक पा लेना अब कुछ सरल हो गया है।

110-112. आपको यदि मेरी ये बातें अतिरंजित प्रतीत हों तो मैं यहाँ अपने यहाँ के ऐसे महान् दार्शनिक, आलोचक और चिन्तक के कुछ वाक्य आपके सामने उद्धृत करता हूँ जो अनायास ही दूसरों की प्रशंसा करने का कभी आदी नहीं रहा, वह है शॉपनहार। वे वेदान्त और विशेषतः उपनिषदों के बारे में लिखते हैं—'इस सारे संसार में उपनिषदों के अध्ययन के समान लाभदायक और मानवोन्नतिकारक अन्य कोई वस्तु नहीं है। ये मेरे जीवन का सार रही हैं और मृत्यु के समय भी यही मेरे लिए परम-तत्त्व रहेंगी।' मैंने अब तक यथासम्भव प्राचीन भारत के कुछ विचारों, प्राचीन साहित्य विशेष रूप से प्राचीन धर्म की एक झलक आपके समक्ष उपस्थित करने का प्रयत्न किया। मात्र नाम या तथ्य आपके सामने रख देना ही मेरा उद्देश्य नहीं है, ये तो आपको किसी भी पुस्तक में मिल सकते हैं। किन्तु मानव जाति के इतिहास के उस प्राचीन अध्याय में विद्यमान मानव की सामान्य अभिरुचियों को देखने और समझने की क्षमता जगाना ही है। मैं चाहता हूँ कि वेद और वैदिक धर्म आप लोगों को विचित्र न लगे। किन्तु आप यह अनुभव करें कि उसमें कुछ ऐसा तत्त्व है जो हम से सम्बद्ध है, हमारे अपने बौद्धिक विकास की कुछ बात है, हमारे अपने बचपन कुछ स्मृतियाँ कम से कम हमारी आर्य जाति के शैशव की स्मृतियाँ वहाँ विद्यमान हैं। मेरी यह दृढ़ धारणा है कि हमने अपने स्कूलों में होमर और विर्जिल से जो शिक्षा प्राप्त की है, वेद से उतनी ही अथवा उससे भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण जीवनोपयोगी शिक्षा हमें मिल सकती है। प्लेटो या स्पिनोजा के सिद्धान्तों के समान ही वेदान्त की शिक्षा भी अत्यन्त हितावह एवं उपदेशप्रद है।

113. मैं यह तो नहीं कहना चाहता कि प्रत्येक उस व्यक्ति को, जो यह जानना चाहता है कि मानव-समाज को उसका वर्तमान रूप कैसे प्राप्त हुआ, हमारी भाषाएँ इस वर्तमान रूप में कैसे आयीं, इन धर्मों का आधुनिक रूप कैसे बना, हमारे रीति-रिवाज, परम्पराएँ, कानून और शासन-व्यवस्था आदि को वर्तमान रूप कैसे प्राप्त हुआ, सबसे बढ़कर यह कि हम स्वयं अपने इस रूप में कैसे आ पाए, आदि बातों को जानने के लिए संस्कृत पढ़ना ही चाहिए। किन्तु, मेरा यह भी विश्वास है कि मानव मस्तिष्क एवं उसके चिन्तन की अन्धकारावृत विकास-सरणी को, कि स्वयं हमारा चिन्तन जिसके आधार समृद्ध है, उस प्रक्रिया को प्रकाश में लाने का जो महत्त्वपूर्ण कार्य संस्कृत और विशेषतः वेदों के स्वाध्याय से हो पाया है, उसके बारे में कुछ न जानना सचमुच हमारा एक ऐसा दुर्भाग्य होगा जिससे हमारी बहुत बड़ी हानि हो जायगी। इस भूमण्डल तथा ग्रहों की गतिविधि और विविध कानूनों को जाने बिना भले ही लोगों के काम चलते रहें, किन्तु (संस्कृत-ज्ञान के द्वारा) अपनी परम्परा और स्वयं अपने अस्तित्व का ज्ञान तो प्रत्येक व्यक्ति को होना ही चाहिए।

many published books, but, if possible, to make you see and feel the general human interests that are involved in that ancient chapter of the history of the human race. I wished that the Veda and its religion and philosophy should not only seem to you curious or strange, but that you should feel that there was in them something that concerns ourselves, something of our own intellectual growth, some recollections, as it were, of our own childhood, or at least of the childhood of our own race. I feel convinced that, placed as we are here in this life, we have lessons to learn from the Veda, quite as important as the lessons we learn at school from Homer and Virgil, and lessons from the Vedanta quite as instructive as the systems of Plato or Spinoza.

113. I do not mean to say that everybody who wishes to know how the human race came to be what it is, how language came to be what it is, how religion came to be what it is, how manners, customs, laws, and forms of government came to be what they are, how we ourselves came to be what we are, must learn Sanskrit, and must study Vedic Sanskrit. But I *do* believe that not to know what a study of Sanskrit, and particularly a study of the Veda, has already done for illuminating the darkest passages in the history of the human mind, of that mind on which we ourselves are feeding and living, is a misfortune, or, at all events, a loss, just as I should count it a loss to have passed through life without knowing something, however little, of the earth and its geological formation, of the movements of the sun, the moon, and the stars,—and of the thought, or the will, or the law, that governs these movements.
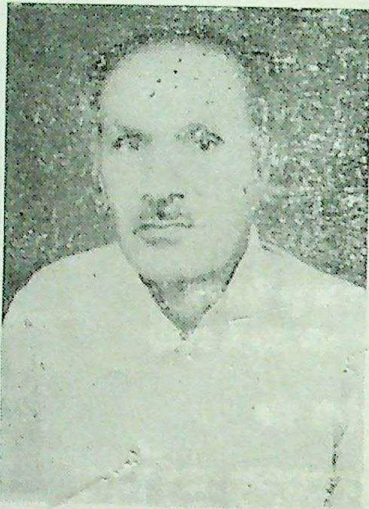
डॉ० भवानी शंकर त्रिवेदी : परिचय

रायपुर (मेवाड़) पं. बिहारी लाल जी के पौत्र व पं० कालूराम जी के पुत्र श्री त्रिवेदी जी का जन्म कालूहेड़ा (उज्जैन) में हुआ था। आपकी शिक्षा उज्जैन, ब्यावर और अमृतसर में हुई। अमृतसर तथा लाहौर में आपकी साहित्यिक गतिविधियाँ चलती रहीं। विभाजन के फलस्वरूप आप अपनी ससुराल शाहपुरा (मेवाड़) आ गये, जहाँ आप राजकीय ब्रह्म विद्यालय के प्रधानाध्यापक के पद पर नियुक्त हो गये, किन्तु साहित्य सेवा की लगन के कारण आप वहाँ से दिल्ली पहुंच गए।

अब तक प्रकाशित आपकी अनेक रचनाओं में से निम्न प्रमुख हैं—

- संस्कृतम् यूरोपिया भाषाश्च (अंग्रेजी व जर्मन आदि यूरोपियन भाषाओं का संस्कृत के साथ तुलनात्मक अध्ययन)
- मोक्षमूलर वैदुष्यम् (हिन्दी अनुवाद सहित संस्कृत नाटक)
- संस्कार प्रकाश (कर्मकाण्ड प्रकाश का दूसरा भाग)
- कालिदास चर्चित बृहत्तर भारत
- श्री साईनाथ स्तोत्र कुसुमाञ्जलि
- संस्कृत सजातीय भाषाएँ (प्रेस में)
- संस्कृतम् ईरानीया भाषाश्च (प्रेस में)
- हमारा हिन्दी साहित्य और भाषा परिवार (हिन्दी साहित्य का इतिहास) (तृतीय संस्करण छप रहा है)
- हिन्दी कवि सर्वस्व (सचित्र) (" " ")
- भारत से हम क्या सीखें (प्रस्तुत ग्रन्थ)